आर्यसमाज का इतिहास

द्वितीय भाग

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति

1957

प्रकाशक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

बलिदान भवन, श्रद्धानन्द बाजार,

दिल्ली

प्रकाशक
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
बलिदान भवन, श्रद्धानन्द बाजार
दिल्ली

मूल्य : ५)
विक्रमी संवत् २०१४
ईस्वी सन् १९५७

PRICE
Rs. 85/-

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
कनाट सरकस
नई दिल्ली

भूमिका

आर्यसमाज के इतिहास का दूसरा भाग भारतीय इतिहास के एक मोड़ के साथ समाप्त होता है। १६४७ के आरम्भ में भारत विदेशी राज्य के अधिकार से निकल कर स्वतन्त्र होने के स्वप्न ले रहा था। देश में स्वतन्त्रता आयी, और अपने साथ अनेक समस्यायें लायी, परन्तु उनमे कोई भी समस्या इतनी विकट नही थी, जितनी पंजाब के विभाजन और उसके परिणामो की, और उस समस्या का सबसे गहरा और भारी असर जिस सस्था पर पडा, वह आर्य-समाज थी। पजाब आर्यसमाज का सबसे जबर्दस्त दुर्ग था और उसका भी पश्चिमी भाग बलिष्ठतम समझा जाता था। विभाजन ने उसे धूलिसात् कर दिया। आर्यसमाज के इतिहास मे वह एक नया युग था, जिसमे उसे आहत शरीर के साथ जीवनयापन करना पड़ा। उस युग का वृत्तान्त तीसरे भाग का विषय है।

दूसरे भाग की सामग्री एकत्र करने मे और उसे छाँटने मे पहले भाग की अपेक्षा भी अधिक परिश्रम करना पड़ा, परन्तु मैं सन्तोषपूर्वक कह सकता हूँ कि उसमे सभी आर्यजनो तथा आर्यसस्थाओ ने पूर्ण सहयोग दिया। मै उन सब का धन्यवाद करता हूँ। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्यालय तथा श्री शिवचन्द्र आर्य से भी मुझे समय-समय पर सामग्री प्रस्तुत करने में बहुत सहायता मिलती रही। मै उन सब के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ।

म० मामराज जी आर्य की प्रयत्नपूर्वक संगृहीत सामग्री से पहले भाग की भाँति, दूसरे भाग मे भी पूर्ण उपयोग लिया गया है। उनके प्रेम और विश्वास का मैं सदा आभारी रहूँगा।

श्री पं० युधिष्ठिर मीमासक ने इतिहास के प्रथम भाग को पढ कर मेरा ध्यान कई विचारणीय विषयो और छपाई की भूलो की ओर आकृष्ट किया है। मैं उनका भी अनुगृहीत हूँ। उनकी आलोचना से दूसरे संस्करण मे मै पूरा लाभ उठाऊँगा।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति

विषय-सूची

पञ्चम खण्ड—हैदराबाद में सत्याग्रह

षष्ठ खण्ड—सत्यार्थप्रकाश पर विफल आक्रमण

परिशिष्ट

पहला अध्याय

गुरुकुल युग का सूत्रपात

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आर्यसमाज ने एक नये युग में प्रवेश किया, जिसे हम गुरुकुल-युग कह सकते हैं।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में शिक्षा के निम्नलिखित सिद्धान्त लिखे थे--

"......आठ वर्ष के हों, तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियो को लड़कियो की पाठशाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्णविद्यायुक्त, धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य है। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज दें, विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश मे होना चाहिए और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला, दो कोस, एक दूसरे से दूर होनी चाहिएं, जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों, वे कन्याओ की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला मे पॉच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पॉच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे। अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें तब तक स्त्री व पुरुष का दर्शन, स्पर्श, एकान्त सेवन, भाषण, विषयकथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और सग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें, जिनसे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा से बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें। पाठशालाओ से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम वा नगर रहे। सब को तुल्य वस्त्र, खानपान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिए। उनके माता-पिता अपने सन्तानों वा सन्तान अपने माता-पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढाने की चिन्ता रखें। जब भ्रमण करने को जावें, तब उनके साथ अध्यापक रहें, जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।"

महर्षि के अन्य ग्रन्थों मे जहाँ कहीं शिक्षा का प्रकरण आया है, उसमें शिक्षासम्बन्धी इन्हीं सिद्धान्तों को दोहराया गया है। वे सिद्धान्त संक्षेप में निम्नलिखित हैं :--

१. लड़कों और लड़कियों के शिक्षणालय पृथक्-पृथक् हों। महर्षि ने इन शिक्षणालयों का आचार्यकुल और गुरुकुल इन दो नामों से निर्देश किया है।

२. आठ वर्ष से अधिक आयु के बालक या बालिकायें गुरुकुलों में अवश्य भेज दिये जायें। ऐसा राजनियम होना चाहिए कि आठ वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को घर में न रक्खा जा सके। उनका आचार्यकुल में जाना आवश्यक है।

३. विवाह योग्य आयु होने तक (बालक २५ वर्ष की आयु तक और कन्या १६ वर्ष की आयु तक हों) विद्यार्थी आचार्यकुल में ही निवास करें। वे ब्रह्मचर्य का पालन करें। उससे पूर्व उनका वाग्दान अथवा विवाह न हो।

४. गुरुकुलों में सब को एक समान माना जाय, उनमें ऊंच-नीच या धनी-निर्धन की भेदभावना न हो। राजपुत्र हो या किसी साधारण शिल्पी की सन्तान हो, सब से समान व्यवहार किया जाय।

५. गुरु और शिष्य का पिता पुत्र का-सा सम्बन्ध रहे। गुरु उन्हीं लोगों को बनाया जाय जो शुद्ध आचरण वाले और विद्वान् हों।

६. शिक्षणालय नगर से दूर एकान्त स्थान मे हों। बालक और बालिकाओं के गुरुकुल भी एक दूसरे से दूरी पर होने चाहिएं।

७. शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में महर्षि ने विस्तार से अपने विचार लिखे है। उनका सारांश यह है कि वेदवेदांगों की शिक्षा के साथ-साथ बालकों को अन्य सब प्रकार की उपयुक्त शिक्षा दी जानी चाहिए। राजविद्या, शिल्प, गणित, ज्योतिष, भूगोल, चिकित्सा आदि शास्त्रीय और व्यावहारिक विषयों के अतिरिक्त देश-देशान्तरो की भाषाओं का ज्ञान भी कराया जाय, महर्षि का ऐसा अभिप्राय था।

८. विचारों की शुद्धता रखने के लिए महर्षि यह आवश्यक समझते थे कि उन ग्रन्थों का अध्यापन न कराया जाय, जिनमें शृंगार रस अथवा भ्रममूलक विचारों का प्रतिपादन हो।

शिक्षा के सम्बन्ध में महर्षि के ये विचार अपने समय की दृष्टि से बहुत क्रांतिकारी थे। एकदम उनके सम्पूर्ण रूप की ओर आर्य पुरुषों का ध्यान नही गया। यही कारण है कि जब लाहौर के आर्यजनों ने महर्षि के स्मारकरूप में डी० ए० वी० स्कूल बनाने का निश्चय किया तब उधर दृष्टि नही गई। पूर्णरूप से ध्यान न जाते हुए भी कुछ आर्य पुरुषों के मन में यह विचार उठता रहा कि सरकारी ढंग का स्कूल या कालिज बनाकर भी उसमे यथासम्भव महर्षि के बताए हुए शिक्षा-सम्बन्धी सिद्धान्तों का समावेश किया जाना उचित है। ऐसे महानुभावो के अग्रणी पं० गुरुदत्त विद्यार्थी थे। वे प्रारम्भ से ही यह यत्न करते रहे कि कालिज में वेद-वेदांगों की शिक्षा को प्रधानता दी जाय और स्कल के बोर्डिंग में गुरुकुलोचित नियम लागू किए जायें। डी० ए० वी० कालिज के कोर्स के सम्बन्ध में २४ अगस्त १८८६ की आर्य-पत्रिका में यह

घोषणा की गई थी कि "उसका (डी० ए० वी० कालेज का) उद्देश्य प्राचीन संस्कृत साहित्य के अध्ययन को उत्साहित करना और हिन्दू साहित्य को उन्नत करना होगा।" डी० ए० वी० कालिज के बोर्डिंग हाउस के सम्बन्ध में १९ अप्रैल सन् १८८७ की 'आर्य-पत्रिका' में निम्नलिखित सूचना थी--"इस बोर्डिंग हाउस के नियम बिल्कुल पूर्ण हैं। इसमे नियन्त्रण का पूरा प्रबन्ध किया गया है और इस बात की व्यवस्था की गयी है कि उन बालकों को जो उसमे प्रविष्ट हों, इस प्रकार रखा जावे जैसे घरों में जहाँ माता-पिता के पास बच्चे रहते है।" (ये उद्धरण पं० चमूपति जी द्वारा संकलित आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब के इतिहास से लिए गये है। पंजाब के विभाजन के कारण पत्रिका की फाइल हमें नही मिल सकी)। जब तक पं० गुरुदत्त जी जीवित रहे, वे डी० ए० वी० कालिज की स्कीम में गुरुकुल की भावना को स्थान देने का यत्न करते रहे परन्तु उन्हे विशेष सफलता नहीं मिली। डी० ए० वी० कालिज के राय मूलराज, श्री ला० लालचन्द आदि संचालकों के विचार पंडित जी के विचारो से कुछ भिन्न थे। विचार-भेद का यही बीज था जो समयान्तर में उग्र दलबन्दी के रूप में परिणत हो गया।

पंजाब के आर्यसमाजो में दो दल हो गये। एक दल के हाथ में डी० ए० वी० कालिज का संचालन रहा और दूसरे दल ने वेद-प्रचार और कन्याओं की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। इस प्रकार कार्यों का बंटवारा तो हो गया परन्तु वेद प्रचार दल के नेताओं के मन में यह बात खटकती रही कि आर्यसमाज ने वेद-वेदांगो की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की और न ही महर्षि के शिक्षा-सम्बन्धी अन्य आदर्शों को कार्यान्वित करने का यत्न किया। एक यह विचार भी मन में छिपा हुआ था कि डी० ए० वी० कालिज सामान्य शिक्षणालयो की तरह यूनी-वर्सिटी शिक्षा का साधन होने के कारण आर्यसमाज की आवश्यकताओं को पूरा नही कर सकता। इस असन्तोष की भावना का पहला परिणाम यह हुआ कि आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब ने एक वैदिक पाठशाला की स्थापना की। यह पाठशाला पहले जालधर में स्थापित की गई फिर उसे गुजरांवाला ले जाया गया। इस स्थान-परिवर्तन का कारण यह कहा गया कि जालंधर आर्यसमाज के हाथ कन्या महाविद्यालय से घिरे हुए है, इस कारण वैदिक पाठशाला कहीं अन्यत्र जानी चाहिए। गुजरांवाला के ला० रलाराम उन दिनों आर्य-प्रतिनिधि सभा के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता समझे जाते थे। वे पंजाब के आर्यसमाजों की शक्ति के जालंधर में केन्द्रित होने के पक्ष में नही थे। उनकी तथा उनके साथियो की इच्छा के अनुसार वैदिक पाठशाला जालंधर से गुजरांवाला भेज दी गई। उस समय उसके प्रधानाध्यापक पं० गंगादत्त जी शास्त्री थे और विद्यार्थियो में पं० नरदेव जी, पं० विष्णुमित्र जी और पं० भगतराम जी आदि महानुभाव थे, जिन्होंने वैदिक

पं० गंगादत्त शास्त्री

पाठशाला में विद्या समाप्त करके आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया और अपने-अपने ढंग पर समाज की सेवा की।

वैदिक पाठशाला तो बन गई परन्तु आर्य पुरुषों का सन्तोष न हुआ। उनके मन में यह भावना बनी रही कि महर्षि की बतलाई हुई प्रणाली के अनुसार शिक्षा देने का प्रबन्ध न करके आर्यसमाज अपने कर्त्तव्य का पालन करने में असफल रहा है। गुरुकुल की स्थापना का बीज आर्यजनों का यही भाव था कि जब तक गुरुकुल शिक्षा-पद्धति का उद्धार नहीं किया जायगा तब तक आर्यसमाज अपने उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकेगा। गुरुकुल के आन्दोलन का प्रारम्भिक वृतान्त हम पं० चमूपति जी द्वारा लिखित आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब के इतिहास से उद्धृत करते है :—

"गुरुकुल के लिए पहले-पहल आंदोलन सन् १८९७ में आरम्भ हुआ। उन दिनों महात्मा मुन्शीराम जालंधर से 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र प्रकाशित करते थे। सद्धर्म-प्रचारक में इसके लिए प्रबल आंदोलन किया गया और 'आर्य पत्रिका' आदि अन्य सामाजिक पत्रों ने इसका पोषण किया। नवंबर १८९८ के आर्य प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन में गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

"गुरुकुल को खोलने का प्रस्ताव तो स्वीकृत हो गया, पर धन के बिना गुरुकुल खुलना सम्भव कैसे था ? धन एकत्रित करने का कार्य महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने ऊपर लिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक ३० हजार रुपया एकत्रित नहीं कर लेंगे, अपने घर में पैर नही रखेंगे। आजकल ३० हजार रुपया किसी सार्वजनिक कार्य के लिये एकत्रित करना कठिन नही है। पर अब से ५८ वर्ष पूर्व जब कि किसी सार्वजनिक कार्य के लिए दान देने का अभ्यास जनता को नहीं था, ३० हजार रुपया इकट्ठा करना एक असाधारण बात थी। महात्मा मुशीराम जी गुरुकुल के लिए धन एकत्रित करने निकले। आठ महीने लगातार घूमने के बाद ३० हजार रुपये इकट्ठे हुए। महात्मा मुन्शीराम जी की यह असाधारण सफलता थी, जो उनके अटल विश्वास और हार्दिक धर्म-प्रेम की अद्भुत विजय थी। इस सफलता के अभिनन्दनस्वरूप लाहौर में उनका शानदार जलूस निकला, सर्वत्र फूलों के हारों तथा उत्साह-पूर्ण जयकारों के साथ उनका स्वागत हुआ।

"गुरुकुल के नियम आदि बनाने का कार्य भी महात्मा मुन्शीराम जी के सुपुर्द किया गया था और २६ दिसम्बर १९०० के प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन के अवसर पर गुरुकुल के पहले नियम स्वीकृत किये गये थे। गुजरांवाला के ला० रलाराम उन दिनों आर्य-प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे। उनके हस्ताक्षरों से गुरुकुल की प्रथम नियमावली प्रकाशित हुई। उसमें २० पृष्ठों की भूमिका थी, जिसमें इन नियमों की व्याख्या की गयी है।"

जब यह समाचार प्रकाशित हुआ कि आर्य प्रतिनिधि सभा गुरुकुल खोलने के प्रस्ताव पर विचार कर रही है, और 'सद्धर्म प्रचारक' में इस प्रस्ताव की पुष्टि में

ज़ोरदार लेख लिखे जाने लगे तो न केवल पंजाब के आर्यसमाजों में, अपितु अन्य प्रान्तों के आर्यजनों में भी उत्साह की एक बाढ़ सी आ गई। चारों ओर से गुरुकुल सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन होने लगा। १८९७ के अक्तूबर मास में श्रीहरगोविंदपुर आर्यसमाज के जलसे पर आर्य भाइयों की एक सभा हुई। उस उत्सव में जालन्धर से श्री मुन्शीराम जी, लाहौर से सर्वश्री रामभजदत्त चौधरी और सीताराम जी, दीनानगर से केसरीमल जी आये थे। सभा में बहुत से वाद-विवाद के अनन्तर यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ कि आर्य पुरुषों की यह कान्फ्रेन्स श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की सेवा में यह निवेदन करना अत्यन्त आवश्यक समझती है कि गुरुकुल शीघ्र ही खोला जाय। २६ नवम्बर सन् १८९८ के अधिवेशन में प्रतिनिधि सभा पंजाब ने गुरुकुल खोलने और ऋषि दयानन्द के अधूरे वेद भाष्य को पूरा करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव स्वीकार किये और निश्चय किया कि दोनों कार्यों के लिए आठ-आठ हजार रुपया जमा हो जाने पर ये काम आरम्भ किये जायें। प्रस्ताव तो स्वीकार हो गया परन्तु उसकी पूर्ति के लिये कोई विशेष उद्योग न हुआ तब विलम्ब से असन्तुष्ट होकर महात्मा मुन्शीराम जी ने 'सद्धर्मप्रचारक' में घोषणा कर दी कि जब तक वे गुरुकुल के लिए ३० हजार रुपया इकट्ठा न कर लेंगें, तब तक घर में पैर नही रखेंगे। यह घोषणा करके वे लाहौर से ही चन्दा एकत्र करने के लिए निकल पड़े और तब तक जालन्धर की कोठी में कदम न रखा जब तक ३० हजार की राशि एकत्र न हो गई।

इस प्रतिज्ञा और उसकी पूर्ति के साथ आर्यसमाज के जीवन में एक नये युग का आरम्भ होता है। आवश्यक प्रतीत होता है कि उस युग का इतिहास लिखने से पूर्व उस व्यक्ति का थोड़ा सा जीवन-वृत्तान्त भी सुना दें, जिसकी इच्छाशक्ति ने नये युग को जन्म दिया।

दूसरा अध्याय

महात्मा मुन्शीराम जी

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित चमूपति जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के इतिहास मे महात्मा जी का जो प्रारम्भिक जीवन वृत्तान्त दिया है, वह संक्षिप्त होता हुआ भी इतना पूरा और सुन्दर है कि हम उसके पूर्वार्द्ध को उद्धृत करना महात्मा जी के जीवन-परिचय के लिए पर्याप्त समझते है।

"महात्मा मुन्शीराम का जन्म १८५६ ई० मे जालन्धर जिले के तलवन नाम के कस्बे मे हुआ। ये एक क्षत्रिय कुल के थे, जिनमें भक्ति और निर्भीकता की परम्परा चली आती थी। इनके पिता लाला नानकचन्द ने १८५७ के विद्रोह में सरकार की सेवा की थी। उसके पारितोषिक रूप में उन्हें कोतवाल का पद प्राप्त हुआ था। उनके जीवन का अधिक समय पश्चिमोत्तर (संयुक्त) प्रान्त में बीता। वे कोतवाल के मिष से बनारस, मिर्जापुर, बलिया, बरेली, बदायू, आदि स्थानों में ज्यादा रहे। मुन्शीराम उनकी सन्तान में सबसे छोटा था, इसलिए इससे घर में सबसे अधिक लाड़-चाव किया जाता था।

महात्मा मुन्शीराम जी

"मुन्शीराम की प्रारंभिक शिक्षा पहिले तो पंडितों और मास्टरों के द्वारा घर पर और फिर नियमित रूप से एक हिन्दी स्कूल में हुई। तुलसीकृत रामायण का पाठ लाला नानकचन्द बड़े चाव से किया करते थे। मुन्शीराम ने इस ग्रन्थ के कई स्थल कण्ठस्थ कर लिए। बड़े होकर भी ये तुलसी के दोहों और चौपाइयों का उच्चारण मजे ले-लेकर करते थे। ऐंट्रेन्स की शिक्षा के लिए बनारस के स्कूल में भर्ती हुए। १८६४ में परीक्षा दी। इनका पास होना निश्चित था परन्तु एक विषय का पत्र प्रकट हो गया। उसकी परीक्षा फिर हुई और ये उसमें सम्मिलित न हो सके। ये अपने पूर्व से नियत समय विभाग के अनुसार तलवन पहुँच गये। पहिले वर्ष के अध्ययन के भरोसे ये दूसरे वर्ष पुस्तकों से उपेक्षा किये रहे। विद्यालय जाना ही बन्द कर दिया। उपन्यास तथा नाटक पढ़ने की चाट तभी से पड़ी। यह उपेक्षावृत्ति यहां तक बढ़ी कि इस वर्ष परीक्षा में बैठे ही नहीं। आखिर अगले वर्ष अर्थात् १८६६ में ऐंट्रेन्स पास की।

"जिन दिनों मुन्शीराम इन परीक्षाओं की तैयारी के लिए काशी में निवास करते थे, इनके पिता बलिया में थे। इस प्रकार ये स्वतन्त्र थे। कुश्ती, गदका तथा लाठी का अभ्यास इन्होंने इस स्वतन्त्रता की अवस्था में किया। शरीर बलिष्ठ था। निर्बल लड़कों को गुण्डों से बचाने में बल का खूब सदुपयोग हुआ। परन्तु उपन्यासों के अध्ययन और अनुचित संगति ने मदिरा-पान तथा हुक्के की लत सी पैदा कर दी। काशी के घाटों पर से दो देवियों को 'राक्षसों' के हाथों से बचा लाए। आर्य साहित्य का अभ्यास होता तो इनके अपने कथनानुसार ये उनके राखी-बंधे भाई बन जाते।

"१८७८ में मुन्शीराम का विवाह हो गया। लाला देवराज की बहिन शिवदेवी उनकी धर्मपत्नी थी। यह देवी पुराने ढंग की सरल प्रकृति की सती-साध्वी गृहिणी थी। ऐसी गृहिणियाँ आजकल कम मिलती हैं। एक तो उस समय उनकी आयु छोटी थी। दूसरे, लाला मुन्शीराम पर उस समय पाश्चात्यता सवार थी। वे एक सरल आर्य गृहिणी की महत्ता को नहीं समझ सकते थे। सती का जौहर उन पर खुला तो उस समय जब वे मदिरा से उन्मत्त होकर घर लौटे, किसी सहायक की सहायता से छत पर पहुँचे और वहां जाते ही कै कर दी। पति-परायणा शिवदेवी ने इस बीभत्स अवस्था में भी उनसे घृणा के स्थान मे प्रेम का व्यवहार किया। उनके वस्त्र बदलवाए, उन्हें कुल्ला कराया और सुला कर आधी रात गये तक पतिदेव के सारे शरीर को दबाती रही। वे सो गए और वह जाग तथा भूखी रह कर उनकी सेवा में तत्पर रही। उन्होंने भूखा रहने का कारण पूछा तो सरल स्वभाव से बोली—पतिदेव से पूर्व भोजन कैसे करती? उस रात दम्पति ने मिल कर उपवास किया। आर्य विवाह केवल कपड़ों की नहीं, हृदयों की गांठ होती है—इसका अनुभव मुन्शीराम को इस रात हुआ।

"शिवदेवी की पति-भक्ति का दूसरा उज्ज्वल प्रमाण उस दिन मिला, जब इसी सुरा-पान ही के व्यसन ने उन्हें सैकड़ों रुपयों का ऋणी बना दिया। वे रुपये की चिन्ता में चूर बैठे थे कि अर्धांगिणी ने अपने हाथों के कड़े उतार कर दे दिये और कहा—इन्हें बेच कर ऋण चुका दो।

"शराब पीने वाले देवियों पर कैसे घोर अत्याचार करते हैं, इसका एक उदाहरण इनके एक हम-प्याला मित्र ही की बैठक में उस मित्र के अपने हाथों उपस्थित हो गया। यह देखते ही उन्हें सुरापान से घृणा हो गयी। मूर्ति-पूजा से विमुख हो जाने का कारण भी एक ऐसी ही घटना हुई। पुजारी ने पैर छू रही एक महिला का हाथ पकड़ लिया और वह चिल्ला उठी—इस दृश्य ने मुंशीराम तथा उनके साथी को मन्दिरों से उपरत कर दिया। इससे पूर्व काशी के मंदिरों में रेवा की रानी की उपस्थिति के कारण अन्य दर्शनार्थियों पर शिवजी के दर्शन का द्वार निरुद्ध पाकर ये सोचने लगे थे कि क्या परमेश्वर भी राजा और रंक में भेद करता है? इस प्रकार हिन्दू धर्म में इन्हें अनास्था हो गयी, और एक कैथोलिक पादरी के साथ बप्तिस्मा का समय भी निश्चित कर लिया। परन्तु जब पादरी के घर गये तो वहाँ भी ऐसा ही दुराचार

होता दिखाई दिया। उनकी दृष्टि एकाएक उस घिनौने दृश्य पर जा पड़ी और इन्होंने निश्चय किया कि सब धर्म सदाचार के शत्रु हैं।

"इधर बरेली में अपने पिता जी के साथ ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। ऋषि काशी पधारे थे तो इनकी माता ने इस भ्रम से कि एक जादूगर आया है, जो हिन्दुओं का धर्म हर लेता है, इन्हें तथा इनके भाई को घर पर रोके रखा था। पर अब तो स्वयं पिता ही उस जादूगर की माया में फंस से गए थे। ऋषि के एक दिन के शास्त्रार्थ में ला० मुन्शीराम उपस्थित थे। ऋषि के स्थान पर जाकर उनका शंका-समाधान सुनने का शुभ अवसर भी इन्हें उपलब्ध हो गया। ये सब घटनाएं चुपके-चुपके किसी विचित्र भविष्य की तैयारी करा रही थीं। मुन्शीराम रिंद रह कर भी महात्मा बनने के परोक्ष संस्कार उपलब्ध कर रहा था। इन संस्कारों का परिपाक समय चाहता था जो प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आप प्राप्त होता जा रहा था।

"एफ० ए० के पहले वर्ष की परीक्षा तो मुन्शीराम ने पास कर ही ली परन्तु दूसरे वर्ष की परीक्षा एक बार बनारस से और दूसरी बार इलाहाबाद से दी और दोनों बार असफल हुए। दूसरी बार इन्होंने तैयारी भी अच्छी की थी परन्तु रोगी होने के कारण एक विषय में ८ अंकों की कमी रही, इसलिए ये अनुत्तीर्ण रहे।

"पुत्र को इस प्रकार उच्च शिक्षा पाने में असमर्थ देखकर इनके पिता ने इन्हें बरेली का स्थानापन्न नायब तहसीलदार बनवा दिया। एक मास इन्होंने तहसीलदारी का काम भी किया परन्तु सेना की छावनी से इनके आदमियों को रसद की कीमत न मिली। इस पर इन्होंने अपने आदमियों को कर्नल के देखते-देखते लौटा लिया। कर्नल को साफ कह दिया कि मूल्य के बिना रसद नहीं मिलेगी। डिप्टी कलक्टर ने क्षमा माँगने को कहा परन्तु ये नहीं माने और पीछे चाहे इन्हें निर्दोष निश्चित कर आरोप हटा लिया तो भी इनका जी इस अपमान की चाकरी से खट्टा हो गया और अब ये वकालत की परीक्षा के लिए तैयार होने लगे।

"१८८३ में इन्होंने मुख्तारी की परीक्षा पास की और मुकदमें लेने आरम्भ कर दिए। इस परीक्षा में एक वर्ष में ५ उपस्थितियों की कमी के कारण और दूसरे वर्ष तैयारी पूरी न होने के कारण ये रह गए। १८८६ में वकालत की पहली परीक्षा दी। इसमें दो अंकों की कमी के कारण अनुत्तीर्ण ही रहते परन्तु यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार लार्पेण्ट महाशय ने घूस लेकर कई विद्यार्थियों को पास कर दिया। उस समय पंजाब यूनिवर्सिटी की विचित्र परिस्थिति थी। विशेष कर परीक्षा सम्बन्धी अराजकता उस समय बहुत थी इस सम्बन्ध में लार्पेण्ट साहब बहुत प्रसिद्ध थे। लार्पेण्टी ग्रेजुएटों के सम्बन्ध में कई गाथाएं प्रसिद्ध हैं। परन्तु हमारा उनसे क्या मतलब। मुन्शीराम ने उन्हें अखबारों द्वारा सारी पोल खोल देने की धमकी दी। लार्पेण्ट ने डर के मारे इन्हें पास कर दिया। दूसरी परीक्षा दिसम्बर १८८६ में थी। उसके परिणाम में गड़-बड़ रही। सैनेट ने केवल एक विद्यार्थी पास किया। आखिर जनवरी १८८८ में

दूसरी बार इस परीक्षा में बैठकर पास हो गए। परीक्षाओं के इन अनुभवों ने पिछले संस्कारों को और भी दृढ़ कर दिया। शिक्षा का सच्चा मानदण्ड परीक्षा नहीं है। इसकी वर्तमान पद्धति में न आकस्मिक आपत्तियों के ही प्रतिकार का कोई स्थान है न विद्यार्थियों की विविध योग्यताओं के स्वतंत्र विकास के लिए ही कोई अवसर है। महात्मा मुन्शीराम की इस सम्मति का परिणाम गुरुकुल की वर्तमान परीक्षा प्रणाली है। महात्मा मुन्शीराम के व्यक्तित्व के निर्माण में यूनिवर्सिटी की शिक्षा तथा परीक्षाएं असफल रहीं। इनका महान् जीवन कुछ और शक्तियों की कृति था। ये स्वभावतः उन्हीं को अधिक महत्व देते थे।

"मुख्तारी की परीक्षा पास कर इन्होंने वकालत का काम आरम्भ कर ही दिया था। वकालत की शिक्षा के लिए लाहौर जाना होता था। वहाँ ये आर्यसमाज तथा ब्राह्मसमाज दोनो के अधिवेशनों में सम्मिलित होते थे। पुनर्जन्म के विषय पर ये ऋषि का शास्त्रार्थ देख चुके थे। ब्राह्मसमाज इस सिद्धांत के विरुद्ध था। इस पर उन्होंने दोनों पक्षों के साहित्य का अनुशीलन कर निश्चय किया कि आर्यसमाज का मत ठीक है। सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन इसी निमित्त से किया। बस फिर क्या? ये झट आर्यसमाज के सदस्य बन गए। ला० साईं दास अपने पक्ष की इस जीत पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भविष्यवाणी की कि आज एक नई शक्ति का प्रवेश आर्यसमाज में हुआ है। देखें, इसका परिणाम अच्छा होता है या बुरा? ला० देवराज ने जालन्धर समाज का प्रधानपद इनके लिए रिक्त कर दिया और स्वयं मन्त्री बन गए।

"मुन्शीराम जी का माँसाहार का त्याग भी सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन का फल था। आर्यसमाज की सभासदी ने मुन्शीराम के अध्ययन को एक निश्चित दिशा दे दी। अब ये अधिक समय आर्यसाहित्य के स्वाध्याय मे लगे रहने लगे। ऋषि-कृत ग्रन्थों का पाठ कर वेद-वेदांग के स्वाध्याय में प्रवृत्ति हुई। जालन्धर समाज मे इन्होंने धर्मघट तथा रद्दी-फण्ड की प्रथा जारी कर दी और शहर की गलियो मे दुतारा लेकर संकीर्तन द्वारा धर्म का प्रचार करने लगे। सनातनी पंडितों के मुकाबले में जब लाहौर से कोई पंडित न आया तो जबानी व्याख्यानों तथा शास्त्रार्थो का काम मुन्शीराम ही को करना पड़ा।

"उधर वकालत चल रही थी और उसमे यथासंभव सत्यपरायणता का प्रयत्न किया जा रहा था। इससे रुपये की दृष्टि से हानि होती थी। इधर प्रचार-कार्य की धुन इन्हें वादी-प्रतिवादी का नही आर्यसमाज का वकील बनाती जा रही थी। एक मुकदमा इन्हें मिला ही इसलिए कि आर्यसमाज मे दिए गए इनके व्याख्यान का प्रभाव एक वादी पर बहुत अच्छा पड़ा। उसने पुराने अनुभवी वकीलों को छोड़ कर इन्ही को पसन्द किया और इन्होने उसे विजय दिला दी। पर ये लाभ अपवाद रूप थे। साधारणतया वकालत और प्रचार इन दोनो कार्यो का एक साथ चलना कठिन था।

"धार्मिक कट्टरता ने इन्हे घोर पारिवारिक विरोध का ही सामना कराया। पिता जी पहले तो रुष्ट हुए परन्तु पीछे उनके अपने विचार ही सहसा परिवर्तित हो गए।

ऋषि की पुरानी माया का जादू प्रेम के प्रभाव से ताजा हो गया। रुग्णावस्था में उनकी सेवा कर इन्होंने अपना प्रभाव बैठा दिया। पैतृक संपत्ति से इनकी उपेक्षा और फिर यह प्रश्न कि क्या आप अपनी संतान से मक्कारी करायेंगे? मुन्शीराम के ये दो शस्त्र अमोघ सिद्ध हुए। इन्ही दिनों पं० गुरुदत्त से साक्षात् परिचय हुआ। यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता गया। यहाँ तक कि मुन्शीराम जी पण्डित जी के अन्तरंग अनुरक्तो मे होगए। आर्यसमाज में दोनों सदाचार की प्रधानता चाहते थे। पहले तो पडित जी को इन पर सन्देह था कि ये ब्राह्मसमाज के प्रभाव में हैं परन्तु साक्षात् बातचीत से यह भ्रम दूर हो गया। किसी को क्या पता था कि गुरुदत्त की प्रवृत्तियो को क्रियात्मक रूप देने का भार आगे जाकर जालन्धर की इस "नई शक्ति" पर ही पडेगा। ला० साईंदास की भविष्यवाणी गुरुदत्त की भावना की स्थिरता के सपनो से मानों सच्ची सिद्ध हो रही थी।

"१८८९ में स्वामी रामानन्द और स्वामी पूर्णानन्द जालन्धर आए। स्वामी रामानन्द ने उपदेशक श्रेणी खोलने का विचार प्रकट किया। मुन्शीराम सहमत हो गए। नियमित श्रेणी तो नहीं खुली परन्तु ये स्वयं जिज्ञासुओं को शिक्षा देने लग गए। स्वामी पूर्णानन्द की दर्शनों की शिक्षा का प्रबन्ध कपूरथले के एक पंडित जी के पास हो गया। स्वामी (पश्चात् पडित जी) जी को साथ लेकर ला० मुन्शीराम स्थान-स्थान पर आर्य-समाज का प्रचार करने लगे। लाला जी की प्रधानता में एक उप-प्रतिनिधि सभा की भी स्थापना हो गई। इस सभा का काम दोआबे में प्रचार करना था।

"जालन्धर के प्रत्येक कार्य में मुन्शीराम अग्रसर रहते थे। कन्यापाठशाला का प्रबन्ध, कन्या अनाथालय का प्रबन्ध, रहतियों की शुद्धि, नगर प्रचार, जिज्ञासुओं को शिक्षादान, जालन्धर से बाहर जा-जा कर उपदेश करना ये सब कार्य ला० मुन्शीराम के भावी चौमुखे जीवन की मानों भूमिका रूप थे।

"१ वैशाख, १९४६ (सन् १८८९) को 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र निकलना आरम्भ हुआ। ला० मुन्शीराम जी के हाथ में यह मानों कृष्ण का सुदर्शनचक्र आ गया था। इस के प्रभावों ने समाज को कई ऊंच-नीच दिखाए। पहले यह आध पृष्ठ का था फिर १६ का और फिर २० पृष्ठ का हो गया। प० लेखराम की स्मृति में इसमें चार पृष्ठ और बढ़ाए गए। इस परिशिष्ट का नाम "आर्य मुसाफिर" रक्खा गया। १ मार्च १९०७ को प्रचारक को उर्दू से हिन्दी कर दिया गया। उर्दू अक्षरों में भी प्रचारक की भाषा धीरे-धीरे हिन्दी होती गई थी। ला० मुन्शीराम के प्रभाव को बढ़ाने तथा फैलाने में 'प्रचारक' ने सब से प्रबल साधन का काम किया। उसने सपूर्ण समाज में एक 'प्रचारक-परिवार' स्थापित कर दिया जिसमें केन्द्रीय स्थान ला० मुन्शीराम का था। कन्यामहाविद्यालय के लिए प्रचारक द्वारा प्रबल आन्दोलन हुआ और जब प्रतिनिधि सभा की बागडोर ही लाला जी के हाथ मे आ गई तब तो प्रचारक एक प्रकार से सभा ही का पत्र बन गया। सभा की नीति का निर्धारण तथा प्रचार इसी के द्वारा होता था।

"३१ अगस्त १८९१ को लाला मुन्शीराम की धर्मपत्नी श्रीमती शिवदेवी का

देहान्त हो गया। देहान्त का संपूर्ण दृश्य उस पति-परायणा आर्य महिला के पूर्व चरित्र के सर्वथा अनुरूप था। ला० मुन्शीराम उस दिन से अपनी संतान के तो एक साथ माता-पिता हो ही गए। इसके पश्चात् का उनका संपूर्ण जीवन इस मातृत्व के विस्तार की साधना सा प्रतीत होता है। लाला जी की आयु इस समय ३५ वर्ष की थी। पुनर्विवाह के कई प्रस्ताव आए, पर सब व्यर्थ। इनके हृदय में जो प्रेम पहले अर्धांगिनी के लिए था, वह अब आर्यजगत् के लिए हो गया। महात्मा मुन्शीराम द्वारा किए गए ब्रह्मचर्य के प्रचार में सती शिवदेवी का बड़ा भाग है। सती के समर्पित जीवन तथा समर्पित मृत्यु ने मुन्शीराम को केवल ब्रह्मचारी ही नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्य की मर्यादा का पुनरुद्धारक बना दिया।

"पत्नी ने अपनी आहुति पति के पवित्र चरणों में दे दी और पति ने झट अपने आप को धर्म की आग में स्वाहा कर दिया। यह आहुति पति की थी या पत्नी की? १८९२ से १८९५ तक ये निरन्तर प्रतिनिधि सभा के प्रधान निर्वाचित होते रहे। इन्हीं की प्रधानता में वेद-प्रचार निधि की स्थापना हुई। वकालत के काम से जब भी इन्हे छुट्टी होती, ये प्रचार के कार्य में लग जाते। इस निमित्त से की गई यात्रा को ये धर्म-यात्रा कहते थे। ग्रीष्मावकाश तथा मुहर्रम की छुट्टियाँ इन धर्म-यात्राओं के समर्पण होतीं।

"लाला मुन्शीराम की सबसे लम्बी धर्म-यात्रा गुरुकुल के लिए भिक्षा-मण्डली के नेता के रूप में की गई थी। उसके फलस्वरूप ३०,०००) से अधिक एकत्रित होकर गुरुकुल की स्थापना हुई। ८ अप्रैल १९०० को लाहौर आर्यसमाज ने इनका जलूस निकाला तथा अभिनन्दन-पत्र पेश कर इन्हे "महात्मा" पद से विभूषित किया। तब से ये ला० मुन्शीराम के स्थान में महात्मा मुन्शीराम कहलाने लगे और धर्मात्मा समाज का नाम भी महात्मा समाज हो गया।"

तीसरा अध्याय

गुरुकुलों की स्थापना

१. गुरुकुल कांगड़ी

महात्मा मुंशीराम जी को गुरुकुल की स्थापना के लिए ३० हजार रुपये एकत्रित करने में लगभग ९ मास लगे। आपने यह धर्म-यात्रा २६ अगस्त सन् १८९८ के दिन आरम्भ की। उस दिन आप जालन्धर मे अपने मकान में न ठहर कर उसके सामने सड़क के दूसरी पार बने हुए आर्यसमाज मन्दिर मे ही ठहरे। इस दौरे के सिलसिले में आपने पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रांतों में भी व्याख्यान दिए और धन-संग्रह किया। आप जहाँ कहीं गये वहाँ आर्य जनता ने आपका हार्दिक स्वागत किया और यथाशक्ति धन दिया। लोगों के लिए गुरुकुल की बात बिलकुल नई थी, देश के कई भागों में दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था और उस समय जनता में शिक्षा के लिए अधिक दान देने की प्रवृत्ति भी उत्पन्न नहीं हुई थी तो भी मध्यम श्रेणी की आर्य जनता से नौ मास के समय मे ३० हजार रु० की राशि एकत्र हो गई, इसे बहुत महत्वपूर्ण समझा गया। इसी भावना से प्रेरित हो कर आर्य जनता ने लाला मुंशीराम जी को महात्मा पद से विभूषित किया। उस समय आप वकालत को तिलांजलि दे चुके थे और प्रेस और अखबार का काम भी कर्मचारियो पर डाल चुके थे।

जब गुरुकुल खोलने के लिए आवश्यक धन-राशि इकट्ठी हो गई तब यह प्रश्न उठा कि गुरुकुल कहाँ खोला जाय ? इस विषय में पंजाब के आर्यजनों में भी कई मत थे। कुछ आर्य नेता जिनमें ला० रलाराम तथा राय ठाकुरदत्त धवन मुख्य थे, यह चाहते थे कि गुरुकुल कहीं लाहौर अथवा अमृतसर के पास ही खोला जाय। श्री हरगोबिन्दपुर के आर्य पुरुषों ने यह प्रस्ताव किया कि यदि वहाँ गुरुकुल खोला जाय तो वे लोग आवश्यक भूमि दे देंगे। नूरमहल के ला० जगन्नाथ जी ने तो अपने कारखाने मे ही गुरुकुल खोलने की बात पेश कर दी थी। परन्तु महात्मा जी का गुरुकुल के सम्बन्ध में पहले से यह विचार था कि वह किसी नदी के तट पर एकान्त स्थान में स्थापित हो। वे अपनी भावना का आधार निम्नलिखित वेद-मंत्र को बतलाया करते थे :—

उपह्वरे गिरीणा संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रोऽजायत ॥ —यजुर्वेद

मनुष्य पहाड़ों की उपत्यकाओं और नदियों के सगमों पर गुरुओं से बुद्धि प्राप्त

करके विद्वान् बनता है। महात्मा जी का संकल्प था कि गुरुकुल ऐसे ही किसी स्थान पर बनाया जाय। शुभ संकल्पों की पूर्ति में परमात्मा सहायक होते हैं। इसे ईश्वरीय प्रेरणा ही कहना चाहिये कि ज़िला बिजनौर के नजीबाबाद नगर के निवासी मुन्शी अमनसिंह जी के मन में यह प्रेरणा हुई कि वे गंगा-तट पर बसे हुए अपने कांगड़ी ग्राम को गुरुकुल को दे दें। गुरुकुल के लिए कांगड़ी को दान कराने मे बिजनौर जिले के जिन आर्य पुरुषों ने महात्मा जी की सहायता की उनमें से नहटौर के चौ० चुन्नीसिंह जी, जि० सहारनपुर के बाबू मिट्ठनलाल खन्ना, राजपुर नवादे के चौ० फतेहसिंह जी और बिजनौर के चौ० शेरसिंह जी प्रमुख थे।

• मुन्शी अमनसिंह

मुन्शी जी ने महात्मा जी को पत्र लिखकर अपने संकल्प की सूचना दी। प्यासे को मानों पानी मिल गया। महात्मा जी अभी चन्दे का दौरा कर ही रहे थे कि उन्हे मुन्शी जी का पत्र मिला। वे दौरे को कुछ दिनों के लिए स्थगित करके हरिद्वार गये और गंगा के उस पार जाकर कांगड़ी की भूमि को देखा। वह स्थान उन्हें गुरुकुल के लिए आदर्श प्रतीत हुआ। कांगड़ी गाँव हिमालय की शिवालक-धारा के नीचे बसा हुआ है। उसकी भूमि एक ओर पर्वत को छूती है तो दूसरी ओर गंगा की नीलधारा का स्पर्श करती है। आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा स्थान की स्वीकृति हो जाने पर गाँव से दूर गंगा के तट पर १९०१ में गुरुकुल के छप्परों का निर्माण आरम्भ हो गया। यों गुरुकुल की स्थापना गुजरानवाला में १६ मई, १९०० ई० को ही हो गई थी। वहाँ २० बालक गुरुकुल में प्रविष्ट हो चुके थे। इन बीस में ही महात्मा जी के दोनों पुत्र भी थे।

१९०२ के फरवरी मास में गंगा तट के घने जंगल को साफ करके कुछ छप्पर तैयार हो गये थे। फलतः ४ मार्च १९०२ के दिन महात्मा जी गुजरानवाला जाकर गुरुकुल में विद्यमान ब्रह्मचारियों को कांगड़ी ले गये और उन थोड़े से फूस के छप्परों और २४ ब्रह्मचारियो के साथ गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय का सूत्रपात हुआ।

२. गुरुकुल वृन्दावन

पंजाब मे गुरुकुल की चर्चा चलने का प्रभाव तत्काल ही संयुक्त-प्रान्त (उत्तर प्रदेश) पर भी पड़ा। सन् १८९९ में श्री मुन्शी नारायणप्रसाद जी (महात्मा नारायण स्वामी जी) के प्रस्ताव पर आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया :—

एक वैदिक विद्यालय (गुरुकुल) पहले उद्देश्य की पूर्ति के लिए, बीस हज़ार रुपये जमा हो जाने पर इस सूबे में खोल दिया जावे। स्थान व स्कीम आदि का

तरिफया अन्तरंग सभा पर इस सिफारिश पर छोड़ा जावे कि अन्तरंग सभा समाजों की राय से बखूबी मुत्तलअ हो (——वैदिक-वैजयन्ती)। बीस हजार की राशि को पूरा करने में पं० भगवानदीन जी, कुंवर हुकमसिंह जी, बा० श्यामसुन्दर लाल जी, चौ० चुन्नीसिंह जी, ला० रामकिशन जी, बाबू कालीचरण जी, चौ० नन्दकिशोर जी और मुन्शी नारायणप्रसाद जी सम्मिलित थे। धन-संग्रह में विशेष कार्य मुन्शी नारायणप्रसाद जी ने किया। १९०३ तक धन-संग्रह का कार्य होता रहा। १९०४ में यह चर्चा आरम्भ हुई कि गुरुकुल काँगड़ी को ही संयुक्त प्रान्त का भी गुरुकुल मान लिया जाय। कुछ सज्जनों की सम्मति थी कि जब गुरुकुल कांगड़ी संयुक्त प्रान्त में ही खोला गया है तो क्यों न उसे ही अपना लिया जाय। १९०४ के मई मास में नजीबाबाद में सयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा का नैमित्तिक अधिवेशन हुआ जिसमें इस सम्बन्ध में कुछ प्रस्ताव स्वीकार किये गये। उन प्रस्तावों का सारांश यह था कि गुरुकुल काँगड़ी पर तब तक जितना व्यय हो चुका था, उसका आधा संयुक्त प्रान्त की सभा गुरुकुल कोष मे दे और भविष्य मे भी दोनों सभाओ के आधे-आधे की साझेदारी रहे। इसी आधार पर प्रबन्धकारिणी सभा में दोनो प्रान्तों के आधे-आधे सदस्य रहा करें। इस अधिवेशन मे पंजाब की ओर से प्रतिनिधि के तौर पर महात्मा मुन्शीराम जी और राय ठाकुरदत्त धवन सम्मिलित हुए थे।

सभा नें उक्त प्रस्ताव के साथ यह शर्त लगा दी थी कि यह प्रस्ताव उसी रूप में पजाब की प्रतिनिधि सभा को मंजूर न हुआ और उभयसम्मत फैसला न हो सका तो १० अक्तूबर १९०४ के पश्चात् संयुक्त प्रान्त का अलग गुरुकुल खोल दिया जायगा। अगस्त मे पंजाब की सभा का अधिवेशन हुआ। उसमें कुछ संशोधन स्वीकार किये गये, जिन्हें संयुक्त प्रान्त की सभा ने स्वीकार नही किया। फलतः १९०४ के अन्त में संयुक्त प्रान्त की प्रतिनिधि सभा ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया—— "चूंकि जल्से आजम प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त मुनअकदह ३ अप्रैल सन् १९०४ के रेज्युलेशन नं० ५ से साफ वाजअ है कि अगर पंजाब प्रतिनिधि सभा शरायत मंजूर न करेगी तो प्रतिनिधि सभा सूबेजात हाजा मजबूर होगी कि अपना पृथक् गुरुकुल खोल देवे और पंजाब प्रतिनिधि ने उन शरायत को मंजूर नहीं किया, पस रेज्युलेशन पास करदः जल्से आजम श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा सूबेजात हाजा मुन अकहद २६ दिसम्बर सन् १८९९ मुकाम मुरादाबाद पर अन्तरंग हाजा को अमल बरामद करना चाहियें। क्योंकि अब कोई काररवाई मुत्तल्लिके मेल-मिलाप हर दो गुरुकुलों के नहीं रही।"

सिकन्दराबाद में स्वामी दर्शनानन्द जी (पूर्वनाम—पं० कृपाराम जी) की प्रेरणा से सन् १८९८ में गुरुकुल खुल चुका था। उस गुरुकुल की कमेटी ने अपना गुरुकुल बिना किसी शर्त के सभा को देना स्वीकार कर लिया। इधर बीस हजार रुपये एकत्र करने की शर्त भी पूरी हो चुकी थी। अतः "श्रीमती सभा ने २६–११–१९०५ को एक अंतरंग सभा की और उसके निश्चय संख्या ६ के

अनुसार पहली दिसम्बर सन् १९०५ से गुरुकुल का चार्ज अपने हाथ मे ले लिया। पं० गंगासहाय जी को इस गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता बनाकर समीपवर्ती सभासदों की एक उपसभा बना दी। सन् १९०५ ई० के दिसम्बर मास में सभा का बृहद् अधिवेशन बनारस में हुआ। उसमे बहु-पक्षानुसार गुरुकुल का स्थान सिकन्दराबाद ही निश्चय हुआ।" (—वैदिक वैजयन्ती)। सिकन्दराबाद के गुरुकुल का काम संभालने के समय से ही जल-वायु की प्रतिकूलता और स्टेशन की समीपता आदि कारणों से सभा के अधिकारियों का विचार था कि वे गुरुकुल को किसी दूसरे स्थान पर ले जायें। स्थानीय कार्यकर्ताओं के हस्तक्षेप के कारण संस्था के प्रबन्ध में भी बहुत सी कठिनाइयाँ आ रही थी। स्थानीय विरोध का एक यह कारण भी हुआ कि पंडित मुरारिलाल शर्मा तथा उनके कुछ सहायकों ने सिकन्दराबाद में ही एक आर्य पाठशाला खोल ली थी, जिसके कारण विरोध उत्पन्न होने की संभावना थी। फर्रुखाबाद के रईस ला० द्वारिकाप्रसाद जी ने अपना बाग एक वर्ष के लिए गुरुकुल को दे दिया। १७ सितम्बर १९०७ को गुरुकुल सिकन्दराबाद से उठकर फर्रुखाबाद चला गया।
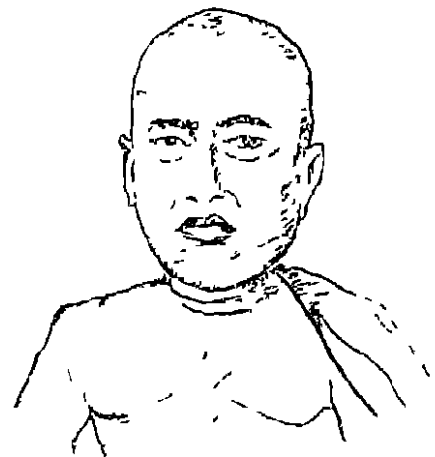
स्वामी दर्शनानन्द जी

इसके पश्चात् गुरुकुल की लोकप्रियता बढने लगी। दान आने लगा और आर्य पुरुष अपनी सेवायें भी समर्पण करने लगे। कुंवर हुक्मसिह जी आंगई (जि० मथुरा) के रईस थे और दृढ आर्यसमाजी थे। उन्होंने अपने आप को गुरुकुल के कार्य के लिए अर्पण कर दिया। कुछ वर्ष पश्चात् पं० भगवानदीन जी ने सरकारी नौकरी को लात मार कर गुरुकुल मे आनरेरी सेवा करना स्वीकार कर लिया।

१९०९ में फिर यह आन्दोलन उठा कि फर्रुखाबाद से उठा कर गुरुकुल को किसी अन्य स्थान पर ले जाया जाय। सभा ने स्थान के चुनाव के लिए एक उप-सभा निर्वाचित की, जिसके निम्नलिखित सदस्य थे :—

पं० तुलसीराम स्वामी, बाबू घासीराम एम० ए०, पं० भगवानदीन जी, कुंवर हरिप्रसाद सिह जी, बा० बलदेवप्रसाद जी, डा० विश्वम्भर सहाय जी, और राय ज्वालाप्रसाद जी इंजीनियर।

यह उपसभा स्थान की तलाश कर ही रही थी कि हाथरस के राजा महेन्द्रप्रताप जी ने वृन्दावन के समीप की अपनी बहुत सी भूमि और बने हुए मकान गुरुकुल को दान दिये जाने की इच्छा प्रकट की, जिसे अन्तरंग सभा ने धन्यवादपूर्वक स्वीकार कर लिया। २ अप्रेल १९११ को अन्तरंग सभा मे

राजा महेन्द्रप्रताप

यह निश्चय किया गया कि यदि अक्तूबर १९११ तक दस हजार रुपया स्थानादि के लिये एकत्र कर लिया जाय तो स्थायी रूप से गुरुकुल को फर्रुखाबाद से मथुरा ले जाया जाय। राजा साहब ने वृन्दावन वाली भूमि सभा को सौंप दी, और सभा उसमें मकान बनवाने लगी। १६ दिसम्बर १९११ को गुरुकुल फर्रुखाबाद से मथुरा पहुंच गया। यह कार्य श्री पं० भगवानदीन जी के अधिष्ठातृत्व में हुआ। २६, २७ दिसम्बर को गुरुकुल का महोत्सव वृन्दावन में ही मनाया गया।

इसके पश्चात् अनेक स्थानों पर छोटे-बड़े गुरुकुलों की स्थापना होती गयी। मुलतान, कुरुक्षेत्र, भटिण्डा, भैंसवाल, रायकोट आदि स्थानों में गुरुकुल कांगड़ी की शाखायें स्थापित हुईं। बदायूँ, पीलीभीत आदि में कई छोटे-छोटे गुरुकुल उन्हीं दिनों स्थापित हुए। इन सब संस्थाओं का विवरण इतिहास के तीसरे भाग में दिया जायगा।

३. महाविद्यालय ज्वालापुर

महाविद्यालय ज्वालापुर की वर्तमान रूप में स्थापना सन् १९०७ में हुई। प्रारम्भ में स्वामी दर्शनानन्द जी की प्रेरणा से ज्वालापुर के बाबू सीताराम जी ने एक शिक्षणालय के लिये गंगा की नहर के समीप अपनी भूमि और बागीची दान में दे दी। वह संस्था अभी प्रारम्भिक दशा में ही थी कि कुछ ऐसे कारण बन गये जिनसे प्रेरित होकर गुरुकुल कांगड़ी के प्रमुख कार्यकर्ता महाविद्यालय में आ गये। गुरुवर आचार्य गंगादत्त जी शास्त्री, प० भीमसेन शर्मा तथा पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ जी कुछ मतभेद के कारण असन्तुष्ट होकर गुरुकुल से अलग हो गये थे। मतभेद का मुख्य कारण गुरुकुल कांगड़ी में विज्ञान, इतिहास, अंग्रेजी भाषा आदि विषयों की शिक्षा का और ब्रह्मचारियों के इलाज के लिए एलोपैथिक चिकित्सा का समावेश था। आचार्य गंगादत्त जी गुरुकुल के तब से आचार्य थे जब वह अभी गुजरानवाला में चल रहा था। उनका आर्यसमाज में बड़ा सम्मान्य स्थान था। पं० भीमसेन शर्मा, नरदेव शास्त्री, पं० विष्णुमित्र जी आदि विद्वान् उनके शिष्य रह चुके थे। गुरुकुल कांगड़ी में आचार्य रामदेव जी, डा० चिरंजीव भारद्वाज तथा डा० सुखदेव जी के आने से वातावरण में जो नवीनता का संचार हुआ, पण्डित वर्ग उससे सहमत नहीं था। पुराने और नये कार्यकर्ताओं में जो व्यक्तिगत मतभेद हुआ, उनके कारण विरोध अधिक भड़क उठा और पूर्वोक्त विद्वान् गुरुकुल को छोड़कर महाविद्यालय चले गये। महाविद्यालय की दो विशेषताएँ घोषित की गईं। एक विशेषता यह थी कि उसमें छात्रों से पालन-पोषण तथा शिक्षा का कोई खर्च नहीं लिया जायगा और दूसरी विशेषता यह थी कि उसमें केवल संस्कृत की शिक्षा दी जायगी। अंग्रेजी आदि का उसमें समावेश

प० भीमसेन जी

नहीं होगा। नये रूप में महाविद्यालय की रजिस्ट्री हो गई और वह संस्कृत के एक शिक्षा-केन्द्र के रूप में ख्याति पाने लगा।

प० नरदेव शास्त्री

यह दुर्भाग्य की बात थी कि कुछ काल तक वह व्यक्तियों का विरोध सिद्धान्त-विरोध के रूप में परिणत होकर दोनों संस्थाओं को एक दूसरे का प्रतिस्पर्धी-सा बनाता रहा। बहुत कुछ भला-बुरा कहा गया और लिखा गया। वह सब कुछ भुला देने के योग्य है। पं० पद्मसिंह शर्मा 'भारतोदय' के संपादक के रूप में लगभग चार वर्ष तक महाविद्यालय मे रहे। विद्यालय के विकास का विवरण प्रकरणानुसार अगले अध्यायों में दिया जायगा।

४. कन्या-गुरुकुलों की स्थापना

महर्षि दयानन्द बालकों और बालिकाओं के वेदादि अध्ययन के अधिकार को एक समान मानते थे। आर्यसमाज ने प्रारम्भ से ही कन्या-विद्यालयों के रूप में स्त्री-शिक्षा का बीड़ा उठा लिया था। इस कारण यह स्वाभाविक ही था कि कागड़ी में बालकों के गुरुकुल की स्थापना होने के साथ कन्याओं के लिये गुरुकुल बनाने का विचार भी अङ्कुरित हो जाता। ११ दिसम्बर १९०३ के 'सद्धर्म प्रचारक' में जालन्धर के कन्या महाविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में लिखा गया था---

"विद्यालय के कार्यकर्ता सब से पूर्व शहर से दो-तीन मील की दूरी पर मकान बनवा कर कन्या महाविद्यालय को आश्रम के रूप में परिवर्तित कर दे और कुंवारी लड़कियो को विवाहिता स्त्रियो तथा विधवाओ से सर्वथा पृथक् करने का प्रबन्ध करके पुरुषो के स्थान में जहाँ तक हो सके स्त्रियो को अध्यापिका नियत करने का प्रबन्ध करे तो कन्या महा-विद्यालय को पुत्री-गुरुकुल बनाने में पहला कदम समझा जा सकता है।"

यह विचार कई वर्षो तक महात्मा जी के तथा उनके सहयोगियो के मन में घूमता रहा। उसे कार्यरूप में परिणत होने का अवसर तब मिला जब १९१२ में दिल्ली के सेठ रग्घूमल लोहिया ने कन्या गुरुकुल खोलने के लिये एक लाख रुपये का दान किया। सेठ रग्घूमल जी अपने समय के प्रसिद्ध दानी थे। आर्यसमाज में उनकी श्रद्धा कैसे उत्पन्न हुई, इसका भी एक छोटा सा इतिहास है, जो सेठ जी ने इस इतिहास के लेखक को स्वयं सुनाया था। सेठ जी ने जो कुछ सुनाया उसका अभिप्राय अधोलिखित है---

"यह तो आपने देखा ही है कि दिल्ली मे मेरी दुकान चावडी बाजार मे है, उससे आर्यसमाज मन्दिर बहुत समीप है। मैं कभी-कभी आर्यसमाज के साप्ताहिक अधि-वेशनो में अपने मित्रो के साथ चला जाया करता था। एक दिन सुना कि गुरुकुल कागड़ी के संस्थापक महात्मा मुन्शीराम जी का उपदेश होगा। मैं साप्ताहिक सत्संग में

चला गया। महात्मा जी ने सदाचार की व्याख्या करते हुए इस बात पर बहुत खेद प्रकट किया कि जिस बाजार मे आर्यसमाज का मन्दिर है, उसी में वेश्याओं का अड्डा है। शहर भर की प्रसिद्ध वेश्याए चावड़ी बाजार में ही रहती हैं, जिस कारण यह बाजार दुराचार का गढ़ बना हुआ है। जिन चौबारो में वेश्याए रहती है, वे सब व्यापारियों की जायदाद के हिस्से है। यह निश्चय है कि पाप की कमाई कभी सफल नहीं हो सकती। जो व्यापारी वेश्याओं को मकान किराये पर देकर धन कमाते है, उनका अपना जीवन तो बिगड़ता ही है, उनकी संतानें भी अच्छे चरित्रवाली नहीं रह सकतीं और चरित्रहीन के पास संपत्ति कैसे बच सकती है। मैं देखता हू कि यहाँ कई ऐसे व्यापारी बैठे हैं, जिनकी जायदाद मे वेश्याएं बसी हुई है। मै उन्हे विश्वास दिलाता हूं कि वे अपनी जायदाद में से वेश्याओं को निकाल दे तो उनकी आय बढ़ेगी, घटेगी नही। मेरे कहने से वे यह परीक्षा करके देख लें।"

सेठ जी ने कहा कि "मेरे मन पर महात्मा जी के कथन का गहरा असर हुआ। मै समाज से सीधा उठ कर दूकान पर गया और न केवल अपनी जायदाद मे रहने वाली वेश्याओ को एक महीने का नोटिस दे दिया अपितु दुकान की बही में भी लिख दिया कि इस पीढ़ी की कोई जायदाद भविष्य मे भी कभी किसी वेश्या को किराये पर नहीं दी जाय। मेरे इस कार्य का मुझ पर, मेरी दुकान पर और सम्पूर्ण व्यापार पर अद्भुत असर पड़ा।"

इसके पश्चात् सेठ जी ने भरे हुए गले से कहा, "मुझे मालूम नही उसके पश्चात् मुझ पर धन की कहाॅ से वृष्टि हो गई। हजारों को लाखों और लाखों को करोड़ों में बदलने मे देर न लगी। इसके साथ ही मेरी स्वयं ही दान में प्रवृत्ति बढ़ गयी। जितना पैसा देता हूं, उससे अधिक आता है। यह सब स्वामी दयानन्द जी और महात्मा जी की कृपा का फल है। आज मुझे सूझता नही कि मे अपना रुपया कहाँ रक्खूं।"

यह थी सेठ रघूमल जी के जीवन में परिवर्तन की सक्षिप्त कहानी। कन्या गुरुकुल के लिये एक लाख रुपये का दान देने के कुछ वर्ष पूर्व सेठ जी ने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के लिये १ लाख रुपया दान दिया था। जब दिल्ली के शहीदो का स्मारक बनाने के लिये पाटौदी हाउस को खरीदने का प्रस्ताव किया गया तब महात्मा जी का तार पाकर सेठ जी ने कलकत्ते से ६० हजार रुपये देने की स्वीकृति दे दी। छोटे-मोटे दान तो वे नित्य ही देते रहते थे। उनका बनाया हुआ रघूमल ट्रस्ट अब भी शिक्षा और धर्म की अनेक सस्थाओं को सहायता देता रहता है।

१९२१ में गुरुकुल काँगड़ी के उत्सव पर महात्मा मुन्शीराम जी ने कन्या गुरुकुल के लिए सेठ रघूमल जी के १ लाख के दान की घोषणा की। दो वर्ष तैयारी मे लगे। १९२३ मे दिवाली के दिन दिल्ली के दरियागंज मे एक कोठी किराये पर लेकर कन्या गुरुकुल का उद्घाटन कर दिया गया। उसकी आचार्या तपस्विनी कुमारी विद्यावती सेठ बी० ए० नियुक्त हुई। आप लगभग २० वर्षों तक बडी योग्यता और लगन से कन्या गुरुकुल

का संचालन करती रही। उन दिनों दरियागंज के पूर्वीय भाग में गिनती की तीन-चार कोठियाँ थीं। शेष सारा इलाका खाली पड़ा था। कन्या गुरुकुल चार वर्ष तक इस कोठी में रहा। इस समय इसका नाम कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ था। विचार यह था कि दिल्ली से दस-बारह मील की दूरी पर कोई विशाल भूमि लेकर वहाँ कन्या गुरुकुल की स्थायी इमारतें बनाई जायं। तुगलकाबाद रेलवे स्टेशन के पास एक बहुत बड़ी भूमि खरीद भी ली गयी थी परन्तु अन्त में सभा ने यह निश्चय किया कि कन्या गुरुकुल को देहरादून में ले जाया जाय। १९२७ में गुरुकुल देहरादून चला गया।

५. कन्या गुरुकुल हाथरस

इस संस्था का विस्तृत विवरण तो आगे चल कर दिया जायगा। यहां हम उसकी स्थापना का संक्षिप्त विवरण उस परिचय से उद्धृत करते हैं, जो हमें संस्था से प्राप्त हुआ :

"हाथरस-अलीगढ़ की मुख्य सड़क पर स्थित यह कन्या गुरुकुल महाविद्यालय युक्तप्रदेश की एकमात्र धार्मिक, राष्ट्रीय शिक्षण संस्था है। इसकी स्थापना हाथरस के दानवीर सेठ श्री मुरलीधर जी ने श्री स्वा० दर्शनानन्द जी के परामर्शानुसार, हाथरस से ठीक ५ मील की दूरी पर भूमि खरीद कर अपनी एक लाख की सम्पत्ति से एक विशाल परकोटा खिचवाकर कुछ भवन निर्माण करवा कर सन् १९१४ मे की थी। इस भूमि के चारों ओर के ग्रामो का भी समुचित सहयोग प्राप्त है। किंतु उस समय ५ वर्ष तक ही चली और किन्हीं कारणोवश १२ वर्ष तक बन्द पड़ी रही। फिर श्री माता लक्ष्मीदेवी जी ने श्री इन्द्रवर्मा जी महोपदेशक, डा० किशनप्रसाद जी आर्य, श्री स्वर्गीय सेठ मुरलीधर जी के पुत्र श्री मदनलाल जी तथा हाथरस के अन्य आर्य सज्जनो के परामर्शानुसार अपने सतत प्रयत्न से २६ जौलाई सन् १९३१ व्यास पूर्णिमा के दिन श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी के करकमलों द्वारा उद्घाटन कराके इसका पुनरुद्धार किया। श्री सत्यवती जी परिव्राजिका, श्री चंदा देवी जी आर्य तथा डा० हरदेवी जी के सहयोग से यह संस्था बराबर पल्लवित और पुष्पित हो रही है।"

अन्य गुरुकुल

२०वी शताब्दी के प्रारम्भिक २५ वर्षो में स्थान-स्थान पर बालक-गुरुकुलों और कन्या-गुरुकुलों की स्थापना हुई। उनमे से कुछ प्रांतीय सभा द्वारा स्थापित किये गये और कुछेक की योजना स्थानीय आर्यसमाजो द्वारा की गयी। उन संस्थाओं का विशेष विवरण तो इस इतिहास के तीसरे भाग में आयेगा, यहां हम उनका निर्देश मात्र करके संतोष करेंगे।

१	गुरुकुल	होशंगाबाद	मध्य प्रदेश
२	"	बदायू	संयुक्त प्रान्त
३	"	पोठोहार	पंजाब
४	"	रायपुर	मध्य प्रदेश
५	"	शान्ताक्रुज	बम्बई

६	गुरुकुल	हाई स्कूल	गुजरानवाला
७	,,	कोल्हापुर स्टेट	कोल्हापुर
८	,,	धारूर	हैदराबाद दक्षिण
९	,,	ब्रह्मचर्याश्रम	अजमेर
१०	पुत्र गुरुकुल		काशी
११	अहरोला सरस्वती विद्यालय		बरेली
१२	कन्या गुरुकुल		काशी
१३	,, ,,		हैदराबाद
१४	कन्या ब्रह्मचर्याश्रम छटूटा		सिन्ध
१५	दयानन्द महाविद्यालय गुरुकुल डौरली		मेरठ
१६	आर्य महाविद्यालय किरठल		मेरठ
१७	गुरुकुल चित्तौड़गढ़		चित्तौड़
१८	,,	महाविद्यालय	बैजनाथधाम
१९	,,	हरजानपुर	बिहार
२०	,,	ब्रह्मचर्याश्रम आनन्द	बम्बई
२१	,,	सूपा, नवसारी	बम्बई
२२	,,	स्कूल सोनगढ़	काठियावाड़
२३	,,	आश्रम कंगोरी	बंगलौर
२४	,,	अनन्तगिरि	हैदराबाद
२५	,,	भाटपुर	,,
२६	वैदिक आश्रम		हैदराबाद दक्षिण
२७	गुरुकुल घटकेश्वर		,, ,,

यह सम्भव है इस सूची में कुछ नाम रह गए है फिर भी यह सूची सिद्ध करती है कि गुरुकुल की चर्चा एक बार आरम्भ होने पर बहुत वेग से फैलती गई और आर्यसमाजी लोग उसकी ओर आकृष्ट होते गए। गुरुकुल के आकर्षण का ऐसा व्यापक प्रभाव हुआ कि थोड़े ही वर्षो में अन्य धर्मावलम्बियों ने भी गुरुकुलों की स्थापना कर दी। ऋषिकुल, जैन गुरुकुल आदि संस्थाएं आर्यसमाज के गुरुकुल-युग के ही परिणाम है।

गुरुकुल स्थापना के प्रस्ताव और संचालन का आर्य जनो ने जो इतना हार्दिक स्वागत किया, इसके अनेक कारण थे। सबसे बडा कारण तो यह था कि उस समय के आर्य लोग महर्षि दयानन्द के ग्रथो का स्वाध्याय करते थे। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका मे महर्षि के शिक्षासम्बन्धी विचार पढ़े थे। डी० ए० वी० कौलिज उस समय की प्रचलित सरकारी शिक्षा-पद्धति की पटरी पर ही पड़ गया। उससे आर्यसमाज के एक बड़े भाग में निराशा सी छा गयी। उनके सामने जब महर्षि की भावनाओं के अनुसार प्राचीन आर्य पद्धति पर चलने वाले

गुरुकुलों की स्थापना का प्रस्ताव रखा गया तब उनके हृदय एक दम खिल गये। जो लोग गुरुकुल की स्थापना का प्रयत्न कर रहे थे, उनके सामने भी महर्षि के लेख विद्यमान थे। वे वैदिक समय के आदर्शों को सामने रख कर आगे बढ़े थे। वे श्रद्धा और विश्वास से प्रेरित थे। श्रद्धा और विश्वास का असर संक्रामक होता है। गुरुकुल के साथ प्राचीन ऋषियों के आश्रमों की स्मृतियाँ बंधी हुई थीं। उन दिनों जब व्याख्याता और लेखक जनता के सामने प्राचीन गुरुकुलों का चित्र खींचते थे तब लोग मंत्रमुग्ध से हो जाते थे। आरम्भ में सर्वसाधारण जनता को गुरुकुल की ओर खींचने वाला यही भाव था।

इस भाव के साथ उपयोगिता की एक युक्ति भी शामिल हो गयी। यह सुझाया गया कि गुरुकुलों से निकले हुए स्नातक वेद तथा आर्ष ग्रन्थों के विद्वान् होने के कारण आर्यसमाज के प्रचार कार्य में वाणी और लेख द्वारा बहुत सहायक हो सकेंगे। उस समय की गुरुकुलसम्बन्धी कविताओं में आर्य जनों की इन्हीं हार्दिक भावनाओं का रंगीन चित्र मिलता है। प्रचलित शिक्षा-प्रणाली से निराश हुए हृदयों के सामने जब प्रकाश की एक रेखा दिखाई दी तब उनके हृदयों में असाधारण उत्साह उत्पन्न हो गया और वे सोचने लगे कि अब सतयुग का प्रभात समीप ही है।

कुछ वर्ष पीछे गुरुकुल के संचालकों के सामने यह प्रश्न आया कि महर्षि नें वेद के जिन उपांगों तथा कला-कौशल और अर्वाचीन भाषाओं की शिक्षा देने का प्रतिपादन किया है, उनकी क्या व्यवस्था की जाय ? इस सम्बन्ध मे महर्षि का यह आदेश तो था ही, समय की माँग भी यही थी। महर्षि की बतायी हुई शिक्षासम्बन्धी योजना के उस अंश को पूरा करने के लिए जिसे हम नवीनता से पूर्ण कह सकते हैं, पहले गुरुकुल कांगड़ी में और उसके पश्चात् अन्य गुरुकुलो मे अंग्रेजी भाषा, विज्ञान, इतिहास, चिकित्सा आदि विषयों का शिक्षण आरंभ किया गया। सभी गुरुकुलों में निम्नलिखित विशेषताएं विद्यमान रहीं:—

१. स्थान शहरों की बस्ती से अलग और दूर चुने गए।

२. बालक और बालिकाओं को छोटी आयु में इस आश्वासन पर लिया जाता था कि वे गुरुकुल की पाठ-विधि को समाप्त करके बाहर जायेंगे।

३. बालक और बालिकाओं द्वारा गुरुओ के समीप रह कर विद्यालय और आश्रम में ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पालन करना आवश्यक समझा जाता था।

४. वेद-वेदांगों की तथा अन्य संस्कृत वाङमय की शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया जाता था।

५. शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा था।

६ जब तक देश में स्वराज्य की स्थापना नही हुई, तब तक यह एक सिद्धांत सा माना जाता रहा कि गुरुकुल के लिए सरकार से किसी प्रकार की सहायता नहीं ली जायगी।

समय की परिस्थिति और इन विशेषताओं के कारण गुरुकुल के धार्मिक पहलू के साथ राष्ट्रीय पहलू भी सम्मिलित हो गया। जिस समय सारा देश मैकाले की बनाई हुई दासता से पूर्ण शिक्षा-पद्धति के घेरे में आया हुआ था, उस समय गुरुकुलों को ही यह श्रेय प्राप्त था कि वहां अपने देश के पुराने वाङ्मय को मुख्यता दी जाती थी। शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा को रखा गया था और सरकारी सहायता लेने को छूत का रोग समझा जाता, इसीलिए उसे अपने से दूर रखा जाता था।

इस प्रकार सिद्धान्त और परिस्थितियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के कारण गुरुकुलों का विकास किस दिशा में और किस रूप में हुआ, उसका वृत्तान्त अगले अध्यायों में सुनायेंगे।

चौथा अध्याय

गुरुकुल कांगड़ी का विकास

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली महर्षि दयानन्द की मनुष्य जाति को और आर्यसमाज की भारतवर्ष को बहुमूल्य देन है। आर्यसमाज इसे समझे या न समझे, इसमें सन्देह नहीं कि सिद्धान्त रूप से गुरुकुल आर्य वैदिक संस्कृति के शिक्षासम्बन्धी मन्तव्यों का पर्याप्त प्रदर्शन है। गुरुकुल की शिक्षा-प्रणाली के मूलभूत तत्वों की यथार्थता का इससे बड़ा क्या प्रमाण हो सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, केवल भारत के ही नहीं, अन्य देश के विद्वान् भी उन तत्वों को स्वीकार करते गये। शिक्षणालय शहरों के गन्दे वातावरण से दूर एकान्त और सुन्दर स्थान में हों, अध्यापकों और छात्रों का सम्बन्ध पिता-पुत्र का सा हो, अपने देश की संस्कृति और वाङमय की शिक्षा को मुख्यता दी जाय, शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो और शिक्षकों का पहला और मुख्य कर्तव्य बालकों के चरित्र का निर्माण हो। ये सब मन्तव्य जो गुरुकुल की स्थापना के समय केवल बिगड़ी हुई कल्पना के बच्चे प्रतीत होते थे, गत आधी शताब्दी में लगभग सर्व-सम्मत सिद्धान्त बन गये हैं। समय का झुकाव उनके पक्ष में रहा है। निश्चित रूप से यह शिक्षा-प्रणाली महर्षि दयानन्द की और आर्यसमाज की आर्यजाति और संसार को सब से बड़ी देन है।

गुरुकुल कांगड़ी समय की दृष्टि से तो पहला गुरुकुल था ही कुछ अन्य कारण भी ऐसे बन गये कि उसे विकसित होने का अच्छा अवसर मिल गया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि महर्षि दयानन्द के जिस शिष्य के मन में गुरु के शिक्षा-सम्बन्धी विचारों को कार्यान्वित करने का विचार उत्पन्न हुआ, वह अपनी तन, मन और धन की त्रिविध विभूति लेकर इस विचार की पूर्ति में लग गया। यदि महात्मा मुंशीराम जी स्वयं वकालत छोड़कर और गंगातट पर जाकर न बैठ जाते तो गुरुकुल कांगड़ी का वह विशाल रूप न होता जो अब दिखाई देता है और न ही पंजाब जैसे कर्मठ प्रान्त का हार्दिक सहयोग उसे प्राप्त होता। संस्थापक के व्यक्तित्व और पंजाब की आर्य जनता के उत्साह ने प्रारम्भ से ही गुरुकुल कांगड़ी को विकास के रास्ते पर डाल दिया। यद्यपि गुरुकुल की स्थापना का विचार पंजाब में उत्पन्न हुआ परन्तु उसे देश के अन्य प्रान्तों में फैलते देर न लगी। आर्य जनता उस ओर खिंच गयी। लोगों का गुरुकुल-प्रेम दो रूपों में प्रगट होने लगा। अन्य प्रान्तों के लोग भी गुरुकुल को बड़ी मात्रा में आर्थिक सहायता देने लगे और अपने बच्चों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने लगे। परिणाम यह हुआ कि जहां देश भर से आर्थिक सहायता मिलने के कारण

गुरुकुल कागड़ी को उन्नति करने का अवसर प्राप्त हो गया वहां देश के प्रायः सभी प्रान्तों के बालकों का प्रवेश हो जाने के कारण प्रारम्भिक पांच-छः सालों मे उसका सार्वदेशिक रूप भी बन गया।

गुरुकुल कागड़ी का पहला उत्सव सन् १९०२ के मार्च मास में हुआ था। उसे कांगड़ी की भूमि में गुरुकुल के उद्घाटन का उत्सव कहना चाहिए। उस उत्सव के समय गुरुकुल भूमि की यह दशा थी कि उसके पश्चिम में गंगा की नील धारा बहती थी और शेष तीनों दिशाओं मे घना जगल फैला हुआ था। जंगल मे खैर और बिल्व वृक्षों की बहुतायत थी। खैर के काटे सारी भूमि पर बिखरे हुए थे। जाने-आने के लिए केवल छोटी-छोटी पगडंडियां थीं। ऐसे जंगल के बीच मे कुछ जगह साफ करके उसमें छप्पर बनाये गये थे जिन मे पाठशाला, आश्रम, भोजन भंडार, गोशाला तथा कार्यालय आदि सभी कुछ था। यह थी दशा १९०२ में। १९२४ के आरम्भ में गुरुकुल का जो उत्सव हुआ उस समय गुरुकुल की इमारतों का विस्तार कई मीलों के घेरे में हो गया था। महाविद्यालय की विशाल बिल्डिंग बन चुकी थी, विद्यालय, कार्यालय, अतिथिगृह, गोशाला, चिकित्सालय आदि के पक्के मकानों को देख कर एक छोटी सी रियासत का सा भान होता था। इन वर्षों में गुरुकुल के कलेवर मे जो विकास हुआ उसका वह जीता-जागता रूप था।

पहले उत्सव में लगभग पांच सौ की उपस्थिति थी और ३०००) रुपयों से काम चलाया गया। हर साल उपस्थिति और दान की राशि में वृद्धि होती गई। यह एक महत्वपूर्ण बात थी कि उपस्थित जनता मे पुरुषों और स्त्रियों की सख्या लगभग बराबर होती थी। उपस्थिति बढ़ते-बढ़ते ७० हजार तक पहुंच गई और उद्घोषित धन-राशि की मात्रा डेढ़ लाख को छू गई। उपस्थिति और प्राप्त राशि में उतार-चढ़ाव तो होते ही रहते थे।

यह तो हुई बाह्य विकास की कहानी, आन्तरिक विकास भी कुछ कम तेजी से नही हुआ। पहले तीन वर्ष तक पढ़ाई संस्कृत तक परिमित रही। चौथे साल से अंग्रेजी, गणित, इतिहास आदि विषयों का भी समावेश होने लगा। संस्कृत के अध्यापको में पं० गंगादत्त जी शास्त्री, प० भीमसेन शर्मा, पं० दौलतराम, पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० विष्णुमित्र जी, पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ आदि प्रमुख थे। कुछ वर्ष पीछे बनारस से महामहोपाध्याय पं० काशीनाथ शास्त्री आ गये थे, जो भारतीय दर्शन शास्त्र के महाविद्वान् तो थे ही, साथ ही उनकी संस्कृत वाङमय के प्रत्येक विभाग में अप्रतिहत गति थी। उनके आने से गुरुकुल की संस्कृत शिक्षा असाधारण रूप से समृद्ध हो गई। १९०६ में अर्वाचीन विषयों की पढाई की व्यवस्था होने के साथ ही गुरुकुल मे नवीन रुधिर का संचार आरम्भ
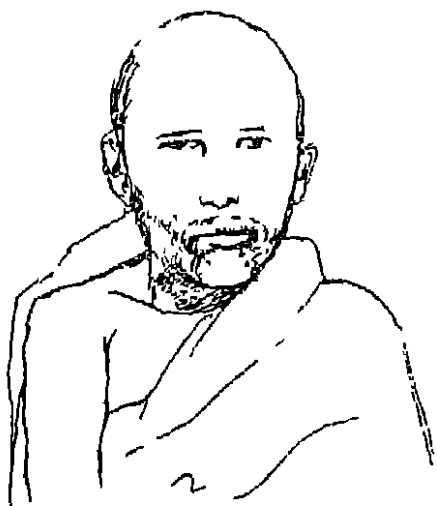
गुरुवर महामहोपाध्याय
श्री पं० काशीनाथ शास्त्री

हुआ। आचार्य रामदेव जी (जो उन दिनों मास्टर रामदेव जी कहलाते थे) जालन्धर छावनी के हाई स्कूल की हेडमास्टरी छोड़ कर निर्वाहमात्र पर गुरुकुल की सेवा के लिए आ गए। विज्ञान पढ़ाने के लिए प० विनायक गणेश साठे बी० एस०-सी०, चित्रकला के लिए श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी आदि विद्वान् स्वार्थ त्याग की भावना से प्रेरित होकर लगभग निर्वाहमात्र पर गुरुकुल के अध्यापक वर्ग में शामिल हो गये। शिक्षा के विषयों में वृद्धि के कारण विद्यालय की गतिविधियों में भी कई परिवर्तन किये गये। विद्यालय के अन्तरों की सूचना देने के लिए घण्टी बजने लगी, किताब रखने के लिए डैस्क आ गये और रोशनी के लिए सरसो के तेल के दिये का स्थान मिट्टी के तेल के लैम्प ने ले लिया। इसी तरह चिकित्सा पद्धति मे भी परिवर्तन हो गया। डा० सुखदेव जी, जिनके अन्त-र्जातीय विवाह की चर्चा पहले भाग मे हो चुकी है, केवल दो वर्ष तक गृहस्थ रह सके, पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अपनी चल सम्पत्ति गुरुकुल कांगड़ी को दान कर दी और स्वयं चिकित्सक के तौर पर गुरुकुल मे आ गये। उन्होंने गुरुकुल से निर्वाहमात्र लेना स्वीकार किया। तब से गुरुकुल में आयुर्वेद की चिकित्सा के साथ-साथ एलोपैथिक चिकित्सा और सर्जरी का प्रवेश हो गया।

आचार्य रामदेव जी

प्रारम्भ से ही गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता महात्मा मुंशीराम जी थे और आचार्य प० गंगादत्त जी शास्त्री। नवीनता का प्रवेश आचार्य जी को पसन्द नही था। ऊपर लिखे हुए परिवर्तनों में से प्रत्येक परिवर्तन काफी संघर्ष के पश्चात् हो सका। मुख्याधिष्ठाता जी की प्रवृत्ति प्राचीन और नवीन का उचित मिश्रण करके महर्षि दयानन्द के पूरे शिक्षाक्रम को क्रियात्मक रूप देने की ओर थी। आचार्य गंगादत्त जी अंग्रेजी, साइन्स आदि के प्रवेश को गुरुकुलीयता का विरोधी मानते थे। फिर भी शायद कुछ समन्वय हो जाता परन्तु आचार्य जी के तथा मास्टर रामदेव जी के व्यक्तिगत मतभेद इतने बढ गये थे कि किसी प्रकार का समझौता संभव न हो सका। उन्ही दिनों लाहौर के नवयुवक आर्य-दल के नेता डाक्टर चिरजीव भारद्वाज जी भी गुरुकुल मे आ गये। वे उग्र परिवर्तनवादी थे। उनके आने पर स्थिति बहुत विषम हो गई। जिसका परिणाम यह हुआ कि पं० गंगादत्त जी पं० भीमसेन जी शर्मा, प० नरदेव जी और प० पद्मसिंह शर्मा आदि पंडितो के साथ गुरुकुल से पृथक् हो गये और महाविद्यालय ज्वालापुर में कार्य करने लगे। आचार्य गंगादत्त जी के चले जाने पर महात्मा मुंशीराम जी गुरुकुल के आचार्य भी नियत हुए। मा० रामदेव जी मुख्या-ध्यापक का कार्य सभालते थे। इसके पश्चात् गुरुकुल विद्यालय का विकास निश्चित दिशा मे जारी रहा। जब सबसे ऊंची श्रेणी के ब्रह्मचारी दशम श्रेणी को उत्तीर्ण करके विद्याधिकारी बन गये तब १९०७ मे महाविद्यालय मे उस समय वेद-वेदांगों के अतिरिक्त केवल दो विषयो की शिक्षा की व्यवस्था की गई—एक विज्ञान, दूसरा

दर्शन । धीरे-धीरे प्रतिवर्ष अन्य विषयो की शिक्षा का प्रबन्ध भी होता गया । ज्यों-ज्यो श्रेणियां बढ़ती गई, विषय और उनके उपाध्याय भी बढ़ते गये । १९१२ में जब पहले दो ब्रह्मचारी स्नातक बनकर गुरुकुल से निकले, उस समय गुरुकुल महाविद्यालय का शिक्षक वर्ग निम्नलिखित था :—

१. महात्मा मुशीराम जी आचार्य ।
२ श्री रामदेव जी बी० ए०, ऐम० आर० ए० ऐस० उपाचार्य तथा उपाध्याय पाश्चात्य दर्शन ।
३. पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ उपाध्याय, वेद ।
४. श्री बालकृष्ण एम० ए० उपाध्याय, इतिहास तथा अर्थशास्त्र ।
५, प्रो० महेशचरण सिंह एम० एस०-सी० उपाध्याय, कृषि ।
६. प्रो० सेवाराम एम० ए० उपाध्याय, आंग्लभाषा ।
७. प्रो० ताराचन्द गाजरा एम० ए० सहायक उपाध्याय, आंग्लभाषा।
८. श्री लक्ष्मणदास बी० ए० उपाध्याय, गणित ।
९ प० योगेन्द्रनाथ दर्शनाचार्य उपाध्याय, भारतीय दर्शन ।

कुछ समय तक श्री घनश्यामसिंह गुप्त बी० एस०-सी० भी गुरुकुल में रह कर स्वय संस्कृत पढते और ब्रह्मचारियों को विज्ञान पढ़ाते रहे । गुरुकुल से जाकर गुप्त जी ने मध्य-प्रदेश के सार्वजनिक जीवन में प्रमुख भाग लिया । वहां की धारा-सभा के अध्यक्ष कई वर्षो तक रहे और इस समय भी आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान हैं । वे कई वर्षो तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान रह चुके हैं ।

१९१२ में दस वर्षो तक विद्यालय की और चार वर्षो तक महाविद्यालय की दीक्षा और शिक्षा समाप्त करके सबसे ऊंची श्रेणी के दो ब्रह्मचारी स्नातक हुए । उन्हें 'विद्यालंकार' और 'वेदालंकार' की उपाधि प्रदान की गई । दीक्षांत संस्कार की विधि गुरुकुल की विद्वन्मण्डली ने आर्ष ग्रंथों के आधार पर संकलित की थी । दीक्षांत संस्कार के समारोह ने आर्य जनता के हृदयो पर बहुत गम्भीर प्रभाव डाला । पहले दोनों स्नातक आपस में भाई थे और गुरुकुल के संस्थापक और मुख्याधिष्ठाता के आत्मज थे । इस प्रकार स्थापना के पश्चात् दस वर्षों के अन्दर गुरुकुल का छोटा सा पौधा विशाल रूप धारण कर चुका था ।

गुरुकुल के जन्म-काल से ही जहा भारतीयता की प्रेमी जनता में उसके प्रति श्रद्धा और प्रेम का भाव बढ़ता गया वहा अंग्रेजी सरकार के गुप्त समाचार विभाग में गुरुकुल कांगड़ी का नाम काली सूची में लिखा जाता रहा । सरकार के अविश्वास के कई कारण थे । सब से बड़ा कारण तो मनोवैज्ञानिक था । विदेशी सरकार की यह विशेषता होती है कि वह अधीन देश मे सारी शक्ति और लोकप्रियता का केन्द्र अपने को बनाये रखना चाहती है । ऐसी संस्थाओ या व्यक्तियों को जो आशीर्वाद लिये या उनकी अधीनता स्वीकार किये बिना सिर उठा कर खडी रहना चाहें, विद्रोहियो की

कोटि में रख दिया जाता है। गुरुकुल की तो स्थापना ही सरकारी शिक्षा-प्रणाली के विरोध में हुई थी। सरकार की नजरों मे सबसे पहली खटकने वाली बात यह हुई थी कि गुरुकुल ने सरकार से किसी प्रकार का अनुदान नहीं मागा। यह उसका पहला अपराध था। दूसरा अपराध यह था कि अपने किन्ही उत्सवों अथवा विशेष अवसरों पर सरकारी अफसरों को अध्यक्षता के लिये नहीं बुलाया जाता था। तीसरा अपराध यह था कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को माना गया था। और चौथा बहुत बड़ा अपराध था शारीरिक व्यायाम के साथ-साथ घुड़सवारी, गदका, फरी, तलवार आदि के शिक्षण का विशेष आयोजन किया जाना। स्थानीय अधिकारी, जिन्हें साधारण शिक्षणालयो मे आदर-सत्कार पाने की आदत थी, जब गुरुकुल में अपने को उपेक्षित पाते थे तो वे यह रिपोर्ट करके अपने मन की भड़ास निकाल लेते थे कि गुरुकुल एक राजद्रोही संस्था है।

कुछ वर्षों तक गुरुकुल के प्रति अविश्वास और नाराजगी की भावना दिलों और गुप्त फाइलों मे ही अन्तर्हित रही। १९०७ के मई मास में लाला लाजपतराय जी को सरकार द्वारा देश-निकाला दिया गया। वह समय आर्यसमाज और उसकी संस्था के लिए बड़े संकट का था। बंग-विच्छेद के कारण देश के वातावरण में जो असाधारण गर्मी पैदा हुई थी, उस से सरकार घबराई हुई थी। ऐसी स्थिति में जब सरकार ने देखा कि लाला लाजपतराय के नेतृत्व में पंजाब राष्ट्रीय जागृति का केन्द्र बनता जा रहा है, तब सरकार की धीरता के पांव उखड़ गये। लाला जी आर्यसमाज के प्रमुख नेता थे। स्वभावतः सरकार का कोप आर्यसमाज और उसकी संस्थाओ पर भी पड़ा। आर्यसमाज की ओर से सरकार के कोप का क्या उत्तर दिया गया, यह अगले अध्याय का विषय है। यहाँ केवल इतना ही दिखलाना अभीष्ट है कि गुरुकुल के प्रति सरकार का जो अविश्वास १९०७ से पहले परोक्ष रूप में विद्यमान था, लाला जी के निर्वासन के पश्चात् वह प्रत्यक्ष और उग्र रूप मे प्रकट होने लगा। गुरुकुल के ब्रह्मचारियो का नंगे सिर बाहर घूमना भी सरकार की दृष्टि में गुरुकुल को संदेहास्पद बनाता था, क्योंकि बंगाल के क्रान्तिकारी भी प्रायः नंगे सिर रहते थे। जब १९०६ की कलकत्ता कांग्रेस में राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थन का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया तब देश का ध्यान विशेष रूप से गुरुकुल की ओर खिंच गया। बहुत से ऐसे राष्ट्रभक्त, जो सर्वतोमुखी क्रांति के समर्थक थे, गुरुकुल में आकर विश्राम करते थे क्योंकि वहाँ वे अपने आपको सरकार की दृष्टि से ओझल समझते थे। प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल कई सप्ताह तक गुरुकुल मे रहे। ईसाइयत और सरकारी शिक्षा के विरुद्ध उन्होंने जो लेख रूपी अग्निबाण छोड़े थे उनमें से बहुत से गुरुकुल मे ही तैयार किए गए थे। बाहर के जिन अन्य महानुभावों का गुरुकुल कांगड़ी से विशेष सम्बन्ध स्थापित हो गया था, उनमें से दिल्ली के सैन्ट स्टिफिन्स कालेज के प्रिन्सिपल रुद्रा साहब और मिस्टर सी० ऐफ़० ऐन्ड्रयज मुख्य थे।

पांचवां अध्याय

सरकारी कोप की घटनायें

हम पहले अध्याय मे संक्षेप से बतला आए है कि उत्तरीय भारत मे आर्य-समाज का प्रभाव बढ़ने के साथ ही सरकारी क्षेत्रों में आर्यसमाज के प्रति अविश्वास और आशका का भाव उत्पन्न हो गया था। वह भाव प्रत्यक्ष में कम प्रकट होता था, फाइलों में अधिक रहता था। अविश्वास की भावना को उत्पन्न करने के मूल कारण ईसाई पादरी थे। जिस समय शासन के बल पर सारे भारत को ईसाई बनाने का स्वप्न पादरी लोगों को सफल होता दिखाई देने लगा, उसी समय महर्षि दयानन्द के धार्मिक सिहनाद ने उनके स्वप्न को तोड़ दिया। ईसाइयत के बढ़ते हुए प्रवाह के समक्ष आर्यसमाज का बांध सा लग गया। पादरियो की पहुंच हाकिमों तक थी ही। उन्होंने गुप्त रिपोर्टों द्वारा अफसरो को विश्वास दिला दिया कि आर्यसमाज एक राज-द्रोही संस्था है, जो भारतवर्ष से अंग्रेजो को निकाल कर आर्यों का राज्य स्थापित करना चाहती है। अपनी स्थापना को सिद्ध करने के लिए वे महर्षि दयानन्द के ग्रंथो के उन अंशों को उद्धृत करते थे, जिनमे स्वराज्य की चर्चा थी। वेद-भाष्य के और आर्याभिविनय के वे अंश, जिनमें चक्रवर्ती राज्य की प्रार्थना थी और सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के वे स्थल जिनमें राजधर्म का प्रतिपादन किया गया था, उद्धृत किए जाते थे। उन्हें भी पर्याप्त न समझ कर गोकरुणानिधि को प्रमाण रूप में पेश करके यह सिद्ध किया जाता था कि स्वामी जी ने गोरक्षा के नाम पर अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध द्रोह का प्रचार किया है। १९०६ तक यह दशा रही। सरकार की ओर से आर्यसमाज का खुला विरोध नही होता था। स्वामी आलाराम ने, जो पहले आर्यसमाज का प्रचारक था और पीछे सनातनधर्मी हो गया था एक पुस्तक लिखी, जिसमें महर्षि के ग्रंथों के उद्धरण देकर यह सिद्ध करने का यत्न किया कि आर्य-समाज राजद्रोही संस्था है। इस पर आर्यसमाजियों की ओर से घोर प्रतिवाद किया गया और आन्दोलन उठाया गया। उससे प्रभावित होकर १९०२ में स्वयं सरकार ने आलाराम पर इलाहाबाद से मुकदमा चलाया। उस मुकदमे के फैसले में मजिस्ट्रेट हैरिसन ने लिखा था– "इन उद्धरणो मे मैं कही भी विद्रोह की उत्तेजना के चिन्ह नही पाता. . मुझे दयानन्द की शिक्षा का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि हिन्दू जाति की बुराइयों को दूर किया जाय, जिससे अंत में देश का शासन देशवासियो के हाथ में आ जाय। उसके उपदेशों अथवा प्रार्थनाओं का यह अर्थ नहीं है कि विदेशी सरकार को एक दम उठा कर फेंक दिया जाय, अपितु यह है कि उन में ऐसा सुधार हो, जो उन्हें अपने

शासन के योग्य बनाय। स्वामी दयानन्द ने न कही हथियार उठाने की प्रेरणा की है और न युद्ध का डंका बजाया है।"

इस फैसले से यह सिद्ध होता है कि सरकारी क्षेत्रो मे आर्यसमाज के प्रति जो अविश्वास का भाव था वह कुछ अधिकारियो तक ही परिमित था। लाला लाजपतराय जी के देश-निर्वासन के समय से सरकार की मनोवृत्ति में एकदम परिवर्तन आ गया। लाला जी के माडले भेजे जाने के बाद लाहौर के गोरे अखबार 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' में 'एक भारतीय' के नाम से एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमे आर्यसमाज के विरुद्ध भरपूर जहर उगला गया था। उसमें सिद्ध किया गया था कि आर्यसमाज का प्रधान उद्देश्य अंग्रेजों के शासन को उखाड कर भारत मे हिन्दू राज्य की स्थापना करना है। वह लेख तो केवल सरकार के हृदय मे विद्यमान रोग का लक्षण मात्र था। वस्तुत. रोग बहुत गहरा हो चुका था। ऐंग्लो-इण्डियन लोगों ने और सरकार के खुफिया विभाग ने आर्यसमाज के विरुद्ध षड्यन्त्र का जो तानाबाना बुना था, उसका स्पष्ट आभास सर वैलन्टाइन शिरोल की 'Indian Unrest' नाम की उस पुस्तक से मिलता है, जो १९१० मे लंदन में प्रकाशित हुई थी। शिरोल ने पंजाब की राजनीतिक अशान्ति का उत्तरदाता मुख्य रूप से आर्यसमाज को ठहराया था। उसने आर्यसमाज पर जो अभियोग लगाया उसका सारांश यह था कि आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने "आर्यावर्त्त आर्यो के लिए" का नारा लगा कर हिन्दुओं में राजद्रोह के बीज बो दिए थे। उसका गोरक्षा का आन्दोलन भी ईसाई और मुसलमानो के विरुद्ध होने के कारण सरकारविरोधी ही था। मि० शिरोल ने यह तो माना कि बहुत से आर्य-समाजी राजनीति से कोई सम्बन्ध नही रखते परन्तु उसकी राय थी कि अधिकतर आर्य-समाजी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध भावना रखते हैं। अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए उसने कुछ प्रमाण भी दिए हैं। उनमे से पहला प्रमाण यह था कि रावलपिण्डी में जो दंगे हुए थे, उनके नेता आर्यसमाजी थे। दूसरा प्रमाण यह दिया कि लाला लाजपत-राय और सरदार अजीतसिंह, जिन्हें सरकार ने निर्वासित किया था, आर्यसमाजी थे। उसने यह भी लिखा कि लंदन में 'इंडिया हाउस' इस नाम से राजद्रोह का जो केन्द्र बना हुआ था, उसका संचालक श्याम जी कृष्ण वर्मा भी आर्यसमाजी है। इन युक्तियो के आधार पर मि० शिरोल ने सिद्ध करना चाहा कि आर्यसमाज राजद्रोह को उत्पन्न करने वाली संस्था है। यदि मि० शिरोल तथा उसके उस ढंग के अन्य अंग्रेज यह कहते कि आर्यसमाज के सिद्धान्तों को माननेवाला भारतवासी स्वराज्य का पक्षपाती हो जाता है, स्वदेशी से प्रेम करने लगता है और दिल से चाहने लगता है कि आर्य जाति अपने दोषो को दूर करके अपने देश के राज्य को विदेशियो के हाथों से निकाल कर अपने हाथ मे ले ले तो किसी आर्यसमाजी को प्रतिवाद करने की आवश्यकता न पडेगी। परन्तु उस समय के गोरे पत्रो और लेखको ने जो आरोप लगाया, उसका रूप सत्य से सर्वथा विपरीत था। मि० शिरोल के दिये हुए प्रमाणों की परीक्षा कीजिए तो वे सर्वथा थोथे प्रतीत होते हैं। रावलपिण्डी मे उपद्रव के पश्चात् जिन वकीलो को गिरफ्तार किया गया था, वे सब आर्यसमाजी थे, यह सच है। परन्तु यह भी

सच है कि पंजाब सरकार के हुक्म से वे सब जमानत पर छोड़ दिए गए थे और अन्त में एक यूरोपियन जज द्वारा निर्दोष करार दे दिए गए थे। मि० शिरोल का यह लिखना भी सर्वथा मिथ्या था कि सरदार अजीतसिंह आर्यसमाजी थे। वे कभी आर्य-समाजी नहीं रहे। वे उस श्रेणी में से थे जो धर्म को एक फालतू चीज मानते थे। इस दृष्टि से उन्हें एग्नास्टिक (Agnostic) कहा जा सकता है। लाला लाजपतराय की देश-भक्ति तो सूर्य की तरह जाज्वल्यमान थी परन्तु उस समय का उनका एक भी भाषण अथवा लेख ऐसा नहीं है जिससे राजद्रोह या आतंकवाद की ध्वनि निकलती हो और फिर यदि लाला लाजपतराय, श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा, भाई परमानन्द जी आदि कुछ व्यक्तियों को क्रान्तिकारी मान भी लिया जाय तो उसके आधार पर सारे आर्यसमाज को राज-नीतिक और राजद्रोह उत्पन्न करने वाली संस्था बतलाना सर्वथा अनुचित और अन्याय-पूर्ण था।

उस समय से पूर्व कई ऊंचे सरकारी व्यक्ति भी सरकारी तौर पर यह सम्मति दे चुके थे कि आर्यसमाज एक धार्मिक संस्था है, राजनीतिक संस्था नहीं। १८९१ की पंजाब की जनगणना की रिपोर्ट मे मि० मैक्लेगन आई० सी० एस० ने लिखा था : "आर्यसमाजी एक ही जाति (हिन्दू) से आए हैं और उनका समाज का अपना संगठन सपूर्ण है। इस कारण उस पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि वह अपने सदस्यों के कामों के लिए जिम्मेदार है परन्तु आर्यसमाज संगठन के रूप मे एक धार्मिक सभा है, राजनीतिक नही है।"

१९०१ की पश्चिमोत्तर प्रदेश की जन-गणना की रिपोर्ट मे मि० बर्न आई० सी० एस० ने लिखा था, "यह सच है कि आर्यसमाजी भविष्य में राजनीतिक कार्य-कर्ता हो जाएंगे, परन्तु वे इस कारण राजनीतिक कार्यकर्त्ता बनेगे कि वे आर्यसमाजी हैं, इसमें मुझे बहुत सन्देह है।"

१९०५ मे पजाब मे राजनीतिक आन्दोलनों के बहुत गरम होने पर सरकार विचलित हो उठी। उसके लिए ठंडे दिमाग से सोचना असम्भव हो गया। इधर गोरे अखबारों ने आर्यसमाज के राजद्रोही सस्था होने का ढोल पीटना आरम्भ कर दिया और उधर सरकार आर्यसमाजियो के साथ विद्रोहियों जैसा व्यवहार करने लगी। उसके पश्चात् क्या हुआ, उसका वृत्तान्त मै उस समय के राजनीतिक रगमंच के मुख्य नायक लाला लाजपतराय जी के शब्दो में देता हूं। लाला जी ने अपनी 'आर्यसमाज' नाम की पुस्तक के ५वें परिच्छेद मे सरकार के दमन की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में लिखा है कि "वे (आर्य-सामाजिक) नेता जो सरकारी नौकरियो में थे, अविश्वास के पहले शिकार हुए। उनकी कड़ी परीक्षा

ला० लाजपतराय जी

ली गई। उनके एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तन जल्दी-जल्दी होने लगे और अन्य भी कई उपायों से उनको यह जतला दिया गया कि यदि वे अपने ढंग को नही छोड़ेंगे, तो उनको कष्ट उठाना पड़ेगा। जो आर्यसमाजी ऊंची नौकरियों पर थे, उन्होंने दबने में पहल की। दूसरे दर्जे पर वे आए जो न्याय-विभाग के निचले ओहदों के उम्मीदवार थे, या प्रबन्ध विभाग मे थे अथवा बड़ा वेतन पाते थे। समाज (के संगठन) को उन्हीं लोगों के व्यवहार ने सरकार को यह संदेह करने का अवसर दे दिया कि आर्यसमाज के कोई राजनीतिक उद्देश्य हैं। विभागों के अफसर उनके काम में कोई दोष नहीं निकाल सके थे। खुली रिपोर्टों में उनकी खूब प्रशंसा की जाती थी परन्तु गुप्त रिपोर्टों मे तथा गुप्त प्रचार द्वारा उन पर प्रतिकूल टिप्पणियाँ की जाती थीं।"

इस प्रकार सरकार के कुटिल व्यवहार का वर्णन करते हुए लाला जी ने आगे लिखा है--"सरकार का कठोर व्यवहार उनकी देश-भक्ति पर हावी हो गया। परिणाम तुरन्त दिखाई देने लगा। पद और वेतन में वृद्धि, आदर और उपाधियां, भरोसे की नौकरियों पर नियुक्ति--यह सब कुछ तीव्रगति से प्राप्त होने लगे ......। उन लोगों के इस व्यवहार से आर्यसमाज के वातावरण में परिवर्तन होने लगा। आर्यसमाजी जो सरकारी नौकर थे, वे समाज के निश्चयों पर अपना असर डालने लगे .....। डी० ए० वी० कालिज की मैनेजिंग कमेटी के अध्यक्ष ने पंजाब यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर को अपना कालिज देखने के लिए निमंत्रित किया और अभिनन्दन-पत्र पेश किया। परन्तु जब एक ऊंचे दर्जे के सरकारी नौकर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि (यूनिवर्सिटी के) वाइस चान्सलर को पारितोषिक बाँटने के समय सभापतित्व के लिए बुलाया जाय तब सभासदों ने उसका ऐसा डट कर विरोध किया कि प्रस्तावक को अपना प्रस्ताव वापस लेना पड़ा। अध्यक्ष भी उसका समर्थन न कर सका।"

हम आगे बतलायेंगे कि लाला जी ने जिस निर्बलता की चर्चा की है, वह सब आर्यसमाजियों में नही थी। बहुत थोड़े आर्यसमाजी थे, जिनका दिल सरकार की धमकियों से दहल गया और उन्होंने सिर झुका दिया। अधिकतर आर्यसमाजी अपनी आन पर अड़े रहे परन्तु ऐसे विकट समय मे प्रायः यह देखा जाता है कि जो लोग भयभीत हो जाते है वही अधिक ऊंचा बोलते हैं क्योंकि उन्हें अपनी निर्दोषता सिद्ध करने की उग्र चिन्ता होती है। उस समय भी वैसा ही हुआ। आर्यसमाज से सम्बन्ध रखने वाले एक सज्जन ने 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' में एक लेख लिखा, जिसमें यह सिद्ध करने का यत्न किया कि लाला जी कभी आर्यसमाज के नेता थे ही नहीं। दोनों दलो के कुछ घबराए हुए नेताओं ने अपनी प्रतिनिधि सभाओं अथवा आर्य-जगत् से सलाह किए बिना ही एक शिष्ट-मंडल तैयार किया, जिसने पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के पास जाकर राजभक्ति की कस्में खाईं।

यह चित्र का एक पहलू है। लाला जी की गिरफ्तारी के पश्चात् 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' मे आर्यसमाज के विरुद्ध जो विषवमन हुआ, उसके उत्तर में महात्मा

मुन्शीराम जी ने उसी पत्र मे एक लेख-माला प्रकाशित कराई, जिसमें यह स्थापना की गयी कि जहाँ आर्यसमाज राजनीति सम्बन्धी सत्य सिद्धांतों का निर्भयता से प्रचार करता है, वहाँ वह वर्तमान राजनीतिक हलचल से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं रखता। उसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक और सामाजिक सुधार करना है। जो आर्यसमाजी अपने देश की राजनीति मे कोई भाग लेना चाहें, ले सकते हैं। न समाज उन्हें रोकता है और न उनके प्रत्येक भाषण या कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। नवम्बर में आर्यसमाज बच्छोवाली, लाहौर का जो उत्सव हुआ, उसमे महात्मा जी ने यह बतलाया कि आर्यसमाज का राजनीति से वही सम्बन्ध है जो एक संन्यासी का संसार से होता है। सन्यासी सत्य कहने से नही घबराता, निर्भय होकर कहता है, परन्तु उसमें लिप्त नहीं होता। अगले वर्ष के व्याख्यान में महात्मा जी ने आर्यसमाजियों की वीरता और निर्भयता की कुछ घटनाएं सुनाईं, जिन्हे आर्यसमाज के इतिहास का आवश्यक भाग समझ कर हम यहाँ पं० चमूपति जी लिखित 'आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का इतिहास' से उद्धृत करते हैं :--

"गुलाबचन्द एक सिक्ख रेजीमैन्ट मे लेखक था। वह कर्त्तव्यपरायण तथा सत्यप्रिय और परिश्रमी था। परन्तु साथ ही अधिकारियो को उत्तर देने में निर्भीक भी था। पहले तो उसकी इस बात की प्रशंसा होती थी परन्तु अब उसका यही गुण काँटे की तरह खटकने लगा और उसे इसलिए पृथक् कर दिया गया कि वह आर्यसमाजी है। इस प्रकार आर्यसमाजी का अर्थ हुआ निर्भीक अर्थात् उद्दण्ड।

"२. जिला करनाल के तीन जेलदारो में से एक आर्यसमाजी था। उसकी डायरी में लिख दिया गया कि वह जेलदार तो अच्छा है परन्तु उसका निरीक्षण किया जाना चाहिए क्योंकि वह आर्यसमाजी है।

"३. एक डिप्टी कमिश्नर ने एक स्थान के प्रमुख पुरुषों को बुलाकर कहा कि यदि तुम्हारे यहाँ कोई आर्यसमाजी रहता हो तो उसे निकाल दो। स्वयं उन प्रमुख पुरुषों ही में दो आर्यसमाजी थे। उन्होंने पूछा कि आर्यसमाजियों के विरुद्ध क्या किया जाय ? डिप्टी कमिश्नर ने कहा--कुछ करो, तुम्हारे विरुद्ध कुछ कार्यवाही न की जाएगी। वे बोले, आप स्पष्ट निर्देश करें तो उसका पालन किया जा सकता है और यदि आप ही स्पष्ट कार्यवाही करने से डरते हैं तो फिर हम में यह साहस कहाँ ?

"४. एक रेजीमैन्ट के सिपाही आर्यसमाजी थे। उन्हें यज्ञोपवीत उतार देने की आज्ञा दी गई। वे जाति के जाट थे, उन्होंने जाट सभा द्वारा निवेदन-पत्र भिजवाया। उसे आपत्तिजनक समझा गया।

"५. एक मुसलमान जमादार ने एक यूरोपियन लेफ्टिनेन्ट को विवाद में हरा दिया। इस की शिकायत हुई और मुसलमान को डाँट कर कहा गया--तुम आर्यसमाजी हो। उसने उत्तर दिया--मैं तो मुसलमान हूं। अधिकारी ने उसे और डाँटा और कहा--तुम मुसलमान आर्यसमाजी हो।

"६. आर्यसमाज के प्रचारक पं० दौलतराम झाँसी गए। वहाँ उन्होंने सिपा-

हियों को भी उपदेश दिया और उनसे अनाथालय के लिए चन्दा लाए। उस पर अभियोग चलाया गया और दण्ड यह दिया गया कि या तो झाँसी या उसके पाँच मील के अन्दर रहने वाले तथा सरकार को १००) मालिया या २०००) की आय पर कर देने वाले दो सज्जनों की जमानतें दिलाओ या एक वर्ष कठोर कारावास का दण्ड भुगतो। यों तो दौलतराम जी आगरा के खाते-पीते घर के थे परन्तु झाँसी में वह अजनबी थे इसलिए कारावास भुगतना पड़ा।

७. "जोधपुर में वाइसराय महोदय पधारे थे। उनके मार्ग में समाज मन्दिर पड़ता था। पुलिस ने समाज वालों से कहा—अपना फट्टा तथा झंडा उतार लो। उनके इन्कार करने पर पुलिस ने स्वयं ये दोनो चिह्न उतार लिए।"

इस समय की कुछ अन्य घटनाए भी उल्लेखनीय है :

१. पंजाब की एक ब्रिगेड में आज्ञा दी गई कि सिपाही आर्यसमाज अथवा किसी अन्य राजनीतिक सभा में न जाया करें।

२. एक भारतीय रेजीमेन्ट के एक डाक्टर को उसके आफिसर ने त्याग-पत्र का मसविदा लिख कर दिया कि इसके द्वारा समाज से सम्बन्ध विच्छेद कर लो। यह आज्ञा न मानने के कारण आखिर उसे सेवा छोड़नी पड़ी।

३. रोहतक में किसी ने ढिढोरा पिटवा दिया कि आर्यसमाज का मन्दिर सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया है। समाज के प्रधान के पूछने पर डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय ने लिखा कि ऐसा ढिढोरा सरकार की आज्ञा से नहीं पीटा गया परन्तु तो भी इसके विरुद्ध सरकार ने अपनी ओर से घोषणा तक करना स्वीकार नहीं किया।

४. इन्द्रजीत शाहजहानपुर की जिला कचहरी में काम करता था। उसने रोगी होने के कारण अवकाश लिया। वह आर्यसमाज का उत्साही कार्यकर्त्ता था। उसे आज्ञा दी गई कि या तो समाज का प्रचार करे या सरकार की सेवा।

५. इन्दौर आर्यसमाज का प्रधान लक्ष्मणराव शर्मा पुलिस के इंसपेक्टर जनरल के कार्यालय में हैड एकौन्टैन्ट था। उसने समाज के जलूस की आज्ञा माँगी। इस पर उसे समाज छोड़ देने को कहा गया। ऐसा न कर सकने के कारण उसे सरकार की सेवा छोड़ देनी पड़ी।

६. इस प्रसंग में पश्चिमोत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नेता पं० भगवानदीन जी का मामला भी स्मरणीय है। पंडित भगवानदीन जी सरकारी नौकरी में थे। उनका सब कार्य अत्यन्त संतोषजनक था। सभी संबद्ध अधिकारियों ने उनकी प्रशंसा की है। परन्तु जब सरकार घबरा गई तब आफिसर ने पंडित जी से यह आश्वासन लेना चाहा कि वे आर्यसमाज का कोई काम न करेंगे। पंडित जी के ऐसा आश्वासन न देने पर उन पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाए जाने लगे। यहाँ तक कि उन्हें छुट्टी से भी इन्कार कर दिया गया। इस पर असन्तुष्ट होकर पंडित जी ने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और स्वतन्त्र होकर पूर्ण रूप से आर्यसमाज की सेवा में लग गए।

सरकार की दमन-नीति का पजाब के आर्यसमाजियों पर जो असर हुआ, उसका विश्लेषण करते हुए लाला जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है, "हमारे पाठक जानते है कि समाज (पजाब का) दो विभागों में बंटा हुआ है-- डी० ए० वी० कालिज विभाग और गुरुकुल विभाग। यदि यह न कहे तो अन्याय होगा कि सामान्य रूप से गुरुकुल विभाग के अधिक व्यक्तियो ने राजनीतिक मामलों में अपनी स्वाधीनता को कायम रखा ..। स्वामी श्रद्धानन्द और उनके बहुत से उप-सेनापति और सहकारी असहयोग आन्दोलन में महात्मा गाँधी के साथ रहे जब कि कालिज विभाग ने उस आन्दोलन के विरोध में एड़ी से चोटी तक का जोर लगाया।"

लाला जी के इस विश्लेषण में हम थोड़ा सा उत्तर भाग जोड़ना चाहते है। जब छः मास बाद लाला जी नजरबंदी से छूट कर लाहौर वापस आए तब कालिज विभाग के अनारकली आर्यसमाज में उनका व्याख्यान रक्खा गया। उस व्याख्यान में जितनी जनसंख्या उपस्थित हुई, उतनी उस आर्यसमाज के जलसे में कभी उपस्थित नही हुई थी। लाला जी की वाणी में जादू तो था ही, सुनने वालों का कहना था कि श्रोताओं ने जितनी प्रसन्नतासूचक तालियों को उस भाषण में बजाया, उतनी शायद किसी अन्य भाषण में न बजाई होंगी। इससे प्रतीत होता है कि कालिज विभाग के भी साधारण सदस्यों पर सरकार की दमननीति का आतंक नहीं बैठा था। यदि कुछ आतंक बैठा भी था तो वह कालिज की ममता के कारण नेताओं तक ही परिमित था। सामान्य रूप से हम कह सकते है कि आर्यसमाज के ९५ फीसदी सभासदों ने सरकार की दमननीति की कोई पर्वाह नही की और अपने मार्ग पर चलते रहे।

छठा अध्याय

पटियाले में अग्नि-परीक्षा

पटियाला पंजाब की एक सिख रियासत थी, जो अब पजाब प्रदेश मे सम्मिलित है। हम जिस समय का वृत्तान्त लिख रहे है, उस समय बूढ़े महाराज की मृत्यु हो चुकी थी और उनके स्थान पर कुछ ही समय पूर्व नवयुवक उत्तराधिकारी का राजतिलक हुआ था। रियासत में एक बूढ़ा अंग्रेज अधिकारी था, जिसका नाम बार्बर्टन था। वह अंग्रेजी सरकार की नौकरी से पेंशन लेने के बाद रियासत में पुलिस विभाग का मुख्य अधिकारी बनाया गया था। वह वृद्ध हो गया था और स्वभाव का रूखा भी था। इस कारण रियासत के सरकारी क्षेत्रों मे भी यह चर्चा हो गयी थी कि उसे नौकरी से अलग किया जायगा। रियासत के वित्त-विभाग से भी बार्बर्टन की खटपट चल रही थी। वित्त-विभाग के आडिट आफिस ने उसके बिलों पर अनेक आपत्तियाँ उठायी थीं। वित्त-विभाग में अनेक प्रमुख आर्यसमाजी काम करते थे। उधर पंजाब में आर्यसमाज पर सरकार की कोप-दृष्टि हो ही रही थी। केवल पजाब में ही नही, प्रायः सारे देश में ही आर्यसमाज के सिर पर सरकारी कोप की काली घटाए छाई हुई थीं। ऐसे अवसर से लाभ उठा कर बार्बर्टन ने आर्यसमाजियो पर राजद्रोह का अभियोग कायम करके, एक ही पत्थर से दो पक्षी मारने का निश्चय किया। उसने सोचा कि एक तो वे आर्यसमाजी, जिन्हें वह अपना शत्रु समझता था, जेल में पहुच जाएगे और दूसरा काम यह हो जायगा कि महाराज मुझे अपना हितैषी और अत्यन्त उपयोगी अफसर समझ कर पृथक् करन को राजी न होंगे। उसने पटियाले के ८५ प्रमुख आर्यसमाजियों के विरुद्ध राजद्रोह का अभियोग लगाकर वारंट निकलवा दिए, जिनके अनुसार ११ अक्तूबर, १९०९ को जो लोग गिरफ्तार कर लिए गए, उनमें रियासत के ऐक्जिक्यूटिव इंजीनियर राय ज्वालाप्रसाद जी, ला० बैजनाथ बी० ए०, बी० टी०, ला० लक्ष्मणदास बी० ए०, ला० नंदलाल, ला० नारायणदत्त ठेकेदार, ला० शंकरलाल (दिल्लीवाले) आदि प्रमुख थे। इन सब पर भारतीय दण्डधारा की १२४ ए० और १५३ ए० के अनुसार अभियोग चलाए गए थे। अभियोग को सुनने के लिए महाराज की ओर से एक विशेष अदालत बनाई गई थी। गिरफ्तारी के जो वारंट निकाले गए थे, उनमें धाराओं के निर्देश के सिवाय आरोपो के सम्बन्ध में और कुछ नही था। गिरफ्तारी के समय घरों की जो तलाशियाँ ली गईं, उनमें न केवल बेजाब्ता कारवाइयाँ की गईं, बहुत सी बेमतलब बातें भी हुईं। तलाशी लेने वालों को जब कुछ न मिला तो कही से बाइबल, कही से रामायण और किसी घर से स्वामी दयानन्द जी की फोटो बरामद करके ही कागजो की खानापूरी कर दी गई।

रियासत ने अभियोग को पूरे जोर से लड़ने के विचार से लाहौर के प्रसिद्ध अंग्रेज वकील मि० एडवर्ड ग्रे को पटियाला बुलाकर बहस का काम उसे सौंपा। उसकी सहायता के लिए रियासत का सारा कानूनी अमला विद्यमान था। जब गिरफ्तारियों का समाचार आर्य-जगत् को प्राप्त हुआ तब सारे देश मे विक्षोभ और आश्चर्य की लहर दौड़ गई। यह समझा जाना स्वाभाविक था कि पटियाले का अभियोग तो केवल सुई की नोक है, यदि उसके आगे बढ़ाने मे सरकार को सफलता मिलगई तो फिर सारे शरीर के बिंध जाने में सन्देह नही रहेगा। शीघ्र ही एक "आर्य रक्षा-समिति" संगठित की गई जिसकी ओर से ला० रोशनलाल बैरिस्टर एट-ला, दीवान बद्रीदास एम० ए० तथा ला० द्वारकादास एम० ए० ने मुकदमे की पैरवी आरम्भ कर दी। अभियोग के संचालन का काम मुख्य रूप से महात्मा मुन्शीराम जी करने लगे, जिन्हे अदालत मे वकील के तौर पर उपस्थित होने के लिए अपना कई वर्षो से अलमारी में बन्द किया हुआ वकालत का लाइसेन्स निकालना पडा।

ट्रिब्यूनल (विशेष अदालत) में अभियोग २२ नवम्बर को पेश हुआ। जब अदालत ने यह पूछा कि किस अभियोग-पत्र पर अभियुक्तो को गिरफ्तार किया गया है तो उत्तर मिला कि फाइल मे कोई अभियोग-पत्र नहीं है। इस पर अदालत ने असंतोष प्रकट किया तो पुलिस ने अगली तारीख माँग ली। दूसरी पेशी २५ नवम्बर को हुई। उस दिन ग्रे साहब अदालत में उपस्थित हुए। यह उपस्थिति भी बहुत धूम-धाम से हुई थी। ट्रिब्यूनल को एक घटा तक प्रतीक्षा करनी पड़ी क्योंकि ग्रे साहब महाराजा से बातचीत कर रहे थे। उस समय भी अभियोग-पत्र तैयार नही थे। तब मुकदमा १३ दिसम्बर के लिए मुल्तवी कर दिया गया। १ दिसम्बर को महाराज की ओर से आज्ञा निकाली गई कि आगे से कोई ऐसा वकील मुकदमे की पैरवी नही कर सकेगा जो पहले महाराज से आज्ञा प्राप्त न कर ले। इस प्रकार पहले से ही अभियुक्तो की सफाई के रास्ते मे अनेक प्रकार की अड़चनें खड़ी की जाती रहीं। लगभग दो मास इसी टाल-मटूल में बीत गए। कुछ दिनों के पश्चात् अदालत को मालूम हुआ कि जो लोग पकड़े गए है, सरकारी आज्ञा में उनमें से आठ के नाम ही नहीं थे। अदालत के आपत्ति उठाने पर चार के अभियोग-पत्र तैयार कर लिए गए और चार को छोड़ दिया गया। शेष अभियुक्तों में से भी ३० निर्दोष समझ कर छोड़ दिए गए। ये ३४ व्यक्ति इतने दिनों तक व्यर्थ मे ही जेल की यातना भोगते रहे। इन्ही में से एक सज्जन के घर में उनकी अनुपस्थिति में एक बच्चा पैदा हुआ जो उचित देखभाल न होने के कारण मर गया। इसी प्रकार एक और अभियुक्त के बच्चे की आँखें जाती रही। ऐसे ही कारणो से एक अभियुक्त की माता और दूसरे की पत्नी की मृत्यु हो गई। इतने कष्ट होने पर भी आर्य-जगत् को यह जानकर सन्तोष हुआ कि कोई अभियुक्त पीछे कदम रखने को तैयार नही था। सब अपने धर्म पर दृढ़ रहने को तैयार थे।

लम्बी टालमटूल के बाद १७ दिसम्बर को मि० ग्रे ने अभियुक्तों के विरुद्ध अपना प्रारम्भिक भाषण दिया। उस भाषण की यह विशेषता थी कि उसमे जितनी

बाणवर्षा की गई थी, उन सबका केन्द्र आर्यसमाज था, स्वयं अभियुक्तों के विरुद्ध लगभग कुछ भी नहीं था। ग्रे ने अपनी सारी कानूनी योग्यता यह सिद्ध करने में लगा दी थी कि आर्यसमाज एक राजद्रोही संस्था है क्योंकि स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रंथों में राजद्रोह का प्रचार किया है। यह भी कहा गया था कि क्योंकि लाला लाजपतराय आर्यसमाजी हैं और लाला जी राजद्रोही हैं, इस कारण सब आर्यसमाजी राजद्रोही समझे जा सकते हैं। बीच में श्याम जी कृष्ण वर्मा का भी नाम लिया गया।

एडवर्ड ग्रे का भाषण समाचार-पत्रों में छपा तो जहाँ देश के समाचार-पत्रों और साधारण जनों में भी यह आश्चर्य प्रकट किया जाने लगा कि पटियाला रियासत ने ऐसे कच्चे आधार पर इतने बड़े अभियोग के किले को खड़ा करने की मूर्खता कैसे कर दी, वहाँ पंजाब की सरकार बड़ी चिन्ता में पड़ गई। चिन्ता स्वाभाविक ही थी। यदि रियासत की धाँधली के कारण ग्रे के लगाए हुए अभियोग मान लिए जाते तो भारत सरकार का कर्त्तव्य हो जाता कि वह देश भर के आर्यसमाजों को और आर्यसमाजियों को राजद्रोही घोषित कर देती। सरकार इसके लिए तैयार नहीं थी। ग्रे की बेतुकी बातों से सरकार स्वयं घबरा गई। इसी बीच में पंजाब के गवर्नर को अपनी सम्मति प्रकट करने का अवसर भी मिल गया। लाहौर आर्यसमाज के प्रधान मा० दुर्गाप्रसाद जी ने एक पत्र में लाटसाहब से पूछा कि क्या सरकार आर्यसमाज को राजद्रोही संस्था समझती है। लाटसाहब ने उत्तर में लिखा कि सरकार आर्यसमाज को विद्रोही संस्था नहीं समझती और न उसकी इच्छा इस संस्था पर समुदाय रूप में अभियोग चलाने की है।

मि० ग्रे के पहले भाषण ने स्पष्ट कर दिया था कि अभियोग के पाँव नहीं है। लाटसाहब के उत्तर ने तो उसके नीचे से जमीन ही सरका दी। शिमले के एक अध-गोरे पत्रकार को बीच में डालकर एकदम पटियाला सरकार ने अभियुक्तों के मुखिया राय ज्वालाप्रसाद जी से सुलह की बातचीत आरम्भ कर दी। सरकार की तरफ से आश्वासन दिया गया कि यदि सब अभियुक्त यह लिखकर दे देंगे कि वे भविष्य में कोई आपत्तिजनक कार्य न करेंगे तो मुकदमा उठा लिया जाएगा। अपने वकीलों के परामर्श से अभियुक्त उसके लिए तैयार हो गए और उन्होंने अदालत में यह आवेदनपत्र पेश किया, जिसमें अपने को निरपराध बतलाते हुए भविष्य में सावधान रहने का आश्वासन दिया। मि० ग्रे ने आवेदन-पत्र को लेने का विरोध किया परन्तु महाराजा के आदेश से न्यायालय ने उसे लेकर महाराज के पास भेज दिया।

इसके बाद महाराजा की ओर से जो आज्ञापत्र निकला, उसमें थोड़ा सा विश्वासघात का अंश था। मुकदमा तो उठा लिया गया परन्तु यह आज्ञा दे दी गई कि सब अभियुक्त रियासत से बाहर चले जाएं। यह अंश सलाह की बातचीत में नहीं आया था। कुछ समय बाद पटियाला निवासियों के लिए निर्वासन की आज्ञा भी वापस ले ली गई, जिससे सिद्ध हो गया कि वह मुकदमा सर्वथा निर्मूल था।

पटियाला-केस के कारण आर्यसमाज को काफी चिंतित होना पड़ा, परन्तु

उसके परिणाम बुरे नहीं हुए। कभी-कभी बुराई में से भी भलाई निकल आती है। आर्यसमाज पर से राजद्रोही होने का अभियोग तो उठ ही गया, उसे बहुत से उत्कृष्ट सेवक भी मिल गए। लाला नन्दलाल और लाला मुरारिलाल, गुरुकुल कांगड़ी चले गए। गुरुकुल के कार्यालय का मौलिक संगठन इन्हीं दो महानुभावों की सूझ और मेहनत का फल है। ला० लक्ष्मणदास जी गुरुकुल विद्यालय के मुख्याध्यापक नियुक्त किए गए। ला० नारायणदत्त जी दिल्ली चले गए। उन्होंने दिल्ली में आर्यसमाज की चिरकाल तक जो सेवा की, उसका समाज के इतिहास मे विशेष स्थान है। ला० शंकरलाल ने दिल्ली के राजनीतिक क्षेत्र में विशेष पद प्राप्त किया। राय ज्वाला-प्रसाद जी अपने प्रान्त मे वापस चले गए और उत्तर-प्रदेश सरकार के चीफ इंजीनियर पद पर पहुंच गए। सरकार ने उनकी सेवाओं से सन्तुष्ट होकर उन्हें राजा की पदवी से विभूषित किया।

इस अभियोग के अवसर पर महात्मा मुन्शीराम जी और आचार्य--रामदेव जी द्वारा संपादित होकर "Arya Samaj and its Detractors-A Vindication" नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमे पटियाला के अभियोग का पूरा वृत्तांत देने के अतिरिक्त मि० ग्रे के लगाए अभियोगों का विस्तृत और सप्रमाण खण्डन किया गया है। इन्हीं दिनों श्रीयुत मदनमोहन सेठ एम० ए०, एलएल० बी० ने 'The Arya Samaj--a Political Body, नाम की पुस्तक प्रकाशित की जो एक खुली चिट्ठी के ढंग पर भारत-मंत्री लार्ड मौर्ले को संबोधित करके लिखी गयी थी। इन दोनों पुस्तकों से आर्यसमाज की स्थिति को स्पष्ट करने में बहुत सहायता मिली।

सातवाँ अध्याय

काली घटायें फट गईं

पटियाले के अभियोग के पश्चात् वातावरण बदलने लगा। सरकार के ऊंचे अधिकारियों ने अनुभव किया कि आर्यसमाज को राजद्रोही मान कर उस पर अत्याचार करने से समाज की शक्ति बढ़ेगी, घटेगी नहीं। उन्हें इतिहास का वह समय याद आ गया जब रोमन राज्य के अत्याचारों ने एक छोटे से ईसाई सम्प्रदाय को संसारव्यापी धर्म का रूप दे दिया था। अविश्वास की जो घटायें लगभग चार साल तक आर्यसमाज के सिर पर मडराती रही थीं, वे धीरे-धीरे फटने लगीं। सरकारी तौर पर यह १९१२ की पश्चिमोत्तर प्रदेश की जन-गणना की रिपोर्ट में प्रकट हुआ कि सरकार का रुख आर्यसमाज की ओर से बदल रहा है। रिपोर्ट के लिखने वाले मि० ब्लन्ट आई० सी० एस० ने लिखा था—

"Long ago the Samaj was charged with being a mere political society, with objects and opinions of a dubious character ; and of late the charge has again been made, and with greater insistence. The heads of the charge seem to be three : firslty, that many prominent Aryas are politicians with opinions not above suspicion; secondly, the Samaj strongly supports the Gaurakshini movement, and thirdly that the Samaj grossly attacks other religions. As regards the first allegation, it is doubtless true. The Arya-Samaj has many politicians of good and bad repute in its ranks:........There is, of course, no doubt whatever that the Samaj doctrine has a patriotic side.. .... The Arya doctrine and the Arya education alike sing the glories of ancient India and by so doing arouse the national pride of its disciples, who are made to feel that their country's history is not a tale of continuous humiliation. Patriotism and politics are not synonymous, but the arousing of an interest in national affairs is a natural result of arousing of an interest in national pride. Moreover, the type of man to whom the Arya doctrine appeals is also the type of man to whom politics appeals, viz., the educated man who desires his country's progress, not ultra

conservative with the ultra conservatism of the East, but, to a greater or less extent, rerum novanum cupidu set capax It is not therefore surprising that there are politicians among the Arya Samaj. But it is impossible to deduce from this that the Arya Samaj, as a whole, is a political body. From the first the Samaj has consistently affirmed that it is not concerned with politics, has laid down this principle in various rules, has discouraged its members from taking part in it and disapproved their actions in express terms when they needed disavowal.. The position indeed is that the tree has been judged by its fruits, the society by the action of its members .. ... The judgement, whether right or wrong, is at all events natural, but it nevertheless seems to me to be absolutely necessary that a distinction should be drawn between the action of the Samaj as a whole and the action of its individual member—or, to go to the utmost length, of its individual Sabhas though the attitude of most Sabhas, as of the central Sabha, has always been correct."

"चिरकाल से आर्यसमाज पर यह आरोप लगाया जा रहा था कि वह एक राजनीतिक संस्था है, जिसके उद्देश्य और मन्तव्य संदिग्ध से हैं। पिछले दिनों यह अधिक जोर से दोहराया गया है। आरोप के तीन शीर्षक है—पहला, समाज के कई ऐसे प्रमुख सभासद् राजनीति के क्षेत्र में काम करते है, जिनकी सम्मतियाँ सन्देह की पात्र हैं। दूसरा, समाज गोरक्षा आन्दोलन का जोरदार समर्थक है, और तीसरा कि समाज अन्य सब मतों पर कठोर आक्रमण करता है। पहले आरोप के बारे में हम कह सकते है कि वह सचमुच ठीक है। आर्यसमाज के जो सभासद् राजनीति मे भाग लेते है, उनमें से कुछ की ख्याति (सरकार की दृष्टि में) बुरी है। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि समाज के सिद्धान्तों मे देश-भक्ति का भी स्थान है। आर्य-सिद्धान्त और आर्य-शिक्षण समान रूप से भारत की पुरानी महिमा का गान करते है, जिससे उसके अनुयायियो के हृदयों में राष्ट्रीय अभिमान उत्पन्न होकर यह भावना उद्बुद्ध होती है कि हमारे देश का इतिहास सदा से तिरस्कारपूर्ण ही नहीं रहा। यद्यपि देश-भक्ति और राजनीति पर्यायवाची शब्द नहीं है तो भी इसमें सन्देह नही कि जब मन में राष्ट्रीय अभिमान पैदा हो जाता है तब देशवासियों की राजनीति की ओर रुचि होना स्वाभाविक ही है। साथ ही यह भी बात है कि आर्यसमाज के सिद्धान्त और देश की राजनीति की ओर आकृष्ट होने वाले व्यक्ति एक ही श्रेणी के हैं। वह श्रेणी उन लोगों की है जो शिक्षित हैं, अपने देश की उन्नति चाहते है, पुराने दकियानूसी विचारो से मुक्त हैं और न्यूनाधिक रूप से सुधार की मनोवृत्ति रखते हैं। ऐसी दशा में यह आश्चर्य की बात है कि आर्यसमाज में ऐसे लोग विद्यमान हैं जो राजनीति में भाग

लेते हैं परन्तु इससे यह परिणाम निकालना बिलकुल गलत है कि आर्यसमाज समह रूप में एक राजनीतिक संस्था है। प्रारम्भ से ही आर्यसमाज निरन्तर यह घोषणा करता रहा है कि उसका (तत्कालीन) राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है, इस सिद्धान्त को उसने कई नियमों द्वारा प्रकट किया है, अपने सदस्यों को राजनीति में भाग लेने से रोका है (?) और जब आवश्यकता हुई है तब उनके कार्यों पर असहमति प्रकट की है। असली स्थिति यह है कि वृक्ष के सम्बन्ध में सम्मति बनाने के लिए उसके फलों को परखा जाता है और किसी समाज का असली रूप उसके सदस्यों के कार्यों से जाना जाता है। यह बात स्वाभाविक है परन्तु यह भी आवश्यक है कि किसी समाज और उसके (कुछ) सभासदों के कार्यों में भेद किया जाय अथवा उसकी सभाओं के व्यवहार की परीक्षा की जाय। यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि सभाओं का और मुख्यरूप से केन्द्रीय सभा का झुकाव सदा ठीक दिशा में रहा है।"

इस उद्धरण के जिस वाक्य के सामने हमने प्रश्न वाचक चिन्ह लगा दिया है वह यथार्थ नहीं है। किसी आर्यसमाज अथवा उसकी किसी सभा ने अपने किसी सभासद् को देश की राजनीति में भाग लेने से नहीं रोका। डी० ए० वी० कालिज कमेटी ने ला० लाजपतराय जी के निर्वासित होने पर जो प्रस्ताव पास किया था उसका भी यह अभिप्राय नहीं था कि आर्यसमाज अपने किसी सभासद् के राजनीति में भाग लेने के विरुद्ध है। निर्वासन से जो परिस्थिति उत्पन्न हुई थी, उसे दृष्टि में रख कर कालिज कमेटी ने इस आशय की घोषणा की थी कि वह लाला जी की सब राजनीतिक सम्मतियों अथवा चेष्टाओं के लिए उत्तरदाता नहीं है। इतने अंश को छोड़ कर मिस्टर ब्लन्ट की सम्मति बहुत कुछ यथार्थ थी।

पटियाला-अभियोग के बाद आर्यसमाज पर से तो सन्देह का आवरण हट सा गया परन्तु गुरुकुल कांगड़ी पर सरकार की कड़ी दृष्टि बनी रही। गुरुकुल कांगड़ी का सबसे बड़ा अपराध यह था कि वह संसार से बिलकुल अलग-थलग बना हुआ था और जिन दिनों देश भर के शिक्षणालय सरकार की बनाई पटरी पर चल रहे थे उन्हीं दिनों गुरुकुल सरकार से किसी प्रकार सहायता न लेकर स्वच्छन्द मार्ग पर जा रहा था। लोकोक्ति है कि जब भाग्य अनुकूल होता है तब विष भी अमृत हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस समय नौकरशाही का वह असन्तोष रूपी विष गुरुकुल के लिए अमृत सिद्ध हो रहा था। विदेशी राज्य के विरुद्ध लड़ाई के दिनों में राज्य का कोप देश-भक्तों के प्रेम का कारण बन जाया करता है। जिस संस्था को राजकर्मचारी बुरा समझें वह देशवासियों के हृदयों को आकृष्ट करने लगती है। यही कारण था कि सन् १९०७ और १९१३ के बीच में ऐसे देश-भक्त भी गुरुकुल को अपना प्रिय सुरक्षित स्थान समझते थे जिनके पीछे सरकार के वारंट घूम रहे थे। पंजाब, उत्तर-प्रदेश और बंगाल के अनेक क्रान्तिकारी गुरुकुल में आए और दर्शक बन कर सप्ताहों तक रहे। पंजाब के प्रसिद्ध देश-भक्त ला० हरदयाल एम० ए० लगभग १ मास तक गुरुकुल में रह कर ब्रह्मचारियों को स्वाधीनता की घुट्टी पिलाते रहे।

सरकार की कोप-दृष्टि का दूसरा परिणाम यह हुआ कि विदेश के जो यात्री भारत की अवस्था का अध्ययन करने आते थे वे प्रायः गुरुकुल को अपनी आंखों से देखना आवश्यक समझते थे। जब उन्हें सरकारी दफ्तरों में यह बतलाया जाता था कि गुरुकुल एक अत्यन्त भयानक संस्था है तब स्वभावतः उनके दिल में यह भाव उत्पन्न होता था कि राजद्रोह के उस अड्डे को चल कर देखना चाहिए। 'टाइम्स' के संवाददाता मि० शिरोल ने भारत के विषय में जो विष भरी किताब लिखी थी, उसमें कई पृष्ठ गुरुकुल के अर्पण किए थे। भारत के मित्र मि० नैविन्सन ने लगभग एक सप्ताह तक गुरुकुल में रह कर जो कुछ देखा, उसका बहुत अनुकूल ढंग से अपनी 'न्यू इंडिया' नाम की पुस्तक में उल्लेख किया था। मि० फैल्प्स भारत की धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी स्थिति का अध्ययन करने के लिए यहाँ आए थे। वे कई मास तक गुरुकुल में रहे। उन्होंने इलाहाबाद के गोरे दैनिक अखबार 'पायोनियर' में गुरुकुल के सम्बन्ध में एक लेख-माला लिखी थी, जिसे पढ कर सरकारी लोगों के मन में यह सन्देह उत्पन्न हो गया था कि शायद हम लोग गुरुकुल को जैसा बुरा समझे बैठे हैं, वह वैसा बुरा नहीं है। भारत के परम मित्र दीनबन्धु सी० एफ० एन्ड्रयूज तो महात्मा मुंशीराम जी के प्रगाढ़ मित्र होने के नाते से गुरुकुल के अंग से बन गए थे। यह कहा जा सकता है कि यदि गुरुकुल पर नौकरशाही का इतना प्रकट कोप न होता तो उसकी विशेषताओं को ऐसी अतर्राष्ट्रीय ख्याति भी न मिलती।

गुरुकुल के सम्बन्ध में सरकार की बिगडी हुई मनोवृत्ति को सुधारने में उदार-चेता देश-भक्त श्री गोखले महोदय ने विशेष यत्न किया। उन्होंने कांग्रेस के उस वर्ष के अध्यक्ष सर विलियम बैडेनवर्ड से गुरुकुल की चर्चा करके महात्मा मुंशीराम जी से बातचीत करवाई। उस बातचीत का प्रभाव यह हुआ कि सर बैडेनवर्ड ने लार्ड हार्डिंग तथा सरकार के अन्य ऊंचे कर्मचारियों से मिल कर गुरुकुल के बारे में सरकारी क्षेत्रो में फैले हुए भ्रम को निवृत्त करने का यत्न किया। महात्मा जी भी सर जान ह्यूवेट से मिले। इस मुलाकात के पश्चात् सरकार की गाड़ी का पहिया ठीक दिशा में चलने लगा। १९१३ में पश्चिमोत्तर प्रदेश के लैफ्टिनेंट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन पहली बार गुरुकुल में आए। उन्होंने गुरुकुल में आकर जो कुछ देखा और अनुभव किया उसके आधार पर अपने गुरुकुल में दिए गए भाषण में निम्नलिखित सम्मति दी थी :—

आपने कहा, "न केवल इस प्रान्त में अपितु सारे भारत में गुरुकुल एक बिल-कुल मौलिक और कुतूहलपूर्ण परीक्षण है। मैं यहाँ आकर उन लोगों से भी मिला जिन्हें सरकारी रिपोर्टों में रहस्यमय और खतरनाक बतलाया गया था। परन्तु मैंने उन लोगो को आदर्श और स्वार्थ-त्याग की भावना से कार्य करते पाया। मेरी सम्मति में गुरुकुल एक आदर्श विश्वविद्यालय का नमूना है।" सर जेम्स मेस्टन इसके पश्चात् भी एक बार गुरुकुल गए। १९१६ में वह तब गए जब स्वय भारत के वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने गुरुकुल देखने की इच्छा प्रकट की। लार्ड चेम्सफोर्ड की गुरुकुल यात्रा ने आर्यसमाज और सरकार के विरोधपूर्ण परिच्छेद को समाप्त कर दिया। उसके पश्चात् समूह रूप से आर्यसमाज पर कभी राजद्रोह का आरोप नहीं लगाया गया।

इस प्रसंग को समाप्त करने से पूर्व हम मि० रैम्जे मैकडानल्ड के एक लेख का उद्धरण देना उपयुक्त समझते है। मि० रैम्जे मैकडानल्ड १९१४ में भारतवर्ष आए थे। इस समय वे इंग्लैण्ड की मजदूर पार्टी के नेता थे। कुछ वर्ष पीछे वे इंग्लैण्ड के पहले मजदूर प्रधान मंत्री बने। आप गुरुकुल मे स्वय आए और सब कुछ देखा। आपने 'डेली क्रानिकल' मे लिखा था, "भारत के राजद्रोह के सम्बन्ध में जिन्होंने कुछ थोड़ा सा भी पढ़ा है, उन्होंने गुरुकुल का नाम अवश्य सुना होगा, जहाँ कि आर्यसमाजियो के बालक शिक्षा ग्रहण करते हैं। आर्यों की भावना और सिद्धान्तों का यह अत्यन्त उत्कृष्ट मूर्त रूप है। इस उन्नतिशील धार्मिक संस्था आर्यसमाज के विषय में जितने भी सन्देह किए जाते है, वे सब इस गुरुकुल पर लाद दिए गए हैं। इसीलिए इस पर तिरछी नजर है, पुलिस अफसरों ने इसके सम्बन्ध में गुप्त रिपोर्टें की हैं और अधिकांश ऐंग्लो-इण्डियन लोगों ने इस की निन्दा की है।" सरकार की तिरछी नजर के कारणों की मीमांसा करते हुए उस लेख में गुरुकुल का बहुत ही सुन्दर चित्र अंकित किया गया है। उसमे लिखा गया है : "सरकारी लोगो के लिए गुरुकुल एक पहेली है। अध्यापको में एक भी अंग्रेज नहीं है। अंग्रेजी साहित्य की पढ़ाई और उच्च शिक्षा के लिए पंजाब यनिवर्सिटी द्वारा नियुक्त पुस्तकें भी यहाँ काम में नहीं लाई जाती, सरकारी विश्वविद्यालय की परीक्षा के लिए यहाँ से किसी भी विद्यार्थी को नहीं भेजा जाता और विद्यार्थियो को विद्यालय से अपनी ही उपाधियाँ दी जाती है। सचमुच यह सरकार की अवज्ञा है। घबराए हुए सरकारी अधिकारी के मुंह से इसके लिए पहली बात यही निकलेगी कि यह स्पष्ट ही राजद्रोह है। परन्तु गुरुकुल के विषय में यह अंतिम राय नहीं हो सकती। सन् १८३५ के प्रसिद्ध लेख में भारत की शिक्षा के सम्बन्ध में मैकाले के सम्मति प्रकट करने के बाद भारत के शिक्षा के क्षेत्र में यह पहला ही प्रशस्त यत्न किया गया है। उस लेख के परिणामो से प्रायः सभी भारतवासी असन्तुष्ट है, किन्तु जहाँ तक मुझे मालूम है, गुरुकुल के संस्थापकों के सिवा किसी और ने असंतोष को कार्य में परिणत करते हुए शिक्षा के क्षेत्र मे नया परीक्षण नहीं किया है।" लेख के अन्त मे उन्होंने लिखा था, "मै स्वप्न में किसी को यह कहते हुए सुन रहा हूं—हम केवल यह चाहते है कि शान्ति से हमें ईश्वर का भजन करने दो।"

आठवाँ अध्याय

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा की स्थापना

१८७५ में बम्बई में पहले आर्यसमाज की स्थापना के समय जो नियम बनाये गए थे, उसकी तीसरी धारा यह थी :--

"इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और अन्य समाज शाखा-प्रशाखा होंगे।"

इस धारा से यह स्पष्ट विदित होता है कि महर्षि के मन में आर्यसमाज के एक व्यापक संगठन बनाने की निश्चित धारणा थी। महर्षि के देहावसान के पश्चात १८८४ ई० में देश भर के आर्यसमाजों को पत्र लिख कर यह प्रेरणा की गई थी कि सम्पूर्ण देश का एक प्रधान समाज बनाया जाय। न्यायमूर्ति श्रीयुत गोविन्द रानाडे ने परोपकारिणी सभा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया था कि देश भर के आर्यसमाजो के प्रतिनिधियो की एक सभा बनाई जाय और भविष्य में परोपकारिणी के स्थान रिक्त होने पर न्यून से न्यून आधे प्रतिनिधि केन्द्रीय सभा के हुआ करें। इस प्रकार देश भर की केन्द्रीय प्रतिनिधि सभा बनाने का विचार चर्चा के रूप में आर्यसमाज के सामने प्रारम्भ से ही विद्यमान रहा। उस चर्चा को सन् १९०० में स्थूल रूप मिला जब भारत धर्म महामण्डल के उत्सव पर दिल्ली में एकत्र हुए आर्य पुरुषों में कई दिनो तक इस प्रस्ताव पर परामर्श होता रहा कि अब यथासम्भव शीघ्र देश भर के प्रतिनिधियो की सभा बननी चाहिए। अन्त में प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और कार्य-रूप मे परिणत करने के लिए निम्नलिखित सज्जनों की अनौपचारिक समिति बनाई गई :--

१.	पं० भगवानदीन जी	(लखीमपुर)
२.	श्री मुंशीराम जी	(जालन्धर)
३.	पं० वन्शीधर जी शर्मा	(अजमेर)
४.	पं० काशीराम तिवारी	(मध्य प्रदेश)
५.	मु० नारायणप्रसाद जी	(मुरादाबाद)
६.	ला० रामकृष्ण जी वकील	(जालन्धर)

इस समिति के कई अधिवेशन हुए, उनमें नियमों पर विचार होता रहा। ड्राफ्ट बने और रद्द हुए। अन्त में १९०८ के मार्च महीने मे गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर समिति का निश्चायक अधिवेशन हुआ। उस अधिवेशन में आगरे के

बा० श्रीराम जी भी भाग लेते रहे। उसमें सभा की रूप-रेखा तैयार करने के लिए लगभग एक समिति बन गई और निश्चय हुआ कि समिति का अगला अधिवेशन आगरे में किया जाय जिस में केन्द्रीय सभा की स्थापना का अन्तिम निर्णय किया जाय। तदनुसार २५ सितम्बर १९०८ को आगरा में समिति के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक महानुभाव सम्मिलित हुए। उपस्थिति निम्न-लिखित थी :—

१. पं० भगवानदीन जी, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त।
२. लाला रामकृष्ण जी, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब।
३. कुंवर हुकमसिंह जी, उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश।
४. पं० काशीराम जी तिवारी, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्य-प्रदेश।
५. बाबू मिथिलाशरण सिंह जी, मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, बंगाल तथा बिहार।
६ महात्मा मुंशीराम जी, मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

इनके अतिरिक्त ६ अन्य प्रतिष्ठित आर्य महानुभाव समिति के अधिवेशन में सम्मिलित थे। समिति में निम्नलिखित निश्चय किये गये :—

१. सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि आर्यावर्तीय सार्वदेशिक सभा स्थापित की जावे।
२. आर्यावर्तीय सार्वदेशिक सभा के नियमों का ड्राफ्ट श्री पं० वंशीधर जी शर्मा एम० ए० के संशोधन सहित पढ़ा गया और बहुपक्षानुसार स्वीकृत हुआ।
३. सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि एक उपसमिति, निम्न महाशयों की बनाई जावे कि वे नियमों को मुद्रित कराके समस्त प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं में भेजें, इस आशय से कि वे अपने-अपने प्रतिनिधि, अगामी माघ मासांत पर्यन्त निर्वाचन करके भेज देवें।

   १. श्री पं० भगवानदीन जी
   २. श्री कुंवर हुक्मसिंह जी
   ३. श्री डा० सुखदेव जी, भरतपुर

   डा० सुखदेव जी इस उपसमिति के मन्त्री नियत हुए।
४. यह भी निश्चय हुआ कि उपर्युक्त रीति से संगठित सार्वदेशिक सभा का प्रथम अधिवेशन दिल्ली में बुलाया जावे।

इस प्रकार अनौपचारिक समिति ने अपना कार्य पूरा कर दिया। नियमानुसार सार्वदेशिक सभा का पहला अधिवेशन ३१ अगस्त, १९०९ को देहली

में हुआ। सभा के लिए प्रान्तों से २७ प्रतिनिधि चुने गय। उनका विवरण निम्नलिखित है :—

१.	आर्य	प्रतिनिधि	सभा	पंजाब,	७
२.	,,	,,	,,	सयुक्त प्रान्त	७
३.	,,	,,	,,	राजस्थान	४
४.	,,	,,	,,	बंगाल-बिहार	४
५.	,,	,,	,,	मध्य प्रदेश तथा विदर्भ	३
६.	,,	,,	,,	बम्बई	२

सभा के प्रधान पं० भगवानदीन जी थे। सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा के २७ वें वार्षिक विवरण में लिखा है कि "इस सभा मे शरीक होने के लिए प० भगवानदीन जी ने पंजाब की प्रादेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा (कालिज-विभाग) को भी निमन्त्रण दिया था कि वे भी अपने प्रतिनिधि भेजे। उनके प्रतिनिधि देहली आ भी चुके थे परन्तु आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रतिनिधियों ने आग्रह किया कि यदि वे इस सभा (सार्वदेशिक सभा) में सम्मिलित किए जायेंगे तो आर्यप्रतिनिधि सभा पजाब के प्रतिनिधि शरीक न होंगे। प्रादेशिक सभा के प्रतिनिधि सदस्यों ने यह स्थिति देखकर स्वयमेव सभा मे शरीक होने से इन्कार कर दिया।" सभा के सबसे पहले प्रधान पं० वंशीधर शर्मा एम० ए०, एल एल० बी० चुने गए जो एक वर्ष तक प्रधान रहे। दूसरे वर्ष महात्मा मुन्शीराम जी प्रधान चुने गए जो सात वर्ष तक प्रधान रहे। पहले मन्त्री पं० भगवानदीन जी निर्वाचित हुए। उनके पश्चात् आठ वर्ष तक महाशय नारायणप्रसाद जी (महात्मा नारायण स्वामी जी) मन्त्री चुने गए।

इस प्रकार सभा की स्थापना १९०८ में हुई और २५ अगस्त १९१४ को १८६० ई० के एक्ट संख्या ३१ के अनुसार उसकी रजिस्ट्री हुई। प्रारम्भ में सार्वदेशिक सभा में प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओ के प्रतिनिधियों के सम्मिलित होने का ही नियम रक्खा गया था, पश्चात् नियमों में परिवर्तन करके निम्नलिखित पाँच प्रकार के सदस्यों की व्यवस्था की गई :—

१. प्रत्येक सम्बद्ध आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधियों में से ५ प्रतिशत प्रतिनिधि (परन्तु अधिक से अधिक ७ और कम से कम २)
२. ५० से अधिक आर्यसभासदों वाले आर्यसमाजों अथवा २५० सभासदों से अधिक सभासदों वाले आर्यसमाज-समुदायों का एक-एक प्रतिनिधि।
३. ५००) दान देने वाले आर्यसभासद् आजीवन सदस्य होंगे।
४. १००)-१००) देने वाले १० आर्यसभासदो का एक प्रतिनिधि।
५. साधारण सभा से स्वीकृत प्रतिष्ठित सभासद्।

प्रान्तीय सभाओं की स्थापना

इस युग में (१९०१-१९१६ में) दो नई प्रान्तीय सभाओं की स्थापना हुई। बम्बई में प्रान्तीय सभा का संगठन ३० दिसम्बर १९०२ मे और आर्यप्रतिनिधि सभा मध्य-प्रदेश व विदर्भ की विधिपूर्वक स्थापना २९ मार्च १९०७ मे हुई।

नवा अध्याय

विदेशों में धर्म-प्रचार

महर्षि दयानन्द के मन में निरन्तर यह इच्छा रही कि देश-देशान्तरों में वैदिक धर्म का प्रचार किया जाय। जब श्रीयुत श्याम जी कृष्ण वर्मा विलायत गए तब उन से पत्र-व्यवहार में यह विचार स्पष्ट रूप में प्रकट होता रहा। श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा तो विलायत जाकर राजनीति के कार्य की ओर झुक गए परन्तु महर्षि की भावना अन्य हृदयों में जागृत रही। इस इतिहास के पहले भाग में हम लंदन में आर्यसमाज की स्थापना और उसके कार्यों की चर्चा कर आए है। उस आर्यसमाज की स्थापना लाला लक्ष्मीनारायण जी नाम के एक आर्यसज्जन के प्रयत्न से हुई थी। उसके पश्चात् भारत से बाहर आर्यसमाज के प्रचार की जो प्रगति रही, उसका संक्षिप्त विवरण हम सार्वदेशिक आर्य-डायरेक्टरी से उद्धृत करते हैं

"लंदन में भारतीयों की संख्या केवल छात्रों की होती थी। इधर अफ्रीका आदि ब्रिटिश उपनिवेशों में पहले-पहल जो भारतीय गए वे कुली बन कर गए। उपनिवेशों में जाकर उन्होंने न केवल अपने धर्म-कर्म ही छोड़ दिए अपितु अपने जातीय अभिमान को भी भूल गए और अपने त्यौहारों तक को वे भूल गए। भक्ष्याभक्ष्य की तो कोई चिन्ता ही उन्हें नहीं थी, विवाह की मर्यादा भी बिगड़ चुकी थी। मरने पर शव का संस्कार तक भूल कर उसे ईसाई-मुसलमानों की तरह गाड़ने लग गए थे। वहाँ वे "कुली" पुकारे जाते थे। इनकी सन्तान वहीं के ईसाइयों के सम्पर्क में आ ईसा को लक्ष्य बना चुकी थी। वे अपने ही पूर्वज इन कुलियों के घृणित जीवन से ऊब कर ईसाई बन रहे थे। इसी समय ऋषि दयानन्द का संदेश वहाँ पहुंचा।

"भारत में आर्यसमाज के प्रचार के पश्चात् जो भारतीय विदेश गए, कोई-कोई आर्यसमाजी भी थे। ऋषि के इन्हीं अनुयायियों ने अपना कर्तव्य वहाँ भी पालन किया। सन् १८९६ ई० में मौरीशस में प्रथम नम्बर बंगाल पैदल सेना गई। इसके कुछ आर्यसमाजी सूबेदारों ने सत्यार्थप्रकाश की प्रतियाँ बाँटी और यहीं से आर्यसमाज के विचारों ने भारतीयों में प्रवेश किया। ब्रिटिश पूर्वी-अफ्रीका में जो भारतीय गए थे, वे प्रायः शिक्षित थे, और सरकारी अथवा रेलवे नौकरियों पर अधिष्ठित थे। इनमें आर्यसमाजी युवक भी थे। सन् १९०३ में ऐसे ही उत्साही युवकों के उद्योग से केनिया प्रान्त के नैरोबी नगर में आर्यसमाज की स्थापना हुई।

प्रचारक

"पहले-पहल सन् १९०४ ई० में पंडित पूर्णानन्द जी नैरोबी गए। सन् १९०५

में भाइ परमानन्द जी एम० ए० (आजकल एम० एल० ए०) २७ वर्ष की आयु में दक्षिण-अफ्रीका के "दर्बन" स्थान पर पधारे। आप एक सच्चरित्र दृढ़निश्चयी नवयुवक थे। धर्म-प्रचार के प्रति आपका उत्साह अपूर्व था। आपने यहाँ "हिन्दू सुधार सभा" स्थापित की। स्मरण रहे कि इन उपनिवेशों के हिन्दू (आर्य) यहाँ अभी आर्यसमाज या किसी और समाज के महत्व को नहीं समझ राकते थे। उन्हें सुधार के नाम पर ही इधर लाया गया। इसके पश्चात् सन् १९०९ से लेकर स्वामी शंकरानन्द जी ने इन उपनिवेशो में खूब जोर का प्रचार किया। स्वामी भवानीदयाल जी का जन्म दक्षिण अफ्रीका में ही हुआ था। इन्होंने पहले हिन्दी प्रचार को अपनाया और 'आर्य हिन्दी आश्रम' की स्थापना की। वैदिक संस्कार और शुद्धि का भी आपने प्रचार किया।

"इस प्रकार धीरे-धीरे आर्य-संस्थाओं और स्वतन्त्र उपदेशकों का ध्यान विदेशों की ओर आकर्षित हुआ। कई संस्थाओं ने अपने लिए धन एकत्र करने के निमित्त उपदेशक भेजे। इन्हें भी वहाँ अच्छी सफलता मिली। मौरिशस में डा० माणिकलाल बेरिस्टर और डा० चिरंजीव भारद्वाज व उनकी पत्नी ने वही के निवासी बन कर बहुत ठोस काम किया। इसी वर्ष जून में 'मौरिशस पत्रिका' भी प्रकाशित हुई। यह बात सन् १९११ की है। इस के पश्चात् सन् १९१६ ई० में स्वामी भवानीदयाल जी ने दक्षिण अफ्रीका से 'धर्मवीर' प्रकाशित किया। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी (कार्यकर्ता सार्वदेशिक सभा) ने इन्ही दिनों इस उपनिवेश में सफल प्रचार यात्रा की। आपने वहां आर्य भाषा के प्रचार पर बल दिया। विवाहों की रजिस्ट्री के लिए जन्म से अब्राह्मण आर्यसमाजियों को रजिस्टर किये जाने का आंदोलन हुआ। नेत्र कष्ट के कारण आप देर तक विदेश में न रह सके।

डा० चिरजीव भारद्वाज

"प्रचार के साथ-साथ पाठशालाएं भी इन उपनिवेशों में स्थापित होती गयीं। फिजी के सामाबूला में एक आर्य कन्या महा विद्यालय भी है और इसी उपनिवेश में सन् १९२९ ई० से एक गुरुकुल भी सफलतापूर्वक चल रहा है। कन्या महाविद्यालय की सफलता का श्रेय पं० अमीचन्द विद्यालंकार को है और गुरुकुल की सफलता श्री गोपेन्द्र नारायण के उद्योग से है।"

पं० पूर्णानन्द जी की चर्चा पहले भाग में भी आ चुकी है। पहले आप संन्यासी थे। छोटी अवस्था में ही संन्यास ले लिया था। संस्कृत के विद्वान् और अच्छे वक्ता थे। प्रचार के कार्य में प्रारम्भ से ही उन्हें सफलता मिलने लगी थी। कुछ समय के पश्चात् उनको अनुभव हुआ कि यौवनावस्था में ही संन्यास लेना सामान्य दशा मे उचित नहीं है। "आश्रमानुक्रमः पूर्वैः स्मर्यते न व्यतिक्रमः" सर्व साधारण के लिए

यही नियम उचित है कि युवावस्था में गृहस्थ बने और वृद्धावस्था में संन्यास ले। मन में यह विचार उत्पन्न होने पर उन्होंने साहस से काम लिया और भगवां बाना उतार कर विवाह कर लिया। पंडित जी ने चिरकाल तक आर्यसमाज की बहुमूल्य सेवा की। आप शास्त्रार्थ-युद्ध के महारथी माने जाते थे। आप ऊंचे स्वर और प्रत्युत्पन्न मति के कारण विरोधी पंडितों पर अनायास ही हावी हो जाते थे। विदेश में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करने वालों में समय की दृष्टि से आपका नाम पहला है।

सन् १९०५ ई० मे भाई परमानन्द एम० ए० ने दक्षिण अफ्रीका की प्रचार यात्रा की। भाई जी की आयु उस समय २७ वर्ष की थी। आपका सम्बन्ध पंजाब के कालिज-दल के आर्यसमाज से था। आपकी प्रवृत्ति में उस समय से ही अपने अभिमत सिद्धान्तो के लिए असाधारण जोश, आदर्श की पूर्ति के लिए त्याग का भाव और अपने भावों को कार्य में परिणत करने का साहस आदि वे सब गुण विद्यमान थे, जिन्होंने उन्हे एक दिन हिन्दू जाति के सर्वसम्मत नेता के रूप में परिणत कर दिया था। आपने दक्षिण-अफ्रीका जाकर वहाँ के निवासियों मे अपनी संस्कृति और धर्म के लिए श्रद्धा के भाव उत्पन्न करके एक नया जीवन डाल दिया।

भाई परमानन्द जी
(जेल में)

स्वामी शंकरानन्द जी चिरकाल तक उपनिवेशों में घूमकर प्रचार का कार्य करते रहे। उन्हें प्रायः "पोलिटिकल-संन्यासी" कहा जाता था। वे केवल धर्म-प्रचारक ही नही थे, उपनिवेशों के नैतिक मामलों में भी दखल रखते थे। वे मुख्य रूप से हिन्दुत्व के उपासक थे। वे अच्छे विद्वान् और सुवक्ता थे।

डा० चिरंजीव भारद्वाज की चर्चा इस इतिहास के कई प्रकरणो मे आ चुकी है। डाक्टर जी की सबसे विशेषता यह थी कि वे जिस सिद्धांत को मानते थे उसके युक्ति-संगत परिणामो को कार्यरूप मे परिणत करने से नही घबराते थे। चिकित्सा की ऊंची शिक्षा ग्रहण करने के लिए इंग्लैण्ड जाने से पूर्व ही डाक्टर जी ने आर्य-भ्रातृ-सभा बनाकर नवयुवको में समाज-सुधार का जोश भरने का उपक्रम कर दिया था। इंग्लैंड में रहते हुए उन्होंने पढ़ने के साथ-साथ सत्यार्थप्रकाश का अंग्रेजी में अनुवाद करना भी आरम्भ कर दिया था। कई समुल्लासो का अनुवाद वहीं कर लिया था, शेष समुल्लासो का अनुवाद भारत में वापस आकर आचार्य रामदेव जी की सहायता से पूरा किया। इंग्लैण्ड मे वे भारतीय नवयुवकों में धर्म की भावनायें भरने का प्रयत्न बराबर करते रहते थे। १९०४ ई० मे विलायत से भारत लौटकर आप पहले लाहौर आर्यसमाज के प्रधान निर्वाचित हुए और कुछ ही वर्ष बाद १९०८ ई० में आर्यप्रतिनिधि सभा के मन्त्री चुने गए। जब आपको विदित हुआ कि गुरुकुल कांगड़ी में एक योग्य डाक्टर की आवश्यकता है तो आप डाक्टरी की कमाई छोड़कर गुरुकुल

चले गए और त्यागभाव से काम करने लगे। १९१० मे डाक्टर भारद्वाज बर्मा गए और १९०२ में वैदिक-धर्म के प्रचार की धुन में मौरिशस द्वीप की यात्रा की। वहाँ आपकी प्रेक्टिस खूब चमकी। साथ ही धर्म-सेवा का काम भी होता रहा। मौरिशस मे आर्यसमाजों की संख्या ४५ तक पहुंच गयी और उनकी प्रतिनिधि-सभा भी स्थापित हो गयी। आपकी प्रेरणा से सभा की ओर से प्रचार के लिए हिन्दी में 'आर्य-पत्रिका' का प्रकाशन आरम्भ किया गया।

डा० भारद्वाज एक जलते हुए दीपक के समान थे। विश्वास मे दृढ़ और व्यवहार में सच्चे थे। जो धुन सवार हो जाती थी, उसकी पूर्ति मे मनसा, वाचा, कर्मणा लग जाते थे। अष्टाध्यायी मे भक्ति हुई, तो प्रातःकाल उठकर कई-कई अध्यायों का पाठ करने लगे। प्रचार का उत्साह उत्पन्न हुआ तो कमाई की चिन्ता छोड़कर फकीर बन गए। आपके समाज-सुधार के जोश ने तो कुछ समय तक लाहौर के आर्यजनों में तहलका सा मचा दिया था। ऐसी तीव्रता से जलने वाले दीपक चिरकाल तक नही जलते। आपका यौवनावस्था (१९१६) मे ही देहान्त हो गया।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी आर्यसमाज के कर्मठ संन्यासी थे। आपके मौरिशस जाने पर आर्यसमाज के कार्य को काफी बढ़ावा मिला था। परन्तु आँखो के कष्ट के कारण आपको शीघ्र ही वापस आना पडा। आर्यसमाज के कार्य-क्षेत्र में बड़ी आयु हो जाने पर भी आप अनुभवी महारथी के समान बडे उत्साह से वृद्धावस्था तक डटे रहे।
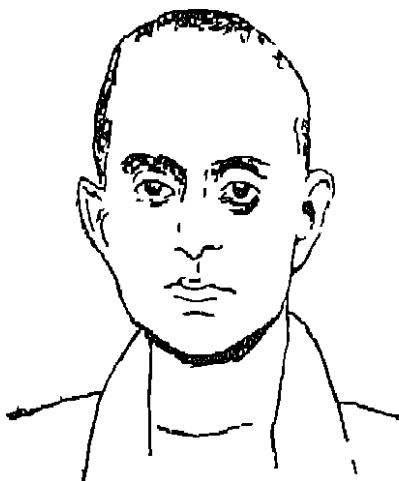
स्वामी भवानीदयाल जी

स्वामी भवानीदयाल जी का जन्म ही दक्षिण-अफ्रीका में हुआ था। अपने जन्म-देश में आप न केवल आर्यसमाज के अपितु भारतीय समाज के नैतिक नेता भी माने जाते थे। लेख और वाणी द्वारा श्री भवानीदयाल जी ने प्रवासी भाइयों की जो बहुमूल्य सेवा की उसके कारण देश में भी उनका बहुत सम्मान हुआ। आप विचारो में कट्टर आर्यसमाजी थे परन्तु आप की कट्टरता मे अद्भुत सुन्दरता थी। आप जैसे पक्के आर्यसमाजी थे वैसे ही पक्के राष्ट्रवादी भी थे। जीवन के अंतिम वर्षो मे आप भारत लौट आए थे और सन्यास लेकर अजमेर मे रहने लगे, जहाँ उन्होंने एक विशाल "प्रवासी-भवन" और 'आदर्शनगर' की स्थापना की थी।

उपनिवेशो में आर्यसमाज का कार्य निरन्तर बढ़ता ही रहा। उसका पूरा विवरण इस इतिहास में यथास्थान आता रहेगा।

दसवां अध्याय

प्रचार और प्रचारक

उस समय आर्यसमाज यौवन में प्रवेश कर रहा था। उसका संगठन विस्तृत हो रहा था और आर्यसमाज के कार्य की पुष्टि के उद्देश्य से अनेक संस्थाएं स्थापित हो रही थीं। पहले से जो आर्य प्रतिनिधि सभाएं कार्य कर रही थीं, उनकी शक्ति में वृद्धि हो रही थी। इन सब कारणों का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि जहाँ आर्यसमाज के प्रचार का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया वहाँ धन-शक्ति और जन-शक्ति में सापेक्ष उन्नति होने के कारण गहराई भी बढ़ गई। नये-नये समाज स्थापित हो गए और पुराने समाजों के सभासदों की संख्या में वृद्धि होने लगी।

विदेशों में प्रचार का वृत्तान्त हम नवें अध्याय में दे आए हैं। वह आर्यसमाज की बढ़ती हुई प्रचार-शक्ति का ही परिणाम था। प्रचार का विस्तार और प्रकार बहुत कुछ प्रचारकों की योग्यता और संख्या पर निर्भर रहता है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, प्रचारकों की संख्या और योग्यता दोनों में वृद्धि होती गई। प्रचारक दो प्रकार के थे---एक अवैतनिक और दूसरे वैतनिक। समय की गति के साथ अवैतनिक वक्ताओं और लेखकों की संख्या का बढ़ना स्वाभाविक ही था। बहुत से पुराने अवैतनिक वक्ता और प्रचारक अनुभव और स्वाध्याय की सहायता से मानो मंज कर चमक उठे और बहुत से नए सन्यासी और विद्वान् प्रचार-क्षेत्र में उतर आए। पुराने स्वामी-संन्यासियों में से स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, स्वामी नित्यानन्द जी आदि का कार्य-क्षेत्र प्रान्तों से आगे बढ़ कर सार्वदेशिक हो गया था। उन्होंने वाणी द्वारा प्रचार के साथ-साथ वेदसम्बन्धी अनुसन्धान और वेद-भाष्य का आयोजन भी आरम्भ कर दिया था। नए संन्यासियों में स्वामी दर्शनानन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनका पं० कृपाराम जी के रूप में परिचय दिया जा चुका है। १९०० ई० में आपने सन्यास ले लिया। उसके पश्चात् तो आर्यसमाज के काम की धूम मचा दी। स्वामी जी की तर्क-शक्ति बहुत प्रबल थी। शास्त्रार्थों में प्रतिपक्षी को निग्रह स्थान में ले जाना उनके बाँए हाथ का खेल था। प्रचार की ऐसी धुन थी कि अपने शरीर की कोई चिन्ता नहीं करते थे। सब काम ईश्वर के भरोसे पर ही कर डालते थे। स्वामी जी की प्रेरणा से जिन गुरुकुल आदि संस्थाओं की स्थापना हुई, उनकी गिनती शायद दर्जन से अधिक है। आपने लेख द्वारा वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि का कार्य भी अन्त तक जारी रखा। आपके लिखे ट्रैक्टों की संख्या ३०० के लगभग है। आप अनथक लेखक और जोरदार वक्ता थे। देश का कोई प्रान्त नहीं था, जिसमें आपका सिंह-गर्जन सुनाई न दिया हो। १९१३ में आपका देहान्त हो गया।

इस काल के सार्वदेशिक ख्याति प्राप्त करने वाले सन्यासी प्रचारकों में से मधुर भाषी स्वामी सत्यानन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आर्यसमाज मे प्रवेश से पहले वह जैन गुरु थे। युवा होते हुए भी अपने ऊंचे चरित्र और भाषण-शक्ति के कारण वे जैनियो मे पूज्य माने जाते थे। ईश्वर में आन्तरिक विश्वास उन्हे आर्यसमाज में खींच लाया। उन्होंने १८९९ मे वैदिक धर्म की दीक्षा ली। आपका जीवन साधना की सान पर चढ़ कर पहले ही चमक उठा था। आर्यसमाज मे आकर आपने अध्ययन द्वारा उसे और भी अधिक परिमार्जित किया। कई वर्षों तक आप वेदादि धर्म ग्रंथों तथा रामायण, महाभारत आदि ऐतिहासिक ग्रंथों का पारायण करते रहे। हर प्रकार से सन्नद्ध होकर जब आपने आर्यसमाज की वेदी पर से कथाओं द्वारा धर्म का सन्देश सुनाना आरम्भ किया तो आपको असाधारण सफलता मिली। गौर वर्ण, भव्य चेहरा उत्तम स्वास्थ्य, मधुर वाणी और मनोरंजक व्याख्यान-शैली के सम्मिलित प्रभाव से आर्य और अन्य विचारो के नर-नारी भी आपकी कथाओ मे बहुत बड़ी संख्या मे उपस्थित होने लगे। आप प्रायः सप्ताह भर और कभी-कभी तो एक-एक मास तक उपनिषद्, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता आदि की कथाएं किया करते थे।

स्वामी सत्यानन्द जी

स्वामी सर्वदानन्द जी ने भी इसी काल में व्याख्यान रूपी शंख-ध्वनि से आर्य-जनता को जगाना आरम्भ किया था। स्वामी जी जन्म के पंजाबी थे परन्तु उनके कार्य का विस्तार इतना बडा हो गया था कि उन्हें अखिल भारतीय प्रचारक ही कहना चाहिए। उनकी भाषा मे हल्का सा पजाबीपन अन्त तक रहा, इस कारण कुछ लोग इस परिणाम पर पहुंच जाते थे कि उनका जन्म पजाब मे हुआ होगा। अन्यथा उत्तर-प्रदेश, राजपूताना, बिहार, बंगाल आदि सभी प्रान्त उन्हे विशेष रूप से अपना समझते थे। स्वामी जी की भाषण-शक्ति बहुत अद्भुत थी। भाषा के शब्द अत्यन्त सरल होते थे परन्तु आपकी कथन-प्रणाली इतनी ओजस्विनी थी कि एक-एक बात श्रोताओं के दिलों में गड़ती चली जाती थी। आप मे एक बड़ा गुण यह था कि आप श्रोताओं को कड़वा लगने वाला सत्य कहने मे भी नही घबराते थे। आपका प्रत्येक व्याख्यान चेतावनी का रूप लिये होता था। श्री स्वामी जी का जन्म पंजाब के होशियारपुर नगर के समीपवर्ती बड़ी बसी नाम के उपनगर के प्रसिद्ध एक वैद्यों और विद्वानों के कुल मे स० १९१६ में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने यहां से बारह कोस पर हरियाना उपनगर में हुई थी। आरम्भ मे ही आपके अन्दर धार्मिक रुचि और साधुओ के सत्संग मे प्रीति पायी जाती थी। इसी कारण जब गृहस्थ हो जाने के कुछ समय पीछे आपकी गृहिणी का देहान्त हो गया, तो आप घर से निकल कर विरक्त अवस्था मे विचरने लग गए। सं० १९५३ के लगभग श्री स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश के पाठ द्वारा आपमे लोक-सेवा का तीव्र भाव जाग उठा। तभी से स्थिरमति होकर

सद्-विचार और निष्काम-कर्म के सुन्दर समन्वित मार्ग को धारण किया, और सं० १९९९ में निर्वाण पद की प्राप्ति तक, अर्थात् ४६ वर्ष बराबर उसे निबाहा।

इस समय के अन्य संन्यासी प्रचारकों में से स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द जी ने बम्बई में, स्वामी अनुभवानन्द जी ने उत्तर प्रदेश में और स्वामी मुनीश्वरानन्द जी ने बिहार में वैदिक धर्म के प्रचार का स्मरणीय कार्य किया। स्वामी ओंकारसच्चिदानन्द जी यों तो आर्यसमाज के सत्संगों और उत्सवों में प्राय: भाषण देते रहते थे परन्तु उनका विशेष कार्य बंबई की चौपाटी पर ही होता था। चौपाटी की रेती में वह लगभग प्रति-दिन उपदेश करते थे, उनकी भाषण-प्रणाली बहुत लोकप्रिय थी। शब्दों के नए-नए अर्थ करने मे आप विशेष रूप से कुशल थे।

स्वामी अनुभवानन्द जी अच्छे वक्ता, लेखक और विद्वान् भी थे। आपकी लिखी और संपादित हुई अनेक पुस्तकों का आर्यसमाज में विशेष आदर हुआ। स्वामी मुनी-श्वरानन्द जी जोरदार वक्ता थे। वे फावड़े को फावड़ा कहने की शैली के मानने वाले थे। त्यागी और हृदय के सच्चे थे इस कारण सर्वसाधारण जनता पर उनका बहुत प्रभाव पड़ता था।

स्वामी अच्युतानन्द जी आर्यसमाज में आने से पूर्व एक सनातन मठ के समृद्धिशाली मठाधीश थे। आपके आर्यसमाज मे आने का हिन्दू-जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। आप वृद्धावस्था तक देश मे घूम-घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे।

संन्यासियों के अतिरिक्त, सार्वदेशिक ख्याति रखने वाले वक्ताओं में से पं० गण-पति शर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शर्मा जी की चर्चा पहले भाग में हो चुकी है। आपका जन्म बीकानेर राज्य के प्रसिद्ध शहर चूरू में हुआ था। आप संस्कृत के उद्भट विद्वान् और वाग्मी थे। उनके व्याख्यानों के विषय प्राय: ईश्वर-भक्ति, वेदों की अपौरुषेयता आदि हुआ करते थे। ऐसे गभीर विषयों की सरल और विशद व्याख्या सुन कर श्रोता मुग्ध हो जाते थे। इनका पहनावा और रहन-सहन अत्यन्त सरल था। इनको दर्शन कण्ठ थे और प्रातःकाल उनका नित्य पाठ किया करते थे। पंडित जी की भाषण-कला दुधारी तलवार की तरह थी। वे जहाँ ईश्वर-भक्ति पर मधुर उपदेश देकर श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध कर देते थे वहाँ साथ ही शास्त्रार्थ के समय विरोधी की बोलती बन्द करने में भी अद्वितीय थे। सनातनधर्मी पंडित हो या ईसाई पादरी, जो सामने आता था, उससे शास्त्रार्थ में भिड़ जाते थे और युक्तिबल से अपना सिक्का जमा लेते थे। आपने दिल्ली दरबार में पं० शिवकुमार शास्त्री जी को शास्त्रार्थ के लिए चैलेंज दिया था। काश्मीर के महाराज ने उनकी संस्कृत-वक्तृता पर मुग्ध होकर उनका विशेष सम्मान किया था। १९१२ में आपका देहान्त हो गया। राजस्थान की आर्य प्रतिनिधि सभा ने तथा अन्य आर्य संस्थाओं ने उनके परिवार की आर्थिक सहायता करके अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध वक्ता तथा नेता पं० तुलसीराम स्वामी की चर्चा

भी पहले भाग में आ चुकी है। आपने आर्यसमाज की अनेक प्रकार से सेवा की। सामवेद, मनुस्मृति, दर्शन आदि ग्रंथों के हिन्दी मे अनुवाद किए, सिद्धान्तविषयक कई ग्रंथ लिखे और सैकड़ो व्याख्यान और शास्त्रार्थ किए। आपका मासिक-पत्र 'वेद प्रकाश' अपने समय में आर्यसमाज का प्रबल योद्धा समझा जाता था। विशेषतः सनातनधर्मियों के आक्षेपों का उत्तर देने में वेदप्रकाश बहुत चुस्त था। सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र मुरादाबादी ने जो 'दयानन्द तिमिर भास्कर' लिखा उसका महत्त्वपूर्ण उत्तर तुलसीराम स्वामी जी ने 'भास्कर प्रकाश' मे दिया था। यह पुस्तक आज भी शङ्का-समाधान का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। १९०९ में आप आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के प्रधान चुने गए और ३ वर्ष तक प्रधान पद पर कार्य करते रहे। न केवल संयुक्त प्रान्त में अपितु सारे देश मे आपने आर्यसमाज की जो सेवा की, वह बहुमूल्य थी। आप प्रबन्ध और प्रचार दोनो मे कुशल थे। १९१५ में आपका देहान्त हो गया।

उस समय के विद्वान् प्रचारकों में बम्बई के पं० बालकृष्ण शर्मा का स्थान भी बहुत ऊंचा था। प० बालकृष्ण शर्मा जी उद्भट विद्वान् और प्रभावशाली व्याख्याता थे। आपका स्वभाव बहुत सौम्य था। वे संस्कृत और मराठी के विद्वान् थे। मथुरा शताब्दी पर जो विद्वत्सभा हुई उसके वे सभापति चुने गए थे। राजाराम कालेज कोल्हापुर मे धर्म विषय के महोपाध्याय भी रहे।

गुरुकुल कागड़ी के प्रसंग में हम प्रो० रामदेव जी की चर्चा कर आए हैं। प्रो० रामदेव जी में वे सब गुण थे जो एक मिशनरी में होने चाहिएं। आपके जो मन्तव्य थे, उन पर आप फौलाद की तरह दृढ़ थे और उनकी पुष्टि के लिए दिमाग़ और वाणी की सारी शक्ति लगा देते थे। आपकी दिमाग और वाणी की शक्तियाँ भी कुछ साधारण नहीं थीं। आपकी स्मरणशक्ति इतनी प्रबल थी कि पृष्ठों के पृष्ठ एक बार पढ़ कर याद कर लेते थे। आपकी पढ़ने की गति भी बहुत तीव्र थी और उससे भी अधिक तीव्र बोलने की शक्ति थी। जितने समय में कोई सामान्य व्यक्ति एक वाक्य कहता उतने में आप तीन वाक्य कह जाते थे और उस पर भी असाधारण बात यह थी कि आप घण्टो तक निरन्तर बोल सकते थे। आपके भाषणों में उद्धरणों और प्रमाणों की भरमार रहती थी। आप गुरुकुल में आने के पश्चात् थोड़े ही दिनों में आर्यसमाज की व्याख्यान-वेदी के एक प्रमुख वक्ता माने जाने लगे थे। आपने जीवन भर जहाँ गुरुकुल कांगड़ी और कन्या गुरुकुल के सचालन में भाग लेकर आर्यसमाज की सेवा की वहाँ साथ ही व्याख्यानों और 'वैदिक मैगजीन' पत्र के लेखो द्वारा शिक्षित जनता में वैदिक धर्म का पुष्कल प्रचार किया।

द्वितीय खण्ड

पहला अध्याय

शुद्धि

आर्यसमाज में प्रारम्भ से शुद्धि शब्द का प्रयोग अछूत कहलाने वाले हिन्दुओं और अहिन्दुओं के वैदिक धर्म मे प्रवेश के लिए होने लगा था। शुद्धि शब्द का आविष्कार कैसे हुआ यह निश्चित रूप से पता नही चल सका। महर्षि दयानन्द के ग्रंथो में शुद्धि और अशुद्धि तथा शुचि ओर अशुचि शब्दों की जो व्याख्या की गयी है, उससे तो प्रतीत होता है कि केवल विचारो के कारण वे किसी को शुद्ध या अशुद्ध नही मानते थे। सत्यार्थप्रकाश के दसवें समुल्लास मे महर्षि ने जहाँ भक्ष्याऽभक्ष्य तथा आचारानाचार की व्याख्या की है, वहाँ उन्होंने मांस, मदिरा आदि सेवन को अशुद्धता का कारण बतलाया है, विचारमात्र को नहीं। विदेश यात्रा का समर्थन करते हुए उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि केवल विदेशियों या विधर्मियों के स्पर्श से कोई पाप नही होता, पाप तो होता है दुष्ट भोजन से और कुत्सित आचार-व्यवहार से। ऐसी दशा में यह मानना कि हिन्दू कहलाने वाला व्यक्ति चाहे कितना ही पतित हो, शुद्ध और अन्य धर्मावलम्बी चाहे कितना ही सज्जन हो, अशुद्ध है, महर्षि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। शुद्धि तथा अशुद्धि का सम्बन्ध खानपान और रहन-सहन से है, जो मानसिक अशुद्धि का परिणाम होता है। वैसी अशुद्धि जहाँ कही भी हो, उसे दूर करना चाहिए--वह अपने में हो या दूसरे में, वह हिन्दू में हो या मुसलमान में, यह वास्तविक शुद्धि है। केवल अहिन्दू लोगों के वैदिक धर्म में प्रवेश का नाम शुद्धि कैसे और कब रखा गया, पुराने कागज-पत्रो को देख कर इसका पता नही लग सका। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समाचार-पत्र में वैदिक धर्म प्रवेश के किसी समाचार मे शुद्धि शब्द का प्रयोग हो गया और वह चल गया और अब तक चला आ रहा है। मेरा विचार है कि अब यदि शुद्धि के स्थान पर प्रारम्भ से ही 'वैदिक धर्म में प्रवेश'--अथवा 'आर्यसमाज में प्रवेश'--इन में से किसी शब्द का प्रयोग होता तो आर्यसमाज बहुत से व्यर्थ संघर्ष से बच जाता। परन्तु यह तो केवल अवान्तर चर्चा हुई। प्रासंगिक बात यह है कि प्रारम्भ में अछूत कहलाने वाले हिन्दुओ तथा अन्य धर्मावलम्बियों के लिए शुद्धि शब्द का प्रयोग होता था, पीछे से अछूतों को अन्य धर्मावलम्बियों से अलग करने के लिए उनके सम्बन्ध में दलितोद्धार शब्द का प्रयोग होने लगा। शुद्धि अन्यधर्मावलम्बियो तक परिमित हो गई।

धर्मवीर पं० लेखराम जी के बलिदान से पूर्व भी आर्यसमाजो में इक्के-दुक्के ईसाइयो तथा मुसलमानों की शुद्धि होती रहती थी। प्राय: सभी प्रान्तों में ऐसी शुद्धियाँ हुईं।

पंडित जी के बलिदान के पश्चात् इस्लाम की ओर आर्यसमाज का ध्यान विशेष रूप से खिच गया। मृत्यु के समय पंडित जी ने अंतिम शब्द ये कहे थे, "तहरीर का काम बन्द न हो।" इस आदेश के अनुसार आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने "आर्य मुसाफिर मैगजीन" नाम का मासिक-पत्र उर्दू मे जारी कर दिया, जिसमें मुख्य रूप से इस्लाम के संबंध मे लेख रहते थे। कुछ समय पीछे आगरे से पंडित भोजदत्त जी ने 'मुसाफिर' निकालना आरम्भ किया। वे इसके संपादक थे और व्याख्याता भी थे। आप के भाषणो और व्याख्यानों के विषय भी प्रायः इस्लाम ही से सम्बन्धित रहते थे। आर्य पथिक की प्रेरणा पाकर कुछ आर्य-प्रचारकों ने इस्लाम की आलोचना को और मुसलमानो की शुद्धि को अपना विशेष विषय बना लिया। पं० भोजदत्त शर्मा (आगरा), साधु योगेन्द्रपाल जी तथा ला० वजीरचन्द्र 'विद्यार्थी' अपना अधिक समय इस कार्य में देते थे। अन्य भी अनेक लेखक और वक्ताओं ने अपना केन्द्र इस्लाम को और लक्ष्य मुसलमानों की शुद्धि को बना लिया था। स्वामी दर्शनानन्द जी के सम्बन्ध में तो हम लिख ही आए हैं कि उन्हें शास्त्रार्थ और तर्क के क्षेत्र में पं० लेखराम जी का मुख्य उत्तराधिकारी कहा जा सकता है।

यो तो समय-समय पर ईसाइयों और मुसलमानों की शुद्धियाँ आर्यसमाज मन्दिरों मे होती ही रहती थीं, परन्तु एक शुद्धि ऐसी हुई जिसने आर्यसमाज के इतिहास का एक विशेष परिच्छेद बना दिया। १९०३ में पजाब के गुजरानवाला नाम के शहर में एक मुसलमान नौजवान की शुद्धि हुई। उस नौजवान का नाम अब्दुल-गफूर था, वह बी० ए० परीक्षा पास था। उसकी शुद्धि का आर्यसमाज के क्षेत्र में बहुत उत्साह से स्वागत किया गया। आर्यसमाज में उसका नाम धर्मपाल रखा गया। धर्मपाल की शुद्धि का पंडित चमूपति जी ने 'आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब का इतिहास' में जो विवरण दिया है, वह संक्षिप्त है, परन्तु सारगर्भित है :—

"यह नवयुवक एक मुसलमान ग्रेजुएट था। पहिले कुछ समय ईसाई, फिर ब्राह्मसमाजी और फिर देवसमाजी रह कर यह एकाएक आर्य धर्म में दीक्षित हो गया। दीक्षा से पूर्व यह इस्लामी स्कूल का हेडमास्टर था। आर्यसमाज में इस प्रकार के उच्च शिक्षाप्राप्त मुसलमान का यह सबसे पहला प्रवेश था। आर्य-जगत् ने इसे हाथों-हाथ उठा लिया। मियाँ अब्दुल गफूर, ब्रह्मचारी धर्मपाल बन गए। आर्यों के तीर्थ गुरुकुल में इनका निवास हुआ। पीली धोती तथा खड़ावें पहने ये ब्रह्मचारी जी श्रद्धालु आर्यों के विशेष मानास्पद हो गए। चटकीली उर्दू के ये उस्ताद थे। तर्क-ए-इस्लाम, नखल-ए-इस्लाम आदि सनसनी पैदा करने वाली कई पुस्तकों की रचना कर इन्होंने खूब प्रसिद्धि पा ली। चुलबुला कौतूहल इनकी नस-नस में भरा था। खंडन और घृणा इनकी घुट्टी मे थी। प्रत्येक धार्मिक रूढ़ि इन्हें उपहास तथा कटाक्ष के योग्य प्रतीत होती थी। आर्यसमाज में आकर पहले तो इन्होंने अपने पिछले परित्यक्त मतों का खण्डन अश्लील ढंग से किया

उन पर व्यर्थ दोष लगा कर न्यायालय द्वारा दण्डित हुए। महात्मा मुन्शीराम को ये पिता कहा करते थे, पर इनकी ग्राम्य उद्दण्डता से वे भी नहीं बच सके।

"धर्मपाल की शुद्धि आर्यसमाज को कई अंशों में जागरूक तो कर ही गई परन्तु इस शुद्धि की प्रसिद्धि तथा धर्मपाल की अनधिकृत प्रतिष्ठा ने यह भाव भी अवश्य पैदा कर दिया कि आर्यसमाज मे किसी भी जाति तथा मत में पैदा हुआ मनुष्य अपने गुण-कर्मानुसार ऊंची से ऊंची पदवी को प्राप्त कर सकता है। उदारता की उत्सुकता ने आर्य-जगत् को कुछ अधीर सा बना दिया था। शुद्धि-आन्दोलन की सफलता की खुशी में पात्र-अपात्र की जाँच का भी ध्यान नहीं रखा गया। धर्मपाल को साधारण आर्य न बना कर लेखक तथा प्रचारक का उत्कृष्ट आसन पेश कर दिया गया। यदि उसे अपनी सीमा में रखा जाता तो सभव है, वह खप ही जाता। इस प्रकार मत-मतान्तर की होड़ मे धर्म-सभाएं अपनी सुध-बुध किस प्रकार भुला बैठती है!"

धर्मपाल के आर्य सामाजिक जीवन को बहुत पास से देखने का इस इतिहास के लेखक को भी काफी अवसर मिला था। वह शुद्धि के पश्चात् गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की तरह पीली धोती पहन कर रहने लगा। हम लोग तब नवीं श्रेणी में पढ़ते थे। हमने देखा कि प्रारम्भ से ही उसमें दो बड़े भारी दुर्गुण थे। एक तो वह दुरभिमानी था और दूसरे उसमें दिखावे की मात्रा बहुत अधिक थी। हृदय की सचाई नाम की वस्तु उसमें बहुत न्यून थी। गुण यह था कि उर्दू बहुत अच्छी लिखता था और बोलने में भी चुस्ती थी। आर्यसमाज में वह कई घाट का पानी पीकर आया था। कुछ दिनो तक ईसाइयों के संग मे रहा, फिर देवसमाज में गया और कहीं भी महत्वाकाक्षा पूरी होते न देख कर आर्यसमाज मे आ गया। अन्दर से वह बहुत हल्का था। आश्चर्य यही है कि आर्यसमाज ने एकदम उसे इतना मान कैसे दे दिया। गुरुकुल के उत्सव पर आए हुए नर-नारी जत्थे के जत्थे बना कर ब्रह्मचारी धर्मपाल के दर्शनों को आते थे। जब लोग पास आते थे तो धर्मपाल उनकी ओर पीठ करके जंगल की दिशा में चल देता था। कभी-कभी दर्शनार्थियों पर 'बेहूदा, गंवार' आदि उपाधियाँ भी बरसाता जाता था। लोग जंगल तक उसका पीछा करते थे। तब वह खड़ा होकर उन्हें खूब झाड़ता और डॉट पिलाता था। दर्शनार्थी भक्त उन्हें आशीर्वाद मानकर ब्रह्मचारी जी को नमस्ते करके वापिस आ जाते थे। यह देख कर हम लोगों को आश्चर्य होता था कि आखिर हो क्या रहा है? ऐसे आदमी का जो परिणाम होना था वही हुआ। वह जिस घर में रहा, उसी की दीवारो में सूराख करने की कोशिश की। उसने अत में मासिक 'इन्दर' और साप्ताहिक 'पतन्दर' पत्र निकाल कर आर्यसमाज, गुरुकुल और उनके कार्यकर्त्ताओ पर गन्दे से गन्दे आक्षेप करना अपना रोजगार बना लिया। न किसी व्यक्ति को छोडा न किसी संस्था को। ऐसा बुरा परिणाम निकलने का मुख्य कारण यही हुआ कि एक अयोग्य व्यक्ति को परीक्षा के बिना आदर का स्थान दे दिया गया। धर्मपाल के दृष्टान्त से आर्यसमाज ने काफी शिक्षा ग्रहण की। उसके पश्चात् किसी शुद्धि शुदा व्यक्ति को वैसा अनुचित मान नही दिया गया।

समय-समय पर और शुद्धियाँ भी होती रही। १९०९ में देहली समाज के उत्सव पर मिस्टर डेकी नाम के यूरोपियन की शुद्धि हुई। नया नाम धर्मदेव रखा गया। १९०७ ई० में हम बन्थरा गाँव के ३७५ ऐसे नर-नारियों के वैदिक धर्म में प्रवेश का समाचार पढ़ते हैं, जो मुसलमान राज्यकाल में मुसलमान बन गए थे। १९०८ में मिरजा-गुलाम हैदर को महाशय सत्यदेव बनाया गया। १९०९ मे आर्यसमाज लखनऊ सिटी में मिस यैमसन नाम की एक पाश्चात्य महिला को शुद्ध करके सीतादेवी नाम से विभूषित किया गया। काशी में मि० रौब्रर्टसन को शुद्ध किया गया और उनका नाम धर्मदेव रखा गया। सन् १९०० में एक और शुद्धि हुई जो चर्चा के योग्य है। मुंशी इन्द्रमणि, महर्षि दयानन्द के उन शिष्यों मे से थे, जो बहुत समय तक महर्षि के साथ रहे। उन का पोता भगवत्प्रसाद कुछ पारिवारिक कारणों से नाराज होकर मुसलमान बन गया था। उसके पिता समझा-बुझा कर उसे लाहौर ले आये और शुद्धि करके फिर आर्यसमाज मे प्रविष्ट कर लिया।

जात-पाँत विरोध तथा दलितोद्धार

आर्यसमाज ने शुद्धि और दलितोद्धार के जो कार्य आरम्भ किए, उनमें सब से बड़ा बाधा पैदा करने वाला हिन्दू जाति में फैला हुआ जात-पाँत का कुसंस्कार था। महर्षि दयानन्द ने जन्म के अनुसार माने जाने वाली जाति का खंडन और गुण कर्म-स्वभावानुसार वर्ण-व्यवस्था का समर्थन किया। यही महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट एक मौलिक सुधार था। यदि हिन्दू जाति मे जन्मगत जात-पांत और छूआछूत का रोग न होता तो शुद्धि या दलितोद्धार की आवश्यकता ही न पड़ती। जो लोग किन्ही कारणो से अन्य धर्मो मे चले गए थे, आसानी से आर्य-धर्म में वापस आ जाते यदि हमने उन्हें उदार-हृदय से अपने अन्दर वापस ले लिया होता। परन्तु हमारे झूठे ऊंचे वर्ण और कल्पित शुद्धता के कुसंस्कारों ने उन्हे हम से दूर ही दूर रक्खा। जब आर्यसमाज ने सामूहिक रूप से शुद्धि और दलितोद्धार का कार्य आरम्भ किया तो उसने घोषणा की कि वैदिकधर्म वर्ण-व्यवस्था को जन्म के अनुसार नही अपितु गुणकर्मानुसार मानता है और शुद्धि भी केवल धर्म के चिह्नों को स्वीकार करने का नाम नही अपितु जीवन की शुद्धि का नाम है। सिद्धान्त-रूप मे तो आर्यसमाज ने ये दोनों बातें स्वीकार कर लीं परन्तु पुराने सस्कार इतने प्रबल हो चुके थे कि व्यवहार में बहुत कमी रह गई। जिन विधर्मियों को आर्यसमाज ने शुद्ध करके अपने अन्दर लिया, उन्हें समाज का सोलह आना अग बनाने में बहुत कठिनाई उपस्थित होने लगी। कुछ कार्यकर्त्ता ऐसे थे, जो वस्तुतः जातपात के बन्धनो से छुटकारा पा चुके थे। सम्पूर्ण समाज ने उनके शुद्धिकार्य की तो प्रशंसा की परन्तु शुद्ध हुए लोगों को सर्वथा बराबर का पद देने को तैयार न हुए। यदि केवल अनपढ़ नर-नारियों मे ही ऐसी निर्बलता जारी रहती तो शायद उसका प्रतिकार शीघ्र हो जाता परन्तु बड़े दुःख से मानना पड़ता है कि अच्छे शिक्षित विद्वान् और समृद्ध वर्गों मे भी जन्म-गत जाति की भावना विद्यमान रही। जिस काल (१९०१ से १९१६) की हम चर्चा कर रहे है, उसमे गुण-कर्मानुसार वर्णव्यवस्था के विरोध में अनेक व्यक्तियो द्वारा जन्म से प्राप्त जाति की महिमा का बखान किया जा रहा था। महर्षि दयानन्द ने मनुष्य के गुण और कर्म तथा उनसे बने हुए स्वभाव को वर्ण-व्यवस्था का आधार माना था। उच्च जाति की महिमा बढाने वाले इन महानुभावो ने 'स्वभाव' को मनमाने अर्थ में गुण और कर्मो से अलग करके जन्मगत वर्ण-व्यवस्था का आधार बना लिया। शास्त्रार्थ और व्याख्यानों में कर्मो के अनुसार वर्ण का समर्थन करते हुए भी व्यवहार मे बहुत से लोग जन्मगत जाति की महत्ता को स्वीकार करते रहे

और यह मानते दुःख होता है कि अब तक भी हमारी जाति का वह रोग सर्वथा निर्मूल नही हुआ। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में ब्राह्मण, राजपूत आदि जातियों को ऊंचा समझने की और अपने नाम के साथ शर्मा, वर्मा आदि लगाने की प्रवृत्ति कुछ बढ़ती हुई प्रतीत होती थी फलत यद्यपि आर्यसमाज सिद्धान्त रूप में शुद्धि का समर्थन करता रहा और शुद्धियाँ भी होती रही परन्तु यह शिकायत कम नही हुई कि सब आर्यसमाजी शुद्ध हुए नर-नारियो के साथ परिवार के सदृश समानता का व्यवहार नहीं करते। जो दोष पहले हिन्दू सोसाइटी में था, वह सूक्ष्म रूप से आर्यसमाज में जारी रहा।

इस न्यूनता के होते हुए भी अनेक केन्द्रो मे दलितोद्धार का काम बडे उत्साह से चलता रहा। पंजाब में ओडो और रहतियो की शुद्धि का वृत्तान्त इससे पूर्व दिया जा चुका है। बहुत से उत्साही आर्य-भाइयों ने हिन्दू जाति मे अस्पृश्य कहलाने वाले लोगों के साथ होने वाले अन्याय को जड से उखाडना अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। ऐसे कार्यकर्त्ता बडे से बड़े विघ्नो और मुसीबतो को सह कर भी दलितोद्धार का कार्य कर रहे थे। धर्म-कार्य मे प्राणों की बाजी लगाने वाले ऐसे नवयुवकों में से एक महाशय रामचन्द्र जी थे जो जम्मू के निवासी थे। सरकारी नौकरी से जो समय बचता था, उसे वह दलित भाइयो की सेवा में व्यतीत करते थे। जम्मू के इलाके में राजपूत लोगों का जोर था। उन लोगों को यह बात बहुत अखरी कि जिन अछूतों को वे अब तक अपना गुलाम समझते थे, उन्हें महाशय बना कर राजपूतो के बराबर दर्जा दिया जा रहा है। उन्होंने महाशय रामचन्द्र को दण्ड देने का निश्चय किया और एक प्रचार-सम्मेलन मे घेर कर लाठियों से अधमरा कर दिया। पहले तो राजपूतो ने ऐसा आतंक फैलाया कि किसी को घायल वीर के पास भी न आने दिया परन्तु अंत मे उनके सहयोगियों ने हिम्मत की और घायल को नौका में डाल कर हस्पताल में ले गए। वहाँ सात दिन तक अचेत दशा मे रह कर वीर रामचन्द्र ने प्राण त्याग दिए।

म० रामचन्द्र

वीर रामचन्द्र की मृत्यु हो गयी परन्तु उसका कार्य बन्द नहीं हुआ। उस प्रदेश में बढ़े हुए उत्साह के साथ दलितोद्धार का कार्य जारी रहा। सुटहवा स्थान पर जहाँ वीर का बलिदान हुआ था, प्रतिवर्ष मेला लगने लगा, जिसमें आर्यसमाज के अस्पृश्यता निवारण तथा अन्य क्रियात्मक कार्यक्रमो का प्रचार और प्रदर्शन किया जाता था। जम्मू प्रदेश मे कई दलितोद्धार पाठशालाये खोल दी गई। ये सब कार्य अब तक भी सगठित रूप से हो रहे है।

दलितोद्धार की दिशा मे एक नया महत्वपूर्ण कदम तब उठाया गया, जब

सियालकोट में मेघोद्धार सभा की स्थापना हुई ।

मेघ नाम की अस्पृश्य जाति सियालकोट, गुरुदासपुर तथा गुजरात के जिलों और काश्मीर तथा जम्मू की रियासत में रहती थी। १९११ की जन-गणना मे इस जाति की संख्या १,१५,४२९ और १९२१ की जन-गणना मे लगभग तीन लाख बतायी गयी है। हिन्दू न उस जाति के हाथ का खाते थे, न उसे अपने मन्दिरों में आने और न अपनी दरियों पर बैठने ही देते थे। वे हिन्दुओं के कुओं से पानी लेना चाहें तो उन्हें किसी दयालु द्विज की कृपा की प्रतीक्षा करनी होती थी। कोई दयालु द्विज पानी भर उनके पात्र में डाल दे तो डाले। एक मेघ का बर्तन हिन्दुओं के कुएं में नहीं जा सकता था। उनके सिर पर चोटी थी, वे गौ-ब्राह्मण की पूजा करते थे, वे तीर्थों को जाते और अपने शव जलाते थे। उनके गोत्र भी वही थे, जो अन्य हिन्दुओं के। वे जुलाहे का धंधा करते थे, जिसमें अपवित्रता का लेश भी नहीं था । फिर भी वे थे अस्पृश्य।

मेघो की अस्पृश्यता के कारण का अनुमान कई प्रकार से किया गया है। १९०१ की जन-गणना के वृत्तान्त मे लिखा है कि मेघ, सासियो, चूढों, चमारों, अर्थात् अन्य अस्पृश्य जातियों के संस्कारो में ब्राह्मण का कार्य करते है। संभव है, अस्पृश्यों के पुरोहित होने के कारण वे स्वयं भी आगे चल कर अस्पृश्य समझे गये हों । एक और अनुमान यह किया गया है कि जुलाहे का धंधा करते हुए वे स्वभावतः कबीर-पन्थी हो गये और क्योंकि कबीर मुसलमान समझे जाते थे, संभव है कि हिन्दुओं ने उनके अनुयायियों को भी अपने से पृथक् कर दिया हो। मेघो के बहिष्कार का तीसरा आनुमानिक कारण राजनीतिक है। कहा जाता है कि अली कुली खां काश्मीर नरेश भारद्वाज का शत्रु था । उसने एक मेघ पंडित को जो राज ज्योतिषी था, राज-द्रोह करने की प्रेरणा की। मेघ नहीं माना। उसने तो लड़ाई का मुहूर्त शुभ बताया, परन्तु फिर भी नरेश पराजित हुआ । अब शासन की बागडोर अली कुली खा के हाथ में आ गई और उसकी आज्ञा से ज्योतिषी की सम्पूर्ण जाति को राज-भक्ति के फलस्वरूप इस प्रकार पतित कर दिया गया ।

अस्पृश्यता का कारण कुछ हो, एक जाति की जाति शताब्दियों से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक—सभी प्रकार के अधिकारो से वंचित चली आती थी और तो और मेघ अन्य हिन्दुओं के घरो की सेवा भी नहीं कर सकते थे। उनके स्पर्श मात्र में अपवित्रता समझी जाती थी ।

जैसे जालन्धर आर्यसमाज के प्राण ला० मुंशीराम थे, वैसे ही सियालकोट समाज की जान पं० गगाराम बी० ए०, एलएल० बी० थे। काम ये भी वकालत का करते थे। १९०३ के आरम्भ में सियालकोट-समाज के सचालकों ने मेघो की शुद्धि का संकल्प पक्का कर लिया। समाज के उप-प्रधान ला० खुशहालचन्द इस आन्दोलन के अग्रणी थे। १४ मार्च १९०३ की अन्तरग सभा मे यह निश्चय हो गया कि २८ मार्च को वार्षिक उत्सव के समय शुद्धि का कार्य आरम्भ हो जाना चाहिए। ला० खुशहालचन्द ने कह

दिया—यदि मैं उस दिन चल न सकूं तो मेरी चारपाई को ही संस्कार में ले चलना। विरोध बहुत था। हिन्दू तो हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई भी इस कार्य में इसलिए बाधक हो रहे थे कि आगे के लिए कहीं उनकी प्रचार तथा जन-वृद्धि की फसल ही न मारी जाय। २८ मार्च को शुद्धि हुई परन्तु उसमें केवल २०० मेघ ही सम्मिलित हो पाए।

शुद्धि क्या हुई अत्याचार को मानो निमन्त्रण सा दे दिया गया। राजपूत लोग इस संस्कार के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने शुद्ध हुए मेघों को लाठियों से मारा। पुलिस ने अभियोग चलाने से इनकार कर दिया। मेघों पर झूठे मुकदमे चलाए गए। निचले न्यायालय से उन्हें दण्ड भी मिल गया। परन्तु आगे जाकर न केवल मेघ छूट ही गए, किन्तु उलटी राजपूतों को सजाएं मिलीं। राजपूतों के विरोध का कारण उनके अपने कथनानुसार यह था कि जहां पहले मेघ उन्हें गरीब-नवाज बुलाते थे, अब केवल 'नमस्ते' कह कर मानो सामाजिक समानता के व्यवहार की मांग करते प्रतीत होते थे।

जम्म-निवासी रामदास से सौ रुपए का मुचलका इसलिए लिया कि वह ५०० मेघों को सियालकोट आर्यसमाज में ले गया था।

अलोचक ग्राम के मेंघों को मुसलमान जमींदारों ने अपनी जमीन में कुआं खोदने से रोक दिया। वे किसी कीमत पर भी यह आज्ञा देने को तैयार न थे। मेघ बेचारे, जो शुद्ध होकर आर्य-भक्त बन चुके थे, उस गांव को छोड कर एक और गांव में जा बसे।

मुअज्जम आबाद का नत्थू नाम का मेंघ गेहूं की फसल काट रहा था। उसे प्यास लगी। आसपास सब मुसलमान थे। वे उसे बिना छुए पानी नहीं पीने देते थे। अन्त को उसने एक कुएं में छलांग लगा दी और इस प्रकार अपनी जान जोखिम में डालकर अपनी आत्मा को अछूता रक्खा और शरीर की प्यास बुझाई। हिन्दुओं का पानी उसे किसी प्रकार प्राप्त ही न हो सका।

इन मेघों का अपराध यही था कि ये शुद्ध हो गए थे। आर्यसमाजियों ने जहाँ इनके साथ खाने-पीने तथा संस्कारों और पर्वों के अवसर पर मिलने-जुलने का सम्बन्ध जोड़ दिया, वहां इनका नाम भी मेघ के स्थान पर "आर्यभक्त" रख दिया।

केवल संस्कार तक ही परिमित न रह कर इनकी आर्थिक सहायता के लिए दस्तकारी स्कूल भी खोल दिया गया।

शनैः शनैः मेघोद्धार का काम इतना फैल गया कि १९१२ में इनके लिए एक पृथक् सभा की स्थापना की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस सभा का नाम "आर्यमेघोद्धार सभा" रक्खा गया। इसकी रचना इस प्रकार की गई कि इसमें प्रधानता तो सियालकोट समाज ही की रही, परन्तु अन्य समाजों के प्रतिनिधि भी इसमें सम्मिलित कर लिए गए। रजिस्ट्री हो जाने से इस सभा को एक अलग स्थिर सत्ता प्राप्त हो गई।

आर्य-दस्तकारी स्कूल का नाम आगे जाकर खुशहालचन्द आर्य-दस्तकारी

स्कूल रक्खा गया। उसमे मेघों के अतिरिक्त अन्य हिन्दू लडके भी शिक्षा पाने लगे। समय पाकर वह एक हाईस्कूल बन गया। उसके साथ एक आश्रम भी खोल दिया गया। आश्रम में रहने वाले छात्रों को आटा अपने घरो से लाना होता था। उसकी शेष सब आवश्यकताए समाज पूरी करता था। निर्धन लड़को को आटा भी समाज देता था। मानसिक और धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त उन्हे बढ़ई और दर्जी का काम भी सिखाया जाता था। इस प्रकार के स्कूल के अतिरिक्त अन्य ग्रामीण स्कूल भी खोले गए। उनमे प्राइमरी कक्षा तक की शिक्षा दी जाती थी।

१९०७ मे समाज के प्रधान डा० देवीदयाल के भाई लाला कृपाराम का देहान्त हो गया। ये सज्जन २०००) मेघ लडको को गुरुकुल-कागड़ी मे शिक्षा दिलाने के लिए छोड़ गए। गुजरांवाला गुरुकुल ने दो मेघ विद्यार्थी नि:शुल्क भर्ती किए। कुछेक विद्यार्थियों को अन्य स्कूलो मे रियायत पर प्रविष्ट कराया गया। इस प्रकार उन बालको की अस्पृश्यता भी क्रियात्मक रूप से हट गई और उनकी आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति का प्रबन्ध भी हो गया।

मेघो के रहन-सहन मे सुधार करने के लिए चौधरी सभाओ की स्थापना हुई। इन सभाओं के मुख्य चौधरियों की एक मुख्य सभा बना दी गई, जो मेघों के अभियोगो का निर्णय करती थी। स्वयं मेघो को ही अपने १५ प्रतिनिधि मेघोद्धार सभा मे भेजने का अधिकार दिया गया।

रहन-सहन के सुधार का पक्का प्रबन्ध 'आर्य-नगर' की स्थापना से हुआ। बारी-दोआब नहर द्वारा सिक्त भूमि में से ३०,००० एकड़ भूमि स्वय गवर्नमेंट ने अछूत जातियो के लिए सुरक्षित कर दी थी।

इस जमीन मे से ५५०० एकड भूमि १९१७ में ईसाई सोसाइटी को दे दी गई। २००० एकड़ के अस्सी मुरब्बे मुक्ति फौज को मिले। इन मुरब्बो पर उसने शान्ति-नगर नाम की बस्ती बसा ली। इन संस्थाओ की देखा-देखी 'आर्य मेघोद्धार' सभा ने भी सरकार से प्रार्थना की और उसे ८० मुरब्बे मिलने स्वीकार हो गए परन्तु अन्त मे मिले केवल ५२ ही।

यह भूमि खानेवाल स्टेशन के पास है। इस पर 'आर्य-नगर' बसाने की आयोजना हुई। पहिले तो 'आर्य-भक्त' अपने घरो से इतनी दूर जाने को ही तैयार नही होते थे। परन्तु धीरे-धीरे उन्हें वहाँ बसाया गया। उनकी मानसिक तथा धार्मिक उन्नति के लिए समाज, पाठशाला, कन्या-पाठशाला आदि सस्थाएं स्थापित की गयी। एक चिकित्सा-लय भी खोल दिया गया। वृक्ष बोए गए। वाटिकाएं लगाई गयी। बीच में बनियो के मुनाफे की बचत के लिए सहयोगी भाण्डार (को-आपरेटिव-स्टोर्स) खोले गए और संयुक्त बिक्री का प्रबध किया गया। खाद आदि पर निरीक्षण रखने का प्रबन्ध भी किया गया। इससे आर्य भक्तो के जीवन का मानसिक, सामाजिक, शारीरिक तथा आर्थिक सभी दृष्टियो से आश्चर्य-जनक विकास हुआ। जिसने भी आर्य-नगर का अवलोकन किया, उसे एक आदर्श उद्धारक बस्ती पाया।

तीसरा अध्याय

प्रान्तों में आर्यसमाज की प्रगति (१)

हम जिस युग का इतिहास इस खण्ड मे लिख रहे है, वह संस्था-युग कहलाता है। यद्यपि डी० ए० वी० कालिज और स्कूलों का खुलना पहले ही जारी हो चुका था पर वह आर्यसमाज के एक भाग तक परिमित था। समाजो और प्रतिनिधि सभाओं की अधिक शक्ति प्रचार-कार्य की ओर लगी हुई थी। १९०१ और १९०२ ई० मे पंजाब और संयुक्त-प्रान्त में गुरुकुलों की धूम मच गई। स्थान-स्थान पर छोटे-मोटे गुरुकुल खुलने लगे। कांगड़ी का गुरुकुल वेग से उन्नति करता हुआ आर्यसमाज के कार्य का एक विशाल केन्द्र बन गया। गुरुकुल वृन्दावन, महाविद्यालय ज्वालापुर आदि अन्य गुरुकुल संस्थाएं लोकप्रिय होती गई। धीरे-धीरे बम्बई, मध्य-प्रदेश आदि प्रान्तो मे भी गुरुकुलों की स्थापना हो गई और इस प्रकार देश भर मे गुरुकुलों का जाल सा छा गया।

कन्याओं के शिक्षण का कार्य आर्यसमाज ने प्रारम्भ से ही अपने हाथ में ले लिया था। यह स्वाभाविक ही था कि आर्यसमाजो की संख्या और शक्ति की वृद्धि के साथ-साथ कन्या-शिक्षणालयों की वृद्धि भी होती। जालन्धर का कन्या महाविद्यालय और देहरादून का महादेवी कन्या महाविद्यालय इससे पूर्व ही कार्यक्षेत्र मे आ चुके थे। कुछ वर्षो के अनन्तर कन्या-गुरुकुलों की स्थापना भी होने लगी और उसी बधे हुए क्रम से पहले पजाब, फिर सयुक्त-प्रान्त और उसके बाद अन्य प्रान्तो की प्रतिनिधि सभाओं की ओर से भी छोटे-मोटे कन्या गुरुकुल स्थापित किए गए। साधारण कन्या-पाठशालाए तो प्रतिदिन बढ ही रही थी। प्रत्येक आर्यसमाज के साथ छोटी-मोटी कन्यापाठशाला का होना तो लगभग अनिवार्य सा समझा जाने लगा था।

डी० ए० वी० कालिजो और स्कूलों का विस्तार निरन्तर बढ रहा था। १९०१-१९१६ ई० के मध्यकाल में कितने नए स्कूल बने, इसके पूरे-पूरे आकडे तो हमे नहीं मिल सके परन्तु छपी हुई उपलब्ध रिपोर्टों और समाचार-पत्रों के देखने से जो अनुमान लगता है, वह यह है कि इन १६ सालो मे स्कूलों की संख्या कम से कम चौगुनी हो गई होगी। उनके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखने योग्य बात है कि कई ऐसे आर्यसमाजो ने भी जो डी० ए० वी० कालिज कमेटी से संबद्ध नहीं थे, और आर्य प्रतिनिधि सभा को अपना मार्ग-दर्शक मानते थे, समय की आवश्यकता को पूरा करने के लिए लड़को के स्कूल खोल दिए थे। इस प्रकार उस युग मे वस्तुतः शिक्षण-संस्थाओ की बाढ़ सी आ गई थी।

यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है कि इतनी बड़ी संख्या मे शिक्षण-संस्थाओं के खुलने का आर्यसमाज के प्रचार और विस्तार पर क्या प्रभाव पड़ा ? आर्यसमाज के कई विचारकों ने समय-समय पर यह विचार प्रकट किया है कि बहुत सी संस्थाएं खुल जाने के कारण आर्यसमाज के प्रचार-कार्य को हानि पहुंची है। यदि इस प्रश्न पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो इस कल्पना की पुष्टि नही होती, प्रत्युत उस समय के वृत्तान्तों को पढ़ने से यह अनुभव होने लगता है कि सस्थाओ से सामाजिक भावना की गहराई और विस्तार दोनो को पुष्कल सहायता मिली। इस अध्याय मे प्रान्तिक सभाओं तथा समाजो के कार्यो के जो सक्षिप्त विवरण दिए जायेंगे, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

यह स्वाभाविक भी प्रतीत होता है कि महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित सिद्धान्तो और सम्मतियों को कार्यान्वित करने के लिए जो सस्थाएं स्थापित की जाएं, उनका संसार पर उत्तम प्रभाव पड़े। सर्वसाधारण लोग प्रत्यक्ष वस्तु को सूक्ष्म सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक आसानी से समझ लेते है। विशेष रूप से गुरुकुलो की स्थापना का न केवल आर्य जनता पर अपितु बाहर की दुनिया पर भी बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ा। प्राचीन भारतीय आदर्शो को स्थूल रूप मे परिणत होता देख कर जहाँ भारतवासियो के हृदयों मे श्रद्धा की भावना उत्पन्न हुई वहाँ विदेशी यात्रियों को भी यह देख कर आश्चर्य हुआ कि भारत के प्राचीन आदर्शो को अर्वाचीन परिस्थितियों के अनुसार ढाल कर आज भी प्रयोग में लाया जा सकता है। जो विदेशी यात्री उन दिनों भारत को देखने आते थे वे डी० ए० वी० कालेज और गुरुकुल का अवलोकन करके आर्यसमाज की चौमुखी प्रगति से प्रभावित हो जाते थे।

कुछ समय तक यह भ्रम सा बना रहा कि शायद संस्थाओं के लिए धन-संग्रह होने के कारण वेद-प्रचार आदि कार्यो के लिए धन की कमी हो गई हो परन्तु आंकड़ो के देखने से प्रतीत होगा कि यह आशका निर्मूल थी। ज्यो-ज्यों संस्थाएं बढ़ती गयी, प्रान्तिक सभाओ के प्रचार और कोश की भी उन्नति होती गयी जिससे प्रचारको की संख्या मे भी वृद्धि हुई। संस्थाओं से एक बड़ा लाभ यह हुआ कि उनके निमित्त से अनेक विद्वान् वाणी और लेख द्वारा वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के क्षेत्र मे उतर आए। वे संस्थाओं मे कार्य करते थे और आर्यसमाज का प्रचार करते थे। इस प्रकार अवैतनिक विद्वान प्रचारकों की संख्या मे बहुत महत्वपूर्ण वृद्धि हो गई। यदि सब पहलुओ पर विचार करके देखा जाय तो हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि उस युग में सस्थाओ से आर्यसमाज को हानि नही हुई, अपितु पोषण मिला।

पंजाब

कांगड़ी में गुरुकुल की स्थापना के समय आर्यप्रतिनिधि सभा पजाब के प्रधान महात्मा मुशीराम जी थे। जब वे गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता नियत हुए तब उन्होंने सभा के प्रधान पद से त्याग-पत्र दे दिया और उनके स्थान पर पं० रामभज दत्त चौधरी बी० ए०, एल एल० बी० प्रधान निर्वाचित हुए। पं० रामभज दत्त जी बोलचाल में अत्यन्त सुन्दर

और उत्साही नवयुवक थे। वे गुरुकुल के कट्टर समर्थकों में से थे। एक वर्ष तक वे सभा के प्रधान रहे। १९०३ ई० के मई मास में जो चुनाव हुआ, उसमें पहले लाला रलाराम और राय ठाकुरदत्त धवन को प्रधान पद पेश किया गया। परन्तु कुछ खैंचा-तानी के पश्चात् राय ठाकुरदत्त जी प्रधान निर्वाचित हुए। इस खैंचातानी की तह मे एक मतभेद छिपा हुआ था। वह मतभेद जितना सार्वजनिक विषयो से सम्बन्ध रखता था, उतना ही व्यक्तिगत भी था। महात्मा मुंशीराम जी का क्रियात्मक आदर्शवाद उन्हे अन्य कार्यकर्त्ताओं और नेताओं से पृथक् कर रहा था। अपनी वकालत को और अन्य सब वासनाओ को समाप्त करके वे एक आदर्श की धुन मे गंगा के किनारे जा बैठे थे, इस त्याग ने पंजाब की आर्य जनता के हृदयो में उनका गहरा स्थान बना दिया था। एक नेता को इतना मान मिलने से अन्य नेताओं के मन में थोड़ी सी प्रतिस्पर्धा का उत्पन्न होना स्वाभाविक सा ही होता है। इसके साथ ही शायद कुछ आर्य नेताओ के मन में गुरुकुल की उपयोगिता के बारे मे भी सन्देह था। कांगड़ी ग्राम जिला बिज-नौर में है। वह उत्तर प्रदेश का भाग था। कुछ प्रभावशाली व्यक्तियो की यह भी राय थी कि पंजाब की संस्था पंजाब में ही रहनी चाहिए, अन्य प्रान्त में नहीं। इन सभी कारणो का सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि पंजाब प्रतिनिधि सभा के सदस्यों में दो विचारधाराएं चल गईं और वार्षिक चुनाव मे संघर्ष जारी हो गया। एक दल के नेता महात्मा मुंशीराम जी को और दूसरे दल के नेता ला० रलाराम जी तथा राय ठाकुर-दत्त जी को समझा जाता था। १९०५ में यह संघर्ष बहुत जोर पकड गया। सभा मे और सभा के बाहर भी पर्याप्त कहासुनी होती रही। अमृतसर से मास्टर आत्मा-राम जी की संपादकता मे उर्दू में 'हितकारी' नाम का साप्ताहिक पत्र निकलता था, वह ला० रलाराम जी के दल का समर्थन करता था। उसका उत्तर देने के लिए लाहौर से 'प्रकाश' का जन्म हुआ। यह भी उर्दू में निकला। प्रारम्भ से ही इसके संपादक महाशय कृष्ण जी थे। सभा के १९०५ के चुनाव मे फिर महात्मा मुंशीराम जी प्रधान चुने गए परन्तु उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। उनके स्थान पर जालन्धर के वकील ला० रामकृष्ण जी प्रधान चुने गए। ला० रामकृष्ण जी १२ वर्षों तक सभा के प्रधान पद पर आरूढ़ रहे। वे अद्भुत व्यक्ति थे। वे उन मनुष्यों में से थे जिन्हें सादगी और सचाई की कसौटी पर कस कर बिलकुल खरा सोना कहा जा सके। बोलते बहुत कम थे। पंजाब प्रतिनिधि सभा और अंतरंग सभा के अधिवेशन अपनी लम्बाई और गर्मी के लिए प्रख्यात रहे हैं। जब जोश की लहर चारों तरफ से उमड़-उमड कर प्रधान की ओर बढती थी और सभा भवन विक्षोभ से भरी हुई तीखी ध्वनियो से गूंज रहा होता था तब ला० रामकृष्ण जी चट्टान की तरह शान्त और स्थिर भाव से चारों ओर देखते और मुस्कराते थे। अंत में लहरें बैठ जाती थीं
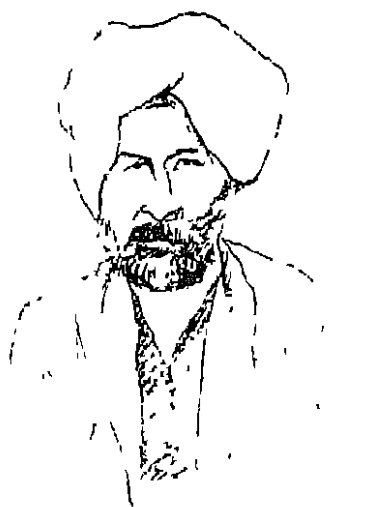
ला० रामकृष्ण जी

और शोर मचाने वाले थक जाते थे तब प्रधान जी नपे-तुले शब्दो मे कोई ऐसा सूत्र पेश कर देते थे जिससे विरोध शान्त हो जाय । १२ वर्षो मे न उनके माथे पर त्यौरियाँ दीखी और न आँखों मे लाली । खूब झगडने वाले सदस्य भी यह समझ कर सर्वथा निश्चिन्त रहते थे कि जब प्रधान जी बैठे है तो हमारे लड़ने-झगडने से आर्य-समाज की क्या हानि हो सकती है ।

सभा के मन्त्रियो मे थोडे-बहुत परिवर्तन होते रहे। १९०० ई० मे प्रो० शिवदयाल एम० ए०और १९०४ मे राय रोशनलाल बैरिस्टर मन्त्री चुने गये। लाला केदारनाथ जी कई वर्षो तक सभा के मन्त्री रहे । १९०८-९ ई० मे डा० चिरजीव भारद्वाज ने मन्त्री निर्वाचित होकर सभा के कार्य मे नया उत्साह फूंकने का प्रयत्न किया । १९१४ मे महाशय कृष्ण जी मंत्री पद पर निर्वाचित हुए । महाशय कृष्ण जी इससे पहले भी कई वर्षो से सहायक मन्त्री का कार्य कर रहे थे । 'प्रकाश' और सभा के उपमन्त्री का पद ये दो महाशय जी के उस सार्वजनिक जीवन के पहले चरण थे, जो लगभग ४० वर्षो तक किसी-न-किसी रूप मे आर्यसमाज के काम आता रहा है ।

जब १८९४ ई० के अन्त मे पंजाब का आर्यसमाज दो दलों में विभक्त हुआ था तब एक दल ने अपना मुख्य लक्ष्य डी० ए० वी० कालिज को और दूसरे दल ने वेद प्रचार को घोषित किया था। ३ जून १८९४ में, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अन्तरग सभा में सभा के प्रधान ला० मुन्शीराम जी ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि वेदो की शिक्षा तथा प्रचार का सन्तोषजनक प्रबन्ध करने के लिए वेद-प्रचार नाम से एक स्थिर निधि स्थापित की जाय । कुछ दिनो तक उस पर विचार होना रहा । अन्त में २ सितम्बर १८९४ ई० को साधारण सभा मे निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ :—

१. चूकि इस सभा की मौजूदा आमदनी वैदिक धर्म के यथोचित प्रबन्ध के लिए काफी नहीं है, इसलिए जरूरी है कि इस मतलब के लिए सभा हाजा के जेर-इहतिमाम वेद-प्रचार फण्ड नामी एक फण्ड खोला जाय, जिसके अगराज ये होंगे :—

(क) उपदेश करना-कराना और पुस्तक आदि तैयार कराकर जारी करना ।

(ख) उपदेशको और उपदेशिकाओ को तैयार करना ।

(ग) आर्य धर्म की वृद्धि और उन्नति के लिए एक पुस्तकालय कायम करना ।

(घ) लाहौर में विद्यार्थियों के लिए एक आश्रम खोलना ।

इस प्रस्ताव से उस मौलिक भावना पर काफी प्रकाश पडता है जिससे महात्मा पार्टी ने कालिज पार्टी से अलग होकर अपना कार्य आरम्भ किया। वेद-प्रचार निधि के समर्थन में उन दिनों 'सद्धर्म प्रचारक' में जो लेख लिखे गये और ला० रलाराम और राय ठाकुरदत्त धवन ने जो स्पष्टीकरण किये, उनसे यह

बात प्रकट हो जाती है कि महात्मा पार्टी ने स्कूल और कालिज खोलने का काम कॉलेज दल पर छोड़ दिया और वेद-प्रचार तथा उपदेशक तैयार करने का कार्य अपने जुम्मे लिया।

"वेद प्रचार फंड वैसे तो सभा के स्थापना दिवस से ही कायम है परन्तु पहले कुछ वर्षों में इसकी अवस्था बहुत साधारण रही है। १८९५-९६ को वेद प्रचार फंड के लिए एक विशेष वर्ष समझना चाहिए क्योंकि इसके पश्चात् १९१२-१३ तक कोई ऐसा वर्ष नहीं आया जिसमें दस हजार से इस फंड की आय बढ़ी हो और इस सिलसिले के आखिरी साल (सं० १९६८) में तो ६१९५) प्राप्त हुए। स० १९६९ के अधिकारियों ने वेद प्रचार फंड की आर्थिक अवस्था सुधारने की ओर विशेष ध्यान दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि म० कृष्ण जी बी० ए०, उपमन्त्री सभा की अनथक कोशिशों से वेद-प्रचार फंड मे १३९७३) की एक अच्छी राशि आई। [illegible] १९६९ मे तो यह राशि इकट्ठी हो गई लेकिन ख्याल था कि यह राशि चूंकि म० कृष्ण जी उपमन्त्री की कोशिशो का परिणाम है

म० कृष्ण

और पहले कभी इतनी राशि प्राप्त नहीं हुई, इसलिए सं० १९७० मे इतनी राशि का आना कठिन होगा। [illegible] विचार की सितम्बर १९१३ के बैको के दिवाले की खेदजनक घटना ने और भी पुष्टि कर दी। लेकिन ला० धर्मचन्द्र जी बी० ए०, एल-एल० बी०, अधिष्ठाता वेद-प्रचार फड के सुप्रबन्ध और यत्न का यह फल है कि १९६९ के १३९७३) के मुकाबले मे इस वर्ष १६१४५) प्राप्त हुआ। अर्थात् २१७२) की विशुद्ध वृद्धि हुई।

"वेद-प्रचार फड के लिए धन एकत्रित करने के निमित्त डैपुटेशन निकला, जिसमे ला० धर्मचन्द जी अधिष्ठाता, म० कृष्ण जी बी०ए०, मास्टर लक्ष्मणदास जी आदि शामिल रहे।" (रिपोर्ट)

इसके पश्चात् वेद-प्रचारनिधि की वार्षिक आय प्रतिवर्ष थोडी-बहुत बढ़ती रही। वेद-प्रचार की आय बढते रहने के साथ-ही-साथ उपदेशकों की संख्या में भी वृद्धि होती गई। रिपोर्टों से प्रतीत होता है कि जहां १८९७ ई० मे १५ उपदेशक काम करते थे, वहा १९१७ में उपदेशक और भजनोपदेशक मिलकर चालीस के लगभग थे। सभा ने आर्य-पथिक लेखराम की स्मृति मे एक स्मारक निधि स्थापित की थी, जिसमे २१ सहस्र रुपये इकट्ठे हुए। इससे 'आर्य मुसाफिर' पत्र के संचालन के अतिरिक्त कुछ कार्यकर्ताओं की विधवाओं को भी सहायता दी जाती थी।

१९०३ ई० मे फरीदकोट में एक और आर्यवीर का बलिदान हुआ जो इस बात का सूचक था कि आर्यसमाज के कार्यकर्ताओ में धैर्य के लिए वही उत्साह और

त्यागभाव विद्यमान है, जैसा प्रारम्भकाल मे था। पं० तुलसीराम जी फरीदकोट मे स्टेशन मास्टर थे । वे प्रायः शहर मे आर्यसमाज का प्रचार करते रहते थे। पं० हरनामसिंह जी आर्यसमाज के एक जोशीले प्रचारक थे । पं० तुलसीराम जी के निमन्त्रण पर वे फरीदकोट गये और खडनात्मक व्याख्यान दिये। व्याख्यान सुनकर कुछ लोगों मे जोश पैदा हो गया । प्रतीत होता है कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने गोपीराम नाम के एक नौजवान को उत्पात के लिए रेलवे स्टेशन पर भेज दिया, जहाँ तुलसीराम जी स्टेशन मास्टर थे। वहा गोपीराम तुलसीराम जी से झगड़ने लगा। इस पर स्टेशन मास्टर की हैसियत से उसे स्टेशन से निकलवा दिया गया। गोपीराम ने इसका बदला तब लिया जब तुलसीराम जी स्टेशन से शहर की ओर आ रहे थे। उसने तुलसीराम जी की आखों मे मिरचें छिड़क दी, जिससे उन्हे कुछ देर के लिए देखने के अयोग्य बना दिया, इस दशा मे गोपीराम ने तुलसीराम जी के पेट मे छुरा भोक दिया जिससे उनका प्राणान्त हो गया।

प० हरनामसिंह जी की मूर्ति बहुत दर्शनीय थी । गोरे-गोरे रग पर सफेद दाढी खूब चमकती थी। मुह पर सदा सुर्खी बनी रहती थी । तेज चलते और तेज बोलते थे । उनके व्याख्यान प्राय' ब्रह्मचर्य पर होते थे । जिला करनाल की एक घटना उनकी कार्य-प्रणाली की सूचना देगी।

"एक बार जिला करनाल के बहानूखेड़ी नामक ग्राम मे प्रचार कर रहे थे कि एक ग्यारह वर्ष की लड़की का विवाह एक ६५ वर्ष के वृद्ध से होने का समाचार मिला। लडकी तथा उसकी माता इस विवाह के विरुद्ध थी। उन्होने द्वार बन्द कर लिया और बरातियों को खाली हाथ लौटना पडा । पण्डित जी ने अपने व्याख्यान से हवा ही ऐसी बांध दी कि जनता इस विवाह के विरुद्ध हो गयी। लडके वालो ने अवसर पाकर इन्हें लाठियो से पीटा, परन्तु ये अपने विरोधी आन्दोलन से नही हटे। फिर उन्होने घूस द्वारा इन्हे अपने वश मे करना चाहा । इन पर यह दाव भी नहीं चला। वह अनमेल विवाह नहीं हुआ, नहीं हुआ। पं० हरनामसिंह के प्रचार-प्रकार का उदाहरण यह चिर-स्मरणीय घटना है।" (रिपोर्ट)

सभा के नियत प्रचारकों में से प० शिवशकर काव्यतीर्थ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आप व्याख्याता होने के अतिरिक्त आर्ष साहित्य के बहुत बडे विद्वान् और लेखक थे। आपने ब्राह्मणो और उपनिषदो की जो व्याख्याए की हैं, उनसे आर्यसमाज के साहित्य के भण्डार में प्रशंसनीय उन्नति हुई है। ला० वजीरचन्द, महता जैमिनि, मा० लक्ष्मण जी आदि महानुभाव भी समय-समय पर प्रचार का कार्य करते रहते थे। सभा के मन्त्री प्रो० शिवदयालु जी गुरुकुल के उस समय के आचार्य प० गगादत्त जी के साथ मद्रास मे प्रचार करने के लिए भी गए थे । वहाँ उन्हे अच्छी सफलता मिली।

पंजाब में आर्यसमाज के काम की चर्चा करते हुए एक महान् व्यक्ति का स्मरण

प० विश्वम्भरनाथ जी

तक पं० विश्वम्भरनाथ जी की पजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा मे वह स्थिति रही, जो गाड़ी के पहिये मे नाभि की होती है। लोग पहिए को घूमता हुआ देखते थे, उन्हें पहिए की अराए भी दिखाई देती थी परन्तु उस नाभि को थोड़े ही लोग जानते थे, जिसके सहारे से यह सब कुछ घूम रहा था। वे कम बोलते थे। व्याख्यान देना या लेख लिखना उनकी कार्य-प्रणाली में शामिल नहीं था। अहम् की महिमा गाना या अपना विज्ञापन देना उनके स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध था। किसी सभा में जाते थे तो सब से पीछे बैठने का यत्न करते थे। बड़े लोगो से मिलने-जुलने मे बहुत सकोच मानते थे। प्रत्येक प्रश्न पर गंभीरता से विचार करना, अपने विचारों को व्यक्तियों और परिमित समाजो के सामने पूरे बल से उपस्थित करना और शरीर तथा मन से समाज की जितनी सेवा हो सके, वह करते जाना, यह पं० विश्वम्भरनाथ जी का स्थायी कार्यक्रम था। युवावस्था से ही वह पूरी तरह आर्यसमाज की ओर खिच गए थे। एल-एल० बी० की परीक्षा पास करने के पश्चात् नवयुवक प्रायः धन कमाने में लग जाते हैं परन्तु उन्होंने प्रारम्भ से ही आर्यसमाज की सेवा को मुख्य और स्वार्थ को गौण समझा। परमात्मा ने उन्हें सुन्दर रूप और बलवान् शरीर दिया था। उनकी दूर तक विचार करने की शक्ति भी बहुत अद्भुत थी। राय ठाकुरदत्त धवन मनुष्यों के बहुत कड़े परखैया माने जाते थे। वे कहा करते थे कि विश्वम्भरनाथ के जवान कन्धों पर बूढ़ा सिर रक्खा हुआ है। चालीस से अधिक वर्षो तक उनकी सारी शक्तियाँ आर्यसमाज की सेवा मे समर्पित रही। आप बहुत वर्षो तक सभा के उप-प्रधान रहे। कुछ वर्षो तक प्रधान रहे और ५ वर्ष तक गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता भी रहे। वे चाहे किसी स्थिति में रहे परन्तु जानने वाले लोग यह जानते थे कि सभा के ढर्रे को चलाने में सब से अधिक हाथ पंडित विश्वम्भरनाथ जी का ही रहता था। उनका जीवन सादगी, सदाचार और संयम का नमूना था। 'कर्म कुरु' इस उपदेश को उन्होने अपना मार्गदर्शक बनाया हुआ था। जब उनकी आयु ढल गई तब भी दिन मे आठ-दस मील पैदल घूमना और दिन भर समाज के कार्य मे लगे रहना उनकी दिनचर्या का मुख्य अंग था। वे नौजवानों से कहा करते (Rest is Rust) आराम करने से जंग लग जाता है। शरीर निर्बल हो गया तो भी कार्य करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि ७० वर्ष की आयु में हृदय की गति रुक जाने से उनका देहावसान हो गया। उन्हें आर्यसमाज रूपी समुद्र का छुपा मोती कहा जा सकता है।

चौथा अध्याय

प्रान्तों में आर्यसमाज की प्रगति (२)

संयुक्त प्रान्त

संयुक्त प्रान्त, जिसका वर्तमान नाम उत्तर प्रदेश है, भारत का सब से बड़ा प्रान्त है। लम्बाई-चौड़ाई मे, आबादी में, संस्कृति और इतिहास के स्मरणीय नामों और स्थानो में यह प्रान्त भारत भर मे बड़ा है। अवध और रुहेलखण्ड, पूर्वी भाग और पश्चिमी भाग आदि भिन्न-भिन्न टुकड़ो का समुच्चय होने से इसका विशाल भौतिक शरीर और भी अधिक विशाल प्रतीत होने लगता है। लखनऊ भी इसमें है और काशी भी। एक इस्लामी राज्यकाल का अवशेष है तो दूसरा प्राचीनतम भारतीय संस्कृति का स्मारक। पश्चिमी जिलों की खड़ी हिन्दी की तुलना पूर्वीय जिलों की जनता में प्रचलित अवधी भाषा से कीजिए तो आपको गुजराती, मराठी जैसी दो प्रान्तीय भाषाओ की सी भिन्नता प्रतीत होगी। भाषा और ऐतिहासिक परम्पराओ के भेद के कारण संयुक्त प्रान्त में सदा यह विशेषता रही है कि इसकी गति बहुत तीव्र नही है। वह हाथी की चाल से चलता है परन्तु जब चल पड़ता है तो उसकी गति निरन्तर हो जाती है। उसकी यह विशेषता तब बहुत उग्र रूप से स्पष्ट हो जाती है, जब हम उसकी तुलना पंजाब से करें। पजाब अपेक्षया छोटा प्रान्त है। यों तो उसका इतिहास शायद भारत के अन्य सब प्रान्तों से पुराना है परन्तु सीमा प्रान्त पर होने के कारण वह सदा विदेशी आक्रमणों का शिकार और अतएव युद्ध की भूमि रहा है। वहा के तक्षशिला आदि संस्कृति के केन्द्र सदियो पहले नष्ट हो गये थे। जब से विदेशियों का भारत में आक्रान्ता बन कर आना शुरू हुआ तब से शायद ही कोई सौ साल हो जिन में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन न हुआ हो। राज्य-परिवर्तन के साथ संस्कृति की पुरानी परम्पराओ का नाश और नई परम्पराओ का जन्म आवश्यक होता है। यूनानी, शक, हूण, सीथियन और मुसलमान पजाब मे प्रविष्ट हुए तो अपने साथ अपनी सभ्यता भी लाये। उन शीघ्र परिवर्तनो का पजाब के निवासियों की प्रकृतियों पर गहरा असर पड़ा। वे पुरानी परम्पराओं से प्रायः मुक्त हो गये, अत्यन्त प्राचीन संस्कृति के कोई केन्द्र रूढ़ियों की रक्षा करने के लिए न रहे और निरन्तर युद्ध ने उनमें सिपाहियो की विशेषताए भर दी। गुरु नानकदेव जी आये तो उनके अत्यन्त सरल आस्तिकता के उपदेशों ने सारे प्रान्त पर गहरा प्रभाव जमा लिया। महर्षि दयानन्द ने अपने कार्य का प्रारम्भ संयुक्त प्रान्त में किया। परन्तु उन्हें अपनी योजना को स्थूल रूप में कार्यान्वित करने का अवसर सब से पहले पंजाब में मिला। इसके भी वे ही कारण थे जिन से सिक्ख धर्म का शीघ्र प्रचार हुआ था। आकार की विशालता और प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओ के केन्द्र

होने के कारण संयुक्त प्रान्त मे किसी परिवर्तन का होना उतना आसान नही है, जितना पंजाब में। तो भी यह देखा गया है कि इस विशाल प्रान्त मे जब कोई जागृति की लहर आ जाती है तो वह धीरे-धीरे फैल कर स्थिर रूप धारण कर लेती है। गति मन्द तो होती है परन्तु होती है दृढ।

संयुक्त प्रान्त मे डी० ए० वी० कालेज और गुरुकुल की स्थापना और उनके सम्बन्ध में उत्पन्न हुए मतभेदों की चर्चा हम इससे पहले कर आए हैं। सयुक्त प्रान्त में मतभेद उत्पन्न तो हुए परन्तु उनमें उतना तीखापन नही आया, जितना पंजाब में। इसका कारण दोनों प्रान्तो की विशेषताओं का ऊपर जो विश्लेषण किया गया है, उससे स्पष्ट हो जाएगा। संयुक्त प्रान्त के कार्यकर्त्ताओं में परस्पर मतभेद उत्पन्न होने पर भी सब मिल कर काम करते रहे। कभी कोई भारी विस्फोट नही हुआ।

१९०१ में सभा के प्रधान कुवर हुक्मसिह जी थे। आप एक समृद्ध जमींदार थे। आपका धार्मिक उत्साह और सरल स्वभाव अनुकरणीय था। आपने १९०८ में अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति के दो भाग कर दिए थे। दातव्य धन दे कर जो शेष बचा उसका आधा अपने पुत्रों के नाम और आधा सभा के नाम कर दिया और स्वयं तन और मन से आर्यसमाज की सेवा में लग गए। आपने जीवन भर किसी न किसी रूप में आर्य-समाज और आर्यजाति की सेवा जारी रखी।

पं० भगवानदीन जी पहले १८९८ से १९०० तक और फिर १९०२ से १९०७ तक सभा के प्रधान रहे। जैसे हम पहले अध्यायों मे बतला आए है, प० भगवानदीन जी दृढ आर्यसमाजी थे। जब सरकारी नौकरी करते थे तब भी अधिक समय समाज के कार्य मे ही लगाते थे। समाज की सेवा और सरकारी नौकरी में संघर्ष होने पर आपने सर-कारी नौकरी को लात मार दी और सर्वतोभावेन धर्म की सेवा में लग गए। वर्षों तक प्रतिनिधि सभा के प्रधान रहे और फिर वर्षों तक गुरुकुल के अवैतनिक मुख्याधिष्ठाता का कार्य करते रहे। आपकी प्रबन्धसम्बन्धी योग्यता प्रसिद्ध थी। स्वयं नियमपूर्वक कार्य करने वाले थे इसलिए दूसरो से भी नियन्त्रण में रह कर काम करने की आशा रखते थे। आपने अपना आर्य-भास्कर प्रेस सभा को दान में दे दिया था। वह प्रेस अब भी भगवानदीन प्रेस के नाम से चल रहा है। पडित जी ने समाज संशोधन के कार्य में भी अपने प्रान्त का नेतृत्व किया। आपने अपनी विधवा पुत्री का विवाह उस समय किया था जब विधवा विवाह को बिरादरी से अलग करने के लिए पर्याप्त कारण समझा जाता था।

१९०९ से १९१३ तक पं० तुलसीराम स्वामी प्रधान पद पर आरूढ़ रहे। पं० तुलसीराम जी शास्त्रों के उद्‌भट विद्वान् थे, कुशल वक्ता और शास्त्रार्थ-प्रवीण थे और लेखक तथा सपादक थे। प्रारम्भ काल के आर्यसमाजियों मे यह विशेषता होती थी कि वे चौमुखी प्रवृत्ति रखते थे।

१९१४ में, पं० घासीराम एम० ए०, एल-एल० बी० प्रतिनिधि सभा के प्रधान निर्वाचित हुए। आपने १९१४ से १९१६ तक और फिर १९१८ में सभा-प्रधान का

कार्य किया। उसके पश्चात् भी कई वर्षो तक आप प्रधान की हैसियत से आर्यसमाज की सेवा करते रहे। पं० घासीराम जी अपने ढग के अद्‌भुत व्यक्ति थे। आप संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू के उद्‌भट विद्वान् थे। प्रत्येक विषय पर बड़ी गंभीरता से विचार करते थे। आपने 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' का अंग्रेजी मे प्रामाणिक अनुवाद किया था। आपके व्याख्यान और लेख सदा सारगर्भित होते थे। यह था पडित जी का गंभीर पहलू, किन्तु लोगों को यह देख कर आश्चर्य होता था कि आपके स्वभाव का एक विनोदपूर्ण पहलू भी था। आपकी मीठी चुटकियाँ मित्र लोगों को अब तक याद हैं। आप सस्कृत, हिन्दी और उर्दू में कविता किया करते थे और खाली वक्त में शतरंज की बाजी भी लगा लेते थे। पंडित जी आर्यसमाज की शोभा थे।

संयुक्त प्रान्त की प्रतिनिधि सभा के प्रारम्भ काल से ही उसके साथ एक ऐसे महान् व्यक्ति का नाम सम्बद्ध है, जिनके सम्बन्ध मे यह प्रश्न गौण हो जाता है कि वे किस पद पर काम करते थे। वे थे मु० नारायण प्रसाद जी। उन्होंने उप-मन्त्री, मन्त्री, उप-प्रधान आदि सब पदों पर रह कर कार्य किया। पद उनके लिए गौण था, कार्य मुख्य था। चाहे वे किसी पद पर रहे, परन्तु रहे गाड़ी के इंजन बन कर। १८९६ मे पहली बार सभा के उपमन्त्री निर्वाचित हुए। अगले वर्ष वे मन्त्री चुने गए। उस समय से लेकर जीवन के अतिम दिन तक वे आर्यसमाज के कार्य मे लगे रहे। प्रातीय सभा के उपमन्त्री पद पर कार्य आरम्भ किया और संन्यासी के रूप में सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा के प्रधान, आर्य-जगत् के प्रमुख नेता और दो सत्याग्रह-युद्धों के विजयी सेनानी बन कर उन्हे समाप्त किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी के पश्चात् श्री नारायण स्वामी जी आर्यसमाज के युग-निर्माता बने। इस स्थान पर इतना ही निर्देश पर्याप्त है। अगले पचास वर्षो के इतिहास मे उनकी चर्चा निरन्तर आती रहेगी।

उस समय के अन्य प्रमुख कार्यकर्त्ताओ मे चौबे दुलारेलाल जी एम० ए०, ठा० मशालसिह जी, बा० श्यामसुन्दरलाल जी, बाबू श्रीराम जी, डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी, बा० शालिग्राम जी, और गुलजार गोपाल गुप्त आदि महानुभावों के नाम पाए जाते हैं। मथुरा के पंडित श्री क्षेत्रपाल शर्मा कई वर्षो तक सभा के कोषाध्यक्ष रहे। आप संयुक्त प्रान्त के एक सफल व्यापारी और दृढ़ आर्य थे। मुरादाबाद के बाबू ब्रजनाथ बी० ए०, एल०-एल० बी० प्रभावशाली वक्ता और उत्साही कार्यकर्त्ता थे। आप कई वर्षो तक सभा के पुस्तकाध्यक्ष रहे। बाबू मदनमोहन सेठ एम० ए०, एल-एल० बी० १९११ में सभा के मन्त्री निर्वाचित हुए और निरन्तर आठ वर्ष तक उस पद पर सफलतापूर्वक कार्य करते रहे। उसके पश्चात् आप कई बार सभा के प्रधान चुने गए। आप सार्वदेशिक सभा के प्रधान भी कई वर्षो तक रहे और अन्त तक किसी न किसी रूप में आर्यसमाज की सेवा मे संलग्न रहे आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के २५ वर्ष पूरे हो जाने

श्री मदनमोहन सेठ

पर जो रजत जयन्ती मनाई गई, आप उसके संयोजक थे।

संयुक्त प्रान्त मे आर्यप्रतिनिधि सभा की स्थापना के समय प्रान्त भर में समाजो की सख्या ९१ थी। इनमें से कई आर्यसमाज महर्षि के समय में ही स्थापित हो गए थे। सभा की स्थापना होने के पश्चात् 'वैदिक-वैजयन्ती' में दिए हुए आंकड़ों से विदित होता है कि "सन् १८९७–९८ में २०५ समाज सभा मे प्रविष्ट हो चुके थे और ११ समाजों के प्रार्थना-पत्र प्रविष्ट होने के लिए आए हुए थे। ये सब कुल २१६ समाज हुए। सन् १८९६–९७ से ३१ सितम्बर १९११ तक उपदेशको द्वारा २१७ समाज स्थापित हुए, और ४९ समाज पुनर्जीवित किए गए। अर्थात् उपदेशको द्वारा खोले गए समाजो की संख्या २१६ हुई और पूर्वोक्त २१६ मिल कर कुल संख्या ४८२ हुई। इतने समय में अनुमान से १८ समाज स्वतंत्र उपदेशको द्वारा भी स्थापित हुए होंगे। अब यदि सब समाजो की संख्याओ को जोड़ा जाए तो ५०० होती है जो सभा के वार्षिक वृत्तान्तों के अनुसार ठीक ही है। इन ५०० समाजों में से २४४ समाज तो सभा मे प्रविष्ट है। शेष २५६ नाम मात्र ही हैं या उनका अस्तित्व ही नहीं रहा। आरम्भ काल से अब तक कुल ३३२ समाज श्रीमती सभा के रजिस्टर में प्रविष्ट किए गए और शेष १६८ अप्रविष्ट रहे।"

सभा से सम्बद्ध होने वाले आर्यसमाजों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई। १९२० ई० मे सबद्ध समाजों की संख्या ३२७ थी। १९३० मे वह बढकर ५०६ हो गई। उसके पश्चात् भी कई वर्षो तक समाजों की संख्या मे वृद्धि होती रही है।

वेद-प्रचार

संयुक्त-प्रान्त में वेद-प्रचार की संस्था का प्रारम्भ १८९५ ई० मे हुआ। आर्य-प्रतिनिधि सभा ने एक वेद-प्रचार मोहंरिक कमेटी बनाई, जिसके मन्त्री मनीषी (मुन्शी) नारायण प्रसाद जी थे। १८९६ मे वेद-प्रचार फंड के लिए धन सग्रह करने के निमित्त एक कमेटी का निर्माण किया गया, जिसके निम्नलिखित सभासद् थे :—

मनीषी नारायण प्रसाद, मुन्शी रामदयालु सिह, चौ० अनूपसिह, चौ० चुन्नी सिह, साहू ब्रजरत्न, बा० गुरुचरण, चोबे रामदुलारेलाल एम० ए०, साहू श्यामसुन्दर, बा० लखपतराय, बा० जगन्नाथ प्रसाद बी० ए०, चौ० भवानीसिह, बा० जीवन मल, पं० देवीशंकर जी बी० ए०, पं० मुरारिलाल शर्मा और मुन्शी भगवानदास। प्रारम्भ मे वेद-प्रचार का काम सामान्य गति से चलता रहा। जब पं० कृपाराम जी (स्वा० दर्शनानन्द जी) ने पंजाब से आकर संयुक्त-प्रान्त मे कार्य आरम्भ किया तब प्रचार-विभाग में मानो नई जान पड़ गयी। वेद-प्रचार विभाग की ओर से जो उपदेशक प्रचार का कार्य करते थे, उनके अतिरिक्त इस प्रान्त मे अवैतनिक प्रचारकों की संख्या बहुत अधिक थी। प० भगवानदीन जी मिश्र, पं० तुलसीराम स्वामी, पं० भोजदत्त शर्मा, पं० मुरारिलाल शर्मा, पं० रुद्रदत्त शर्मा, पं० विष्णुलाल शर्मा एम० ए०, पं० गंगाप्रसाद एम० ए०, बा० घासीराम एम० ए०, बाबू ब्रजनाथ बी० ए० और ठाकुर

मशालसिंह जी आदि विद्वानों के नाम विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। प्रारम्भ मे पंडित भीमसेन इटावे वाले ने भी प्रचार में पर्याप्त भाग लिया। उनके मत-परिवर्तन का वृत्तान्त पहले भाग में सुना आए है। पं० अखिलानन्द जी शर्मा ने भी प्रायः उन्हीं के चरण चिन्हों पर चल कर यह सिद्ध कर दिया कि भीमसेन जी की तरह उनका आर्य-समाजीपन भी आजीविका तक ही परिमित था। पं० अखिलानन्द जी शास्त्रों के ज्ञाता तो नहीं थे परन्तु संस्कृत साहित्य मे उनकी प्रगति अच्छी थी। उनके पिता ने बचपन से ही उन्हें सस्कृत बोलने का अभ्यास कराया था। बडे होने पर वे संस्कृत में कविता करने लगे और पद्यों मे महर्षि दयानन्द का चरित लिखा। उस चरित के प्रारम्भिक भाग में ही इस बात के प्रमाण विद्यमान थे कि उनका आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर वि-श्वास केवल बाह्य त्वचा तक ही परिमित था। काव्य मे पौराणिक देवी-देवताओ की आदर-पूर्वक चर्चा थी। परन्तु वे संस्कृत बोलते थे, महर्षि दयानन्द की प्रशंसा मे संस्कृत के श्लोक गाकर सुनाते थे और व्याख्यान वेदी पर से वैदिक धर्म की घोषणा करते थे, इस कारण कुछ काल तक आर्यजनता ने उनका इसी प्रकार आदर किया जैसे धर्मपाल (अब्दुल-गफूर) का किया था। जो लोग उनके निकट सम्पर्क मे आए, उन्होंने पहले से ही अनु-भव कर लिया था कि अखिलानन्द जी की गहराई बहुत कम है। उनके जीवन में धार्मि-कता या संयम का सर्वथा अभाव था। वे उन लोगो मे से थे जो आर्यसमाज में आकर भी जन्मना जाति के अभिमान को नही झाड सके थे। राजस्थान आर्य-प्रतिनिधि सभा के १९११ के विवरण मे पडित अखिलानन्द के सम्बन्ध मे निम्नलिखित समाचार छपा है :

"मन्त्री जी ने पेश किया कि पं० अखिलानन्द जी ने गत वर्ष जब कि मैं मन्त्री निर्वाचित हुआ था और कार्यालय भरतपुर से मेरे पास नहीं आया था, मुझ से कहा कि १००) अजमेर समाज से मुझे दिला दीजिए क्योंकि मेरा तीन मास का वेतन शेष है। श्री पं० वंशीधर जी शर्मा ने वेद प्रचार के धन में से बा० केशवदेव जी गुप्त मन्त्री आर्यसमाज अजमेर से १००) दिला दिए परन्तु कार्यालय के यहाँ आने पर ज्ञात हुआ कि उक्त पं० जी पर २९) प्रतिनिधि सभा के ही चाहिए। उसके बाद पडित जी को बहुत बार लिखा गया परन्तु पंडित जी ने आजतक कुछ उत्तर नही दिया और न प्रतिनिधि सभा की डायरी, रसीदबुक ही वापिस भेजी इत्यादि। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि यह सभा पंडित अखिलानन्द जी की इस कार्यवाही पर अत्यन्त शोक प्रकट करती है, और मन्त्री जी को अधिकार दिया जाता है कि वे चाहें जिस प्रकार कार्यवाही करके सभा का धन तथा कागजात प्राप्त कर लेवे।"

परिणाम यह हुआ कि कुछ वर्षों के पश्चात् वे न केवल भीमसेन जी की तरह आर्यसमाज से अलग हो गये, उन्हीं की तरह आर्यसमाज के कट्टर शत्रु भी बन गये। सनातन धर्म के उपदेशक बन कर जितनी गालियां महर्षि दयानन्द और आर्य-समाज को प० अखिलानन्द ने दी, उतनी शायद ही किसी अन्य ने दी हो।

अवैतनिक प्रचारको और मुख्य कार्यकर्ताओं मे पं० केशवदेव शास्त्री की चर्चा

आगे भी अनेक बार आयेगी। यहा इतना प्रारम्भिक निर्देश ही पर्याप्त है कि आपने अपना सार्वजनिक जीवन रावलपिण्डी में आरम्भ किया था, जहां आपने आर्यकुमार सभा की बुनियाद डाली थी। भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् के जन्मदाता शास्त्री जी ही थे। आपमे नवयुवकों को अपनी ओर खेंचने की असाधारण शक्ति थी। रावलपिण्डी से संस्कृत पढ़ने के लिए बनारस आकर आपने उसी को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया। आर्य नर-नारियो में नया जीवन फूकने के लिए 'नव-जीवन' नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला, जिसका आर्य-जगत मे खूब प्रचार हुआ। १९०९ ई० में शास्त्री जी के प्रयत्न से बनारस मे एक ब्रह्म-भोज हुआ, जिसमें सब जातियों के लोगों ने मिल कर एक स्थान पर बैठकर भोजन किया। इस सहभोज की आर्यसमाज में अनुकूल और प्रतिकूल खूब चर्चा हुई। जिन लोगों के मन मे अभी जन्मगत जात-पांत के संस्कार विद्यमान थे, उन्होंने ब्रह्मभोज की बहुत निन्दा की।

प० केशवदेव शास्त्री

सभा के वैतनिक प्रचारको मे पं० नन्दकिशोर शर्मा, पं० प्रयागदत्त अवस्थी, पं० लालमणि शर्मा, पं० वंशीधर आदि विद्वानो के नाम उल्लेखयोग्य है। अन्य भी अनेक वैतनिक और अवैतनिक उपदेशक लेख और वाणी द्वारा प्रचार का कार्य करते रहे। उन सब का परिचय तीसरे भाग में दिया जायगा। साहित्याचार्य पं० पद्मसिह शर्मा, आचार्य नरदेव शास्त्री, श्री पं भीमसेन शर्मा आदि ने भी अवैतनिक रूप मे वैदिक धर्म का बड़ी तन्मयता से प्रचार किया।

आर्य प्रतिनिधि सभा तथा समाजों की ओर से विशेष अवसरों पर प्रचार का विशेष प्रबन्ध किया जाता था। सन् १८८९ मे वृन्दावन के ब्रह्मोत्सव पर बहुत बडे पैमाने पर आर्यसमाज का प्रचार हुआ। सन् १८९१ में संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब की प्रतिनिधि सभाओं की ओर से सम्मिलित प्रचार हुआ, जिसमे दर्जन से अधिक आर्य विद्वानों ने भाग लिया। १९०३ मे दिल्ली में जो विशाल दरबार हुआ, उसमें भी पंजाव और संयुक्त प्रान्त की सभाओं ने मिलकर प्रचार की व्यवस्था की। १९१० ई० मे प्रयाग में एक बहुत बड़ी प्रदर्शनी हुई थी। उस अवसर पर बड़ी धूमधाम से वैदिक धर्म का प्रचार हुआ। कई दिनों तक बड़े-बड़े आर्य विद्वानों के व्याख्यान होते रहे। १९१६ में राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का अधिवेशन लखनऊ में हुआ। उस महत्वपूर्ण अधिवेशन में कांग्रेस के सूरत मे बिछड़े हुए दोनो दल

प० पद्मसिह शर्मा

राष्ट्रीय मंच पर फिर इकट्ठे बैठे थे, इस कारण उस अधिवेशन पर देश भर की जनता का असाधारण जमाव हुआ था। उस अवसर पर कई दिनों तक वैदिक धर्म के प्रचार की धूमधाम रही। इस प्रचार का प्रबन्ध आर्यसमाज गणेशगंज, सिटी आर्यसमाज और आर्य कुमार सभा की सम्मिलित शक्ति से हुआ। २९ दिसम्बर को आर्यसमाज के पंडाल में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ जिसमें महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय तथा महात्मा मुन्शीराम जी आदि के प्रभावशाली भाषण हुए।

इस विवरण से विदित होता है कि इन वर्षों में संयुक्त प्रान्त में आर्य प्रतिनिधि सभा के उद्योग और आर्यजनों के उत्साह तथा सहयोग से आर्यसमाज के प्रभाव का विस्तार होता गया। गुरुकुल वृन्दावन के स्थापित हो जाने पर आर्य नर-नारियों के मिलने, सदुपदेश सुनने और आर्यसमाज के कार्य को प्रत्यक्ष रूप में देखने का एक और अवसर निकल आया।

पांचवां अध्याय

प्रान्तों में आर्यसमाज की प्रगति (३)

राजस्थान तथा मालवा

हम पहले भाग में बतला आये हैं कि राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना १८८८ में हो गई थी। हमने यह भी बतलाया था कि दो कारणो से उस प्रान्त में आर्यसमाज के कार्य की प्रगति धीमी रही। महर्षि दयानन्द ने राजस्थान को आर्य-स्थान बनाने की यह योजना बनाई थी कि वहां के सब नरेशो को आर्य बना कर 'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धान्त के अनुसार प्रजा को आर्य बनने की प्रेरणा दी जाय। वह योजना पूरी न हो सकी। दुर्दैव बीच में आ कूदा। महर्षि के निर्वाण के पश्चात् उनके प्रमुख अनुयायियों की शक्ति परोपकारिणी सभा के चलाने मे लग गयी। इस कारण आर्यसमाज के प्रान्तीय संगठन का काम प्रारम्भ होने में विलम्ब हो गया।

राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना तो १८८८ ई० में हो गई थी परन्तु रजिस्ट्री १८९६ में हुई। सभा की स्थापना हो जाने पर धीरे-धीरे प्रचार का कार्य सगठित रीति से होने लगा। कुछ वर्षों तक दो उपदेशक ही प्रचार करते रहे। १९०८ ई० में उपदेशकों की सख्या बढ़ कर आठ हो गई। उन आठ उपदेशकों के नाम निम्नलिखित हैं :—

(१) पं० गणपति शर्मा
(२) पं० गगादत्त शर्मा
(३) प० वासुदेव शर्मा
(४) पं० भवानीप्रसाद शर्मा
(५) प० मुकुन्दराम शर्मा
(६) पं० ऊधोराम शर्मा
(७) पं० शमानन्द उपदेशक
(८) प० ओंकारदत्त शर्मा

१९०७ में पं० अखिलानन्द कविरत्न का नाम भी उपदेशकों की श्रेणी मे मिलता है। यह संख्या प्रतिवर्ष घटती-बढ़ती रहती थी। बीच मे एक समय ऐसा भी आया जब सभा के पास एक भी उपदेशक नहीं रहा। फिर नये उपदेशक रखे गये। यों सामान्य रूप से झुकाव उन्नति की ओर ही रहा। १९१५ ई० में उपदेशकों और

भजनीकों की संख्या मिलाकर ६ हो गई। १९२१ की रिपोर्ट में हम उपदेशकों तथा भजनीकों की सख्या १६ तक बढ़ी हुई पाते हैं। उनमें से कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने एक-दो महीने तक ही काम किया। इस प्रकार समय के साथ-साथ राजस्थान और मालवा में प्रचार कार्य का विस्तार होता गया।

प्रचार के साधनों की उन्नति के साथ-साथ आर्यसमाजों की संख्या मे भी वृद्धि होती गयी। जब राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई थी तब सभा मे केवल आठ आर्यसमाजे सम्मिलित हुई थी। धीरे-धीरे उन की सख्या बढ़ने लगी। १९०७ मे सम्मिलित समाजों की संख्या २१ तक पहुच गयी थी। १९१० की रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्ष के अन्त में सभा में ३५ समाजें सम्मिलित थी। १९१४ में उनकी संख्या ३८ हो गई। १९२१ ई० की रिपोर्ट से विदित होता है कि सब समाजें संख्या में ४७ थी जिन में से ३६ सभा में सम्मिलित और ११ असम्मिलित थी। १९२७ की रिपोर्ट में सूचना दी गई है कि इस समय तक राजस्थान व मालवा में कुल समाजे नई व पुरानी ८० हैं। इस ब्योरे से प्रतीत होगा कि यद्यपि आर्यसमाजो की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई तो भी वह वृद्धि संतोषजनक नहीं थी। अन्य कारणो के अतिरिक्त इसका बड़ा कारण यह भी था कि राजस्थान मे शिक्षा का बहुत कम प्रचार था। राजपूत शासक अपने पुरोहितो और कुलो की पद्धतियों से इतने बंधे हुए थे कि समाज-सुधार जैसी चीज उन्हे हौआ प्रतीत होती थी। शिक्षा के प्रचार से उनके घबराने का कारण स्पष्ट था। वे जानते थे कि यदि प्रजा शिक्षित हो जायेगी तो राज्य के कार्यों की आलोचना करने लगेगी और अधिकार मांगेगी। भारत के अन्य प्रांतों के कुछ नरेश उन्नति की ओर पग बढा रहे थे परन्तु राजस्थान मे अभी आधी रात का समय था। आर्यसमाज को बहुत ही ठोस चट्टानो से टकराना पड़ता था। इस कारण आर्यसमाज के अवैतनिक और वैतनिक कार्यकर्ताओं के बहुत प्रयत्न करने पर भी आर्यसमाज का प्रभाव बहुत मन्द गति से बढ रहा था।

राजस्थान के कुछ प्रारम्भिक आर्य नेता परोपकारिणी में उलझ जाने के कारण प्रतिनिधि सभा के कार्य से उपरत से हो गये थे। बहुत वर्षों तक राजस्थान प्रतिनिधि सभा के प्रधान पद को पं० वंशीधर जी शर्मा एम० ए०, एल-एल० बी० ने सुशोभित किया। पं० वंशीधर जी बहुत ही मिष्टभाषी, विनीत और उत्साही महानुभाव थे। उनका कार्यकर्त्ताओं पर सात्विक प्रभाव पड़ता था। बा० ब्रह्मानन्द जी और डा० सुखदेवदास जी कई वर्षों तक उपप्रधान रहे। बा० ब्रह्मानद जी (जो पीछे सन्यासी होकर स्वा० ब्रह्मानंद जी कहलाए) का जीवन आर्यसमाज की सेवा में ही व्यतीत हुआ। डा० सुखदेवदास जी अपने जोश और तल्लग्नता के लिए प्रसिद्ध थे। ग्वालियर के रईस कुंवर हुक्मसिह जी, भरतपुर एजसी के मीर मुन्शी श्री हीरालाल जी और अजमेर के वकील बाबू मिट्ठन लाल जी भार्गव आदि महानुभाव समय-समय पर प्रधान आदि उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकारों पर आरूढ होते रहे। अन्य कार्यकर्त्ताओं में हम

बा० महेशस्वरूप जी वर्मा, डा० गुरुदत्त (कोटा) तथा बा० मथुराप्रसाद जी आदि के नाम पाते हैं। श्री महेशस्वरूप वर्मा ने मन्त्री बनकर अपने सांसारिक अनुभव से लाभ उठाते हुए सभा के कार्यालय को व्यवस्था में लाने का यत्न किया। डिंगा निवासी पं० भक्तराम जी पहले पंजाब प्रतिनिधि सभा के उपदेशक थे। कुछ वर्षों तक गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापक रहे। उसके पश्चात् आर्यसमाज के काम को प्रगति देने के लिए उन्हें राजस्थान भेजा गया। वहाँ जाकर उन्होंने पंजाबी हल्ले से कार्य करने की चेष्टा की परन्तु उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। राजस्थान की सभा राजस्थान की गति से ही चलती रही। संगठन के विस्तार के अनुकूल ही सभा की आय की भी प्रगति रही। विवरणों से विदित होता है कि १९०५ में सभा की आय ६९३) रु० हुई, जो १९०७ में २११५) तक पहुंच गयी। १९२६ के विवरण में आय की राशि १४०५४) लिखी है।

राजस्थान में वे सभी प्रवृत्तियां जो आर्यसमाज के कार्यक्रम के साथ सम्बद्ध थीं बराबर जारी रहीं। पुष्कर आदि के मेलों पर विशेष प्रचार की व्यवस्था की जाती थी। कई मार्के के शास्त्रार्थ हुए जिनमें आर्यसमाज को सफलता मिली। राजस्थान की सभा ने अन्य प्रान्तों से एक विशेष बात यह की कि १९०९ में शास्त्रार्थों के नियम बना कर विद्वानों के पथ-प्रदर्शन के लिए दिए। सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा की स्थापना के समय जो प्रतिनिधि सभाएं उसमें सम्मिलित हुई थीं, उनमें राजस्थान की सभा भी थी। यद्यपि इस सभा को प्रारम्भ में सार्वदेशिक सभा का शुल्क भाग देने में कुछ कठिनाई हुई परन्तु शीघ्र ही अधिकारियों के प्रयत्न से वह दूर हो गई। जब पटियाले में रियासत की ओर से आर्यसमाजियों पर अभियोग चलाया गया तब और पं० गणपति जी की मृत्यु के पश्चात् उनके परिवार की सहायता के लिए चन्दे की अपील हुई तब भी सभा ने निर्णय किया कि उनकी आर्थिक सहायता की जाय। पटियाला केस के समाप्त हो जाने के कारण वहाँ सहायता भेजने की आवश्यकता तो न पड़ी परन्तु गणपति स्मारक के लिए सहायता बराबर जारी रही।

जब महर्षि जीवन के अन्तिम दिनों में राजपूताना में प्रचार के लिए आए थे तब यह आशा बंधी थी कि कुछ बड़ी रियासतों के शासक आर्यसमाज के पोषक बन जायेंगे। परन्तु महर्षि के निधन के पश्चात् परिस्थिति में परिवर्तन आ गया। उदयपुर और जोधपुर के नरेश, जो महर्षि से प्रभावित हुए समझे जाते थे, उनके पश्चात् फिर पुरानी रूढ़ियों के आवर्त में फंस गए। किन्तु महर्षि का प्रयत्न सर्वथा निष्फल नहीं गया। राजकुलों से सम्बन्ध रखने वाले कुछ महानुभाव आर्यसमाज के स्थिर सहायक बन गए। जोधपुर नरेश के छोटे भाई महाराज प्रतापसिंह की चर्चा पहले हो चुकी है। जोधपुर के दूसरे रईस जो निरन्तर आर्यसमाज के अंग बने रहे, राव राजा सूरजसिंह जी थे। आप आर्य प्रतिनिधि सभा के सदस्य होने के अतिरिक्त समाज के अन्य सब कार्यों में भी पूरा सहयोग देते थे। उदयपुर के राव राजा तेजसिंह आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान रहे और कठिन समयों में आर्यसमाज का हाथ बटाते रहे।

राजस्थान के नरेश-मण्डल में से जिन्हें आर्यसमाज की सेवा करने का सब से

अधिक श्रेय प्राप्त हुआ वे शाहपुराधीश सर श्री नाहरसिह् वर्मा थे। आप की नस-नस मे वैदिकधर्म का प्रेम व्याप्त था। आप चिरकाल तक परोपकारिणी सभा के प्रधान रहे। कोई आर्य-संस्था नही, जिसको आपने पुष्कल सहायता न दी हो। अपने बच्चों की शिक्षा के लिए आप प्रायः आर्य विद्वानो को शाहपुरा मे बुलाकर आदरपूर्वक रखते थे। गुरुकुल कागड़ी को आपने साहित्य-निर्माण के लिए एक बड़ी राशि स्थिर निधि के रूप में प्रदान की। आर्यभाषा के उपाध्याय की गद्दी भी आप ही की ओर से थी। आपके पश्चात् भी कुल-परम्परा मिटी नही। आपके उत्तराधिकारी महाराजा सर उम्मेदसिह् जी ने भी आर्यसमाज के साथ योग्य पिता की भाँति ही अपना प्रेम बनाए रक्खा और उन्हीं की पद्धति पर चलते रहे।

राजस्थान प्रतिनिधि सभा की ओर से कुछ संस्थाएं भी चलती थीं। सब से पुरानी सस्था गुलाब देवी मथुराप्रसाद पाठशाला थी। इसकी स्थापना राजस्थान की उदार सार्वजनिक कार्यकर्त्री श्रीमती गुलाबदेवी ने संवत् १९५५ विक्रमी मे की थी। कुछ वर्षों के पश्चात् यह पाठशाला आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रबन्ध मे आ गई। सभा अपनी ओर से इसके प्रबन्ध के लिए प्रतिवर्ष वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर एक प्रबन्ध-समिति नियुक्त कर दिया करती थी। यह पाठ-शाला अब भी चल रही है और सभा की ओर से दो प्रतिनिधि उसकी प्रबन्ध-समिति में भेजे जाते है।

राजस्थान प्रतिनिधि सभा की दूसरी सस्था राजस्थान से बाहर मथुरा में स्थापित हुई थी। उसका नाम श्री विरजानन्द साधु आश्रम था। यह आश्रम गुरुवर श्री स्वामी विरजानन्द जी के स्मारक रूप मे बनाया गया था, इस कारण इसे मथुरा में ही रखना उचित समझा गया। इस आश्रम की स्थापना ७ सितम्बर १९१० के दिन हुई। इसके प्रबन्ध के लिए भी प्रतिवर्ष एक प्रबन्ध-समिति नियुक्त कर दी जाती थी। इसमे मुख्य रूप से सस्कृत और शास्त्रो की शिक्षा दी जाती और किसी प्रकार की फीस नहीं ली जाती थी। इसकी व्यवस्था के सम्बन्ध मे राजस्थान प्रतिनिधि सभा की १९११ की रिपोर्ट में निम्नलिखित पंक्तियाँ है :—"अध्यापक श्रीमान् स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने अपना अमूल्य समय इस महान् कार्य की सहायतार्थ दिया है और तथ्य तो यह है कि यदि स्वामी जी महाराज अपना समय न प्रदान करते तो हमारा साहस इस कार्य को इतनी शीघ्रता से आरम्भ करने के लिए होना कठिन ही था, उक्त स्वामी जी महाराज के अतिरिक्त पं० आर्यव्रत भी १५) मासिक पर अध्यापक का कार्य करते हे।"

१९१४ में सभा ने इस आश्रम को अजमेर ले जाने का निश्चय करने के साथ-साथ यह भी निश्चय किया कि जिस मकान मे आश्रम था, वह गुरुकुल बृन्दावन के अर्पण कर दिया जाय।

इस (१९०१-१९१८) काल की राजस्थान की एक विशेष घटना, जिसका आर्यसमाज के इतिहास मे विशिष्ट स्थान है, धौलपुर आर्यसमाज के सम्बन्ध मे हुई।

राजस्थान की रियासतों के आर्यसमाज से सम्बन्ध सामान्य रूप से उपेक्षापूर्ण रहे। उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह को महर्षि ने परोपकारिणी सभा का प्रधान नियत किया था। आशा तो यह थी कि अन्य रियासतों की अपेक्षा महाराणा प्रताप की भूमि में धार्मिक सुधार का कार्य अधिक वेग से चल सकेगा। परन्तु महर्षि के निर्वाण के पश्चात् स्थिति एकदम बदल गई। कुछ वर्षों के लिए आर्यसमाज की प्रगति उदयपुर में सर्वथा रुक गई। जोधपुर में महाराज प्रतापसिंह जी और राव राजा सूरजसिंह जी आदि रईसों की सहानुभूति न्यूनाधिक रूप में कई वर्षो तक चलती रही। परिणाम यह हुआ कि उस रियासत में आर्यसमाज का काम किसी न किसी तरह चलता रहा। आर्यसमाज मन्दिर के झगड़ों के कारण आर्यपुरुषों में कुछ परस्पर मतभेद जारी रहे। सभा के अधिकारी उन्हें निबटाने का यत्न करते रहे। प्रतिनिधि सभा रियासतों के शासको तक वैदिकधर्म का संदेश पहुचाने का यत्न समय-समय पर करती रही। १९१४ में इन्दौर नरेश और भरतपुर के शासक की सेवा में आर्यसमाज का साहित्य भेंट किया गया। अन्य कई रियासतों मे आर्यसमाज के साथ उदासीनता का व्यवहार चल रहा था। न उसे रियासत की ओर से बढ़ावा दिया जाता था और न कोई बाधा उत्पन्न की जाती थी।

इसका यह अभिप्राय नही कि कभी किसी प्रकार का संघर्ष उत्पन्न होता ही नहीं था। प्रतिनिधि सभा के १९१४ की रिपोर्ट मे निम्नलिखित दो घटनाओं का उल्लेख है :—

"१. बीकानेर मे एक सुवर्णकार महाशय के लड़के का सभा के उपदेशक पं० नरसिंह शर्मा जी यज्ञोपवीत संस्कार कराने लगे तो वहाँ के पौराणिक समुदाय ने बड़ा शोर मचाया, लड़ने को तैयार हुए और दरबार की सेवा मे सस्कार को रुकवाने के लिए तार द्वारा प्रार्थना की, परन्तु प्रजापालक न्यायमूर्ति श्री दरबार ने पुलिस-विभाग द्वारा आज्ञा भेजी कि संस्कार शान्तिपूर्वक होने दिया जाय। श्रीमानों को इस न्याय-युक्त आज्ञा के लिए सभा अनेकशः धन्यवाद करती है और ईश्वर से प्रार्थी है कि जगन्नियन्ता श्रीमानों के राज्य को चिरस्थायी रक्खे कि जहाँ शेर और बकरी एक घाट पानी पीते रहे।

"२. इसी प्रकार रामगढ समाज के उत्सव के मौके पर भी विरोधियों ने बहुत उपद्रव किया था और सभा के उपदेशको पर कई प्रकार के अत्याचार किए और करने पर उतारू थे, परन्तु जब श्रीमान् रावराजा साहब सीकर वहाँ पधारे तो उन्होंने उन सबों को बुलाकर एक उपदेशपूरित भाषण दिया और आगामी के लिए ऐसे उपद्रव करने से रोका। हम श्रीमानों का भी अन्तःकरण से धन्यवाद करते है।"

जब इस उदार उदासीनता की पृष्ठभूमि पर रखकर हम धौलपुर काण्ड को देखते है तो वस्तुतः उसकी कालिमा पर आश्चर्य होता है। कोटा, भरतपुर आदि रियासतों का आर्यसमाज के साथ व्यवहार भी बहुत कुछ सहानुभूतिपूर्ण था। ऐसी दशा मे धौलपुर की सरकार ने जो अन्याय और अदूरदर्शिता से भरा हुआ व्यवहार किया,

उसका कारण समझना भी कठिन है। घटना इस प्रकार हुई। १९१५ के प्रारम्भ में आर्य प्रतिनिधि सभा के पास रिपोर्ट पहुची कि धौलपुर रियासत की ओर से धौलपुर के आर्यसमाज मन्दिर में अधिवेशन बन्द कर दिए गए हैं। इस पर सभा ने २६ अप्रैल के अधिवेशन में निश्चय किया कि सभा के मन्त्री पत्र द्वारा इस विषय का अनुसंधान करके महाराणा साहब धौलपुर से प्रार्थना करें कि वे कृपा करके आर्यसमाज को शीघ्र अपने अधिवेशन करने तथा प्रचार का कार्य करने की आज्ञा दे। यदि इस पर कार्य सिद्ध न हो तो प्रधान जी (बा० गौरीशंकर जी बैरिस्टर) स्वयं वहाँ पधारे और पदाधिकारियो से मिलकर प्रयत्न करें। इसके अतिरिक्त आवश्यकता के अनुसार डेपुटेशन भेजने का भी प्रयत्न किया जावे।

इस सम्बन्ध में आगे जो कार्यवाही हुई, उसका विवरण हम १९१८ ई० की सभा की वार्षिक रिपोर्ट से उद्धृत करते है :—

"सन् १९१७ ई० में सभा की ओर से श्रीमान् महाराज राना धौलपुर की सेवा में धौलपुर समाज मन्दिर भूमि के लिए डेपुटेशन पहुचा था, उस पर उक्त राना साहब महोदय ने यह स्वीकार किया था कि जो भूमि समाज की अवशेष है, वह तथा उसके समीप मे जो भूमि है, उसमे से समाज की काम में आई हुई भूमि के बदले में भूमि समाज को दे दी जाएगी। पर बजाय अपने वायदे को पूर्ण करने के जो शेष भूमि समाज की रही थी, उस पर भी अपना कब्जा कर लिया और मकानात राज्य की तरफ से बनाए जाने लगे। यहाँ तक कि हवन कुंड के स्थान पर फूस की टट्टी का पाखाना बनाया गया। ऐसी रिपोर्ट धौलपुर समाज से आने पर इस समाज के क्लर्क पं० मोतीलाल जी शर्मा को देखने के लिए भेजा गया। उनकी रिपोर्ट से मालूम हुआ कि वास्तव में पाखाना बनाया गया है। इस पर समाचार-पत्रों मे घोर आन्दोलन हुआ और सत्याग्रह के लिए सभा को आर्य पब्लिक ने मजबूर किया। सभा की ओर से इस भूमि के विषय में समाचार-पत्रो में सब हाल प्रकाशित किया गया इस पर और भी घोर आन्दोलन समाचार पत्रों में उठा। कई एक स्वार्थ-त्यागी वैदिक धर्म के हितैषी इस घोर अन्याय को जान कर अपनी-अपनी वसीयत करके अपना जीवन इस वैदिक धर्म के कार्य में न्योछावर करने के लिए धौलपुर पहुच गए और सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। इसी प्रसंग मे श्री मुन्शी नारायणप्रसाद जी (श्री नारायण स्वामी जी) भी शामिल थे। उन पर पत्थर भी फेंके गए थे और उनके चोट भी आई थी। इस कार्य में सबसे प्रथम भाग आगरे के नाथमल जी, तारादत्त जी वकील, अधिष्ठाता आर्यभास्कर प्रेस ने लिया जो कि सब हाल आपको समाचार-पत्रों द्वारा विदित हो ही चुका है। लगातार सत्याग्रह का कार्य चलते रहने पर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भी उस अवसर पर पहुंचे और वाइसराय व महाराज राना धौलपुर को सत्याग्रह के सम्बन्ध में सूचना कर दी। इस पर स्वामी जी महाराज को राना साहब ने कंडाघाट बुलाया और यथोचित फैसला करने का वायदा किया। सभा को उक्त स्वामी जी ने ता० २५-८-१८ को कंडाघाट पहुंचने की सूचना दी। उसके अनुसार श्रीमती सभा के प्रधान रावराजा तेजसिंह जी जोधपुर

को मन्त्री सभा ने सूचना दी कि मैं और स्वामी श्रद्धानन्द जी ता० २५-८-१८ को कंडाघाट पहुचेंगे। आप भी अवश्य पहुंचे। श्रीमान् रावराजा जी, हुकमसिंह जी तथा मन्त्री सभा उपरोक्त तिथि को कंडाघाट पहुंचे, पर पहुचने पर यह मालूम हुआ कि स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज ता० २४-८-१८ को ही महाराज राना साहब से फैसला करके धौलपुर लौट गए हैं। सत्याग्रही आर्य सभ्य इनके फैसले से असंतुष्ट रहे पर आर्य-समाज धौलपुर के सभ्यों ने उक्त स्वामी जी के फैसले को स्वीकार किया, अतः सभा ने भी ऐसी हालत में स्वीकार करना ही उचित समझा है।"

उस फैसले की मुख्य बाते यह थीं कि--"जो भूमि स्टेट बैंक के हाथ में आ गयी है, वह उसी के पास में रहेगी, आर्यसमाज को वापिस नहीं दी जायगी। जमीन के जिस टुकड़े पर हवनकुण्ड बन गया है, उसे बन्द कर दिया जायगा और किसी अन्य काम में नहीं लाया जायगा। वहां आर्यसमाजी तीन दिन तक हवन कर सकेंगे। उसकी चाबी आर्यसमाज के मन्त्री के पास रहेगी। परन्तु वह उसे काम मे नही ला सकेंगे। कौटन फैक्टरी रोड पर १००×१०५ फीट का एक टुकड़ा आर्यसमाज के मन्दिर के लिये दिया जायगा। उस टुकड़े का चुनाव स्वामी श्रद्धानन्द जी और जुडिशियल सेक्रे-टरी मिलकर कर लेंगे।"

इस फैसले के अनुसार उस स्थान पर हवन आरम्भ हुआ। उस समय जो कुछ हुआ वह हम सभा की रिपोर्ट से उद्धृत करते हैं:---

"हवन प्रारम्भ होते ही समस्त प्रजा को भड़काया गया और हवन समाप्त होने तक समस्त प्रजा को आर्यसमाज के सभ्यों के मुकाबले मे लड़ने को तथा पत्थर बरसाने के लिये मजबूर कर दिया ताकि उठकर आर्यसमाजी चले जावें। दूकानो पर पहुचते ही गिरोह का गिरोह जनता का आया और पत्थर बरसाना आरम्भ किया। ४-५ बार पत्थर बुरी तरह बरसाये गये पर आर्यसामाजिक सभ्य, जो उस समय उपस्थित थे, निडर होकर अपने स्थान पर डटे रहे। २-३ आर्य पुरुषों के चोट आई। आखरी पत्थर-वर्षा में स्वामी श्रद्धानन्द जी के शिर पर चोट आई, उस पर काजी जी साहब पधारे और कहने लगे कि मैं आप की रक्षा यहां पर नहीं कर सकता, आप डाक बंगले पर जावें, मैं गाड़ियां भेजता हूं। गाड़ियो द्वारा हम सब डाक बंगले पर पहुंचाये गये। दिखा-वटी पुलिस का प्रबन्ध था, पर पुलिस और पल्टन के लोग, जो प्रबन्ध कर रहे थे, स्वय आंख चुरा-चुरा कर पत्थर फैंकते थे। डाक बंगले पर भोजन आदि का कुछ प्रबन्ध नहीं था और न बाजार से ही मिलता था। बड़ी कठिनाई से यहाँ के स्टेशन मास्टर से कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध किया। इस पर स्वामी जी महाराज ने पोलिटिकल एजेन्ट और महाराज को इस आशय का पत्र लिखा कि २७ अगस्त १९१८ की घटना की जाँच करने के लिए कमीशन बिठाया जाय और उसकी रिपोर्ट आने पर जो वायदा किया गया है, उसे पूरा किया जाय। महाराणा उन दिनो पहाड़ पर गए हुए थे। इस कारण बहुत देर तक वह मामला लटकता रहा। अन्त मे जो निश्चय हुआ उसमें आर्यसमाज का हाथ ऊंचा रहा। धौलपुर में न केवल आर्यसमाज मन्दिर

बन गया, रियासत अथवा वहाँ की जनता की ओर से उनका विरोध भी बन्द हो गया।"

राजस्थान के आर्यजीवन में प्रारम्भ काल से ही शारदा परिवार का विशेष स्थान रहा है। 'आर्यधर्मेन्द्र जीवन' के लेखक श्री रामविलास शारदा तथा महर्षि दयानन्द, हिन्दू सुपिरियौरिटी' आदि के लेखक श्री हरविलास शारदा अपने समय में आर्यसमाज के प्रमुख स्तम्भ थे। उनके उत्तराधिकारियों ने भी कुल-परम्परा की रक्षा की। श्री सूर्यकरण शारदा जब तक जीवित रहे, तब तक समाज की सेवा में निरत रहे। श्री चाँदकरण शारदा और डा० मानकरण शारदा ने आर्यसमाज की अनेक प्रकार से सेवा की और कर रहे है, विशेषतः कुंवर चाँदकरण शारदा ने तो अपने आपको आर्यसमाज के अर्पण ही किया हुआ है, आर्यसमाज पर संकट आने का समाचार सुन कर जो आर्य प्राणो की बाजी लगाने के लिए धौलपुर पहुंच गए थे, चाँदकरण उनमे सबसे आगे थे। आपने अनेक अवसरो पर और अनेक प्रकार से आर्यसमाज की सेवा की है। केवल राजस्थान के ही नही अपितु देशभर के आर्य-नेताओं में आपका विशेष स्थान है।

कुवर चाँदकरण शारदा

आपके कामों की विशेष चर्चा यथास्थान आती रहेगी।

प्रान्तों में आर्यसमाज की प्रगति (४)

बम्बई

बम्बई नगर में आर्यसमाज की स्थापना महर्षि के जीवनकाल में ही हो गई थी। उसका संक्षिप्त वृत्तान्त इस इतिहास के प्रथम भाग में दिया जा चुका है। महर्षि बम्बई के अनेक प्रतिष्ठित नागरिको के निमन्त्रण पर विक्रमी संवत् १९३० (सन् १८७४) मे बम्बई पधारे और बालुकेश्वर मे ठहरे। उत्साही सज्जनो की ओर से महर्षि के व्याख्यानो की व्यवस्था की गयी और समाचार पत्रों में विज्ञापन द्वारा विशेष रूप से वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों और सामान्य रूप से सभी मतावलम्बियों को धर्म-चर्चा के लिए आमन्त्रित किया गया। उस समय किसी बड़े शास्त्रार्थ की योजना तो न बन सकी, परन्तु शका-समाधान प्रायः प्रतिदिन होता रहा। उसका प्रभाव यह हुआ कि वैदिक धर्म में श्रद्धा रखने वाले लोगो के मन में विधिपूर्वक समाज बनाने का विचार उत्पन्न हुआ। स्वामी जी महाराज ने उस विचार से अपनी सहमति प्रकट की। इस प्रकार आर्यसमाज की स्थापना का निश्चय तो हो गया परन्तु किसी हिन्दू-नामधारी सज्जन ने समाज के लिए अपना स्थान देना स्वीकार नही किया और आर्यसमाज के समर्थकों को अनेक प्रकार के भय दिखाकर आर्यसमाज की स्थापना को रोकने की चेष्टा की। उस समय एक पारसी सद्गृहस्थ डा० श्री माणिकजी ताऊस जी ने उदारता दिखाई, उन्होंने कम्पाउन्ड में आर्यसमाज का अधिवेशन करने की अनुमति दे दी। वहां पर सं० १९३१ चैत्र, शुदि प्रतिपदा तदनुसार सन् १८७५, ७ अप्रैल, बुधवार के दिन, सायकाल के समय श्री गिरधरलाल दयालदास कोठारी की अध्यक्षता में नियमपूर्वक आर्यसमाज की स्थापना हो गई। उस समय आर्यसमाज के जो नियम बनाय गये थे, उनका विवरण पहले भाग मे दिया जा चुका है।

आर्यसमाज की स्थापना तो हो गई परन्तु जब उपस्थिति कुछ बढ़ने लगी तब वह स्थान कम पड़ गया। शीघ्र ही अनुभव होने लगा कि कोई अपना बड़ा स्थान हुए बिना काम नहीं चल सकता। तब बहुत प्रयत्न करके इस कार्य के लिए गिरगाव रोड पर एक प्राइवेट इंग्लिश स्कूल जिसका संचालन श्री विष्णु गोविन्द जी करते थे, प्राप्त किया और उसी स्कूल में १० अप्रैल को आर्यसमाज बम्बई की प्रथम साप्ताहिक सभा हुई, जिसमें स्थानीय समाज के उपनियम तथा सदस्य स्वीकार किये गये। आर्यसमाज बम्बई के प्रारम्भिक सदस्य ९६ थे। पहले अधिकारी निम्नलिखित चुने गये :—

श्री गिरधारीलाल दयालदास कोठारी	प्रमुख
श्री ठाकरसी नारायण जी	उप प्रमुख
श्री पानाचन्द आनन्द जी पोरख	मन्त्री
श्री अन्नामार्तण्ड जोशी	उप मन्त्री
श्री सेवकलाल करसनदास	कोषाध्यक्ष
श्री शाम जी विश्राम	उप कोषाध्यक्ष

अन्तरंग सदस्य

१. श्री मूलजी ठाकरसी	६. श्री बाबू शोखीलाल झवेरीलाल
२. श्री छबीलदास लल्लूभाई	७. श्री अक्षयकुमार मित्र
३ श्री हनमतराम पित्ती	८. श्री पुरुषोत्तम नारायण जी
४. श्री आत्माराम वापुदलवी	९. श्री महाशंकर देव
५. श्री किशनदास बाबा उदासी	१०. श्रीरघुनाथ गोपाल देशमुख

आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् बम्बई नगर मे वैदिक धर्म की चर्चा चारो ओर फैल गई। बम्बई नगर स्वयं एक प्रान्त के समान है। एक प्रान्त में जितने संप्रदायों के लोग पाये जाते है, या जितनी भाषाएं बोली जाती है, बम्बई मे उससे कम नहीं। जैसे हम पहले बतला आये है, महर्षि के जाने से पूर्व वहां वल्लभ संप्रदाय का दौर-दौरा था। स्वाभाविक ही था कि सुधारक सस्था के स्थापित होने पर वल्लभ संप्रदाय के आचार्यों और अनुयायियों में खलबली मच जाती। उस विचार-सघर्ष का परिणाम एक शास्त्रार्थ के रूप में प्रकट हुआ।

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व एक नदिया शांतिपुर निवासी रामलाल नामक पंडित था। स्थानीय पडितों ने उसे श्री स्वामी जी महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत किया और भाई जीवण जी के घर पर ता० २९ मार्च, १८७५ को शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ पं० रामलाल के समकक्ष विद्वान् श्री शास्त्री रामभाऊ घारपुरे थे। उन्होंने अपने अभिप्राय को प्रकट करते हुए बताया कि पं० रामलाल पाषाण-पूजन वेद से सिद्ध नहीं कर सका। यह सुनकर तत्रस्थ मंडली बौखला गई।

बम्बई मे दूसरा बड़ा शास्त्रार्थ रामानुज संप्रदाय के पंडित कमलनयन आचार्य से हुआ, जिसका विस्तृत वृत्तान्त पहले भाग में दिया जा चुका है। इन दो शास्त्रार्थों से बम्बई में आर्यसमाज की जड़ें बहुत गहरी चली गईं। शीघ्र ही आर्यजनों को यह अनुभव होने लगा कि अपना समाज मन्दिर हुए बिना कार्य का विकास होना असम्भव है। सन् १८८२ ई० में काकड़वाड़ी लेन में वह स्थान खरीदा गया जहां वर्तमान समाज मन्दिर बना हुआ है। इस कार्य में सेठ श्री सुन्दरदास धर्मसिह, सेठ श्री लीलाधर हरिदास और श्री सेठ जीवनदास मूलजी ने तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग दिया। समाज मन्दिर की आधार शिला यज्ञ आदि के पश्चात् श्री स्वामी जी महाराज के करकमलों

द्वारा संपादित हुई और समाज-मन्दिर का निर्माण भी श्री स्वामी जी के निर्देशानुसार ही होता रहा।

२८ फरवरी १८८२ को समाज स्थान की रजिस्ट्री हो गई । और १३ अप्रैल के दिन निम्न सज्जनों का ट्रस्ट बना कर समाज की संपत्ति उसे सौप दी गई:——

१. श्री गोपाल राव हरि देशमुख
२. श्री सेवकलाल करसनदास
३. श्री सुन्दरदास धर्मसिह
४. श्री जीवनदास मूल जी
५. प्राणजीवन दास कानदास

इस ट्रस्ट में जो स्थान मृत्यु अथवा अन्य कारणों से रिक्त होते रहे उनके स्थान पर नए ट्रस्टी चुने जाते रहे । १९५४ में उसके ट्रस्टी निम्न लिखित थे .

१. श्री जम्मूभाई पुरुषोत्तम काकु
२. श्री रतर्नासह रार्यासह
३. श्री बसन्तराय रतिलाल पटेल
४ श्री जगन्मोहन दह्या भाई शाह
५ श्री ईश्वरलाल गोविन्द जी

आर्यप्रतिनिधि सभा की स्थापना

गजरात तथा सौराष्ट्र प्रान्त मे भ्रमण करते हुए महर्षि के उपदेशो से प्रभावित जनो में आर्यसमाज की स्थापना के विचार उत्पन्न हो चुके थे । बम्बई मे आर्यसमाज की स्थापना होने के पश्चात् उसके उपदेशक श्री पं० कृष्णराम इच्छाराम ने प्रान्त में प्रचार का क्रम जारी रखा। कुछ ही वर्षो मे राजकोट, सूरत, पूणा (जि० सूरत), दमण, जलालपुर, दादरा, खलकची, डुगरा, खर्शाड़, पूना, भरूच, अहमदाबाद, भावनगर, धाग्, मलवाड़ा, उगतथ, बीजैपुर, येवला, बेगलूर, बोरमगॉव, राडापुर, हुगली, अड़ास, इटोला, देगाम आदि स्थानो पर आर्यसमाज स्थापित हो गए। सन् १८८६ के नवम्बर मास मे समस्त उपर्युक्त समाजो के प्रतिनिधियों को बुलाकर श्री सेवकलाल करसनदास द्वारा रचे प्रदेश सभा के नियमों के अनुसार प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा की स्थापना की गई। श्री प्राणजीवनदास सभा के मन्त्री निर्वाचित हुए। प्रान्तीय सभा की ओर से पं० कृष्णराम इच्छाराम, स्वामी ईश्वरानन्द जी तथा स्वामी शिवानन्द जी प्रचार-कार्य करते थें । समय-समय पर पडित सेवकलाल जी भी प्रचार-कार्य में सहयोग देते थे।

इन्हीं दिनों बम्बई के कुछ उत्साही नवयुवकों की ओर से वैदिक धर्म प्रचार के लिए आर्यसमाज के समानान्तर एक वेद-धर्म-प्रचारिणी-सभा नाम की संस्था स्थापित की गई। इस सभा के उपदेशक पं० बालकृष्ण जी शर्मा थे। कुछ वर्षो तक यह सभा पृथक् कार्य करती रही। १९०१ मे आर्य पुरुषों के परस्पर मिल कर प्रयत्न करने से वेद-धर्म प्रचारिणी सभा आर्यसमाज मे विलीन हो गयी।

जब लाहौर आर्यसमाज के सदस्यों में दो दल बन गए और दोनों दलो में मांस-भक्षण के सम्बन्ध मे मतभेद बहुत तीव्र हो गया तब परोपकारिणी सभा के मन्त्री ने सब

प्रतिनिधि सभाओं को पत्र भेज कर उनकी सम्मति मांगी थी। उसके उत्तर में बम्बई प्रान्त की प्रतिनिधि सभा की ओर से जो उत्तर भेजा गया, विशेष महत्वपूर्ण होने के कारण हम उसे अविकल उद्धृत करते है।

श्रीयुत हरविलास शारदा बी० ए० ज्वाइन्ट सेक्रेटरी श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर,

प्रिय महाशय नमस्ते !

आपका मिति बिना का नं० १२ का पत्र मिला। पढ के आश्चर्य हुआ कि यदि श्रीमती परोपकारिणी सभा आर्यसमाजों से पिता-पुत्रवत् सम्बन्ध रखती है तो फिर मांस-विषय मे अपनी राय जो स्वर्गवासी पं० दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश में प्रकट की है, उसी को छोड़ के समाजो का अभिप्राय लेने क्यों चाहती है? क्योंकि श्रीमती परोपकारिणी सभा को हम स्वामी जी के स्थानापन्न समझ के ही इसी की आज्ञा का पालन करते है तो फिर हमारी समाजो का इस धर्म विषय मे अभिप्राय लेने की क्या अपेक्षा है? और विशेष मे स्वर्गवासी स्वामी जी ने इस विषय में आगे ही लिखा है, और यदि समाजो पर उपकार करके आगे परोपकार बढ़ाने के लिए ही तो वे भी भिन्न अहातों (इलाको) के सभासद् होने से श्रीमती परोपकारिणी सभा उन्ही के द्वारा जान सकती है और किसी धर्मान्तिरगत विषय मे स्वर्गवासी स्वामी जी महाराज का लेख न हो तो, पंडितो द्वारा विदित कर सकती है और यदि विदित किया हुआ विषय मे यदि कोई आर्य-समाज संशयित हो तो भी वे अपनी-अपनी प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रथम उसी विषय पर पुनः विचार करने के लिए पेश करें। वैसी व्यवस्था से श्रीमती परोपकारिणी सभा और आर्यसमाजो का पिता-पुत्रवत् सम्बन्ध उचित है और जब ही आगे ठीक-ठीक सम्बन्ध रह भी सकता है। इसी से आपके लक्ष मे आजायेगा कि हमारे अहाते की समाजों की फेहरिस्त की आपके इस कार्यवाही के लिए कुछ अपेक्षा नही है।

श्रीमती परोपकारिणी सभा अपने को तटस्थ रख कर स्वर्गवासी स्वामी महा-राज के स्वीकार पत्र के १० वां नियम की सहायता से आर्यसमाज मे से जिन की सम्मति अद्य पर्यन्त नही आई है, मगवा के, आई हुई सम्मतियो के बहु पक्षानुसार सभा का निर्णय प्रकट करने को चाहती है। परन्तु वे कार्य जभी सभा का पूरा-पूरा निश्चय और विश्वास न हो तभी करना चाहिए। तो अवश्य नम्रतापूर्वक श्रीमती परोपकारिणी सभा को प्रष्टव्य है कि 'अहिंसा परमो धर्म:' वेदोक्त है, इस बात पर आपका भी क्या पूरा-पूरा विश्वास नही है? कि आप इस नियम के अनुकूल बहु पक्षानुसार निश्चय करना चाहते हो? और विशेषतया जो जो मुम्बई प्रतिनिधि सभा से आपको इस हाथे मे परोपकार बढ़ाने के लिए निवेदन भेज गये है, कभी प्रत्युत्तर भी ठीक-ठीक नहीं मिला है और मुम्बई हाथे का जो स्थान रा० ब० गोपालराव हरि जी के स्वर्गवास से रिक्त हुआ था, वह भी अपनी यथारुचि से अन्य हाथे के सभासद् से पूरित किया और हेतु में दिया है कि "और क्योंकि ठाकुर मुकुन्द सिह तथा मि० रामगोपाल महाशय इस समय उपस्थित है।" हमारा उन दोनों महाशयो की ओर पूर्ण प्रेम और मान है, परन्तु

यदि उपस्थित होने पर ही परोपकारिणी में प्रविष्ट होना योग्य है चाहे जिस हाथे (अहाते) का स्थान रिक्त हो, उसका कोई विचार नहीं तो फिर परोपकारिणी के एक-देशी आगे बन जाने में कोई सशय नही। इसका भी ख्याल रखना था। खैर सच कहो तो मुंबई हाथे की आर्यसमाजों का कोई भी साम्प्रत आर्य धर्म प्रवर्तक आर्य सभासद् परोपकारिणी के सभा मे नही है कि जिसके द्वारा हमारी प्रतिनिधि अपना कार्य अन्तरंग निवेदन करा सके अर्थात् मुबई हाथे की ओर पितृभाव बतानें को सदैव श्रीमती परोपकारिणी को संकोच इसी कारण से रहा ऐसा अनुभव से सिद्ध हुआ है। तो फिर इस दशा मे श्रीमती परोपकारिणी सभा से परोपकार कराने के हेतु से पीछे-पीछे चल के किसी सभासद् का विशेष हेतु सिद्ध होने के लिए जिससे कुछ भी आगे इस हाथे को लाभ होने का सभव तो नहीं वरन् हानि होने का संभव हो वैसे रगडे मे अपनी शक्ति व्यय करने का अयोग्य समझ के हमारी प्रतिनिधि की अंतरंग सभा का यह निश्चय हुआ है कि "श्रीमती परोपकारिणी की सहाय की आशा साम्प्रत छोड़ के अपने ही हाथे में अपनी ज्यों-ज्यों शक्ति बढ़ती जाय त्यो-त्यो आर्यधर्म का प्रचार करने का पुरुषार्थ करना," सुज्ञेषु किमधिकम्।

आपका कृपाकाँक्षी

प्राण जीवनदास नारायणदास डाक्टर

मन्त्री, आर्यप्रतिनिधि सभा, मुंबई प्रदेश।

इन दिनों मुंबई प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ गुजरात, कच्छ, काठियाबाढ़, सिन्ध, कर्नाटक और महाराष्ट्र प्रान्त के समाजों का सम्बन्ध था। जब सिन्ध प्रान्त अलग बन गया तब वहाँ की समाजे पृथक् हो गई। शेष प्रान्तो की समाजे बम्बई की प्रान्तीय सभा से ही सम्बद्ध होती रहीं।

सभा की ओर से प्रचार कार्य के लिए १९०४ मे एक ट्रैक्ट विभाग की स्थापना को गयी और स्वाध्याय को उत्साहित करने के लिए सत्यार्थप्रकाश की परीक्षाओं की योजना करी। वर्ष में प्रान्त के किसी न किसी नगर मे "आर्य धर्म परिषद्" नाम से एक सम्मेलन भी किया जाने लगा जिससे आर्यसमाज के विस्तार में पर्याप्त सहायता मिली।

गुरुकुल शान्ताक्रुज

सभा के कतिपय सदस्यों तथा गुरुकुल शिक्षा-प्रेमियों की ओर से बम्बई के शान्ताक्रुज नामक उपनगर में एक गुरुकुल की स्थापना की गई। श्री स्व० राम जी भगवान् झवेरी के १० हजार के दान से संस्था का कार्य प्रारम्भ किया गया। श्री पं० बालकृष्ण शर्मा प्रथम आचार्य नियुक्त किए गए। प्रतिनिधि सभा के अन्तर्गत विद्या-सभा नामक उपसभा द्वारा गुरुकुल का संचालन होता रहा। श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज के कथन पर बड़ौदा के महाराज ने गुरुकुल के लिए अपना उमरेट स्थित महल देने का निश्चय किया परन्तु वह स्थान भी ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं होनें से गुरुकुल देवलाली भेज दिया। वर्तमान मे यह गुरुकुल हाई-स्कूल के नाम

से बम्बई के घाटकोपर उपनगर मे चल रहा है। गुरुकुल की संचालिका विद्यासभा में वर्तमान में प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा का प्रतिनिधित्व न होने से यह संस्था आर्यसमाज के हाथ से निकल सी गयी है।

सभा की ओर से 'आर्यप्रकाश' नामक साप्ताहिक पत्र नियमित रूप से प्रकाशित होता रहा। सभा ने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका संस्कार विधि, आदि ऋषिकृत ग्रंथो के अनुवाद प्रान्तीय भाषा मे प्रकाशित किए और कतिपय अन्य उपयोगी पुस्तकों का भी प्रकाशन किया।

बम्बई प्रान्त मे बंबई नगर की परिस्थिति अन्य प्रान्तो की राजधानियों की अपेक्षा बहुत भिन्न है। प्रान्त के बड़ौदा, अहमदाबाद आदि अन्य नगरों मे आर्यसमाज के कार्य का प्रारम्भ बहुत देर में हुआ। शुरू के लगभग ३५ वर्षों तक बम्बई का आर्यसमाज ही प्रान्त के कार्य का केन्द्र बना रहा। कार्यकर्त्ताओं में भी वही के आर्य-सज्जनो की प्रमुखता रही। सबसे पुराने आर्यजनो मे श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा तथा श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के नाम भी मिलते हैं। परन्तु श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा के विलायत चले जाने और चिन्तामणि जो के कुछ प्रबन्ध सम्बन्धी वैमनस्य से आर्यसमाज से पृथक् हो जाने के कारण वह प्रान्तिक प्रचार कार्य मे कोई विशेष भाग न ले सके। प्रारम्भिक कार्यकर्त्ताओं के नाम पहले दिए जा चुके है। उनके पश्चात् जिन महानु-भावो ने आर्यसमाज की विशेष सेवा की, उनमे से डा० कल्याणदास देसाई, श्री सेठ शूर जी वल्लभदास, पं० बालकृष्ण जी शर्मा, श्री महा-राणी शकर शर्मा, श्री रणछोड भवान, राजा गोविन्द-लाल पित्ती आदि महानुभाव मुख्य थे। डा० कल्याण-दास देसाई उन आर्य-पुरुषो में से है, जिन्हे केवल एक ही धुन रही है और वह आर्यसमाज की। अनेक प्रकार के आन्दोलन उठे और शान्त हो गए, कई आँधियाँ भी आई और सिर पर से गुजर गई परन्तु डाक्टर जी ने आर्यसमाज को छोड कर अन्य किसी संस्था की ओर आँख उठा कर भी नही देखा। इसमे सन्देह नही कि डाक्टर देसाई की एकमनरकता असन्दिग्ध थी। श्री सेठ शूर जी वल्लभदास अपने ढग के विलक्षण पुरुष थे। स्वयं कमाकर बम्बई के धनी-मानी लोगों में गिने जाने लगे। एक जोरदार लेखक ने यहाँ तक लिखा था कि वे सोने की थैलियों पर सोने लगे। इतना होने पर भी जीवन के अन्त तक उनमें दो विशेषताएं अक्षुण्ण रूप से बनी रही। एक तो वे वेद और वेदज्ञों के परम भक्त और पोषक रहे और दूसरे अतिथि-सत्कार के लिए चौपाटी की ओर देखता हुआ उनका सात-मजला कच्छ कैसल अतिथि-सेवा के लिए सदा प्रसिद्ध रहा। आर्यसमाज के हों या

सेठ शूर जी वल्लभदास जी

किसी अन्य सार्वजनिक सस्था के, जो भी महानुभाव बम्बई मे आकर कुछ समय ठहरना चाहें, उनके लिए कच्छ कैसल का द्वार खुला रहता था। उन्होंने अपने धन, आतिथ्य-सत्कार, विनयी स्वभाव और शुभ परामर्शों द्वारा चिरकाल तक बम्बई प्रान्त की आर्य-संस्थाओं को लाभ पहुंचाया।

कहने को तो पं० बालकृष्ण जी प्रतिनिधि सभा के उपदेशक थे परन्तु वस्तुतः उन्हें प्रचार की जलधारा के भगीरथ कहना ही उचित है। पंडित जी प्रगल्भ विद्वान् और गम्भीर प्रभावशाली वक्ता होने के साथ-साथ अत्यन्त मधुरभाषी थे। प्रान्त मे अधिकतर प्रचार कार्य आपके प्रभाव से ही हुआ। पं० महाराणी शंकर जी कवि थे, अच्छे गायक थे और सुवक्ता थे। उनके व्याख्यानों मे सर्व-साधारण को आकृष्ट करने की शक्ति थी। सेठ रणछोड़ भवान बम्बई के अच्छे समृद्ध व्यक्तियों मे से थे। आर्यसमाज के कामों मे आर्थिक सहायता देते रहते थे। अध्ययनशील होने के कारण धार्मिक तथा आर्थिक विषयो पर अपने विशेष विचार रखते थे जिनका निजी मित्रों मे प्रचार भी करते थे। राजा गोविन्दलाल पित्ती और उनके भाई राजा नारायणलाल पित्ती युवावस्था से ही आर्यसमाज के भक्त और पोषक रहे है। इन पुराने कार्यकर्त्ताओं के अतिरिक्त पं० विजय शकर जी, श्री हरगोविन्द धर्मसिंह,, श्री कांतिलाल शर्मा, श्री प्रभाशंकर दबे, श्री जम्भूभाई काकु, श्री अमृतलाल पटेल, श्री सभाजित मित्र आदि अनेक आर्य सज्जनो ने बम्बई नगर और प्रान्त मे प्रचार का जो कार्य किया है, उसका विस्तृत विवरण अगले खडो में आएगा। प्रदेश मे बड़ौदा, अहमदाबाद, आनन्द आदि नगरों मे आर्यसमाजो द्वारा जो कार्य हुआ, उसका विवरण इतिहास के तीसरे भाग मे दिया जायगा।

दक्षिण अफ्रीका में आर्यसमाज का प्रचार

नैटाल (दक्षिण अफ्रीका) मे आर्यसमाज की स्थापना तो कुछ देर मे हुई परन्तु धार्मिक जागृति की बुनियाद बहुत पहले पड चुकी थी।

वह दिन भारतवासियों के लिए बडा अशुभ था जब १८३४ में पहले-पहल सात हजार भारतीय मजदूर कलकत्ते से मारीशस भेजे गए। ये मजदूर सरकार की ओर से इकरारनामो पर हस्ताक्षर करा कर भेजे गए थे जिससे वे लगभग गुलाम बन गए थे। पट्टा पॉच साल के लिए लिखा जाता था। इस प्रथा को शर्तबन्दी मजदूर प्रथा के नाम से पुकारा जाता था। बेचारे अनपढ़ और निर्धन भारतवासियो को सोने-चॉदी का प्रलोभन देकर जाने के लिए राजी कर लिया जाता था। उन्हे अपनी असली स्थिति का परिचय तब मिलता था जब वे उपनिवेशों मे पहुंच कर अर्धदास की दशा मे मजदूरी पर लगा दिए जाते थे।

मारीशस के बाद भारतीय मजदूर फिजी, जैमेका, ब्रिटिश गायना, त्रिनीदाद आदि उपनिवेशों में भेजे गए। १८६० में दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेश मे भी शर्तबन्दी मजदूर प्रथा के अनुसार भारतीय मजदूर भेजे जाने लगे। यह सिलसिला लगभग ५७ साल तक जारी रहा। यह तब बन्द हुआ जब भारत में उग्र आदोलन होने पर अंग्रेजी सरकार ने भारत के मजदूरों का भेजा जाना बन्द कर दिया।

भारत के प्रायः सभी प्रान्तो के मजदूर दक्षिण अफ्रीका में पहुंच गए थे। पहला जत्था मद्रास से भेजा गया था। उसके पश्चात् संयुक्त प्रान्त, बिहार, बम्बई आदि अन्य प्रान्तो से भी जत्थे जाते रहे। जो लोग मजदूरी करने के लिए परदेश में जाते थे, वे पॉच वर्ष तक तो पट्टे मे बधे रहने के कारण हाथ-पॉव नही हिला सकते थे। मालिक जो चाहते थे वही उन्हें करना पड़ता था। प्रसिद्ध है कि उन मे से बहुत से लोगों ने चोटी कटवा दी और जनेऊ उतार कर समुद्र मे डाल दिए। पट्टे की अवधि में तो उनकी ऐसी दशा रहती थी परन्तु पॉच वर्ष के बाद जब वे स्वतन्त्र होकर कारो-बार करने लगते थे तब फिर उनके पुराने सस्कार जागृत हो जाते थे। यद्यपि शिक्षा और उपदेश का प्रबन्ध न-होने से उनके धार्मिक सस्कार बहुत कुछ दूषित हो गए थे तो भी यह भावना बनी हुई थी कि वे अपने कुल-क्रमागत धर्म का पालन करें। वे लोग चाहते थे कि कोई विद्वान् व्यक्ति देश से आये और धर्म का उपदेश दे। उनकी यह इच्छा पूरी हुई। सन् १९०५ के अगस्त मास में भाई परमानन्द जी दक्षिण अफ्रीका में पहुंचे। भाई जी की आयु उस समय २७ वर्ष की थी। धर्म और जाति का जोश

उनकी रगों में कूट-कूट कर भरा हुआ था। वे अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओ मे धारा-प्रवाह भाषण करते थे। उनका जाना दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतवासियों के लिए प्यासी भूमि पर वर्षा के समान हुआ। भाई जी ने वहाँ जाकर 'हिन्दू-सुधार' और 'हिन्दू यंग मैन्स एसोसिएशन' नाम की संस्थाएं स्थापित की। सभी प्रान्तों के भाई इन संस्थाओं मे बड़े उत्साह से शामिल होने लगे। भाई जी ने दक्षिण अफ्रीका में बड़ा विस्तृत दौरा लगाया। दरबन, पीटर-मेरिट्सबर्ग, लेडीस्मिथ, डन्डी, जोन्सबर्ग, प्रिटोरिया और केपटाउन आदि सभी मुख्य नगरों मे व्याख्यान दिए और सभाएं स्थापित कीं। आप वहाँ केवल चार-पाँच महीने रहे। परन्तु इसी बीच मे आपने दक्षिण अफ्रीका के अन्धकारमय प्रदेश मे दीपक जला दिया।

भाई जी दक्षिण अफ्रीका से यूरोप की ओर चले गये। उनके जाने के लगभग ३ वर्ष बाद स्वामी शकरानन्द जी धर्म प्रचार के लिए दरबन पहुचे। ४ अक्तूबर १९०८ का दिन था जब दरबन निवासी भारतवासियों ने हाथ मे दण्ड धारण किये हुए, तेजस्वी मुद्रा वाले प्रशस्त ललाट दीर्घकाय संन्यासी को जहाज पर से उतरते देखा और जयजयकार के साथ स्वागत किया। स्वामी जी का व्यक्तित्व बहुत तेजस्वी था और भाषण-शैली प्रभावयुक्त थी। आप अपने व्याख्यानों में हिन्दू धर्म, हिन्दी शिक्षा और हिन्दू आचार-व्यवहारों का समर्थन करते थे। वहा के हिन्दू अपनी परम्पराओं को इतना भूल गये थे कि दीवाली का त्योहार तक नहीं मनाते थे। स्वामी जी की प्रेरणा से वर्षों के पश्चात् दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुओं ने सन् १९०८ की दीवाली मनायी। वहा के मुसलमान ताजिये निकाला करते थे। १९१० मे स्वामी जी के नेतृत्व मे रामरथ निकाला गया, जिसके साथ हिन्दुओं की अपार भीड़ थी। अपने कार्य को दृढ़ करने के लिये १९०९ के अप्रैल मास में नैटाल की राजधानी पीटर मैरिट्सबर्ग में "वेद धर्म सभा" की स्थापना की। स्वामी जी १९११ में कुछ दिनो के लिये भारत जाकर फिर अगले वर्ष दरबन लौट गये। इस बार स्वामी जी अपने साथ हिन्दू महासभा की स्कीम ले गये और हिन्दू कान्फ्रेन्स और हिन्दू महा सभाओं की स्थापना पर जोर देने लगे। इस नये ढंग के प्रचार के कारण उनका कई बार महात्मा गांधी से विचार-संघर्ष हो गया। क्योंकि स्वामी जी महात्मा जी के हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी विचारों से सहमत नही थे। आप १९१३ मे भारतवर्ष लौट गये। स्वामी जी के दक्षिण अफ्रीका में लगभग ५ वर्ष तक रहने का प्रभाव यह हुआ कि वहा के हिन्दुओं मे अद्भुत जागृति उत्पन्न हो गयी। स्वामी जी की ही प्रेरणा से दक्षिण अफ्रीका मे आर्यसमाज की स्थापना का सूत्रपात हुआ। यद्यपि दक्षिण अफ्रीका तथा पूर्वी अफ्रीका में आर्यसमाजों का जाल बिछने मे अभी देर थी परन्तु भाई परमानन्द जी और स्वामी शंकरानन्द जी के प्रचार कार्य ने उस दूरस्थ भूमि में धर्म प्रचार का क्षेत्र तैयार किया।

दक्षिण अफ्रीका में जिन महानुभावो ने आर्यसमाज का विशेष रूप से प्रचार किया, उनमे से स्वामी मंगलानन्द पुरी, पं० ईश्वरदत्त विद्यालंकार, ठा० प्रवीण सिह जी भजनोपदेशक और डा० भगतराम के नाम विशेष रूप से उल्लेखयोग्य हैं। डा०

भगतराम जी दक्षिण अफ्रीका की आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से निमंत्रण पाकर वहां गये। आपके प्रचार से बहुत से आर्यसमाज स्थापित हुए। आप जहा जाते, आर्यसमाज की स्थापना का प्रयत्न करते थे। आप के स्थापित किए हुए आर्यसमाजों में से मेरिन्सबर्ग, न्यूकासल, सदर लेन, ओडसैप्स्टन स्टैंगर तथा पेट्रोच आदि के समाज मुख्य थे। कई स्थानो पर 'सत्य वैदिक धर्म जिज्ञासु सभा' तथा 'नागरी प्रचारिणी सभा' आदि जो भिन्न-भिन्न संस्थाएं प्रचलित थी, वे भी डा० भगतराम की प्रेरणा से आर्यसमाज के रूप में परिवर्तित कर दी गई। आपके साथ आपकी पत्नी भी गई थी। उनके प्रयत्न से स्त्रियों में भी वैदिक धर्म के प्रचार का बहुत सा कार्य हुआ।

दक्षिण अफ्रीका के उस समय के इतिहास में पं० भवानीदयाल जी का एक अद्भुत और प्रमुख स्थान है। आपका जन्म दक्षिण अफ्रीका मे ही हुआ था। परन्तु १२ वर्ष की आयु में कुछ पारिवारिक कारणों से आप भारत चले आए। आठ वर्ष तक स्वदेश मे रह कर बीस वर्ष की अवस्था में आप फिर नैटाल चले गए। इन आठ वर्षों मे भवानीदयाल जी ने असाधारण मानसिक उन्नति कर ली थी। उनके मन में स्वधर्म, स्वदेश और स्वभाषा के लिए तीव्र प्रेम की भावना उत्पन्न हो चुकी थी। साथ ही आगे बढ कर काम करने के लिए जिस साहस और मौलिकता की आवश्यकता होती है, उसका भी विकास हो चुका था।

आप १९१२ में नैटाल पहुंचे। उस समय महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका के गोरों के अन्याय के विरुद्ध सत्याग्रह का झंडा खड़ा कर रहे थे। पं० भवानीदयाल जी और उनकी सहधर्मिणी जगरानी देवी ने महात्मा जी के रण-निमन्त्रण को सुना और संग्राम भूमि मे उतर आए। १९१३ में जो सत्याग्रही काले कानून को तोड़ कर नैटाल के कारावासों में गए थे, उनमें ये पति-पत्नी भी थे।

सत्याग्रह स्थगित होने के पश्चात् पं० भवानीदयाल जी ने स्वभाषा हिन्दी के प्रचार का कार्य हाथ में लिया। यह कहने में कोई अत्युक्ति नही कि दक्षिण अफ्रीका में आर्य-भाषा के बीज बोने का श्रेय मुख्य रूप से प० भवानीदयाल जी को ही प्राप्त है। आपने प्रदेश के सभी बड़े-बडे शहरो में हिन्दी प्रचारिणी सभाएं तथा हिन्दी पाठशालाएं खोलीं। १९१६ मे आपके प्रयत्न से लेडी स्मिथ में सबसे पहला हिन्दी-साहित्य सम्मेलन आयोजित किया गया।

इन सब कार्यो के साथ-साथ पंडित जी वैदिक धर्म के प्रचार में अपने समय का बड़ा भाग देते रहे। आपकी प्रेरणा से ही दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुओ ने वैदिक संस्कारो का करना आरम्भ किया। वहाँ के हिन्दू अपने मूल स्थान से इतने अलग हो गए थे कि वे मुर्दो को दबाने लगे थे। पडित जी ने विशेष प्रयत्न करके वैदिक ढंग पर अन्त्येष्टि संस्कारों की प्रथा को प्रचलित किया। दक्षिण अफ्रीका के भारतीय लोगो में सामाजिक और धार्मिक जागृति पैदा करने वालो म पं० भवानीदयाल जी का प्रथम स्थान है।

पूर्वीय अफ्रीका में आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना तब हुई जब वहाँ गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक प० ईश्वरदत्त विद्यालंकार के सभापतित्व में आर्यन काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। यह अधिवेशन १९२० मे हुआ। १९१९ में बगदाद में आर्यसमाज की स्थापना हुई।

अष्टम अध्याय

दिल्ली में दलितोद्धार

पंजाब में तथा अन्य प्रदेशों मे अछूतोद्धार, मेघोद्धार आदि के नाम से अस्पृश्य कहलाने वाली जातियों को आर्यत्व के समान अधिकार देने के लिए आर्य पुरुषों तथा आर्य संस्थाओ द्वारा जो कार्य किये जाते रहे, उनका विवरण इससे पहले दिया जा चुका है। १९१७ के पश्चात् दलितोद्धार के नाम से उस कार्य का एक नया और बड़ा केन्द्र स्थापित हो गया।

उस केन्द्र के स्थापित होने का एक अन्य घटना से गहरा सम्बन्ध है। वह घटना यह थी कि १२ अप्रैल १९१७ के दिन गुरुकुल कांगड़ी की मायापुर वाटिका में लगभग १५ हजार नर-नारियों की उपस्थिति मे महात्मा मुंशीराम जी ने संन्यास ग्रहण करके 'श्रद्धानन्द संन्यासी' का नाम धारण किया। उससे पहले दिन गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर यह घोषणा कर दी गई थी कि विक्रमी संवत् १९७४ के वैशाख की पहली तारीख के प्रातः काल महात्मा जी आश्रम परिवर्तन करेंगे।

संस्कार के समय महात्मा जी ने निम्नलिखित घोषणा की--

"श्रद्धा से प्रेरित होकर ही मैंने आज तक इस जीवन को पूरा किया है। श्रद्धा मेरे जीवन की आराध्य देवी है। अब भी श्रद्धा भाव से प्रेरित होकर मैं संन्यास आश्रम मे प्रवेश कर रहा हूं। इस कारण इस यज्ञ-कुण्ड की अग्नि को साक्षी करके मैं अपना नाम 'श्रद्धानन्द' रखता हूँ, जिससे मे अगला सारा जीवन भी श्रद्धामय बनाने में सफल हो सकूं।"

गुरुकुल के आचार्य पद से मुक्ति पाकर और वानप्रस्थ आश्रम का वस्त्र परित्याग करके जैसे आप जालन्धर की कोठी और वकालत को छोड़ कर हरिद्वार गये थे वैसे ही गुरुकुल भूमि को छोड़ कर दिल्ली आ गये।

दिल्ली आकर स्वामी जी ने विस्तृत कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया। आपको निवास के लिये आर्यसमाज के भक्त सेठ रघुमल लोहिया ने नये बाजार वाले अपने उस मकान की ऊपरली मंजिल दे दी, जिसमें १९२६ में स्वामी जी का बलिदान हुआ और जो अब बलिदान-भवन इस नाम से सार्वदेशिक सभा का केन्द्र बनी हुई है। स्वामी जी ने दिल्ली में सब से पहले जो कार्य आरम्भ किया, वह दलितोद्धार का था। आपके लिये यह कार्य नया नहीं था। जालन्धर आर्यसमाज में बहुत पहले आपकी प्रधानता में ही रहतियों की शुद्धि का आयोजन किया गया था। दिल्ली में अस्पृश्य कहलाने वाले लोगों की बहुत बड़ी संख्या निवास करती है। उन दिनों उन लोगों में दो

संस्थाये विशेष रूप से प्रचार का काम कर रही थी। स्वामी जी की सहायता के लिये जो कार्यकर्ता अग्रेसर हुए, उनमे से तीन के नाम मुख्य है। डा० सुखदेव जी, जो गुरुकुल को छोड़ कर दिल्ली आ चुके थे, दलितोद्धार जैसे सेवा कार्य के लिये सर्वथा उपयुक्त थे। स्थानीय कार्यकर्ताओं में लाला नारायणदत्त जी और लाला ज्ञानचन्द जी के नाम विशेष रूप से उल्लेखयोग्य है। डा० सुखदेव जी का उस समय तक का जीवन सेवा में ही व्यतीत हुआ था। दीन-दुखियों को सहायता देना और रोगियो का इलाज करना, गुरुकुल कांगड़ी मे उनके ये दोनों काम साथ ही साथ चलते थे। दिल्ली मे आकर भी वे इसी कार्य में पड़ गये। वर्षो तक वे दलितोद्धार सभा के मन्त्री की हैसियत से और निजी तौर पर भी दलित भाइयो को उठाने और द्विजातियों के समान अधिकार दिलाने मे लगे रहे। लाला नारायणदत्त जी उस समय तक आर्य-समाज मे और नगर के सार्वजनिक जीवन में उस ऊंचाई तक नही पहुचे थे, जो उन्हे पीछे से प्राप्त हुई। हम कह सकते है कि उन दिनो के दलितोद्धार के काम ने उनका सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश कराया। लाला जी सोलह आने कर्मयोगी थे। जो कर्तव्य सामने आया, उसके पूरा करने मे जी जान से लग जाते थे। चर्मकार भाइयो को जते के दुकानदारो से जो शिकायत थी, उसे दूर करने के लिये उन्होंने एकदम "नारायण शू कम्पनी" नाम की एक दूकान खोल दी। दिल्ली मे वह हिन्दू की पहली जूतों की दूकान थी। इससे पूर्व हिन्दू लोग इस काम को गिरा हुआ समझते थे। लाला जी का अपना काम ठेकेदारी का था, इस कारण उन्हे दूकान मे घाटा हुआ। कुछ वर्षो के बाद वह दूकान उन्होंने बेच दी। परन्तु उन्हे जो घाटा हुआ, उसका उन्होंने कभी दुःख नहीं माना, क्योकि उनके दृष्टात से साहस प्राप्त करके पाच साल के अन्दर हिन्दुओं की जूतों की लगभग बीस दूकानें खुल गयी जिससे चर्मकारो का कष्ट बहुत कुछ दूर हो गया।

लाला ज्ञानचन्द जी स्वामी जी के परम भक्त और लाला नारायणदत्त रूपी राम के पूरे लक्ष्मण थे। जिधर ला० नारायणदत्त जी चलते, उधर ही लोग ला० ज्ञानचन्द जी को जाता देखते थे। वह वर्षो तक दलितोद्धार सभा के प्रधान रहे और स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा प्रारम्भ की हुई दलितोद्धार की प्रवृत्तियो मे तन, मन और धन से पूरा सहयोग देते रहे। उनमे एक विशेषता आदिकाल के आर्यसमाजियो वाली थी। वे बहुत स्वाध्यायशील थे। जिन दिनो वे इम्पीरियल बक की बिल्डिग बनवा रहे थे, उन दिनों बनती हुई बिल्डिग के सामने किसी पेड़ के नीचे चारपाई पर बैठ कर मनु-स्मृति और उपनिषदों में से उद्धरण नकल करते हुए उन्हे देख कर परिचित लोग आश्चर्य किया करते थे। जीवन के अन्त समय तक वे स्वाध्याय और लेखन कार्य मे लगे रहे।

इन प्रमुख व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से आर्यजन थे, जिन्होंने दलितोद्धार के काम मे स्वामी जी का उत्साहपूर्वक साथ दिया। परिणाम यह हुआ कि दो-तीन वर्षो मे ही दिल्ली के दलित भाइयों में अद्भुत जागृति पैदा हो गई। उनमे

यज्ञोपवीत पहनने और संध्या करने वाले भाइयों की संख्या हजारों तक पहुँच गई। स्वयं उन लोगों में कई उपदेशक और पंडित तैयार होकर जाति के उत्थान का कार्य करने लगे।

स्वामी जी के नेतृत्व मे दलितोद्धार सम्बन्धी जो बड़े कार्य हुए, उनमें से एक कुओं पर पानी भरने का अधिकार दिलवाना भी था। कुछ कुओं पर तो बिना किसी विशेष कठिनाई के यह अधिकार प्राप्त हो गया परन्तु दो-एक जगह पुराने विचार के लोगों की ओर से विरोध भी किया गया। सब से प्रबल विरोध अजमेरी दरवाजे के बाहर अंगूरी वाले कुए पर हुआ। जहां अब कमला मार्केट की सुन्दर इमारत खड़ी है, वह स्थान तब लकड़ियों की टालों से घिरा हुआ था। जब स्वामी जी के नेतृत्व में कार्यकर्ताओं की एक मण्डली, जिस मे आर्यसमाजियों के साथ कई सनातन धर्म के प्रभावशाली विद्वान् और नागरिक भी थे, दलित भाइयों को साथ लेकर उस कुएं के पास पहुँचे तो शहर के कई उपद्रवी हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर उन पर डण्डों से आक्रमण कर दिया। बहुत से लोगों के चोटें लगीं। इस प्रतिरोध के कारण उस समय तो यह कार्य न हो सका परन्तु कुछ समय पीछे उपद्रवी लोग दब गये और शान्तिपूर्वक उस कुए से दलित भाइयों ने पानी भर लिया। उन्हीं दिनों कई हिन्दू मन्दिरों के द्वार भी खोल दिये गये थे।

दलितोद्धार के उस कार्य की विशेषता यह थी कि स्पृश्य और अस्पृश्य जातियों के परम्परागत भेद को मिटा कर समान स्तर पर लाने का यत्न किया जाता था। दलितों को जाति का अलग हिस्सा न मान कर उन्हें अन्यों के समान मानवता के पूरे अधिकार देना आर्यसमाज के दलितोद्धार-कार्य का मुख्य लक्ष्य था। इस अंश में आर्यसमाज का आन्दोलन हरिजन आन्दोलन से मौलिक रूप में भिन्न रहा है।

१९२१ मे कार्य की सुविधा के लिए विधिपूर्वक दलितोद्धार सभा की स्थापना कर दी गयी। सभा के उद्देश्य निम्नलिखित थे।

१. भारत की दलित जातियों में सदाचार का प्रचार करना।

२. दलित समुदाय को उनके प्राचीन धर्म से पतित करने वाले आक्रमणों से बचाना तथा उनको अपने पूर्वजों के धर्म पर दृढ़ रखना।

३ दलित समुदाय से अन्य श्रेणियों के अनुचित वंशीय घृणा के मिथ्या संस्कारों को दूर करके उनके खोये हुए मानवीय अधिकारों को दिलाना।

४. यथा तथा सामर्थ्यानुसार दलितों के लिए ऐसी शालाओं का खोलना जिन के द्वारा वे अन्य देशवासियों के साथ शिक्षा ग्रहण करके सभ्य समाज में उचित स्थान पा सकें।

सभा की स्थापना के समय ये महानुभाव उपस्थित थे : १. स्वामी श्रद्धानन्द जी, २. लाला ज्ञानचन्द जी, ३ लाला नारायणदत्त जी, ४. लाला दीवानचन्द जी,

५. डा० सुखदेव जी, ६. महाशय रामसिंह जी, ७. लाला वेणीप्रसाद जी, ८. लाला कृपाराम जी।

सभा के प्रधान श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी और मन्त्री डाक्टर सुखदेव जी निर्वाचित हुए।

१९२४ मे श्री स्वामी जी ने सभा को सूचना दी कि बाहर घूमने का कार्य अधिक होने के कारण वे दिल्ली में कम रह सकेंगे। इस कारण अन्य किसी सज्जन को प्रधान बनाया जाय। उनके स्थान पर लाला ज्ञानचन्द जी को प्रधान चुना गया। १९२५ मे डा० सुखदेव जी ने अन्य कार्यो की व्यस्तता के कारण त्यागपत्र दे दिया। उनके स्थान पर स्वामी रामानन्द जी मन्त्री चुने गये। बीच मे कुछ समय तक पं० इन्द्र जी सभा के मन्त्री रहे। सभा का कार्य विशेष रूप से अधिष्ठाता के रूप में स्वामी रामानन्द जी पर ही अवलंबित रहा। १९२३ के पश्चात् सभा का प्रचार कार्य विस्तृत होता गया। पजाब और उत्तर प्रदेश मे सभा की ओर से बहुत सी महत्वपूर्ण कान्फ्रेन्सें हुई, हजारों दलित भाइयों को गायत्री का उपदेश और यज्ञोपवीत देकर समाज में बराबर का स्थान दिया गया और समय-समय पर उन पर आई हुई कठिनाइयों का समाधान किया गया।

सभा ने जो एक बड़ी समस्या अपने हाथ मे ली, वह बेगार मे सम्बन्ध रखती थी। यह रोग विशेषरूप से उन गावो मे प्रचलित था जहां जमीदारी का दौरदौरा था। वहा के छोटी श्रेणियो के लोग रियाया के नाम से पुकारे जाते थे। उन लोगों में दलितों की अधिकता थी। जमीदार लोग चाहे वे हिन्दू हो, या मुसलमान, गरीब मेहनतियो से बड़ा कस कर बेगार लेते थे, कम से कम मजदूरी देते थे और उनकी छोटी सी भूल पर गरीब लोगों का सर्वनाश करने को तैयार हो जाते थे। सभा ने इस प्रथा के विरुद्ध जोरदार प्रचार आरम्भ किया और यह बात संतोषपूर्वक कही जा सकती है कि उसे बेगार की सख्तियों को हटाने मे बहुत कुछ सफलता मिली।

१९२४ के जनवरी मास मे दिल्ली में एक बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ, जिसमें आस पास के कई जिलों के लोग उपस्थित हुए। सम्मेलन मे कई हजार की हाजिरी थी। सभा में जाति-सुधार और समाज-सुधार के समर्थन में दस प्रस्ताव स्वीकार किये गये। अन्त में एक विशाल सहभोज किया गया, जिसमें शहर के रायसाहब लाला केदारनाथ, सेठ लक्ष्मीनारायण गाडोदिया, स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी, प० इन्द्र जी, लाला देशबन्धु जी, लाला नारायणदत्त जी, लाला बुलाकीदास जी म्युनिसिपल कमिशनर आदि महानुभावो ने भंगी, चमार, जाटव आदि सभी वर्गों के भाइयो के साथ और उनके हाथ से शुद्धता से बना हुआ भोजन किया।

नवम अध्याय

समाज-सेवा

प्रारम्भ से ही आर्यसमाज समाज-सेवा के कार्य मे अग्रेसर रहा है। अनाथालय, विधवाश्रम आदि समाज-सेवा के केन्द्रों की स्थापना उत्तरीय भारत में पहले-पहल आर्यसमाज ने की। १९०० के दुर्भिक्ष ने राजपूताना, मध्य-प्रदेश, बबई, काठियावाड़ और पंजाब के कुछ भागों में बहुत तबाही मचा दी थी। उस समय अनेक आर्यसमाजी कार्यकर्ता दुर्भिक्ष पीड़ित स्थानो में गये तो उन्होंने देखा कि ईसाई पादरी वहा पहले से पहुंचे हुए हैं और अनाथ बच्चों को बटोर कर अपने मिशन के अनाथालयों में ले जा रहे है। आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं ने बच्चो के बचाने के काम को अपने हाथ में ले लिया। और लगभग १७०० अनाथ बालको को आर्यसमाज के भिन्न-भिन्न स्थानो पर बने हुए अनाथालयो मे स्थान दिया। लाहौर, भिवानी, अजमेर आदि स्थानों मे अनाथ आश्रमों की बुनियाद उन्ही दिनों मे पड़ी।

१९०८ मे फिर दुर्भिक्ष पड़ा। उसमें आर्यसमाज ने जो कार्य किया, उसकी प्रशंसा सरकारी रिपोर्टो मे भी की गयी। इस बार अनाथ बच्चो की रक्षा करने के साथ-साथ भूखो को अन्न, नंगो को कपड़ा और रोगियों को दवा देने का काय भी किया गया। यह सेवा कार्य मुख्य रूप से लाला लाजपतराय जी के नेतृत्व मे किया गया। लाला जी का कार्य-क्षेत्र उन दिनो हिसार का जिला था।

१९१८ में गढवाल के इलाके मे भयानक दुर्भिक्ष पडा। अकाल के मुख्य रूप से दो कारण हुए। महायुद्ध के पहले वर्ष (१९१४) में गढवाल मे अच्छी फसल हुई थी। शहरो में अनाज मंहगा हो जाने से व्यापारियो ने गढवाल का लगभग सारा अनाज सस्ते दामो खरीद कर मैदान मे मंहगा करके बेचा और बहुत लाभ उठाया। परिणाम यह हुआ कि गढ़वाली किसानो के कोठे खाली हो गये। पीछे से सरकार का ध्यान उधर खींचा गया तो उसने गढ़वाल से अनाज की निकासी बन्द करने का हुक्म दे दिया। परन्तु उससे कोई विशेष लाभ न हुआ क्योंकि अधिकांश अनाज उससे पहले निकल चुका था। पहाडी इलाका होने से गढ़वाल में थोड़ी बहुत अन्न की कमी सदा ही बनी रहती है क्योंकि उसके ५६२९ वर्ग मील के क्षेत्रफल मे से केवल ४०६ वर्ग मील मे ही खेती हो सकती है। दुर्भाग्यवश १९१६–१७ मे वर्षा बहुत कम हुई। ऋतु के अन्त मे वर्षा हुई तो ओले पड गये। फलतः १९१७ के नवम्बर मास से ले कर १९१८ के फरवरी मास तक गढवाल के अनेक केन्द्रों मे घोर दुर्भिक्ष रहा। लोग भूखों मरने लगे। अन्न की इतनी कमी हो गयी कि उस वर्ष सरकार को बद्रीनारायण की

यात्रा बन्द करनी पड़ी। तब देश को मालूम हुआ कि गढ़वाल के निवासियों की अन्न के बिना बहुत दुर्दशा हो रही है। देश के भिन्न-भिन्न भागों से संस्थायें और व्यक्ति सहायता के लिये पहुंच गये। सहायता का कार्य सब से पहले ऋषीकेश के प्रसिद्ध सार्वजातिक सेवा करने वाले बाबा काली कमली वालों ने आरम्भ किया। उसके तुरन्त ही पश्चात् आर्यसमाज कार्यक्षेत्र में पहुंच गया। स्वामी श्रद्धानन्द जी गुरुकुल कांगडी के स्नातकों और ब्रह्मचारियों की मण्डली लेकर सन् १९१७ के मई मास में गढ़वाल में पहुंच गये। आपने एक ओर समाचारपत्रों में धन के लिये अपील छपवाई और दूसरी ओर आर्यजनों को स्वय-सेवक का कार्य करने के लिये गढवाल पहुंचने की प्रेरणा की। अपील कर लगभग ४६ हजार रुपया सेवा कार्य के लिये प्राप्त हुआ। कुछ दिनों के बाद प्रयाग की भारत सेवा समिति भी स्वामी जी की मण्डली के साथ कार्य करने लगी। आर्यसमाज की ओर से जो कार्य हुआ, उसमें सब से बड़ी आर्थिक सहायता दिल्ली के सेठ रघूमल लोहिया से प्राप्त हुई। आपने स्वामी जी को ३ हजार रुपये भेजते हुए साथ ही यह सूचना भी दे दी थी कि जब तक गढ़वाल में आवश्यकता रहे और धन की कमी मालूम हो तब तक दो हजार रुपया मासिक की सहायता भेजते रहेंगे।

आर्यसमाज की ओर से दूसरी सेवक-मण्डली महात्मा हंसराज जी के नेतृत्व में केदारनाथ और बदरीनारायण तक गयी और उस इलाके में बहुत उपयोगी कार्य किया। महात्मा जी के नेतृत्व में भी बहुत से आर्य सज्जन कई मास तक भिन्न-भिन्न इलाकों में काम करते रहे। आर्यसमाज के साथ मिल कर हिन्दू-महासभा ने लगभग १ वर्ष तक अन्न आदि बांटने का कार्य किया।

इस सेवा-कार्य के सिलसिले में उत्तराखण्ड के इलाकों में एक अच्छे शिक्षा केन्द्र की स्थापना हो गयी। भृगुखाल में पहले ईसाइयों का एक स्कूल था। यह स्थान नजीबाबाद से लगभग ४० मील की दूरी पर पहाडों की गहराई में बसा हुआ है। दुर्भिक्ष से कुछ समय पहले यह स्कूल गुरुकुल कांगड़ी के कार्यकर्ताओं के उद्योग से और स्थानीय सज्जनों की सहायता से ईसाई पादरियो के हाथ से ले लिया गया था। दुर्भिक्ष के कारण दरिद्रता बढ़ जाने पर परिस्थिति ऐसी हो रही थी कि उस पर फिर ईसाइयो का अधिकार हो गया। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने तीन मई को गुरुकुल से चल कर सबसे पहला पड़ाव लालढाग में किया और दूसरे दिन भृगुखाल जा पहुचे। आपके वहां पहुंचने से स्थानीय लोगों में भी जान आ गयी। स्वामी जी ने स्कूल के प्रबन्ध के लिये सत्रह सभासदों की एक कमेटी बना दी, जिसके प्रधान वही के निवासी ठा० उत्तमसिंह जी चुने गये। स्कूल की स्थिरता के लिये समाचार पत्रो में अपील करके स्वामी जी ने ५ हजार रुपया एकत्र कर दिया। यह स्कूल अब गुरुकुल कांगड़ी की देखरेख मे श्रद्धानन्द इण्टरमीडिएट कालेज के रूप में चल रहा है।

प्रथम अध्याय

स्वाधीनता संग्राम में सहयोग

सन् १९१८ के अंतिम महीनो में भारत के राजनीतिक वातावरण में एक नई क्रांति ने प्रवेश किया। १९१४ में योरुप का जो पहला महासंग्राम आरम्भ हुआ था, वह १९१८ के नवम्बर मास में समाप्त हो गया। देश में राष्ट्रीय भावना बहुत पहले जागृत हो चुकी थी। १८५७ की सशस्त्र राज्य-क्रांति उठती हुई राष्ट्रीय भावना का रूपान्तर था। वह अनेक कारणों से असफल हो गई परन्तु उसके साथ राष्ट्रीय जागृति समाप्त नही हुई। वह और भी अधिक गहरी और व्यापक होती गई। १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस का उद्देश्य विशुद्ध राजनैतिक था। महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म का जो विशाल रूप संसार के सामने रखा था, राजनीति भी उसका एक अंग था। यही कारण था कि प्रारम्भ से ही आर्यसमाज के सदस्य किसी-न-किसी रूप में काँग्रेस तथा अन्य राजनीतिक कार्य करने वाली संस्थाओं मे प्रमुख कार्य करते रहे। ला० लाजपतराय जी और उनके बहुत से अनुयायी, अम्बाले के बाबू मुरलीधर जी और अन्य अनेक शिक्षित आर्य सज्जन अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार राजनीतिक आंदोलन में बराबर सहयोग देते रहे। लाला जी का स्थान तो देश के प्रमुख राजनीतिक नेताओं में गिना जाने लगा था। उनका नाम काग्रेस के अग्रगामी दल के तीन प्रमुख नेताओं में आ गया था। उन तीन नेताओं का संगृहीत नाम 'बाल पाल लाल' यह था। इस नाम की व्याख्या पहले हो चुकी है। १९१८ के अंत मे स्थिति में जो नया परिवर्तन हुआ, वह यह था कि युद्ध से सम्बन्ध रखने वाली अनेक घटनाओं के कारण देश में जोश का तापमान बहुत ऊंचा चला गया था। जब सब तरह से तैयार जर्मन साम्राज्य के साथ अकस्मात् इंगलैंड को टक्कर लेनी पड़ी तब उसने सहायता के लिए अन्य उपनिवेशों के समान ही भारत के सामने भी हाथ पसारा। इंग्लैण्ड को मालूम था कि भारत के निवासी उसके शासन से संतुष्ट नही है और स्वाधीन होने के लिए उतावले हैं। इस कारण वह स्वयं डरता था कि उसकी याचना का कोई सतोषजनक उत्तर नहीं मिलेगा। परन्तु भारत की तो नसनस में क्षमा और उदारता के उपदेश बसे हुए हैं। वेद ने, उपनिषदों ने, अन्य धर्म-शास्त्रो ने, महात्मा बुद्ध ने और अंत में मध्यकालीन भक्तो ने भारतवासियों को यही उपदेश दिया था कि यदि शत्रु भी आपत्ति मे फंस जाय तो उस पर दया करो और उसकी सहायता करो। जब इंग्लैण्ड संकट में पड़ गया तब भारतवासियो ने दिल खोलकर उसकी सहायता की। देश की प्रत्येक श्रेणी के लोगो से सरकार ने जो मांगा, उसे वही मिला। धन माँगा तो नरेशों और पूजीपतियों ने लाखों की थैलियाँ बरसा दीं। मरने के लिए सिपाही माँगे तो कारखानों

को छोड़ कर मजदूर और हलों को छोड़ कर किसान भरती के दफ्तरों में जा पहुंचे। भारत की ओर से ऐसी आशातीत सहायता मिलने से इंग्लैण्ड के लोग आश्चर्यित हुए और प्रसन्न भी हुए। उस प्रसन्नता को उन्होंने शब्दों द्वारा बार-बार प्रकट किया। स्वयं इंग्लैण्ड के सम्राट् ने भारतवासियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हे यह आश्वासन दिया कि हम भारतवासियों द्वारा दी गई सहायता को कभी नहीं भूलेंगे और उनकी राजनीतिक अभिलाषाओं का आदर करेंगे परन्तु युद्ध समाप्त होने पर जो उपहार भारत को मिला, वह रौलेट एक्ट के रूप मे था, जिसे उस समय भारतवासियों ने 'काला कानून' का नाम दिया था।

काला कानून १९१९ के मार्च मास में स्वीकार हुआ। महात्मा गांधी तब दक्षिण अफ्रीका से निवृत्त होकर भारत मे आ चुके थे और यहाँ की समस्याओ का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने रौलट एक्ट के पास होने से पहले ही भारत के गवर्नर जनरल को यह चेतावनी दे दी थी कि यदि जनता की इच्छा के विरुद्ध सरकार ने उस दमनकारी कानून को स्वीकार किया तो देश मे विरोध प्रदर्शन के लिए निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive Resistence) का आंदोलन जारी कर दिया जायगा। सरकार ने उस चेतावनी को अनसुना करके काला कानून पास कर दिया। फलत महात्मा जी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी।

इस इतिहास में कई स्थलों पर यह बतलाया जा चुका है कि स्वराज्य आर्यसमाजियों के लिए केवल नीति का ही अंग न होकर धर्म का एक आवश्यक अंग माना गया था। वेदों मे स्वराज्य के उत्तम राज्य होने का विधान है, "अदीनाः स्याम शरदः शतम्" आदि वेद वाक्यों में दासता से छूटने की प्रार्थना अनेक स्थानों पर मिलती है और महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में इस सिद्धान्त का स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन है कि प्रत्येक देश के लिए अपना राज्य ही सबसे उत्तम राज्य है, विदेशी राज्य चाहे कितना ही शोभन दिखाई दे वह निकृष्ट है। इन स्पष्ट आदेशों के होते हुए यह तो स्वाभाविक ही था कि आर्य जन देश की स्वाधीनता के लिए किए जाने वाले सब प्रयत्नों में उत्साह से भाग लेते परन्तु १९१९ से पूर्व कुछ कारणों से सर्वसाधारण आर्यसमाजियों ने कांग्रेस की राजनीति में भाग नहीं लिया। ला० लाजपतराय जी ने अपने आत्म-चरित में उन कारणों का स्पष्टीकरण किया है। उनमें से दो कारण मुख्य थे। कुछ लोग यह समझते थे कि कांग्रेस हिन्दू हितो का विशेष ध्यान नही रखती इस कारण आर्यसमाजियों को उसमें भाग न लेना चाहिए। यह मत उन लोगों का था, जो आर्यसमाज को मुख्य रूप से हिन्दू सुधारक संस्था मानते थे। ऐसा मानने वाले सज्जन या तो सरकारी कर्मचारी थे अथवा उन शिक्षित पेशों से सम्बन्ध रखने वाले थे जिनका संपर्क सरकार से रहता है। वे प्रभावशाली तो थे परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं थी। सर्वसाधारण आर्यसमाजियों के प्रचलित राजनीति मे भाग न लेने का दूसरा ही कारण था। उस विचारधारा के मुख्य व्याख्याता महात्मा मुंशीराम जी थे। उस विचारधारा का ठीक स्वरूप बतलाने के लिए हम नीचे महात्मा जी के उस लेख का उद्धरण देते हैं जो उन्होने

सूरत के कांग्रेस अधिवेशन की घटनाओं के सम्बन्ध में सद्धर्म-प्रचारक में लिखा था। "आज तुम्हारी अपनी इंद्रियाँ तुम्हारे अपने वश में नहीं, जब अपने मन पर तुम्हारा कुछ अधिकार नहीं, तब तुम दूसरों से क्या अधिकार प्राप्त कर सकते हो ? अधिकार ! अधिकार ! ! अधिकार ! ! ! हा। तुमने किस गिरे हुए शिक्षणालय में शिक्षा प्राप्त की थी ? क्या तुमने कर्तव्य कभी नहीं सुना ? क्या तुम धर्म शब्द से अनभिज्ञ हो ? मातृ-भूमि में अधिकार का क्या काम ? यहां धर्म ही आश्रय दे सकता है। अधिकार शब्द से सकामता की गन्ध आती है। विषय-वासना का दृश्य दृष्टिगोचर होता है। इस अधिकार की वासना को अपने हृदय से नोंच कर फेंक दो। निष्काम भाव से धर्म का सेवन करो। माता पर जब चारों ओर से प्रहार हो रहे हों, जब उसके केश पकड़ कर दुष्ट दुःशासन उसको भूमि पर घसीट रहा हो, क्या वह समय अधिकार की पुकार मचाने का है ?... शब्दों पर क्यों झगड़ा करते हो ? क्यों न स्वराज्य प्राप्ति के साधनो को सिद्ध करने मे लगो ? स्वराज्य के प्रकार का झगडा आने वाली सन्तानो के लिए छोड़ो। उनकी स्वतं-त्रता पर इस समय इन झगड़ों से जंजीरें डालना अधर्म है। इस समय दोनों छल-कपट से काम ले रहे है। जिस कांग्रेस का आधार अधर्म पर है, उसका प्राप्त कराया हुआ स्वराज्य कभी भी फलदायक न होगा, कभी भी सुख तथा शान्ति का राज्य फैलाने वाला न होगा.........एक ऐसे धार्मिक दल की आवश्यकता है जो विरोधी को धोखा देना भी वैसा ही पाप समझता हो, जैसा कि अपने भाई को, जो सरकारी अत्याचारों को प्रगट करते हुए अपने भाइयों की दुष्टता तथा उनके अत्याचरों को भी न छिपाने वाला हो, जो मौत के भय से भी न्याय के पथ को छोडने का विचार तक मन मे न लाने वाला हो। पोलिटिकल जगत् मे ऐसे ही अग्रणी की आवश्यकता है। क्या कोई महात्मा आगे आने का साहस करेगा और क्या उसके पीछे चलने वाले ५ पुरुष भी निकलेंगे ? यदि इतना भी नहीं हो सकता तो स्वराज्य प्राप्ति के प्रोग्राम को पचास वर्षो के लिये तह करके रख दो।"

ऐसे ही एक दूसरे लेख मे आपने लिखा था– "यदि अग्नि और खड्ग की धार पर चलने वाले दस पागल आर्य भी निकल आवे तो राजा और प्रजा दोनों को होश मे ला सकते है। .....भगवन् ! आर्यसमाजियों की आंखे जाने कब खुलेंगी ?" इसी दृष्टि से आप नरम दल वालो के लिये "भिक्षार्थी" गरम दल वालों के लिये 'सुखार्थी' और सरकार के लिये 'गोराशाही' शब्दों का प्रयोग किया करते थे।

इस उद्धरण से स्पष्ट होगा कि महात्मा मुन्शीराम जी और उन जैसे विचार रखने वाले आर्यसमाजी स्वराज्य-प्राप्ति के तो पक्षपाती थे परन्तु कांग्रेस के दोनों दल जिन कार्य-नीतियों का अवलम्बन करके स्वराज्य प्राप्त करने का यत्न कर रहे थे, उनसे असहमत थे। वे माडरेट नेताओं की योग्यता के कायल थे परन्तु उनकी भिक्षा-नीति को पसन्द नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि माँगने से स्वराज्य नहीं मिलता, स्वराज्य तब मिलेगा जब भारतवासी उसके योग्य बन जायेंगे। गरमदल वालों के बारे मे उनकी सम्मति बन गयी थी कि वे लोग कहते बहुत कुछ हैं और करते बहुत

कम है। वे प्रदर्शन को मुख्य समझते है और ठोस काम को गौण। आतंकवाद में उनकी आस्था नहीं थी। इन सब कारणों से अधिकतर आर्यसमाजी १९१८ तक प्रचलित राजनीति के प्रति उपेक्षा का भाव रखते रहे। महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह की घोषणा करते हुए देश के सामने सत्य, अहिंसा और पवित्र जीवन के जो आदर्श रखे, उन्होंने महात्मा मुन्शीराम जी और उनके साथियों पर अद्भुत असर किया। वह तो मानों एक चमत्मार ही हुआ। यों महात्मा गाँधी जी का स्वामी श्रद्धानन्द जी से मानसिक और साक्षात्कार का परिचय कई वर्ष पुराना था। अपने भारत आने से पूर्व जब गाँधी जी ने अपने सत्याग्रह आश्रम के बालकों को भारत भेजा तब उन्हें यह आदेश दे दिया कि वह भारत में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना तक गुरुकुल काँगड़ी में रहें। सत्याग्रह आश्रम के बालक, जिनमें श्री गाँधी जी के होनहार पुत्र देवदास गाँधी भी थे, कई महीनों तक गुरुकुल काँगड़ी में रहे। यद्यपि दोनों महात्माओं की यह समीपता अनौपचारिक थी तो भी उससे यह अवश्य स्पष्ट होता था कि दोनों के जीवनसम्बन्धी आदर्शों में बहुत समानता है। दोनों का परस्पर बन्धुत्व एक दम स्थूल रूप में प्रकट हो गया। फलतः बम्बई में गाँधी जी के सत्याग्रह की घोषणा करने का समाचार पढ़ते ही स्वामी जी ने उन्हें इस आशय का तार दे दिया, कि "मैंने अभी-अभी सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित होने से मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

आर्यसमाज के सर्व-सम्मानित नेता के सत्याग्रह संग्राम में कूदने का परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाजियों में एक बिजली सी दौड़ गई। जो आर्यसमाजी तब तक राजनीति के प्रति उपेक्षा का भाव रखते थे वे उसके सबसे अगले मोर्चे पर जाकर खड़े हो गए। अगले एक मास के अन्दर-अन्दर सहस्रों नर-नारियों ने सत्याग्रह के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इतना ही नहीं, यदि शहरों और ग्रामों के सत्याग्रह-आन्दोलन का विस्तृत इतिहास तैयार किया जाय तो मालूम होगा कि देश के उत्तरीय प्रान्तों में आर्यसमाजी लोग युद्ध की सब से अगली पंक्ति में लड़ते रहे। प्रारम्भिक वर्षों में जिन महिलाओं ने राजनीति में भाग लिया, उनकी आधे से अधिक संख्या आर्य-जगत् से आयी थी।

सत्याग्रह की घोषणा के दो दिन पश्चात् दिल्ली में सत्याग्रह कमेटी बना दी गई थी। कमेटी में लगभग एक-तिहाई मुसलमान, एक-तिहाई आर्यसमाजी और शेष एक-तिहाई अन्य कांग्रेसी थे। खिलाफत सम्बन्धी नाराजगी के कारण मुसलमान उस समय राष्ट्र की राजनीति की ओर झुकने लगे थे। सत्याग्रह-कमेटी के दो मन्त्री थे, इन्द्र विद्यावाचस्पति और डा० अब्बुल रहमान। सत्याग्रह-आन्दोलन के उस प्रारम्भिक युग में दिल्ली ने जो महत्वपूर्ण भाग लिया, वह राष्ट्रीय इतिहास का विषय है। यह सर्वसम्मत सत्य है कि दिल्ली के उस चमत्कार-पूर्ण कार्य का एक मुख्य कारण स्वा० श्रद्धानन्द जी का तेजस्वी नेतृत्व था। उनके नेतृत्व में जो कार्यकर्त्ता युद्ध को चला रहे थे, उनमें बड़ी संख्या आर्य जनो की थी, जिनमें आर्य-देवियाँ भी सम्मिलित थी। स्वामी जी द्वारा जामा मस्जिद और फतेहपुरी मस्जिद के मेम्बरों पर से वेद मन्त्र को

व्याख्या के साथ सत्याग्रह के सिद्धान्तों पर भाषण उस युग की एक महत्वपूर्ण घटना है।

दिल्ली की रोमांच पैदा करने वाली घटना की प्रतिक्रिया देश भर में हुई। जन-संख्या में अनुपात की दृष्टि से बहुत कम होते हुए भी आर्यसमाजियों ने न केवल प्रारम्भिक वर्षों में, अपितु अंतिम सफलता तक स्वाधीनता के संग्राम में आगे बढ़कर महत्वपूर्ण भाग लिया। ऐसे समय आए, जब कांग्रेस के नेताओं में आर्यसमाज और आर्यसमाजियो के बारे मे सर्वथा निर्मूल भ्रमात्मक विचार फैल गए। परन्तु जिन आर्यजनों ने वेदों से अदीनता का पाठ पढ़ा था और महर्षि दयानन्द से यह शिक्षा प्राप्त की थी कि अच्छे से अच्छा भी विदेशी राज्य स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता, वे अंत तक स्वाधीनता के रणक्षेत्र में डटे रहे। न उन्हें अंग्रेजी सरकार का दमन बेदिल कर सका और न कुछ भ्रान्त राजनीतिक नेताओ की विरोधभावना लक्ष्य से च्युत कर सकी। वे अन्त तक सत्याग्रह संग्राम की अगली पंक्ति में जान जोखम में डाल कर लड़ते रहे।

दूसरा अध्याय

मत-भेद का आरम्भ

महात्मा गांधी नें रौलट बिलों का विरोध करने के लिए सत्याग्रह आरम्भ किया था। अभी सत्याग्रह को आरम्भ हुए एक महीना भी पूरा नही हुआ था कि पंजाब मे सरकार ने दमन का नंगा नाच दिखा दिया। जो सत्याग्रह केवल रौलट बिलों के विरोध में आरम्भ किया गया था, उसके उद्देश्यों मे पंजाब के अन्याय का प्रतीकार भी जोड़ दिया गया। कुछ समय पीछे भारत के मुसलमानों में खिलाफत सम्बन्धी आँदोलन ने जोर पकड़ा। उस समय मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन मे खीचने का उचित अवसर जान कर महात्मा जी ने खिलाफत को भी सत्याग्रह के उद्देश्यों में शामिल कर लिया। महात्मा जी की इस नीति का परिणाम यह हुआ कि बहुत से मुसलमान, जो पहले राष्ट्रीय आंदोलन की ओर उदासीनता अथवा विरोध का भाव रखते थे, सत्याग्रह-आंदोलन में शामिल हो गए। जब सत्याग्रह ने असहयोग का रूप धारण किया तब मुसलमानों की संख्या और भी बढ़ी परन्तु इससे राष्ट्रीय आंदोलन में एक दोष का बीज भी बोया गया। वह दोष का बीज यह था कि एक साम्प्रदायिक और मजहबी मामले को राष्ट्रीय आंदोलन का आवश्यक भाग बना लिया गया। स्वराज्य के साथ खिला-फत जुड़ जाने से, अधिकांश मुसलमानो में यह भावना पैदा हो गई कि स्वराज्य और खिलाफत एक ही वस्तु है। उन दिनों आदोलन में भाग लेनेवाले अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित मुसलमानों के स्वयंसेवक कांग्रेसवालों को खिलाफ़तवाले कह कर ही याद किया करते थे [illegible] कांग्रेस में मौलानाओं और उलमाओं की मानता सीमा से अधिक बढ गई, [illegible] ल यह निकला कि विशुद्ध राष्ट्रीयता की भावनाओ में कमजोरी आ गई। एक भाषण में महात्मा जी ने यह कहा था कि खिलाफत मुसल-मानो की गौ है। इस पर जब कुछ हिन्दुओं ने यह प्रश्न किया कि यदि खिलाफत और गौ बराबर है तो सत्याग्रह के उद्देश्यो में एक चौथी चीज गोवध निषेध को भी क्यों न जोड़ दिया जाय तो महात्मा जी ने इस आशय का उत्तर दिया कि मुझे विश्वास है कि यदि हिन्दू खिलाफत की रक्षा करेंगे तो मुसलमान गौ की रक्षा करने के लिए स्वयं ही उद्यत हो जायेंगे।

उस समय तो सरकार के अपराधों के कारण जनता का जोश प्रज्वलन की स्थिति तक पहुँचा हुआ था, इस कारण काम चलता रहा परन्तु यह स्पष्ट हो गया था कि राष्ट्रीय विचार के हिन्दुओं में भी ऐसे लोगों की बहुत बड़ी संख्या है, जो स्वराज्य के साथ खिलाफत के गठबंधन से सहमत नहीं है। उन्हें यह गठबंधन भविष्य में आने

वाले खतरों से भरा हुआ प्रतीत होता है। आर्यसमाज के जो सदस्य जी-जान से सत्याग्रह-आंदोलन में पड़ गए थे, यद्यपि वे सामयिक आवेश से प्रभावित होकर खिलाफत की सभाओं में भाग लेते रहे और खिलाफत सम्बन्धी प्रस्तावों का समर्थन भी करते रहे परन्तु उनका मन स्वराज्य के साथ खिलाफत के जोड़ने का समर्थन नहीं करता था। विशेषरूप से जब उन्हें यह दिखाई देता था कि राष्ट्रीय सभा-सम्मेलनों में अन्य सब विषयों की अपेक्षा खिलाफत को प्राथमिकता दी जाने लगी तब वे आशंकित हो जाते थे। महात्मा गाँधी और आर्यसमाज मे मत-भेद का पहला बीज यही से बोया गया।

१९२० में महात्मा जी की कार्य-नीति को कांग्रेस ने अपना लिया। इधर जो आर्य-समाजी सत्याग्रह में सम्मिलित हुए थे वे कांग्रेस में सम्मिलित हो गए। स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्थान उस समय के राष्ट्रीय नेताओं में बहुत ऊँचा माना जाता था। आपने अमृतसर की कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष पद से दिए गए भाषण में अछूत कहलाए जाने वाले भारतवासियों की चर्चा करते हुए कहा था कि "वे भारत में ब्रिटिश गवर्नमेंट रूपी जहाज के लंगर हैं। इन शब्दों पर गहरा विचार कीजिए और सोचिए कि किस प्रकार आपके साढ़े छः करोड़ भाई, आपके जिगर के टुकड़े, जिन्हें आपने काट कर फेंक दिया है, किस प्रकार भारतमाता के साढे छः करोड़ पुत्र एक विदेशी गवर्नमेंट रूपी जहाज के लगर बन सकते हैं। मै आप सब बहिनों और भाइयों से एक याचना करूँगा। इस पवित्र जातीय मन्दिर मे बैठे हुए अपने हृदयों को मातृभूमि के प्रेम-जल से शुद्ध करके प्रतिज्ञा करो कि—आज से वे साढ़े छः करोड़ हमारे लिए अछूत नही रहें बल्कि हमारे बहिन और भाई हैं। उनकी पुत्रियाँ और उनके पुत्र हमारी पाठशालाओं में पढेंगे। उनके गृहस्थ नर-नारी हमारी सभाओं मे सम्मिलित होंगे। हमारे स्वतंत्रता प्राप्ति के युद्ध में वे हमारे कन्धे से कन्धा जोडेंगे और हम सब एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए ही अपने जातीय उद्देश्य को पूरा करेंगें। हे देवियो और सज्जन पुरुषो! मुझे आशीर्वाद दो कि परमेश्वर की कृपा से मेरा यह स्वप्न पूरा हो।"

१९२० में नागपुर में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ था, उसके दो प्रस्ताव बहुत महत्वपूर्ण थे। एक प्रस्ताव में असहयोग के कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया गया था और दूसरे प्रस्ताव द्वारा देश के सामने रचनात्मक कार्यक्रम का एक आवश्यक अंग "अस्पृश्यता-निवारण" घोषित किया गया था। सक्रिय सत्याग्रह को पंजाब और अन्य स्थानों के उपद्रवों और सरकार के गोली-कांडों के पश्चात् "हिमालय जैसी भूल" कह कर महात्मा जी ने स्थगित कर दिया। उसके अभाव में देशवासियों के सामने मुख्य कार्यक्रम रचनात्मक ही रह गया। आर्यसमाज प्रारम्भ से ही अस्पृश्यता-निवारण को अपने कार्यक्रम का एक मुख्य भाग मानता और उसकी पूर्ति के लिए प्रयत्न करता रहा था। स्वामी जी ने कांग्रेस के अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी निश्चय का हृदय से स्वागत किया। आपने कांग्रेस की महासमिति में उपस्थित होने के लिए एक प्रस्ताव भेजा, जिसका अभिप्राय यह था कि महासमिति तीन सदस्यो की एक उपसमिति

नियुक्त करे, जिसका उद्देश्य कॉंग्रेस के अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी प्रस्ताव को कार्यान्वित करना हो। इस कार्य के संचालन के लिए समिति को ५ लाख रुपये तक व्यय करने का अधिकार दिया जाय। जब यह प्रस्ताव वर्किंग कमेटी में उपस्थित हुआ तो उसमें कुछ परिवर्तन कर दिए गए। पॉंच लाख की राशि को घटा कर दो लाख कर दिया गया, जिसमें से १ लाख की राशि तिलक स्वराज्य फंड में से तत्काल देने का और शेष एक लाख के लिए अपील करने का निश्चय किया गया। यद्यपि स्वामी जी ने इस निश्चय को बहुत असंतोषजनक समझा परन्तु सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री राजगोपालाचार्य आदि आदरणीय सदस्यों के अनुरोध पर उसे स्वीकार कर लिया। जब प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का समय आया तब उपसमिति के मन्त्री श्री गगाधरराव देशपांडे को योजना के तैयार करने के लिए केवल ५०० रुपए तक व्यय करने की स्वीकृति दी। लाखों की राशियो का यह उलटफेर समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि १९२१ में तिलक स्वराज्य फंड के लिए देश से एक करोड रुपया एकत्र हुआ था। उधर अस्पृश्यता-निवारण के कार्य की ऐसी उपेक्षा हो रही थी और इधर दिल्ली आदि अनेक केन्द्रों में सरकार और अम्बेदकर दल के प्रचारक दलित श्रेणियों को हिन्दुओं से अलग करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। ऐसी परिस्थिति देखकर स्वामी जी ने स्वतंत्र रूप से अस्पृश्यता-निवारण और दलितोद्धार के कार्य को बलपूर्वक करने का निश्चय कर लिया और कॉंग्रेस की समिति की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। कुछ समय के पश्चात् आप कॉंग्रेस की वर्किंग कमेटी की सदस्यता से भी अलग होगए। इस सारे घटनाचक्र ने देश भर में आर्यसमाजियो के हृदयों में कॉंग्रेस के प्रति असंतोष के भाव उत्पन्न कर दिए। वह असंतोष तब पराकाष्ठा तक पहुँच गया जब १९२३ मे कोकानाडा कॉंग्रेस के अध्यक्षपद से दिए गए भाषण में मौ० मुहम्मद अली ने यह सुझाव पेश किया कि देश भर के अछूतों को दो बराबर-बराबर भागों मे बॉंट दिया जाय। एक भाग मे हिन्दू प्रचारक काम करे और दूसरे में मुसलमान मौलवी। केवल इस सुझाव का इतना बुरा प्रभाव न होता यदि कॉंग्रेस के उस अधिवेशन मे कॉंग्रेस के मूर्धन्य नेता मौलाना के सुझाव का प्रतिवाद कर देते। उनके मौन को हिन्दू जनता ने अर्द्धस्वीकारी समझा और क्योंकि आर्यसमाज इस कार्यक्षेत्र मे सबसे अधिक कार्य कर रहा था, उसके सदस्यों को गहरा दु:ख हुआ।

इस प्रकार आर्यसमाज और कॉंग्रेस के बीच में खिलाफत को स्वराज्य के बराबर स्थान देने के कारण मत-भेद की जो छोटी सी खाई खुदनी शुरू हुई थी, वह अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी घटनाओ के कारण काफी विस्तीर्ण हो गई।

तीसरा अध्याय

शुद्धि और आर्यसमाज

कॉंग्रेस के कुछ नेताओं के आर्यसमाज से अधिक कुपित होने का कारण शुद्धि आन्दोलन था। उससे सम्बन्ध रखने वाली ऐतिहासिक श्रृंखला का विवरण देने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि शुद्धि शब्द का उस समय जिस अभिप्राय को प्रकट करने के लिए प्रयोग किया जाता था वह स्पष्ट कर दिया जाय।

प्रत्येक विश्वासी मनुष्य ईश्वर के स्वरूप को और अपने धर्म को जिस प्रकार मानता है, स्वभावतः वह चाहता है कि दूसरे भी वैसा ही मानें। जिस धर्म को वह अपने लिए कल्याणकारी मानता है, उसका प्रचार दूसरों में भी करना चाहता है। बौद्ध मत के भिक्षु, ईसाई मत के मिशनरी, और इस्लाम धर्म के मौलवी इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर भिन्न-भिन्न उपायों से अपने-अपने मंतव्यों का प्रचार करते रहे है। सारे संसार में सदियों से प्रत्येक सिद्धान्त के मानने वाले प्रचारकों का यह अधिकार माना गया है कि वे भिन्न सिद्धान्तों के मानने वालों मे अपना प्रचार करें।

यह अधिकार केवल धार्मिक प्रचार करने वालों को प्राप्त रहा हो या वे ही लोग इस अधिकार से उपयोग लेते रहे हों, ऐसा नहीं है। राजनीतिक और सामाजिक मन्तव्यों का प्रचार सदा ही होता रहा है और उचित माना गया है। राजनीति और समाज के क्षेत्र में इज़्मों (Isms) या वादों की कमी नहीं। बीसियों वाद है और उनके हज़ारों समर्थक और प्रचारक है। व्यक्तिवाद, समाजवाद, समष्टिवाद, आदि वादों का प्रचार भी होता रहा है और उसके कारण परस्पर संघर्ष भी कम नही हुए। यह लग-भग सर्वसम्मत बात है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने मन्तव्यों को अन्यों तक पहुंचाने और उन्हें अपने साथ सहमत करने का अधिकार है।

जैसे मत-परिवर्तन का अधिकार पुराना है, ऐसे ही मतपरिवर्तन के समय कुछ प्रक्रिया अथवा विधि काम में लाई जाय, यह परम्परा भी पुरानी है। बौद्ध भिक्षु दीक्षा लेने के समय क्षौर करा लेते थे और वस्त्र बदल लेते थे। उन्हें धर्म, बुद्ध और संघ की शरण में जाने की प्रतिज्ञाएं भी लेनी पड़ती थीं। ईसाई बनने के समय बपतिस्मा की जो प्रथा प्रचलित है, उसे कभी किसी समझदार व्यक्ति ने आक्षेप-योग्य नहीं समझा। मस्जिदों मे मुसलमान बनाने के समय जो विधि-विधान काम मे लाए जाते है उन्हे सब लोग जानते है। सभी धार्मिक सस्थाओ मे यह प्रथा प्रचलित है कि जब कोई नया व्यक्ति सम्मिलित होता है तब उसे परिवर्तन का महत्व समझाने के लिए विशेष प्रक्रियाओ में से गुजरना पड़ता है। उसका अभिप्राय यही होता है कि वह यह अनुभव करने लगे

कि मैंने एक नए वातावरण में प्रवेश किया है और नए साथी बनाए हैं। इस प्रक्रिया के नाम और रूप देशों, जातियों और संम्प्रदायों मे भिन्न-भिन्न हैं परन्तु उनकी भावना एक ही है।

मत-परिवर्तन की परम्परा हजारो वर्षों से चली आई है। उसके सम्बन्ध में विचारकों ने कभी विशेष आपत्ति नही उठाई। यदि कभी आपत्ति उठाई गई है और वह उचित रूप पर प्रायः सदा उठती रही है तो वह अन्यो के मत-परिवर्तन कराने के उपायों के सम्बन्ध में ही। मत-परिवर्तन कराने के उपायों को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत लाया जा सकता है। वे शीर्षक ये है--- (१) सेवा, (२)-प्रचार, (३), तलवार।

दूसरे को अपने मत का बनाने का सबसे उत्कृष्ट और निर्दोष उपाय सेवा है। उनके कष्टों का निवारण करके हम शत्रुओं के हृदयो को भी जीत सकते है। इस कारण लोकसेवा द्वारा धर्म-प्रचार सब से ऊँची कोटि का प्रचार माना जाता है।

अन्यों को अपने अनुकूल बनाने का दूसरा उपाय वाणी तथा लेख द्वारा प्रचार है। अपने आप में यह उपाय भी सर्वथा निर्दोष है। समझाने के लिए जितने साधन हैं, उन्हे काम मे लाना किसी प्रकार भी आपत्तिजनक नही समझा जा सकता। उसमें किसी दोष का अंश तब मिल जाता है जब प्रचार का ढंग दूषित हो। दूसरे के दिलों को दुखाने वाली भाषा का प्रयोग, वाक्छल और झूठे प्रलोभनों का देना आदि प्रचार के दोष हैं। जैसे सामान्य जीवन में, वैसे ही प्रचार के कार्य में भी "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्" के सिद्धान्त को काम में लाना अत्यन्त आवश्यक है।

धर्म प्रचार का तीसरा और निकृष्ट उपायतलवार या बलात्कार है। जबरदस्ती से दूसरे की इच्छा के विरुद्ध उसे मत-परिवर्तन के लिए बाधित करना, मृत्यु का डर दिखा कर अपना अनुयायी बनाना न किसी नीतिशास्त्र के अनुसार उचित है और न धर्मशास्त्र के अनुसार। परन्तु समय-समय पर इस उपाय का प्रयोग भी होता रहा है। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि डरा कर किसी को अपना अनुयायी बनाना और डर कर किसी का अनुयायी बनना दोनों ही पाप है।

कहा जाता है कि आर्य धर्म कभी प्रचारक धर्म नहीं रहा। इतिहास ने इस कथन की निस्सारता को भली प्रकार सिद्ध कर दिया है। महात्मा बुद्ध से बहुत पहले भारत के विद्वान् देश-देशान्तरों में जाते और अपने सिद्धान्तों की शिक्षा देते थे। भारत से गए हुए प्रचारकों ने कभी तलवार या राज्यशक्ति का सहारा नहीं लिया। वे सदा वाणी अथवा लेख द्वारा अपने सिद्धान्तो का प्रचार करते थे। अफ्रीका और एशिया के अनेक देशों के प्राचीन इतिहास की खोज ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि भारत के विचारों का संपर्क बहुत प्राचीनकाल में भी विस्तृत था। बौद्ध प्रचारकों की देश और विदेश में धर्म-प्रचार की यात्रायें तो

इतिहास का विषय हैं। प्राचीन काल से आर्य धर्म की यही परम्परा रही है कि सेवा और समझाने के उपायों से अपने मंतव्यों का प्रचार किया जाय।

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में भारत के मुनियों की उस परम्परा का पूर्ण रूप से पालन किया और उनके पीछे आर्यसमाज भी उसी पद्धति पर चलता रहा। आर्यसमाज के प्रचारकों ने कभी विष के बदले में विष या छुरे के बदले में छुरे का प्रयोग नहीं किया। वह सदा वार सहता रहा, उसने कभी वार नहीं किया। ऐसी दशा मे आर्यसमाजियों को बहुत आश्चर्य हुआ जब मलकाने राजपूतों में प्रचार का कार्य करने के कारण उन पर अनुचित दोषारोपण किया गया। वह दोषारोपण अनुचित क्यों था, यह जानने के लिए उस शुद्धि आदोलन के संक्षिप्त प्रारम्भिक इतिहास पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है, जिसका आरम्भ १९२२ मे हुआ।

सन् १९२२ के अगस्त की ३० वी तारीख को क्षत्रिय उपकारिणी महासभा का एक अधिवेशन हुआ, जिसके अध्यक्ष सर महाराजा रामपालसिह थे। उसमें यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया--"शाही जमाने मे जो राजपूत भाई हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति से अलग हो गए या अलग कर दिए गए थे और अब पुनः अपने धर्म तथा हिन्दू बिरादरी में आना चाहते है, उन्हें पुनः शुद्ध करके राजपूत हिन्दू बिरादरी में शामिल कर लिया जाय।"

उसी वर्ष ३१ दिसम्बर को शाहपुराधीश हिज हाइनेस श्री नाहरसिह जी के सभापतित्व में क्षत्रिय महासभा का बड़ा सम्मेलन हुआ, जिसमें इस प्रस्ताव को संपुष्ट किया गया। इस प्रस्ताव की आवश्यकता विशेष रूप से तब पड़ी जब कि इससे लगभग १३ वर्ष पहले १९०९ में आगरे के पं० भोजदत्त जी द्वारा स्थापित राजपूत शुद्धि सभा ने कई सौ नौ-मुस्लिम राजपूतों को हिन्दू धर्म मे वापिस ले लिया था। वे भी राजपूत जाति की उपेक्षा के कारण ही घबरा कर फिर धर्म-परिवर्तन के लिए तैयार हो रहे थे। क्षत्रिय उपकारिणी सभा के प्रस्ताव का मुख्य रूप से यह उद्देश्य था कि उन डॉवाँडोल होते हुए भाइयों को सहारा दिया जाय।

क्षत्रिय उपकारिणी सभा ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उसे समाचार-पत्रों मे भी प्रकाशित करा दिया। उस समय उस प्रस्ताव के प्रकाशित होने का प्रभाव उलटा ही पड़ा। क्षत्रिय उपकारिणी सभा ने अपने प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का कोई उपाय नहीं किया था। परन्तु वह प्रस्ताव मुसलमानों की प्रचारक संस्थाओं और प्रचारकों को जगाने के लिए पर्याप्त था। उनमे एक दम हलचल मच गई। चारों ओर से इस्लाम के प्रचारक उन प्रदेशों की ओर जाने लगे जहाँ मलकाने और मूले रहते थे। ये लोग नौ-मुसलिम कहलाते थे।

ये नौ-मुस्लिम असल मे जाट, गूजर, और राजपूत आदि जातियों मे से थे। बादशाह औरंगजेब के समय में इन्हें डरा-धमका कर मुसलमान बनाया गया था। वे लोग मुसलमान तो बन गए परन्तु उनके रीति-रिवाज सब हिन्दुओ के समान ही रहे।

राज्य-परिवर्तन के बाद यदि हिन्दुओं में कोई प्रचारक स्संथा होती तो ये लोग बहुत आसानी से हिन्दुओं में वापिस आ जाते। परन्तु जिस छूआ-छूत और अनुदारता के रोग ने दलित जाति के करोड़ों हिन्दुओं को समाज से अलग किए रखा, वही यहाँ भी मलकानो और मूलों को अलग रखने का कारण बना रहा। अलग रहते हुए भी वे रहन-सहन और रीति-रिवाज मे हिन्दुओं जैसे ही बने हुए थे। उनके विवाह आदि संस्कारों में ब्राह्मणो को बुलाया जाता था और उनमें मुर्दो को जलाया जाता था। यह सब कुछ होते हुए भी उनके सजातीय हिन्दुओं की ओर से उनकी ओर उपेक्षा और कभी-कभी विरोध का भाव दिखाया जाता रहा था। इस कारण धीरे-धीरे उन पर मुसलमान प्रचारकों का प्रभाव बढ़ता गया। वह विवाह की जगह निकाह कराने लगे और मुर्दों को दफनाने लगे। इतना परिवर्तन होने पर भी वे चोटी रखते थे और गो-माँस नही खाते थे। उनकी ओर से क्षत्रिय महासभा, जाट महासभा और गूजर महासभा के पास कई बार इस आशय के आवेदन पत्र भेजे गए कि उन्हें शुद्ध करके अपनी-अपनी बिरादरी में मिला लिया जाय। वर्षों तक उनके आवेदन-पत्रों का कोई विशेष असर न हुआ। जैसे हम ऊपर बता आए हैं, १९०९ में आगरे के पं० भोजदत्त जी ने राजपूत शुद्धि सभा की स्थापना करके कुछ राजपूतो को अपनी बिरादरी में वापिस लिया था परन्तु उन्हें संभालने वाला कोई नहीं था अतः वे दोनों पक्षो से उपेक्षित होकर त्रिशंकु की तरह बीच में लटक गए। जब क्षत्रिय उपकारिणी महासभा के अध्यक्ष राजा रामपालसिंह जी को इस दशा का परिज्ञान हुआ तब उन्होंने वह प्रस्ताव स्वीकार कराया, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है।

प्रस्ताव का तात्कालिक असर अच्छा नहीं हुआ। इस्लाम के प्रचारक समाचार-पत्रो ने यह आन्दोलन खड़ा कर दिया कि आर्यसमाजी लोग सब नौ-मुस्लिमों को शुद्ध करके मुरतिद बनाना चाहते हैं। मुरतिद वह कहलाता है, जो इस्लाम को त्याग कर पतित हो जाय। दिल्ली के ख्वाजा हसन निजामी ने इस अवसर से लाभ उठा कर मुसलमानों मे बहुत यश और धन कमाया। उसने इस्लाम की तबलीग के विषय में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमे मुसलमानो को चेतावनी दी गई थी और खुफिया प्रचार के बहुत से नए-नए उपाय बतलाए गए थे। वह पुस्तक तैयार की गई थी गुप्त प्रचार के लिए परन्तु अकस्मात् वह स्वामी श्रद्धानन्द जी के पास पहुँच गई। स्वामी जी ने "मुहम्मदी साजिश का इन्किशाफ" इस नाम की एक छोटी सी पुस्तक उर्दू में प्रकाशित की, जिसमें हिन्दुओ को उन सब हथकंडों से सावधान किया, जो तबलीग के लिए बरते जा रहे थे, अथवा बरते जा सकते थे।

जब हिन्दू जाति के नेताओं को यह पता चला कि क्षत्रिय उपकारिणी सभा के प्रस्ताव से सचेत होकर मुसलमान मौलवी मलकानों और मेवों को पक्के मुसलमान बनाने के लिए उनके इलाके में पहुँच गए है तब उन्होंने भी अनुभव किया कि कुछ उपाय करना चाहिए। नौ-मुस्लिमों की अधिकतर आबादी आगरे के आस-पास थी। सारी परिस्थति पर विचार करने के लिए १३ फरवरी १९२३ को भिन्न-भिन्न प्रान्तों

के ८५ प्रतिनिधि आगरा में एकत्र हुए। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि शुद्धि के कार्य के लिए एक केन्द्रीय सभा स्थापित की जाय। सभा का नाम 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' रखा गया।

उसके निम्नलिखित उद्देश्य स्वीकृत हुए—

क. हिन्दू समाज से बिछुड़े हुए तथा अन्य मतावलम्बी भाइयों को पुनः हिन्दू समाज में सम्मिलित करना।

ख. शुद्धि-क्षेत्र में प्रेम तथा धर्म का प्रचार करना।

ग पाठशालाओं तथा अन्य शिक्षाप्रद संस्थाओं द्वारा शुद्धि-क्षेत्र में विद्यादि का प्रचार करना।

घ. अनाथों तथा विधवाओं के धर्म की रक्षा करना।

ङ आवश्यकतानुसार शुद्धि क्षेत्र में चिकित्सालय खोलना।

च धार्मिक, ऐतिहासिक तथा अन्य पुस्तकों को, जो सभा के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हों, छपवाना।

छ. सभा के उद्देश्यों की पूर्त्यर्थ अन्य आवश्यक साधनों को काम में लाना।

उसके निम्नलिखित अधिकारी चुने गए—

प्रधान श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी

उपप्रधान १. महात्मा हंसराज जी
२. बाबू रामप्रसाद जी बी० ए०
३. कुंवर हनुमन्तसिंह जी

महामन्त्री कुंवर माधवसिंह जी

मन्त्री १. बाबू नाथमल (आगरा)
२. श्री वेदप्रकाश जी
३ चौबे विश्वेश्वरदयाल जी

कोषाध्यक्ष बाबू चांदमल बी० ए०

अन्तरंग सदस्य—

१ बा० श्रीराम (आगरा)
२ राजा नरेन्द्रनाथ (लाहौर)
३ प्रो० गुलशन राय (लाहौर)
४. पंडित रामगोपाल शास्त्री (लाहौर)
५. पं० ठाकुरदत्त शर्मा (लाहौर)
६ महाशय खुशहाल चन्द (लाहौर)
७ महाशय कृष्ण जी (लाहौर)
८ महात्मा नारायण स्वामी जी
९. महाशय हरगोविन्द गुप्त (कलकत्ता)

१० कुंवर चाँदकरण शारदा (अजमेर)
११. बा० सालिग्राम (आगरा)
१२. डा० गोकुल चन्द नारंग (लाहौर)

शुद्धि सभा की रजिस्ट्री रजिस्ट्रेशन एक्ट नं० २१, सन् १८६० के अनुसार ४ दिसम्बर १९२४ को हुई। सभा का मुख्य कार्यालय १९२५ के मार्च मास तक आगरा में रहा। उसके पश्चात् एक वर्ष तक लखनऊ में रह कर दिल्ली में चला गया।

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के अधिकारियों तथा अन्तरंग सदस्यों के नामों की पूरी सूची को पढ़ने से प्रतीत होगा कि यद्यपि यह सभा हिन्दू मात्र के लिए खुली थी तो भी इसके प्रारम्भिक कार्यकर्त्ताओं में दो-तीन को छोड़ कर शेष सब कार्यकर्त्ता आर्यसमाज से सम्बद्ध थे। उस समय स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज तथा श्री नारायण स्वामी जी आदि जितने प्रमुख आर्यसामाजिक नेता थे, वे प्रायः सभी सभा में सम्मिलित थे। उसका स्पष्ट कारण यही था कि तब तक अन्य धर्मावलम्बियों को आर्य धर्म में वापिस लेने का काम आर्यसमाज करता रहा था। शुद्धि के क्षेत्र में आर्यसमाजियों का आगे बढ़ कर काम करना स्वाभाविक ही था। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि जब शुद्धि का कार्य आरम्भ हुआ तो वह केवल आर्यसमाजियों तक ही परिमित रहा। लगभग सारे हिन्दूसमाज ने उसका हृदय से स्वागत किया। अनेक कट्टर सनातनधर्मी पंडित और कार्यकर्त्ता जी-जान से शुद्धि के कार्य में सहायता देने लगे। जैसी उत्सुकता कई दिनो के भूखे व्यक्ति के मन में अन्न सामने देख कर होती है, हिन्दू जाति के हृदय मे सदियो के बिछड़े हुए भाइयो के लिए वैसी ही उत्सुकता उत्पन्न हो गई।

प्रत्येक विचार के हिन्दुओं में शुद्धि के प्रति जैसी अनुकूल भावना उत्पन्न हो रही थी, उसका एक प्रमाण सनातन धर्म के प्रसिद्ध पंडितो द्वारा दी गई वह व्यवस्था थी, जो महामहोपाध्याय पंडित शिवदत्त शर्मा की ओर से प्रकाशित की गई थी। उस व्यवस्था के आवरण पृष्ट पर निम्नलिखित परिचय दिया गया है :—

म्लेच्छीकृ (भू)तानां शुद्धिव्यवस्था

श्रीमन्महाराजाधिराज जम्बूकश्मीराद्यनेकदेशाधीशप्रभुवर श्रीरणवीरसिंहाज्ञप्त-सारस्वत पंडितोपनामदेवीदत्तसुतकविगंगारामसंगृहीतजम्बूमुद्रितधर्मशास्त्रमहानिबन्धा-न्तर्गतप्रायश्चित्तभागे ५४-७७ पृष्ठेषूपलब्धा लवपुरीयप्राच्यविद्यालयप्रधानाध्यापकेन महामहोपाध्यायदाधिमथपंडितशिवदत्तशर्मणा संशोध्य मुम्बय्यां प्रकाशिता।

व्यवस्था में स्मृतियों और पुराणों के अनेक प्रमाण देकर अन्त में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला गया था—

इत्युपदर्शितव्यवस्थानुसारेण निर्गलितोर्थः—आर्यत्वाविर्भावेच्छायां पूर्वं मनस्ताप-स्ततो म्लेच्छत्वाभिमानजिहासया प्रायश्चित्तचिकीर्षया श्रुति-स्मृति-पुराण-वाक्येषु विश्वास-

पूर्वकं प्रायश्चित्तोपदेष्टृवाक्ये अतीव विश्वासेन प्रायश्चित्तोपदेष्टृणामुपासना, ततश्च तदुपदिष्टानां मनस्तापोपवासगंगास्नानपूर्वकं भक्तिशास्त्रप्रदर्शितरामकृष्णशिवमन्त्राणां दीक्षया सम्भवत्येव म्लेच्छत्वमलापाकृत्या स्वस्वनिष्ठार्यत्वजात्याविर्भावः ॥

व्यवस्था का अभिप्राय यह है कि जब किसी अनार्य धर्म में गए हुए मनुष्य के मन में आर्य बनने की अभिलाषा उत्पन्न हो, तब पहले उसके मन में अपने धर्म का त्याग हो जाने पर पश्चात्ताप होना चाहिए, फिर म्लेच्छत्व का अभिमान त्याग देना चाहिए और उसके पश्चात् अनार्य धर्म को छोड़ कर आर्य धर्म में प्रवेश करने के लिए श्रुति, स्मृति, पुराण वाक्यों में विश्वास रखकर प्रायश्चित्त के निमित्त आर्य विद्वानों के समीप आना चाहिए और फिर उनके उपदेश को मान कर पश्चात्ताप, उपवास, गंगास्नान आदि कर्म तथा शास्त्र की बतलाई हुई रीति के अनुसार राम, कृष्ण तथा शिव के मन्त्रों द्वारा दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रकार अनार्यत्व दूर हो जाता है और आर्यत्व प्राप्त हो जाता है।

इस तथा ऐसी ही अन्य व्यवस्थाओं के कारण सारी हिन्दू जाति में एक ऐसी मानसिक क्रांति उत्पन्न हो गई थी जैसी शताब्दियों से दिखाई नहीं दी थी। सनातन धर्म के प्रचारक और विद्वान् आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं के हाथ में हाथ डाल कर शुद्धि के कार्य में प्रवृत्त हो गए थे। हिसाब लगाया गया है कि केवल शुद्धि सभा द्वारा १९२३ और १९३१ के मध्यवर्ती आठ वर्षों में लगभग २ लाख नौ-मुस्लिमों को आर्य धर्म में वापिस लाया गया। इन्ही वर्षों में ६० हजार के लगभग अस्पृश्य कहलाने वाले लोगों को विधर्मी होने से बचाया। १२७ शुद्धि सम्मेलन किए गए। १५६ पंचायतें हुईं और ८१ बड़े-बड़े सहभोज किए गए। शुद्धि सभा की ओर से 'शुद्धि समाचार' नाम का एक मासिक पत्र निकलता था, जिसके एक समय में १४ हजार ग्राहक थे। शुद्धि सम्बन्धी साहित्य पर शुद्धि सभा ने ४८ हजार रुपया व्यय किया। यह सब कार्य केवल आर्यसमाज अथवा आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं के प्रयत्न से ही नहीं हुआ, इसमें सारी हिन्दू जाति का सहयोग शामिल था, किन्तु प्रमुख भाग आर्यसमाज का ही था।

यदि पक्षपातहीन दृष्टि से देखा जाय तो शुद्धि का आंदोलन विशुद्ध धार्मिक आंदोलन था। उसे विशुद्ध हम इसलिए कहते है कि न तो उसमें तलवार से डराने का कोई अंश था, और न राज्य से कोई सहायता प्राप्त होने का लोभ। जो लोग डर या लोभ के कारण किसी समय अपने धर्म को छोड कर अन्यत्र चले गए थे, उन्हें उनकी इच्छानुसार प्रेम से अपने अन्दर वापिस लेना किसी प्रकार भी दोषयुक्त नहीं समझा जा सकता। विशेष रूप से उन मतों के प्रचारकों द्वारा जो प्रचार के कार्य में भय और लोभ के साधनों का प्रयोग करते रहे हों, शुद्धि के कार्य पर आक्षेप का किया जाना

तो सर्वथा ही असंगत और अकारण था। परन्तु बात यह थी कि इस्लाम और ईसाइयत के प्रचारक यह देखकर घबरा गए थे कि जिस हिन्दू जाति ने सदियों से अपने खोए हुए धन को वापिस लेना अपराध समझा था, वह जाग उठी है और लुटे धन को सूद सहित वापिस लेने का उद्योग करने लगी है। उस उद्योग के कार्य में आर्यसमाज के कार्यकर्ता अगली श्रेणी में खड़े दिखाई देते थे। इस कारण अन्य मतों के अदूरदर्शी प्रचारकों की क्रोधाग्नि उन्हीं पर अंगारे बरसाने लगी।

चौथा अध्याय

साम्प्रदायिक उपद्रव और आर्यसमाज

खिलाफत के आंदोलन से देश के मुसलमानों में असाधारण जागृति उत्पन्न हो गई। यदि वह आदोलन केवल मुसलमानों तक परिमित रहता और महात्मा गाँधी उसे स्वराज्य के साथ जोड़ कर राष्ट्रीय रूप न देते तो उसका न तो इतना विशाल रूप बनता और न ही वह इतना गहरा होता। खिलाफ़त आदोलन के कांग्रेस के कार्य-क्रम का भाग बन जाने से उसको असाधारण महत्व प्राप्त हो गया। राष्ट्रीय विचार के हिन्दुओं ने उसे पूरी तरह अपना लिया। उधर मुसलमान जनता का यह विचार बनता गया कि काँग्रेस का मुख्य कार्य खिलाफत को फिर से कायम कराना है, शेष सब चीजें गौण हैं।

राष्ट्रीय विचार के मुसलमानों में से बहुत से ऐसे सज्जन भी थे जिन्होंने महात्मा जी की भावना को समझ लिया था। वे स्वराज्य को मुख्य और खिलाफत को गौण स्थान देते थे। परन्तु अधिकतर मुसलमान नेताओं का मन उस ऊँचाई तक नही पहुँच सका, जहाँ उसे महात्मा जी ले जाना चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि सरकार के साथ संघर्ष स्थगित होने पर जब राजनीतिक आदोलन का वेग कुछ हलका हुआ तो साधा-रण मुसलमान-जनता के हृदयो में खिलाफत साम्प्रदायिकता के रूप में प्रकट होने लगी। उस साम्प्रदायिकता के रोग का पहला विस्फोट मोपला-उत्पात के रूप में प्रकट हुआ।

मोपला लोग दक्षिण के मालाबार प्रदेश में रहते थे। बहुत पूर्व उनके पूर्वज अरब से आए थे। वे भारत के निवासी तो बन गए परन्तु इससे उनकी उग्र प्रकृतियों में शान्ति न आई। उनमें मारकाट और दंगे-फिसाद की घटनाएं इतनी अधिक होती थी कि सरकार को एक विशेष विधान पास करना पड़ा था। देश भर में असहयोग आदोलन के गर्म होने पर मालाबार में भी उसकी चर्चा आरम्भ हुई। सरकार मोपलों के जोश से बहुत डरती थी। उसने बाहर से गए हुए और मालाबार के राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ताओं पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगा कर आदोलन की अग्नि को मालाबार में फैलने से रोकने का यत्न किया। उस यत्न का असर उलटा ही हुआ। १९२१ के आरम्भ में मोपलों ने हथियार संभाल कर खुले विद्रोह की घोषणा कर दी। उस विद्रोह की विशेषता यह थी कि उसने प्रारम्भ से ही साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया। हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाना और न बनें तो मार डालना यह उपद्रवी मोपलाओं का मुख्य कार्यक्रम बन गया। साम्प्रदायिकता के उस नग्न तांडव

का पूरा विवरण देना यहाँ न सम्भव है और न अभीष्ट, यहाँ तो यह बतलाना अभीष्ट है कि एक मजहबी मामले को स्वराज्य के साथ नत्थी करने से साम्प्रदायिक भावना को जो पुष्टि मिली, उसका पहला फल मोपलों के उपद्रव के रूप में प्रकट हुआ।

१९२२ में मुलतान में एक भयानक उपद्रव हुआ, जिसमें हिन्दुओं के पूजा के स्थान अपवित्र किए गए और हिन्दुओं के बहुत से घर लूटे और जलाए गए। उसके पश्चात् अन्य भी बहुत से स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे हुए, जिनमें मालाबार और मुलतान का किस्सा दोहराया गया। हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े गए, घर फूंके गए और कुछ हत्याएं भी हुईं। देश के हिन्दुओं में इन उपद्रवों के कारण गहरी घबराहट उत्पन्न हो गई जो हिन्दू महासभा के पुनर्जागरण के रूप में प्रकट हुई। हिन्दू महासभा की स्थापना मुस्लिम लीग के उत्तर में हुई थी। कई वर्षों तक वह वार्षिक सम्मेलनों और प्रस्तावों तक परिमित रही। असहयोग आदोलन के प्रारम्भिक दिनो मे सभा ने राजनीतिक रूप धारण कर लिया, और हकीम अजमल खां साहब के सभापतित्व में उसने गोरक्षा के साथ-साथ खिलाफत के आंदोलन का भी समर्थन कर दिया। उस समय हिन्दू महासभा के सचालकों का सम्भवत यह विचार था कि यदि हिन्दू खिलाफत का समर्थन करेंगे तो मुसलमान गोवध करना बन्द कर देंगे। मालाबार, मुलतान आदि स्थानो पर जो उपद्रव हुए, उनसे हिन्दुओं के हृदयो को भारी ठेस पहुँची। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू महासभा, जो अब तक प्रसुप्त अवस्था में जीवन के दिन काट रही थी, जाग कर आंदोलन की भाषा मे बोलने लगी।

हिन्दू महासभा के उद्देश्यों मे हिन्दू जाति की शक्ति को बढ़ाने के लिए उसके दोषों के निवारण को मुख्य स्थान दिया गया था, इस कारण स्वाभाविक ही था कि सुधार-प्रेमी आर्यसमाजी अपने कार्य की पुष्टि समझ कर हिन्दू महासभा मे सम्मिलित होते। आर्यसमाजियों की यह विशेषता रही है कि वे जिस कार्य मे पड़ते हैं, पूरी शक्ति लगा देते हैं और अगली पंक्ति मे रहने के कारण विरोधियों के प्रहारों को अपनी छातियों पर ले लेते हैं। आर्यसमाज के जो कार्यकर्त्ता हिन्दू महासभा में सम्मिलित हुए, उन्होने भी ऐसा ही किया। उनके आगे रहने का परिणाम यह हुआ कि मुसलमान नेताओं ने और बहुत से कांग्रेसी नेताओ ने यह धारणा बना ली कि हिन्दुओं में और हिन्दू महासभा मे जो हलचल उत्पन्न हुई है, उसके मुख्य सूत्रधार आर्यसमाजी ही हैं।

उधर आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता यह अनुभव कर रहे थे कि हिन्दू महासभा अपना सारा गोला-बारूद राजनीतिक क्षेत्र में खर्च कर रही है और अपने मुख्य लक्ष्य आत्म-सुधार की लगभग सर्वथा उपेक्षा कर रही है। विधवा-विवाह, दलितोद्धार आदि विषयों मे हिन्दू महासभा के अन्य नेता उदासीन से रहते थे। सभा के कई अधिवेशनों में यत्न किया गया कि हिन्दू जाति की जड़ों को खोखला करने वाली कुरीतियों के विरुद्ध बलिष्ठ प्रस्ताव स्वीकार किए जाएँ परन्तु रूढ़ियों की प्रबलता के कारण सफलता

प्राप्त न हुई। इस कारण स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा अन्य कई आर्यसमाजी नेता १९२३-२४ में ही हिन्दू महासभा की ओर से उदासीन हो गए थे।

१९१९ से १९२४ तक देश की राजनीति में कई उतार-चढ़ाव हुए। चौराचौरी की घटना के बाद १९२२ में महात्मा गाँधी द्वारा सत्याग्रह स्थगित कर देने के कारण स्वराज्य का आंदोलन उतार पर आ गया था। देश के शिथिल वातावरण से लाभ उठा कर सरकार ने महात्मा जी पर अभियोग चला दिया और छः वर्ष की जेल की सजा दे दी। जेल में महात्मा जी रोगी हो गए। अपेन्डिसाइट्स का आपरेशन कराना पड़ा जिसके पश्चात् महात्मा जी जेल से छोड़ दिए गए। जो दो वर्ष महात्मा जी ने जेल में व्यतीत किए, उनमें देश का राजनीतिक वातावरण बहुत बदल गया था। असहयोग की भावना निर्बल हो गई थी और कौंसिल-प्रवेश मैदान में आ गया था। देश के भिन्न-भिन्न भागों में साम्प्रदायिक उपद्रवों के कारण वातावरण में बेदिली छा गई थी। जेल से मुक्त होकर विश्राम करने के लिए महात्मा जी कुछ समय के लिए बम्बई के स्वास्थ्य स्थान जुहू में ठहरे। वहाँ दो प्रकार के व्यक्ति अपनी-अपनी शिकायतों के पुलन्दे लेकर इकट्ठे हो गए। जो नेता कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध थे, उन्हें पं० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धुदास से शिकायत थी और मौ० मोहम्मदअली और मौ० शौकतअली प्रच्छन्न सांप्रदायिक नेताओं को शुद्धि और हिन्दू महासभा से शिकायत थी। दोनों ने महात्मा जी के खूब कान भरे। देश की बिगड़ी हुई परिस्थिति से महात्मा जी इतने परेशान थे कि अधिक जाँच अथवा पूछताछ की प्रतीक्षा किए बिना ही उन्होंने सांप्रदायिक समस्या के सम्बन्ध में २८ मई १९२४ को 'यंग इंडिया' में एक बहुत लंबा लेख लिखा जिसमें उपद्रवों के लिए मुख्य रूप से आर्यसमाज के प्रचार-कार्य को जिम्मेदार ठहराया। लेख में केवल सम्मति देकर ही संतोष नहीं किया गया अपितु उसकी लम्बी व्याख्या भी की गई थी। आर्यसमाज के बहुत से नेता और सहस्रों सदस्य प्रारम्भ से ही सत्याग्रह संग्राम में जी जान से भाग ले रहे थे क्योंकि वे देशभक्ति को भी अपने धर्म का एक अंग मानते थे। परन्तु साथ ही उनकी यह एक विशेषता रही कि वे जिस अंश में महात्मा जी से सहमत नहीं थे, उसे स्पष्ट रूप से कह देने में संकोच नहीं करते थे। दलितोद्धार के सम्बन्ध में कांग्रेस की कार्यकारिणी से स्वामी श्रद्धानन्द जी के मतभेदों की चर्चा हम ऊपर कर आए हैं। स्वामी जी सत्याग्रह के कभी जारी होने और कभी स्थगित होने की आँखमिचौनी से भी सहमत नहीं थे। वे ईसाइयों के प्रचार-कार्य और मुसलमानों की तबलीग की भांति शुद्धि को अपना उचित अधिकार मानते थे। संभवतः सांप्रदायिक समस्या पर लेख लिखने के समय महात्मा जी के मन पर उन सब मतभेदों का प्रभाव रहा होगा, क्योंकि उपद्रवों की विवेचना के प्रसंग में सत्यार्थप्रकाश, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और आर्यसमाज पर ऐसी अधकचरी सम्मतियाँ देना आवश्यक नहीं था, जिन्हें कुछ ही दिनों के पश्चात् महात्मा जी ने वापिस ले लिया। सत्यार्थप्रकाश को आपने एक निराशाजनक पुस्तक बतलाया था और स्वामी श्रद्धानन्द जी के स्वभाव पर प्रतिकूल टिप्पणी की थी। आर्यसमाज को तो आपने उपद्रवों के नाटक का मुख्य पात्र ही बना दिया था।

उस लेख के प्रकाशित होने पर आर्य-जगत् में कुहराम सा मच गया। बिना जाँच-पड़ताल के एकतरफा दिए गए फैसले को आर्यजनों ने भारी अन्याय समझ कर समूह रूप से और अकेले-अकेले भी उसका बहुत जोरदार प्रतिवाद किया। महात्मा जी के समीप रहने वाले लोगों ने बतलाया था कि किसी एक लेख के सम्बन्ध में इतने आलोचनात्मक पत्र तथा तार नही आए, जितने उस लेख के सम्बन्ध मे। तार, पत्र, लेख और जवाबी पुस्तिकाओं का एक बड़ा ढेर लग गया था, जिन सबका उत्तर देना सम्भव नहीं था। बहुत से आर्य विद्वान् और विद्वानों के शिष्ट-मण्डल इस उद्देश्य से महात्मा जी से मिले कि उनका भ्रम निवारण हो। कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़ कर सब हिन्दुओं ने अनुभव किया कि 'यंग इंडिया' के लेख से आर्यसमाज के साथ घोर अन्याय हुआ है।

समय ने स्वयं महात्मा जी को पुनर्विचार के लिए प्रेरित किया या हृदयों से निकले हुए प्रतिवादों की वर्षा ने अपना प्रभाव दिखाया। कुछ ही दिनों के पश्चात् वे अनुभव करने लगे कि आर्यसमाज, महर्षि दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश और स्वामी श्रद्धानन्द जी के विषय में वे जो कुछ लिख गए, उसमे कुछ भूल थी। उसे सुधारने के लिए उन्होंने 'यग इंडिया' में कई नोट और लेख लिख कर अपने लम्बे लेख के मार्जन का यत्न किया। उससे वातावरण थोड़ा बहुत शान्त हुआ परन्तु प्रारम्भिक लेख ने जो विष फैलाया था, वह पूरी तरह दूर नहीं हुआ। कांग्रेस के बहुत से कार्य-कर्त्ताओं और नेताओ में आजतक भी आर्यसमाज के प्रति जो छुपा हुआ दुर्भाव है, वह उसी प्रारम्भिक विष का परिणाम है। धर्मान्ध मुसलमानों के हृदयों मे स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति जो तीखी कड़वाहट पैदा हो गई थी, 'यंग इंडिया' के उस लेख का भी उसमें थोड़ा-बहुत भाग था। महात्मा जी का हृदय निर्मल था, वे अपनी भूल को मानने मे न देर लगाते थे और न संकोच करते थे परन्तु जिनके हृदय उतने विशाल नहीं थे, वे भावनाओं के प्रवाह में इतने बह जाते थे, कि उसमें से आसानी से नही निकल सकते थे।

गाँधी जी ने २८ मई १९२४ के अक में जो लेख लिखा था, उसके कुछ आपत्ति-योग्य सम्बद्ध भाग निम्नलिखित थे--

महर्षि दयानन्द के बारे मे आपने लिखा था-- "मेरे हृदय में स्वामी दयानन्द के लिए बड़ा मान है। मैं समझता हूँ कि उन्होंने हिन्दू धर्म की बहुत सेवा की है। उनकी वीरता में सन्देह करने की गुँजाइश नहीं परन्तु उन्होंने अपने धर्म को संकुचित बना दिया है। मैंने आर्यसमाजियों की बाइबिल सत्यार्थप्रकाश को पढ़ा है। जब मै यरवदा जेल में आराम कर रहा था तो कुछ-एक मित्रों ने उनकी तीन कापियाँ मेरे पास भेजी थीं। मैंने इतने बडे सुधारक का ऐसा निराशाजनक ग्रंथ आज तक नहीं पढ़ा। स्वामी दयानन्द ने सत्य और केवल सत्य पर खड़े होने का दावा किया है परन्तु उन्होंने अनजान में जैन धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाइयत

और स्वयं हिन्दू धर्म को अशुद्ध रूप में प्रकट किया है। उन्होंने पृथिवी तल पर अत्यन्त सहिष्णु और स्वतन्त्र संप्रदायों मे से एक (हिन्दू संप्रदाय) को संकुचित बनाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि वे मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे परन्तु एक अत्यन्त सूक्ष्म रूप मे मूर्तिपूजा का बोलबाला करने में, सफल हुए है। उन्होंने वेदों के शब्दों की मूर्ति बना दी है और वेदों में विज्ञान-प्रतिपादित प्रत्येक विद्या के होने को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। मेरी सम्मति में, आर्यसमाज सत्यार्थप्रकाश की शिक्षाओं की उत्तमताओ से उन्नत नहीं हो रहा है, अपितु उसकी उन्नति का कारण, उसके संस्थापक का विशुद्ध चरित्र है। आप जहाँ कहीं भी आर्यसमाजियों को पावेंगे, वहाँ जीवन और जागृति मिलेगी। परन्तु संकुचित विचार और लड़ाई-झगड़े की आदत से अन्य संप्रदाय वालों से लड़ते रहते है और जहाँ ऐसा नहीं वहाँ स्वयं आपस में लड़ते रहते है। स्वामी श्रद्धानन्द जी को भी, इसका अधिकांश भाग मिला हुआ है, परन्तु इन सब त्रुटियों के होते हुए भी, मै उन्हें (स्वामी श्रद्धानन्द जी को) ऐसा नही समझता जिसके लिए (सुधार की) प्रार्थना न की जा सके। सम्भव है कि आर्यसमाज और स्वामी (श्रद्धानन्द) जी इस लेख से अप्रसन्न हों परन्तु यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मेरा उद्देश्य किसी को अप्रसन्न करना नहीं। मै आर्यसमाजियों के साथ प्रेम रखता हूँ क्योकि उनमे से कई मेरे सहकारी है। और मैने स्वामी (श्रद्धानन्द) जी से उस समय प्रेम करना सीखा था, जब मै दक्षिण अफ्रीका में था। यद्यपि अब मै उन्हे भली भांति जानता हूँ तो भी उनसे कम प्रेम नही करता हूँ। यह मेरा प्रेम ही है, जिससे ये बातें मैने कही है।"

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से गाँधी जी के इस लेख के उत्तर में अंग्रेजी और हिन्दी में एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया गया, जिसमे उनके किए गए आक्षेपों का विस्तृत समाधान करने के अनन्तर आर्यसमाजियों से यह आशा प्रकट की गई थी कि "जिस समय वे महात्मा गाँधी के उनके धर्म पर किए गए अप्रासंगिक और अनुचित प्रहारों का विरोध करे, उनके व्यक्तित्व को, जिस आदर के वे पात्र है, ध्यान में रखें।" दिल्ली के प्रतिष्ठित विचारक और कार्यकर्त्ता लाला ज्ञानचन्द जी ने 'सत्य-निर्णय' नाम की एक पुस्तक लिख कर यंग इंडिया के आक्षेपो का बहुत युक्तियुक्त और विस्तृत उत्तर दिया। दिल्ली के दैनिक "अर्जुन" तथा आर्यसमाज के अन्य समाचार-पत्रो ने लेख-मालाओं द्वारा फैले हुए भ्रम का निवारण किया। कुछ दिनों के बाद जब महात्मा जी दिल्ली आए तो आर्य-विद्वानों का एक शिष्टमंडल उनसे मिला और अनेक प्रश्न किए। कुछ समय तक प्रश्नोत्तर होने के पश्चात् महात्मा जी ने कहा कि इस समय अधिक बातचीत नहीं हो सकती, जब फिर दिल्ली आऊँगा तब बातचीत होगी।

पीछे से महात्मा जी ने भ्रम के मार्जन के लिए जो टिप्पणियाँ लिखीं, उनके दो नमूने ये है—

"महर्षि दयानन्द ने धर्म में जागृति पैदा की, आर्य संस्कृति

का, वैदिक वाङमय का, संस्कृत और हिन्दी का प्रेम बढ़ाया और अस्पृश्यता रूपी कलक के धोने का प्रयत्न किया। ऐसे सब कार्यों के लिए महर्षि का स्मरण चिर-स्थायी रहेगा इसमें कोई संदेह नहीं।"

"स्वामी जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी एक सुधारक थे। वे केवल शब्दों के नहीं, क्रिया के वीर थे। वे विश्वास की जीवित मूर्ति थे। उन्होंने अपने विश्वास के लिए कष्ट पाए। वे मानो वीरता के शरीरधारी रूप थे। खतरे से डरना उनके लिए अस्वाभाविक था। वे एक योद्धा थे और योद्धा युद्ध-भूमि में मरना चाहता है, रोग-शय्या पर नहीं।"

पांचवां अध्याय

दक्षिण में प्रचार

अनेक कारणो से प्रारम्भ के ४० वर्षो मे भारत के दक्षिण भाग में आर्यसमाज का सन्देश पूरी तरह नही पहुँचाया जा सका। मुख्य कारण तो सम्भवतः यही था कि महर्षि को पूना से आगे दक्षिण मे जाने का अवसर नही मिला। यदि अकाल में ही उनका निर्वाण न हो जाता तो वह दक्षिण का दौरा लगाकर वहां भी आर्यसमाज का बीज बो देते। महर्षि के पश्चात् उत्तर के प्रान्तो की सभाओं को अपने ही काम बहुत थे। संस्थाओं के खुल जाने से उनके हाथ भर गये थे। सार्वदेशिक सभा की स्थापना तो हो गई परन्तु वह अभी प्रान्तों के प्रतिनिधियों के परस्पर परिचय-स्थान के अतिरिक्त और कुछ नहीं बन सकी थी।

१९१७ मे सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा का एक अधिवेशन हुआ, जिसमें दक्षिण भारत मे वैदिक धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में ब्रह्मा की आर्य प्रतिनिधि सभा के एक पत्र पर विचार होने के अनन्तर निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किया गया—"मद्रास मे प्रचार के सम्बन्ध में विचार किया गया और आर्य प्रतिनिधि सभा ब्रह्मा का पत्र २३-१-१७ का पढ़ा गया। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि मद्रास में प्रचार के काम को सभा अपने हाथ में ले ले और आर्य प्रतिनिधि सभाओ तथा सर्वसाधारण से धन की अपील की जाय। १८०० रुपये के व्यय की स्वीकारी बजट में बढा देने की साधारण सभा से प्रार्थना की जाय। किसी योग्य व्यक्ति की तलाश का उद्योग किया जाय। समाचार-पत्रों मे विज्ञापन दिया जाय।"

प्रस्ताव तो स्वीकार हो गया परन्तु चार वर्ष तक उस पर कोई अमल न हो सका। सभा के प्रधान की ओर से इस कार्य के लिये ५ हजार रुपये की अपील की गयी और प्रान्तीय सभाओं के नाम राशियां भी लगा दी गयी। परन्तु परिणाम कुछ न निकला। अन्त में, किसी तरह कार्य प्रारम्भ करने के लिये सभा ने अपनी अपील को केवल १५०० रुपयों तक परिमित कर दिया और प्रान्तीय सभाओं से अपना-अपना भाग भेजने की मांग की। परिणाम तब भी बहुत संतोषजनक न निकला। केवल एक प्रान्त से ३५० रुपये प्राप्त हुए। उसी भरोसे पर सभा-प्रधान ने पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार को वैदिक धर्म और आर्यभाषा प्रचार के लिए रवाना कर दिया। कुछ समय पीछे पण्डित देवेश्वर सिद्धान्तालंकार भी सत्यव्रत जी की सहायता के लिए जा पहुँचे। दोनों कार्यकर्ताओं ने दो वर्ष तक बड़े परिश्रम से कार्य किया और कार्य को स्थिरता देने के लिये दयानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम नाम के एक शिक्षा-केन्द्र की स्थापना की। मैसूर में कार्य करने

के लिये सभा की ओर से पं० गोपालदत्त शास्त्री और पं० भीमसेन विद्यालंकार भेजे गये।

मद्रास में तथा दक्षिण के अन्य भागो मे प्रचार कार्य आरम्भ करने के समय से ही स्वामी श्रद्धानन्द जी की इच्छा थी कि वे स्वय वहां जाकर वैदिक धर्म की ओर शिक्षित समाज का और जनता का ध्यान आकृष्ट करें। एक बार आप कलकत्ते तक चले भी गये थे परन्तु अस्वस्थ हो जाने के कारण लौट आये। अमृतसर कांग्रेस के अवसर पर 'हिन्दू' के यशस्वी सम्पादक श्री कस्तूरी रंगा आयंगर और वयोवृद्ध राष्ट्रीय नेता श्री विजय राघवाचार्य आदि से परिचय होने पर उन लोगों ने स्वामी जी को आग्रहपूर्वक निमंत्रित किया। अन्त में स्वामी जी की प्रचार के लिए मद्रास जाने की अभिलाषा सन् १९२५ मे पूरी हो सकी। आप दिल्ली से चल कर बम्बई, पूना और बंगलौर ठहर कर कार्यकर्ताओं से मिलते और व्याख्यान देते हुए ६ मई को मद्रास पहुचे। उसी अवसर पर पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति और पं० केशवदेव ज्ञानी भी आपके साथ गये थे, जो पर्याप्त समय तक मद्रास मे ही रहे। आप मई के अन्त तक मद्रास प्रान्त मे भ्रमण करते रहे। मद्रास की सबसे बड़ी समस्या अस्पृश्यता सम्बन्धी है। स्वामी जी ने अपनी प्रचार-यात्रा में उसी पर अधिक बल दिया और प्रान्त के कार्यकर्ताओ में दलितोद्धार के लिए अपूर्व स्फूर्ति पैदा कर दी। मद्रास छोड़ने से पूर्व प्रान्त के निवासियो की ओर से एक विशाल सभा मे, जिसके सभापति वहां के प्रसिद्ध नेता श्री मोहम्मद याकूब थे, एक मानपत्र स्वामी जी को समर्पित किया गया। १९२५ में आप फिर मद्रास के दौरे पर गये और प्रारम्भ किये हुए काम को अधिक दृढता प्रदान की। १९२४ के अक्तूबर मास में मद्रास के कुछ हिस्सों में बाढ़ आने से बहुत हानि हुई थी। सभा की ओर से समाचार पत्रों मे अपील होने पर जो धन प्राप्त हुआ, उसे लेकर प० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार को वहां भेजा गया। गुरुवयूर के समीप चावघाट में केन्द्र खोल कर हजारों बाढ-पीड़ित परिवारों की सहायता की गई।

१९२१ मे मलाबार में मोपलाओं द्वारा उत्पात किये जाने पर देश भर के हिन्दुओं में सनसनी फैल गई। हिन्दू पुरुषों और स्त्रियों पर जो भयंकर अत्याचार हुए, उनका वृत्तान्त पहले अध्याय मे लिखा जा चुका है। सैकड़ो लोगों के जनेऊ जबरदस्ती उतारे गये और चोटियां काटी गयीं। इन समाचारों ने आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं के हृदयो में उत्कट प्रतिक्रिया पैदा कर दी थी। महात्मा हंसराज जी को जब लाहौर में ये समाचार मिले तो कहा जाता है कि वे रात भर नहीं सो सके। करवटें लेते रात बिताई। दूसरे दिन प्रादेशिक सभा की बैठक हुई। उसमे सहायता भेजने का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए महात्मा हंसराज जी ने कहा था, "जागृति के इस समय में भी किसी को बलपूर्वक मुसलमान बनाना हमारे लिए बहुत बड़ी ललकार है। इस ललकार का उत्तर दिया जायगा।" प्रादेशिक सभा ने सहायता देने के प्रस्ताव को स्वीकार करके पं० ऋषिराम जी को वहां जाने का आदेश दिया। श्रीयुत खुशहालचन्द 'खुर्सन्द' और पं० मस्तानचंद भी उनके साथ भेजे गये। पीछे से महता सावनमल और अन्य कई कार्यकर्ता

मलाबार पहुँच गये । कुछ महीनों के परिश्रम से इन आर्य कार्यकर्ताओं को बलात्कार से मुसलमान बनाये गये लगभग अढ़ाई हजार हिन्दुओं को अपने धर्म में वापिस लाने में सफलता प्राप्त हो गई । जो मन्दिर तोडे गये थे, उनकी मरम्मत भी करा दी गई । आर्य-समाज के कार्यकर्ता मलाबार से तब पंजाब लौट कर आये जब उन्हे निश्चय हो गया कि अब बलपूर्वक धर्म से च्युत हुआ कोई व्यक्ति शेष नही रहा । इसमे सन्देह नहीं कि यदि प्रादेशिक सभा के कार्यकर्ता इतना शीघ्र मलाबार मे न पहुच जाते तो उस प्रदेश में शांति हो जाने पर भी हिन्दुओं का रहना असम्भव हो जाता ।

छठा अध्याय

श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी

कई वर्षों से आर्यसमाज म यह चर्चा चल रही थी कि महर्षि दयानन्द का जन्म हुए १०० वर्ष पूरे हो जाने पर जन्म-शताब्दी उत्सव धूमधाम से मनाया जाय। १९१८ में उत्तर प्रदेश के प्रमुख आर्य नेता श्री बाबू मदनमोहन सेठ (सब-जज गोरखपुर) ने समाचार पत्रों में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि संवत् १९८१ (सन् १९२५ में) महर्षि की जन्म शताब्दी मनायी जाय। आर्य-जगत् ने इस प्रस्ताव का हृदय से अनुमोदन किया और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा और परोपकारिणी सभा ने इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया। १९२० ई० के सितम्बर मास मे दिल्ली में आर्यसमाजों के प्रतिनिधियो, विद्वानों और संन्यासियों की एक बहुत बड़ी सभा हुई। उस सभा में निश्चय किया गया कि श्री स्वामीजी महाराज की जन्म-शताब्दी संवत् १९८१ तदनुसार सन् १९२५ में शिव-रात्रि के अवसर पर मथुरा में मनाई जाय, इस अवसर पर एक बड़ी परिषद् हो, महोत्सव भी किया जाय और आर्यसमाजो में जन्म-दिवस का उत्सव समारोह के साथ मनाया जाय।

शताब्दी-महोत्सव की व्यवस्था के लिए दूसरा निश्चय यह किया गया कि एक शताब्दी सभा बनाई जाय और उसका सघटन इस प्रकार रखा जाय कि उसमें सार्वदेशिक सभा और परोपकारिणी सभा के समस्त सदस्य, प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सात, भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् के दो, सात सन्यासी, सात देवियां और आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के प्रधान निज पद के अधिकार से सम्मिलित किये जायं। १९२२ ई० के दिसम्बर मास मे गुरुकुल वृन्दावन के महोत्सव पर विधिपूर्वक जन्म-शताब्दी सभा का निर्माण हो गया। सदस्यों का विवरण इस प्रकार से था :—

१	सार्वदेशिक सभा के सदस्य	२७
२.	परोपकारिणी सभा ,,	२३
३.	प्रादेशिक सभा पंजाब ,,	७
४.	संन्यासी	७
५	देवियां	७
६.	प्रतिष्ठित मनोनीत सदस्य	१४
७.	सयुक्त प्रान्त की सभा के प्रधान	१

इस प्रकार ८६ सदस्यो की सभा निर्मित हुई । अधिकारियो का चुनाव इस प्रकार हुआ :—

प्रधान : श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी संन्यासी
उपप्रधान : १ श्री नारायण स्वामी जी महाराज
२ श्री महात्मा हंसराज जी
३ श्री डा० कल्याणदास जी देसाई
४ श्री हरविलास जी शारदा
५ श्री सेठ जयनारायण जी कलकत्ता
मंत्री : बाबू सीताराम जी बी० ए० लखीमपुर
उपमंत्री : श्री मदनमोहन जी सेठ एम० ए०
कोषाध्यक्ष : बाबू श्रीराम जी आगरा

१९२३ में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के यह सूचना देने पर कि वह पूरा समय महोत्सव की तैयारी के लिये नहीं दे सकते, श्री नारायण स्वामी जी को कार्यकर्ता प्रधान निर्वाचित किया गया । मंत्रियो के कार्य में स्वामी सच्चिदानन्द जी और बाबू गजाधर-प्रसाद जी भी सहायता देते रहे । सभा के मन्त्री डा० केशवदेव जी शास्त्री तथा उनके अन्य सहायक शताब्दी सभा के अधिकारियो के साथ पूर्ण सहयोग करते रहे । महोत्सव की व्यवस्था के लिये ५० हजार की अपील प्रकाशित की गई ।

शताब्दी के उद्योग पर्व के प्रारम्भ में ही श्री नारायण स्वामी जी महाराज अन्य सब कार्यों से निवृत्ति पाकर मथुरा पधार गये और कार्यकर्ता प्रधान की हैसियत से प्रबन्ध के कार्य का संचालन करने लगे। उस अवसर पर श्री नारायण स्वामी जी जैसे अनुभवी और दूरदर्शी खिवैया का ही काम था कि इतने बड़े उत्सव की किश्ती को पार लगा सके। आपने शताब्दी की व्यवस्थाओ के सम्बन्ध में बीस पत्रिकाएं (बुलेटिन) निकालीं, जिनमे यात्रियों के जानने योग्य प्रायः सभी बातों पर प्रकाश डाल दिया गया था। यज्ञ-विधि से लेकर बास-बल्ली की दरों तक की बातें पत्रिकाओं मे आ गई थी।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी

उत्सव के लिये मथुरा शहर और मथुरा जंकशन के बीच की डैम्पियर नगर नाम की विस्तृत भूमि प्राप्त कर ली गई । इस भूमि की लम्बाई लगभग डेढ मील और चौड़ाई एक मील थी । स्वामी जी की देखरेख में अनेक इंजीनियरों, ठेकेदारों और स्वयंसेवकों ने थोड़े ही समय में खुली और सुन्दर दयानन्द नगरी बनाकर खडी कर दी। १५ फरवरी को प्रारम्भिक यज्ञ होना था। तब तक दयानन्द नगरी में न्यून से न्यून दो लाख ५० हजार नर-नारी देश के भिन्न-भिन्न भागों से स्पेशल गाड़ियों द्वारा एकत्र हो चुके थे।

१५ फरवरी को निश्चित समय पर यज्ञ का आरम्भ हुआ। महोत्सव के बृहत् पण्डाल के चारों ओर चार यज्ञ-कुण्ड निर्माण किये गये थे। इनमें चारो वेदों के मन्त्रों से आहुतियां दी जाती थी।

उत्सव मे भाग लेने की इच्छा से आने वाले यात्रियों के ठहरने के लिये फूस के छप्पर बनाये गये थे। भोजन-भंडार का प्रबन्ध बहुत बड़े पैमाने पर किया गया था। एक दिन ब्रह्म-भोज हुआ। इस ब्रह्म-भोज मे सभी वर्णों और सभी वर्गों के आर्य नर-नारियों ने भेदभाव छोड़कर भाग लिया। श्री महाराज सर नाहरसिंह जी शाहपुराधीश, जयपुर की कौंसिल के मेम्बर, ठाकुर नरेन्द्र सिंह आदि के साथ-साथ आर्यसमाज के सब उपस्थित प्रमुख व्यक्ति, समाजो के सब प्रतिनिधि, सभाओं के सदस्य तथा अन्य संन्यासी और उपदेशक महानुभावों ने एक स्थान पर बैठकर सहभोज किया। शाहपुराधीश ने सब उपस्थित जनों का धन्यवाद किया और अपने आचार्य महर्षि दयानन्द के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और कहा, "आज मुझे जीवन के सन्ध्याकाल मे महर्षि की शिक्षा को क्रियात्मक रूप में चरितार्थ देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है।"

विराट् नगर-कीर्तन

१७ फरवरी के दिन के २ बजे उत्सव-मण्डप से नगर-कीर्तन का विशाल जलूस आरम्भ हुआ। जलूस का वर्णन हम सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित जन्म-शताब्दी वृत्तान्त से उद्धृत करते हैं--

"अनुमान २॥ बजे तक नगर-कीर्तन नगरी मे जा पहुचा और सौ से अधिक मडलिया व्यवस्थानुसार चलने लगी। जनता के कुतूहल और प्रसन्नता की कोई सीमा न रही जब उन्हें आर्य नर-नारियो के अनन्य जोश और उत्साह का उद्बोधन हुआ। कैम्पो की रक्षा, बालको की निगरानी का प्रबन्ध करते हुए भी ऐसा ज्ञात होता था मानों सभी आर्य नर-नारी नगर-कीर्तन मे सम्मिलित हो गये है। अनुमानतः चार सौ संन्यासी गेरुए वस्त्रो की पताकाएं हाथ मे धारण किये वेद-मंत्रों का उच्चारण करते और 'दयानन्द की जय' के जयकारे बुलाते हुए आगे-आगे चल रहे थे। गुरुकुलों के स्नातक और ब्रह्मचारी, कन्या महाविद्यालय की स्नातिकायें और छात्राएं, भिन्न-भिन्न कालिजों, स्कूलो और पाठशालाओ के विद्यार्थी, अनाथालयों के बालक और बालिकाएं, तिस पर एक ही सग अनुमानतः ३५,००० पंजाब की स्त्रियों का नगर-कीर्तन, जिसमे कई एक बैंण्ड और भजन मडलियां भी थीं। इन सबका नगर कीर्तन, वैदिक धर्म सम्बन्धी मनोहर और आल्हादजनक भजनों की गूंज, बीच-बीच मे नवयुवको का 'दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे' आदि गीतो का गाना और क्षण-क्षण मे 'वैदिक धर्म की जय, दयानन्द की जय' की ध्वनि और प्रतिध्वनियां मथुरा नगरी की नींवों को कम्पायमान करने के लिए पर्याप्त थीं। अनुमान दो लाख आर्य नर-नारियो ने इस संकीर्तन में भाग लिया। दर्शकों की संख्या एक लाख से न्यून न होगी। यहां एक ऐसा अनुपम दृश्य था जो चिरकाल पर्यन्त उन सज्जनों के स्मृति-पटल पर अकित रहेगा जिन्हे इस नगर-कीर्तन मे सम्मिलित होने अथवा देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

मथुरा सनातन धर्म का गढ़ माना जाता है। यह अद्भुत बात थी कि उसके जिस-जिस बाजार में से जलूस निकलता, उसमें जलूस पर भरपूर पुष्पों की वृष्टि की गई। जब जलूस महर्षि के गुरु दण्डी विरजानन्द जी के निवास-स्थान के सामने पहुंचा तो वहां अपार भीड़ इकट्ठी हो गई। देर तक वेद मंत्रों, भजनों और जयकारों से आकाश गूंजता रहा और पुष्प-वृष्टि होती रही।

जलूस में जितने पुरुष थे, उनसे अधिक स्त्रियों की संख्या दिखाई देती थी। गुरुकुलो के स्नातकों तथा जालन्धर की स्नातिकाओं के पीछे छात्रों और छात्राओं की लम्बी श्रेणियां समारोह की शोभा को बढ़ा रही थीं। नगर कीर्तन की पूरी लम्बाई २ मील से कम न होगी। इतने लम्बे प्रदर्शन और इतनी भीड़ का नियंत्रण आर्य स्वयंसेवकों ने जिस सुन्दरता से किया, वह अत्यन्त प्रशंसनीय था।

मुख्य व्याख्यान-मण्डप

मुख्य व्याख्यान-मंडप इतना बड़ा बनाया गया था कि उसमें २५ हजार श्रोता बैठ सकें। प्रातःकाल ८ बजे से रात्रि के १० बजे तक मंडप खचाखच भरा रहता था। व्याख्यानों और भजनो का तांता निरन्तर जारी रहता था। जिन विद्वानों के भाषण हुए, उनमें से कुछ नाम निम्नलिखित हैं: श्री स्वामी अच्युतानन्द जी, पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, कुंवर चादकरण शारदा, श्री गंगागिरि जी, पं० भगवद्दत्त जी, पं० अयोध्या-प्रसाद जी, स्वामी मुनीश्वरानन्द जी, डा० केशवदेव जी शास्त्री, डा० बालकृष्ण जी, प्रिन्सिपल दीवानचन्द जी, भाई परमानन्द जी, डा० दमयन्ती देवी जी, पं० चमूपति जी, महाशय मधूसूदन जी, महाशय खुशहालचन्द जी, श्री बेचनदेव जी (मौरीशस), महाशय देवीदयाल जी (दक्षिण अफ्रीका), श्री तोताराम जी सनाढ्य आदि।

प्रत्येक दिन की कार्यवाही संन्यासी महानुभावों के उपदेशों से प्रारम्भ होती थी। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी, श्री नारायण स्वामी जी, श्री स्वामी सत्यानन्द जी, श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी आदि संन्यासियो के उपदेशामृत पान करके जनता बहुत तृप्त हुई। जिन देवियो ने प्रचार मे भाग लिया, उनमे से श्रीमती सत्यवती जी (जालन्धर), श्रीमती दमयन्ती देवी जी, श्रीमती चन्द्रावती जी (इन्द्रप्रस्थ), श्रीमती सुमित्रा देवी जी (गुजरात) आदि के नाम प्रमुख हैं। अन्तिम दिन जो भाषण हुए, वह संदेश के रूप मे थे। उनमें से श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी, श्री नारायण स्वामी जी और पं० रामचन्द्र जी देहलवी के संदेश विशेष रूप से उत्साहवर्धक थे। जलूस मे गाई जाने वाली पं० प्रकाशचन्द्र कविरत्न जी की कविता "वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषी दयानन्द ने" तथा पंडाल मे पढ़ी जाने वाली डा० सूर्यदेव एम० ए० की कविता "गुरुदेव दयानन्द" विशेष रूप से उल्लेखनीय थी।

आठवा अध्याय

शताब्दी-महोत्सव के सभा-सम्मेलन

शताब्दी-महोत्सव केवल एक मेला ही नहीं था, वह आर्यसमाज और आर्य जाति में उत्पन्न हुई जागृति का विराट् प्रदर्शन था। मुख्य मंडप में जो व्याख्यान और भजन होते थे, उनके अतिरिक्त मुख्य मंडप में ही प्रतिदिन कोई न कोई विशेष सम्मेलन आदि भी किये जाते थे। द्वितीय मडप में तो निरन्तर विविध परिषदें होती रहती थी, जिनमे गम्भीर विषयों पर विचार होते थे। महोत्सव के अवसर पर जिन सभा-सम्मेलनों के अधिवेशन हुए, उनका संक्षिप्त विवरण पढ़कर प्रतीत हो सकेगा कि मथुरा में जिस जागृति का प्रदर्शन हुआ, वह कितनी विशाल थी।

धर्म-परिषद्

इस परिषद् का उद्देश्य यह था कि आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वानो द्वारा वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर निबन्ध पढ़वाकर उन सिद्धान्तों की पुष्टि के साथ-साथ जनता को विद्वानों का परिचय कराया जाय। इस परिषद् के सभापति श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज थे। जिन विद्वानों ने अपने निबन्ध पढे, निबन्ध के विषयों के साथ उनकी सूची निम्न है :—

१. पं० धर्मदेव सिद्धान्तालंकार, विषय—ईश्वरीय ज्ञान
२. पं० धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि, विषय—वर्ण-व्यवस्था
३. श्रीयुत घासीराम जी एम० ए०, विषय—ईश्वर, जीव और प्रकृति का अनादित्व।
४. राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी, विषय—संस्कार-मीमांसा
५. पं० रामसुख मिश्र, विषय—षड् दर्शनों में समन्वय

कुछ निबन्ध परिषद् के लिये लिखे गये थे पर समयाभाव से पढ़े नहीं जा सके। वे निम्नलिखित हैं :—

१. पं० विश्वबन्धु शास्त्री एम० ए०, विषय—वैदिक संस्कार का स्वरूप।
२. पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, विषय—ऋषि दयानन्द के भाष्य की शैली।
३. पं० रुद्रदेव वेदशिरोमणि, विषय—वैदिक कर्मकाण्ड और पशु-वध।

सभी भाषण खोज से लिखे गये थे और गहरी विद्वत्ता के सूचक थे। परिषद् के अधिवेशन छोटे मण्डप में १५ और १६ फरवरी को दोपहर के समय हुए। सभापति जी प्रत्येक वक्ता के नाम की सूचना के साथ उन का संक्षिप्त परिचय भी देते जाते थे।

आर्य-सम्मेलन

दूसरा महत्वपूर्ण सम्मेलन तीन दिन तक मुख्य मंडप में हुआ। इसके अधिवेशन १५, १६ और १७ फरवरी को रात्रि के समय किये गए। इनमे वैदिक धर्म के प्रचार को बढ़ाने के लिये कई प्रस्ताव स्वीकार किये गए। उनमे से मुख्य ये है :—

१. देश-देशान्तरो में वैदिक धर्म प्रचार के लिए एक विशेष प्रचार निधि की स्थापना की जाय।
२. आर्य जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने और आर्य शिक्षणालयों के लिये प्रामाणिक पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करने के निमित्त एक वैदिक साहित्य मंडल की स्थापना की जाय।
३. आर्य जनता के पारस्परिक विवादो को निबटाने के लिये प्रान्तों की प्रतिनिधि सभाओं द्वारा प्रान्तों में और सार्वदेशिक सभा द्वारा सारे देश में न्यायालयों की स्थापना की जाय।
४. निश्चय हुआ कि लैजिस्लेटिव असेम्बली के द्वारा आर्य मैरेज एक्ट को स्वीकार कराया जाय ताकि आर्य जनता मे गुण, कर्म, स्वभाव आदि के अनुसार विवाह हो सकें।
५. सार्वदेशिक महा सभा के विधान में ऐसा परिवर्तन कर दिया जाय, जिससे उसमें तीन प्रकार के सदस्य सम्मिलित हो सकें :

क—आर्य प्रतिनिधि सभाओ के प्रतिनिधि।
ख—आर्यसमाजों के प्रतिनिधि।
ग—प्रतिष्ठित सभासद्।

वक्ताओ मे से स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, श्री तोताराम जी सनाढय से० मदनमोहन जी, श्री महेशप्रसाद जी मौलवी फाजिल, लाला देशबन्धु गुप्त, डा० केशवदेव शास्त्री, पं० घासीराम एम० ए०, बा० श्यामसुन्दरलाल वकील, ला० ज्ञानचन्द जी देहली, श्री हरविलास शारदा, स्नातक देवेश्वर सिद्धान्तालकार, श्रीमती कौशल्यादेवी स्नातिका, प० भगवद्दत्त जी, महात्मा हसराज जी तथा श्री नारायण स्वामी जी महाराज के नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है।

आर्य विद्वत्-परिषद्

महोत्सव के छोटे पंडाल मे आर्य विद्वत्-परिषद् के ६ अधिवेशन हुए। इस परिषद् का उद्देश्य यह था कि जिन विषयों पर आर्यजगत् मे कोई सन्देह विद्यमान है, उनका निवारण किया जाय। इस परिषद् के सब सभासदो की संख्या २६४ थी। इनमे सब प्रान्तों की प्रतिनिधि सभाओ के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त पजाब प्रादेशिक सभा, शताब्दी सभा तथा परोपकारिणी आदि सभी प्रमुख आर्य संस्थाओं के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। सभापति का आसन बम्बई के प्रतिष्ठित विद्वान् पं० बालकृष्ण जी शास्त्री ने ग्रहण किया। आपने अपना भाषण संस्कृत में पढा। भाषण बहुत ही विद्वत्तापूर्ण था।

सभापति की अनुपस्थिति में पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० उनके स्थान पर कार्य करते रहे। यह सूचना प्रारम्भ से ही दे दी गई थी कि इस परिषद् के निश्चय अन्तिम निश्चयात्मक न होकर परामर्श ही समझे जायेंगे। परिषद् में जो प्रस्ताव स्वीकार किये गये, उनमे से कुछ ये हैं :—

१. विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा और राजार्य सभा के पृथक्-पृथक् संगठन किये जायें। इस प्रस्ताव पर बहुत सा वाद-विवाद हुआ। अन्त में इन सभाओं के संगठनों पर विचार करने के लिये तीन उपसमितियां बनाई गई।

२. यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक आर्य नर-नारी अपने गुण-कर्मानुसार वर्णो का प्रयोग किया करे और गुण-कर्मानुसार ही बिना लिहाज जाति-बन्धन के सब आर्यों में परस्पर खानपान का व्यवहार हुआ करे। इस प्रस्ताव पर १४, १५ संशोधन उपस्थित हुए। सब संशोधन गिर गये और अन्त में बहुपक्ष से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

३ यह परिषद् स्थिर करती है कि आर्यसमाज के प्रवेश के समय अछूतों को गायत्री मंत्र के साथ यज्ञोपवीत दिया जा सकता है। इस प्रस्ताव पर भी अनेक संशोधन उपस्थित हुए और गरमागरम बहस हुई। लगभग सर्वसम्मति से प्रस्ताव स्वीकार किया गया। विरोध में केवल एक हाथ उठा।

४ यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक व्यक्ति की, वह चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या अन्य मतावलम्बी आर्यसमाज में प्रवेश की पद्धति एक ही होनी चाहिए। इस प्रस्ताव पर निम्नलिखित संशोधन उपस्थित किया गया।

"वैदिक धर्म मे प्रवेश केवल १० नियमों पर हस्ताक्षर करने से होगा। परन्तु अन्य धर्म वाले जिनका नाम आर्यों से भिन्न हो, उनके लिए हस्ताक्षर के अतिरिक्त स्नानादि से शुद्ध होकर अपना नाम बदलना, शिखा धारण करना और हवन के पश्चात् गायत्री आदि मंत्र का उपदेश लेना आवश्यक है।" प्रस्तावक ने संशोधन स्वीकार कर लिया। उस के पश्चात् कुछ और भी संशोधन उपस्थित किये गये । स्वीकृत प्रस्ताव का रूप यह है :-

"यह परिषद् स्थिर करती है कि प्रत्येक व्यक्ति के चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, या अन्य कोई मतावलम्बी, आर्यसमाज मे प्रवेश की पद्धति एक ही होनी चाहिए, और वह यह हो—

"जब एक या एक से अधिक ऐसे सज्जनो का, जो वैदिकधर्मी नहीं हैं, आर्य समाज में प्रवेश संस्कार हो तो प्रारम्भ मे सब लोग (जिनमें प्रवेशार्थी भी सम्मिलित होंगे) एकत्रित होकर संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में विहित हवन करे। हवन में सबको स्नानादि से शुद्ध होकर बैठना चाहिये । हवन की विधि समाप्त होने पर आचार्य प्रवेशार्थियों से उनकी लोक भाषा में निम्नलिखित प्रश्न करे :—

१ क्या तुमने आर्य समाज के १० नियम जान लिये हैं ?

२ क्या तुम वैदिक धर्म के अनुकूल आचरण करने की प्रतिज्ञा करते हो ?

प्रत्येक प्रश्न का पृथक् स्वीकारात्मक उत्तर मिलने पर आचार्य अभिलाषी से गायत्री मंत्र का पाठ करावे, और उसका अर्थ बतलावें।

"अन्त में, अग्ने व्रतपते" इत्यादि और "अग्ने यज्ञे तपः" इत्यादि मंत्रों से आहुति डालकर पूर्णाहुति दी जाय।"

५. राजार्य सभा और विद्यार्य सभा सम्बन्धी प्रस्तावों पर विचार हुआ। राजार्य सभा तथा विद्यार्य सभा का विषय सार्वदेशिक सभा में विचार और निश्चय के लिए भेजे गये।

६. विधवा विवाह के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ :—

"वर्तमान सामाजिक अवस्था को ध्यान मे रखते हुए परिषद् स्थिर करती है कि विधुर का विधवा के साथ ही विवाह हो। विवाह के समय विधुर की आयु ४० वर्ष से अधिक न होनी चाहिए।"

धर्म-सम्मेलन

धर्म-सम्मेलन में विविध धर्मों के विद्वानों ने अपने सिद्धान्तो की पुष्टि मे निबन्ध पढ़े। निम्नलिखित विषयों पर निबन्ध पढ़े गये :—

१—वैदिक धर्म—वैदिक दर्शनों मे आत्मा, परमात्मा, सृष्टि-उत्पत्ति आदि।

२—जैन धर्म के मूल सिद्धान्त।

३—बहाई धर्म का सन्देश।

४—ईसाइयत के उपदेश।

सम्मेलन का सभापतित्व 'धर्म का मूलस्रोत' के लेखक प० गंगाप्रसाद एम० ए० ने किया।

महर्षि के समकालीन पुरुषों के दर्शन

शताब्दी का एक बड़ा मनोरंजक और महत्वपूर्ण आयोजन उन आर्य पुरुषों के दर्शन और भाषण के लिये किया गया था, जिन्होंने महर्षि के दर्शन किये थे। शाहपुराधीश सर नाहरसिंह जी ने अपने जीवन की दो-तीन घटनाओं का वर्णन किया, जो महर्षि से सम्बन्ध रखती थीं। आपने बतलाया कि जब महर्षि शाहपुरा गये तो मैंने उनसे योगसूत्र पढ़ना आरम्भ किया और प्राणायाम सीखा। जिन अन्य आर्य पुरुषों ने अपने अनुभव सुनाये, उनके नाम निम्नलिखित है :—

१ रावराजा तेजसिंह जी (जोधपुर)

२ स्वा मी श्रद्धानन्द जी।

३. स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी।

४. स्वामी अच्युतानन्द जी।

५. पं० आर्यमुनि जी।

६. रायसाहब हरविलास शारदा।

७. लाला देवराज जी।

८. लाला लक्ष्मणानन्द जी।

९. म० अलखधारी जी (अम्बाला)।

१०. म० गणेश प्रसाद जी (जलालपुर)

११ लाला गंगाराम जी (लाहौर)।

इनके अतिरिक्त अन्य ३४ आर्य महानुभावों एवं नारियों का भी दर्शन कराया गया जो कि स्वामी जी के समकालीन थे।

कवि-सम्मेलन

श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी-महोत्सव के अवसर पर कविराज श्री पं० नाथराम 'शकर' शर्मा की अध्यक्षता में एक विराट् कवि-सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में लगभग चालीस सुप्रसिद्ध कवियों ने अपनी प्रभावशालिनी कविताएं पढ़कर सुनायीं। पंडित पद्मसिंह शर्मा, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रो० रामदास गौड़, श्री पं० शालग्राम शास्त्री साहित्याचार्य के संक्षिप्त किन्तु सारयुक्त भाषण हुए। दूसरे दिन फिर कवि-सम्मेलन हुआ। पहले दिन की उपस्थिति पन्द्रह सहस्र से अधिक थी। इस सम्मेलन के संयोजक श्री पं० हरिशंकर शर्मा 'आर्य मित्र' के सम्पादक थे।

अन्य प्रवृत्तियाँ

शताब्दी उत्सव एक साधारण उत्सव न रहकर आर्यसमाज और आर्य जनो की विविध प्रवृत्तियों का समुच्चय बन गया था। उस अवसर पर अन्य कई सम्मेलन हुए।

आर्य स्वराज्य-सम्मेलन का अधिवेशन श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के सभापतित्व में हुआ। स्वागताध्यक्ष पंजाब के नेता डा० सत्यपाल जी थे। कई प्रस्ताव स्वीकार किये गये, जिनमे स्वदेशी वस्तुओं और खद्दर के व्यवहार की प्रेरणा की गयी, और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का विरोध किया गया था। ११ सदस्यो की एक समिति नियुक्त की गई, उसके सुपुर्द आर्य स्वराज्य-सभा का स्थिर संविधान बनाने का काम किया गया। घोषणा की गई कि आर्य स्वराज्य-सभा का उद्देश्य "आर्य सभ्यतानुसार स्वराज्य स्थापित करना" होगा।

१५ फरवरी को शाहपुराधीश श्री नाहरसिंह वर्मा के सभापतित्व में *आर्य कुमार सम्मेलन* का अधिवेशन हुआ। इस सम्मेलन के मुख्य प्रस्ताव मे आर्य युवको को जात-पात के भेद को मिटाकर गुण कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था मानने और उसके अनुसार ही विवाहादि करने की प्रेरणा की गई थी।

दिल्ली की दलितोद्धार सभा की ओर से *दलितोद्धार सम्मेलन* हुआ। महात्मा हंसराज जी सभापति थे। अस्पृश्यता विरोध और दलितोद्धार के पक्ष मे व्याख्यान हुए। सम्मेलन का उद्घाटन स्वामी श्रद्धानन्द जी के भाषण से हुआ था।

सन्यासियों के लिये एक पृथक् निवास स्थान था, जिसके पास ही एक मण्डप था। उसमें साधु-महात्माओं के व्याख्यान १० फरवरी से आरम्भ हुए, और उत्सव की समाप्ति तक चलते रहे। साधुओं के सगठन तैयार करने के लिए एक समिति बनायी गयी, और एक आश्रम खोलने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ। आर्य सद्गृहस्थो की ओर से संन्यासियों के लिये विशेष भोजनादि की व्यवस्था की गई, और उन्हें आसन, चादर आदि जीवनोपयोगी सामग्री भी बाँटी गई।

१५ फरवरी से बड़े मण्डप मे *शुद्धि कान्फ्रेन्स* हुई । स्वागतकारिणी सभा के सभापति महेवा नरेश राजा जयेन्द्र बहादुर सिह और सम्मेलन के सभापति आनरेबल राजा सर रामपाल सिह थे । इस कान्फ्रेंस मे तिरवा, सरनौ, शिवगढ़ और अमेठीराज के नरेशों ने भी भाग लिया । शुद्धि के समर्थन मे अनेक प्रस्ताव स्वीकार किये गये तथा हिन्दू जाति से अनुरोध किया गया कि वह शुद्ध हुए भाइयों को समान अधिकार देकर अपनी जाति का मजबूत हिस्सा बनाएं । श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी चिदानन्द जी, महात्मा हंसराज जी, लाला देवराज जी आदि आर्य नेताओं के शुद्धि के समर्थन मे ओजस्वी भाषण हुए ।

२० फरवरी के मध्याह्नोत्तर समय बम्बई के डाक्टर कल्याणदास देसाई के सभापतित्व में *जात-पात-तोड़क-मण्डल* का अधिवेशन हुआ । कई प्रस्ताव स्वीकार हुए जिनमें आर्य जाति मे जाति-पाति तोड़कर विवाह सम्बन्ध करने की आवश्यकता पर बल दिया गया । प्रस्तावो पर श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी, बा० घासीराम एम० ए०, स्वामी मुनीश्वरानन्द जी, स्वामी सत्यदेव जी, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति और पं० धर्मदेव सिद्धान्तालंकार आदि वक्ताओं के भाषण हुए ।

इसी प्रकार श्रीमती ठाकुर देवी जी की अध्यक्षता में *महिला-सम्मेलन* बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ ।

अन्य भी अनेक सम्मेलन उत्सव की नगरी मे होते रहे जिनमें से *आर्योपदेशक सम्मेलन, गौ कान्फ्रेन्स, क्षत्रिय कान्फ्रेन्स* और *ब्राह्मण कान्फ्रेन्स* आदि प्रमुख थे । इनमें से कई सम्मेलनो का आर्यसमाज से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था । कई सम्मेलनों के प्रस्ताव एक दूसरे को काटते भी थे । परन्तु इनका अन्तिम परिणाम यह होता था कि आर्यसमाज के वक्ता सभी सम्मेलनों को अपने प्रचार का साधन बना लेते थे ।

अन्तिम दिन

शताब्दी-उत्सव मे सम्मिलित होने वाले सभी आर्य नर-नारी अनुभव कर रहे थे कि उत्सव की सफलता का अधिकतर श्रेय श्री नारायण स्वामी जी को है । यदि स्वामी जी उत्सव से बहुत समय पूर्व अन्य सब कामों से अवकाश लेकर मथुरा में अपना आसन न जमा लेते और कार्यकर्ता प्रधान की हैसियत से सारी व्यवस्था का नेतृत्व न करते तो इतनी भारी योजना का सफल होना कठिन ही नही, असम्भव था । २१ फरवरी को सम्मेलन के अन्तिम दिन अपने कृतज्ञता के भाव को प्रकट करने के लिए भारत और उपनिवेशो की आर्य जनता की ओर से एक मान-पत्र स्वामी जी की सेवा में अर्पित किया गया जिसे शाहपुराधीश श्री नाहरसिंहजी वर्मा ने पढ़ा । स्वामी सत्यानन्द जी, लाला खुशहालचन्द जी, श्री गुलराज गोपाल गुप्त आदि आर्य पुरुषों तथा श्रीमती चन्द्रावती और श्रीमती सुमित्रा देवी आदि आर्य देवियों ने मान-पत्र के समर्थन में भाषण दिये । अन्त में श्री नारायण स्वामी जी महाराज ने सम्मान के लिये धन्यवाद देते हुए आर्य जनो को देश-देशान्तरों मे प्रचार के लिए आर्थिक सहायता देने की प्रेरणा की ।

सम्मिलित प्रार्थना

उत्सव के अवसर पर सब एकत्रित आर्य नर-नारियों ने जो प्रार्थना सम्मिलित होकर परमात्मा से की, वह नीचे दी जाती है :—

"आज अर्वाचीन आर्यावर्त के सबसे बड़े सुधारक ऋषि दयानन्द का जन्म-दिवस है। प्रभो! आप ही की प्रेरणा से देश में दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ था। आर्य जाति की दुरवस्था, अनाथों की पुकार, विधवाओं का विलाप, वैदिक धर्म की दुर्दशा, वैदिक सभ्यता का मरणोन्मुख होना, सदाचार का मूल्य घटना, देश का विदेशियों द्वारा पददलित होना आदि ऐसी बातें नहीं थी, जो दयानन्द के जन्म की प्रेरणा का कारण न बनतीं। प्रभो! दयानन्द ने जन्म लेकर आपकी प्रेरणा का उद्देश्य समझा। मुनि विरजानन्द उस उद्देश्य के समझाने का निमित्त बने। दयानन्द ने इसी उद्देश्य की पूर्तिरूप यज्ञ में अपनी जीवन की आहुति दी। यज्ञ से सुगन्धि निकली, कहीं वह अनाथालयों के रूप में दिखाई दी, कहीं स्कूल और कालेज, कहीं संस्कृत पाठशाला और गुरुकुल, कही दलितोद्धार-सभा और और शुद्धि-सभा, कही मुफ्त चिकित्सा और दरिद्रालयों, कही कुरीति निवारिणी और स्वराज्य सभाओं, कही मद्य निवारिणी और व्यायाम प्रचारिणी सभाओं आदि के रूपों में प्रकट हुई। प्रभो! आज जो हम यह शताब्दी जन्म-महोत्सव मना रहे हैं, यह भी उसी आहुति की एक तुच्छ सुगन्धि है।

"ऐसे पवित्र अवसर पर, प्रभो! यहा एकत्रित हुए हम लक्षों नर-नारी इस सारे चमत्कार को आपकी अपार दया की एक विभूति समझते हुए कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए श्रद्धा, भक्ति और प्रेम के साथ, आपके सम्मुख अपने सिरों को झुकाते हैं। (यहां सब उपस्थित नर-नारियों ने अपने सिर झुका लिये थे) और प्राणी मात्र के उपकार के लिये, जो आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, आपके दिये हुए वेदों के शब्दो ही में आपसे प्रार्थना करते हैं: —

"आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्, आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति-व्याधी महारथो जायताम्, दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः। सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्, योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

"हे प्रभो! इस बृहद् राष्ट्र में तेजस्वी वेदवित् ब्राह्मण उत्पन्न हो। शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण, दुष्टों का दमन करने वाले, महा बलवान्, निर्भय और वीर क्षत्रिय उत्पन्न हों, दूध देने वाली गायें, भार ले जाने वाले बैल, शीघ्रगामी घोड़े, व्यवहार-कुशल स्त्रियां, महारथी शत्रुओं के विजेता पुरुष उत्पन्न हों। यजमान का घर वीर पुत्रों से भरा हो, समय पर वर्षा हुआ करे, हमारे लिये उत्तम फलों को देने वाली औषधियां पकें और हमारा योगक्षेम हो।"

नवाँ अध्याय

टंकारा में ऋषि दयानन्द शताब्दी-महोत्सव

मथुरा में महर्षि जन्म-शताब्दी के महोत्सव पर प्रायः यह चर्चा होती रही कि ऐसा एक महोत्सव महर्षि के जन्म-स्थान टंकारा में भी होना चाहिये। मथुरा जन्म-शताब्दी सभा ने निश्चय किया कि श्री स्वामी सत्यानन्द जी और आचार्य रामदेव जी काठियावाड़ जाकर महर्षि के जन्म-स्थान तथा परिवार के सम्बन्ध में जांच-पड़ताल करके अपनी रिपोर्ट दे और फिर उस रिपोर्ट के आधार पर महोत्सव के सम्बन्ध में निर्णय किया जाय। आचार्य रामदेव जी मौर्वी गये और पर्याप्त छानबीन करके एक विस्तृत विवरण सभा के सामने रखा। उनके विवरण का सारांश यह था कि पं० लेखराम जी ने इस सम्बन्ध मे जो परिणाम निकाले थे उनका आधार विश्वास योग्य नहीं था। आपकी सम्मति थी कि ऋषि का जन्म-स्थान टंकारा था और उनके पिता का नाम कर्सन जी लाल जी त्रिवेदी था। आपने यह भी बतलाया कि महर्षि का प्रारम्भिक नाम मूल जी था। यह विवरण प्राप्त हो जाने पर सार्वदेशिक सभा ने निणय किया कि टंकारा मे १९२६ में महोत्सव मनाया जाय। तदनुसार ७ से ११ फरवरी तक मौर्वी-नरेश महाराज लखधीरसिह जी के सभापतित्व में महोत्सव मनाया गया। इस उत्सव में महाराजा साहब वीरपुर, ठाकुर साहब मोगड़, आदि काठियावाड़ के अन्य प्रतिष्ठित सज्जन भी उपस्थित थे। देश भर के आर्य संन्यासी, विद्वान् तथा आर्य नर-नारी बहुत बड़ी संख्या में महर्षि के जन्म स्थान का दर्शन करने के लिए टंकारा में एकत्र हुए। बहुत से मौर्वी निवासियों को उस महोत्सव के समय पहली बार यह पता लगा कि इनके प्रदेश में एक ऐसा महापुरुष उत्पन्न हुआ था जिसके भक्त देश भर में फैले हुए है।

प्रारम्भ मे यज्ञादि के पश्चात् उत्सव के सभापति मौर्वी-नरेश ने एक संक्षिप्त परन्तु महत्वपूर्ण भाषण दिया जिसमें कहा कि "गत दिसम्बर मास में हमारे मित्र वीरपुर ठाकुर साहब ने हमे बतलाया कि आप लोग यहां इस सम्मेलन का आयोजन करना चाहते है। तब उस महापुरुष की जन्म-भूमि के लिए आप सबका अगाध प्रेम देखकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई क्योंकि जिस महापुरुष की विशाल बुद्धि, अटल धैर्य और शुद्ध चारित्र्य ने समस्त भारत भूमि की जनता पर गहरी छाप डाल कर लोगो मे स्वधर्म-प्रेम और स्वदेश-भावना के गहरे बीज डालकर जागृति उत्पन्न की है, ऐसे महान् पुरुष का जन्म हमारे राज्य में होने का हमे भी यथार्थ रूप में अभिमान है।"

११ फरवरी १९२६ को सभा मण्डप मे महर्षि के कुछ जीवित निकट सम्बन्धियों तथा प्रत्यक्षदर्शियों का परिचय कराया गया। सब से पहले महर्षि की सहोदरा भगिनी की तीसरी पीढ़ी की सन्तान श्री पोपटलाल जी स्टेज पर आये। जनता ने आपका करतालि द्वारा उत्साहपूर्वक अभिनन्दन किया। श्री पोपटलाल जी के पश्चात् एक बहुत बूढ़ा किसान धीरे-धीरे लकड़ी टेकता हुआ व्याख्यान वेदी पर उपस्थित हुआ। यह महर्षि का बाल्यकाल का परिचित इब्राहीम था। इस समय उसकी आयु १०३ साल की थी। श्री इब्राहीम ने बतलाया कि "मूलशंकर और मैं इसी टंकारा ग्राम की भूमि में, इसी डेनी नदी के रेतीले मैदानों पर, इन्ही खेतों मे, और इन्ही जंगलों मे वर्षों तक खेलते रहे है। कई बार मैंने उनके साथ कुश्ती भी की। मूलशंकर मेरे से उम्र में दो साल छोटे थे परन्तु बचपन से ही उनमे बल बहुत था। इस कारण वह हम लोगों को परास्त कर देते थे।" श्री इब्राहीम ने यह भी कहा, "मै पोपटलाल जी के बचन की ताईद करता हूं। जिस मकान मे इस समय महाशय पोपटलाल जी के भाई प्राणशंकर रहते है, वहीं स्वामी दयानन्द जी का जन्म हुआ था और यह मन्दिर भी वही मन्दिर है जिसमे दयानन्द जी के पिता कर्सन जी लम्बी-चौड़ी उपासनायें करते थे। वे मूलजी को भी कभी-कभी इस मन्दिर मे अपने साथ ले जाया करते थे।"

टंकारा में पांच दिन तक व्याख्यानो, उपदेशो और भजनों की धूम रही। आर्य-जनों में बड़ा उत्साह था। एक विशाल नगर-कीर्तन भी निकाला गया। बम्बई के आर्य कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त देश के भी बहुत से उत्साही कार्यकर्ताओ और स्वयंसेवकों ने महोत्सव के प्रबन्ध में हाथ बटाया। इस महोत्सव मे सबसे बड़े दो काम हुए। एक तो महर्षि के जन्म-स्थान और सम्बन्धियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला और दूसरा टंकारा मे आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

इस उत्सव के अवसर पर एक बड़ी मनोरंजक घटना हुई। एक वृद्धा, जो अपने को मूलजी की दूर की रिश्तेदार बतलाती थी, महर्षि की एक तस्वीर लेकर सड़क के किनारे चटाई पर बैठ गई और लोगों से चढ़ावा लेने लगी। भक्त लोग चित्र को देखते और नमस्कार करके कुछ न कुछ भेंट चढा देते थे। जब यह समाचार महोत्सव के उप-निवेश में पहुचा तो स्वामी श्रद्धानन्द जी स्वयं उस वृद्धा के पास गये और उसे समझाया कि जिस महात्मा की मूर्ति को रखकर तुम भेंट ले रही हो, वह मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे। इस प्रकार मूर्ति-पूजा कराकर तुम्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध काम नही करना चाहिए। तुम्हें जितना धन चाहिए, हमसे ले लो परन्तु इस पाखड को छोड दो। वृद्धा ने बात मान ली और कुछ धन-राशि लेकर चित्र-पूजा का वह अड्डा उठा लिया।

इस महोत्सव से काठियावाड़ मे आर्यसमाज के प्रचार और सुधार की एक विशाल जागृति उत्पन्न हो गई। इस महोत्सव का सफलतापूर्वक आयोजन बम्बई के पं० विजयशकर जी आदि उत्साही कार्यकर्ताओं के अनथक परिश्रम का परिणाम था।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान

देश की साम्प्रदायिक परिस्थिति में अनेक कारणों से असाधारण खिंचाव पैदा हो रहा था। हम इससे पूर्ववर्ती अध्यायों में मालाबार, मुलतान आदि स्थानों के साम्प्रदायिक उपद्रवों की चर्चा कर आये हैं। जेल से छूट कर जुहू में विश्राम करते हुए महात्मा गान्धी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के बारे में जो लेख लिखा था और उसमें सत्यार्थप्रकाश, आर्यसमाज और स्वामी श्रद्धानन्द जी के सम्बन्ध में जो अपरिपक्व विचार प्रकट किये थे, उनका विवरण भी पहले दिया जा चुका है। महात्मा जी ने उपद्रवों के कारणों का जो विश्लेषण किया था वह ठीक नहीं था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उस लेख के पश्चात् देश के मुसलमानों की साम्प्रदायिक उग्रता घटने की जगह और अधिक बढ़ गयी। अनेक स्थानों पर दंगे-फिसाद हुए, जिनमें हिन्दुओं को विशेष हानि हुई। ऐसा होते हुए भी महात्मा जी के लेख के कारण सर्वसामान्य कांग्रेसियों में आर्यसमाज और स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति जो दुर्भावना उत्पन्न हो गई थी, वह दूर न हुई। उससे लाभ उठाकर मुसलमान प्रचारकों और समाचार-पत्रों ने आर्यसमाज के विरुद्ध विषैले आन्दोलन को और भी तेज कर दिया। सबसे अधिक अनुचित बात यह थी कि बहुत से मुसलमान कांग्रेसी नेता उस विषैले आन्दोलन को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उत्साहित करने लगे।

१९२४ की ईद के अवसर पर दिल्ली में एक भयंकर उपद्रव हो गया। दिल्ली के सदर बाजार में जो इलाका पहाड़ी धीरज के नाम से पुकारा जाता है, उसमें मुख्य रूप से जाट और अन्य सैनिक जातियों के लोगों की बस्ती है। यह परम्परा चली आती थी कि वहां से होकर कुरबानी की गाय न निकाली जाय। उस वर्ष कुछ मुसलमानों ने विशेष आवेदन-पत्र देकर सरकारी अधिकारियों से यह अनुमति प्राप्त कर ली कि कुरबानी की गाय पहाड़ी धीरज के मुख्य रास्ते से होकर गुजारी जाय। इस समाचार से पहाड़ी धीरज के हिन्दू निवासियों में बड़ी हलचल मच गई। चर्चा के दूर-दूर तक फैलने में देर न लगी और ईद से सप्ताह भर पहले ही आसपास के इलाकों के जाट और अन्य लड़ाकू जातियों के हिन्दू बहुत बड़ी मात्रा में दिल्ली में एकत्र हो गये। ईद से पहले दिन तक उनका आगमन बराबर जारी रहा। सरकार यह सब कुछ देखती रही और चुप रही। ऐसा प्रतीत होता था कि वह उस बढ़ते हुए विप्लव का मजा लेना चाहती थी। बकरा-ईद से पहली रात में दोनों कैम्पों में लड़ाई की तैयारियां होती रहीं। सरकार को उनका पता था। दोपहर के समय लगभग दस हजार मुसलमानों की भीड़ के साथ कुरबानी के लिए गौओं का जलूस निकाला गया। उस समय पुलिस बड़ी मात्रा में जलूस के साथ जा रही थी। जब जलूस पहाड़ी धीरज के मध्य में पहुंचा तो कुछ हिन्दू नौजवानों ने आगे बढ़कर

गाय की रस्सी थाम ली। इस पर झगड़ा शुरू हो गया। हिन्दुओं के हाथों में लाठियां थीं और मुसलमानों के पास छुरे थे। सामने के संघर्ष में लाठियों की जीत हुई और दस हजार मुसलमान मुख्य बाजार से रेत की तरह बिखर गये।

मुख्य बाजार से बिखर कर वे लोग गली-कूचों में घुस गये। वहां जाकर उन्होंने जो उत्पात किया, उसे यहा लिखने की आवश्यकता नहीं। संक्षेप में इतना ही बतलाना पर्याप्त है कि उन्होंने स्त्री, पुरुष, बूढ़े और बच्चे किसी का लिहाज नहीं किया। घरों के अन्दर घुसकर जिसे पाया उसे छुरे का निशाना बनाया। दो-तीन घंटों तक उस इलाके में आततायियों का राज्य रहा। सरकार की पुलिस और मिलिटरी उस समय में कहां रही, कुछ पता नहीं, क्योंकि न वह बाजार में दंगे को रोक सकी और न गली-कूचों में छुरेबाजी को।

दंगे के बाद पुलिस ने बहुत से मुसलमानों को गिरफ्तार किया और उन पर मुकदमे चलाये। १९२४ के सितम्बर मास मे महात्मा गांधी दिल्ली में आये और हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना के लिये उपवास की घोषणा की और उपवास आरम्भ कर दिया। दिल्ली के हिन्दुओं को आपने यह प्रेरणा की कि वे मारकाट के अपराध में गिरफ्तार मुसलमानों के विरुद्ध चलाये गये अभियोग को वापिस कराने का यत्न करें। महात्मा जी के उपवास के समाचार से देश में तहलका सा मच गया। समस्या को सुलझाने के लिये दिल्ली मे एक विशाल एकता-सम्मेलन किया गया। इस सम्मेलन में स्वामी श्रद्धानन्द जी और लाला लाजपत राय जी आर्यसमाज के प्रतिनिधि माने गये। स्वामी जी ने आर्यसमाज पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देते हुए स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि अपने सिद्धान्तों के प्रचार का और मत-परिवर्तन का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है, तो भी यदि मुसलमान प्रचारक यह घोषणा कर दें कि वे तबलीग बन्द कर देंगे तो आर्यसमाज भी समय और परिस्थिति को देखते हुए उतनी देर के लिए शुद्धि के आन्दोलन को स्थगित करने पर विचार कर सकता है। इस पर कोई भी मुसलमान प्रतिनिधि या नेता यह कहने के लिये तैयार न हुआ कि इस समय या भविष्य में तबलीग बन्द कर दी जायेगी। परिणाम यह हुआ कि केवल लीपा-पोती और शुभ-कामनाओं के साथ एक राष्ट्रीय पंचायत बनाकर सम्मेलन समाप्त हो गया। सम्मेलन ने धार्मिक सिद्धान्तों को मानने, धार्मिक विचारों को प्रकट करने और धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करने, धर्म-स्थानों की पवित्रता का ध्यान रखने और गोवध और मस्जिद के आगे बाजा बजाने के सम्बन्ध में सबका एक समान अधिकार माना, पर साथ ही उनकी मर्यादाओं का भी निदर्शन किया। अखबारों को चेतावनी दी कि वे साम्प्रदायिक मामलों में समझ-बूझ कर लिखा करें और जनता से अनुरोध किया गया कि गान्धी जी के उपवास के अन्तिम सप्ताह में देश भर में प्रार्थना की जाय। ८ अक्टूबर का दिन जन-सभाओं द्वारा ईश्वर का धन्यवाद देने के लिए नियत किया गया।* सम्मेलन की समाप्ति पर महात्मा जी ने अपना २१ दिन का उपवास विधिपूर्वक समाप्त कर दिया।

* डा० पट्टाभि लिखित कांग्रेस का इतिहास।
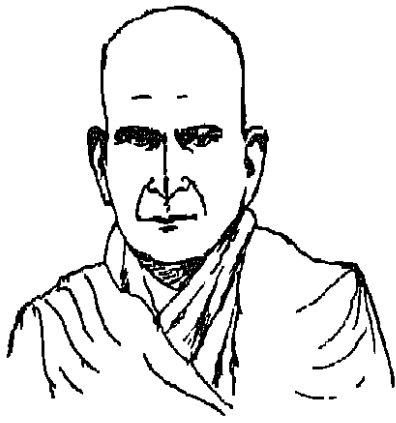
स्वा० श्रद्धानन्द जी

स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी

पं० बालकृष्ण शर्मा
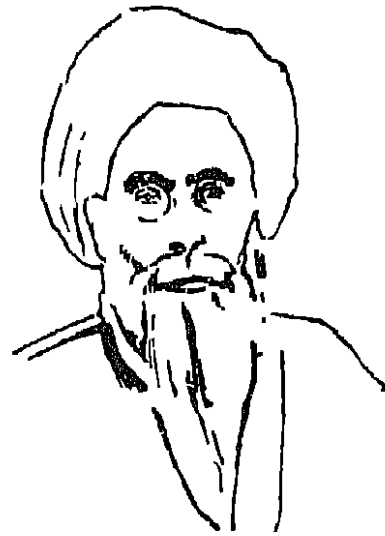
पं० आर्यमुनि जी
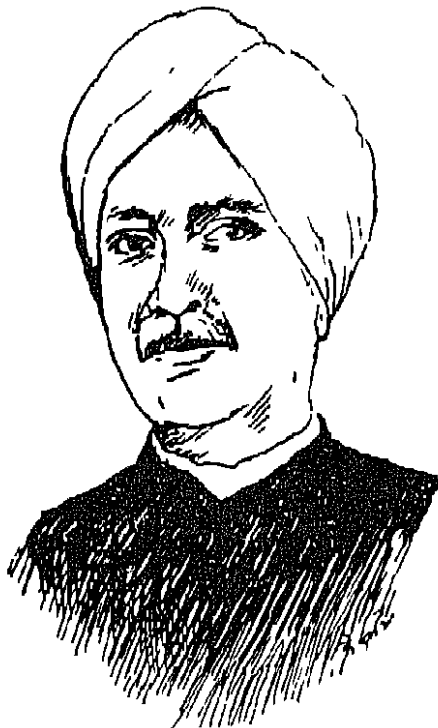
दीवान बहादुर हरविलास शारदा

महाराज सयाजी राव गायकवाड़

उस एकता-सम्मेलन से और कोई परिणाम निकला हो या नहीं, दिल्ली के साम्प्रदायिक विचार रखने वाले मुसलमानों मे यह विचार फैल गया कि महात्मा जी और कांग्रेस के अन्य नेता आर्यसमाज को और शुद्धि को एकता के भंग करने के लिए जिम्मेदार समझते हैं। 'यंग इण्डिया' के लेख ने सत्यार्थप्रकाश, आर्यसमाज और स्वामी श्रद्धानन्द जी पर जो आरोप लगाये थे, दिल्ली के और बाहर के भी मुसलमानों ने यह समझा कि एकता-सम्मेलन ने इस पर मोहर लगा दी है।

१९२६ के जून के महीने में एक नया मामला हो गया। जिसने जलती आग मे घी का काम दिया। उस मामले क विवरण हम पंडित सत्यदेव विद्यालंकार की लिखी हुई स्वामी श्रद्धानन्द जी की जीवनी से उद्धृत करते है :—

"शुद्धि-संगठन के आन्दोलन को लेकर आम जनता को स्वामी जी के विरुद्ध भड़काने वालों को कराची की असगरी बेगम नाम की मुसलमान महिला की शुद्धि और मुकदमे से अच्छा अवसर हाथ आया। साम्प्रदायिक समाचार-पत्रों में मुकदमे की अतिरंजित रिपोर्ट छपने लगी। आर्यसमाजियो पर औरतों और बच्चो को भगाने का दोष लगाने वालो को इससे एक ऐसा प्रमाण हाथ आ गया कि मुकदमे का फैसला होने तक उन्होंने भी अपने दिल का गुबार निकालने में कोई कसर बाकी न रखी। असगरी बेगम कराची से अपने दो बच्चो और भतीजे के साथ देहली आर्यसमाज में आयी थी। वहां उसने हिन्दू धर्म स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की। उसकी इच्छा के अनुसार उसका संस्कार किया गया और शान्ति देवी नाम स्वीकार कर उसने स्थानीय वनिता-आश्रम में रहते हुए हिन्दी, संस्कृत आदि पढ़ना शुरू किया। कोई तीन मास बाद उसके पिता मौलवी ताज मुहम्मद खा उसको खोजते हुए दिल्ली आये। कुछ दिन बाद उसके पति अब्दुल हलीम भी आ गये। उन दोनो ने शान्ति देवी से मिलकर फिर से इस्लाम धर्म स्वीकार कर वापिस चलने के लिये आग्रह किया। पर उसने ऐसा करना स्वीकार न किया। इस प्रकार रुष्ट हो स्थानीय इस्लामी अंजुमनों से भड़काये जाकर उसके पति ने शान्ति देवी, स्वामी जी, डा० सुखदेव, प्रो० इन्द्र, श्री देशबन्धु गुप्त, लाला गनपतराय और कराची आर्यसमाज के मन्त्री पर मुकदमा दायर कर दिया। शान्ति देवी पर बच्चों को भगाने और शेष पर उसको सहायता करने का आरोप लगाया गया था। मुकदमा खब चला। जालन्धर तथा लाहौर से बैरिस्टर बुलाये गये। स्थानीय अंजुमनों ने उसको अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। जून से दिसम्बर तक मुकदमा चलता रहा। अन्त मे ४ दिसम्बर १९२६ को सब अभियुक्त बरी कर दिये गये। जाहिल मुसलमानो को स्वामी जी के प्रति इतना अधिक भड़का दिया गया था कि उनके इस प्रकार बेदाग छूट जाने पर सुलगी हुई आग और जोरों से भड़क उठी। स्वामी जी को खून करने की धमकियों के और भी गुमनाम पत्र आने लगे। हापुड़, मेरठ, देहली आदि में इस सम्बन्ध मे कुछ पैम्फलेट भी निकाले गये। ख्वाजा हसन निजामी ने अपने पत्र 'दरवेश' में भी इसी प्रकार के कुछ इशारे किये थे और कुछ नजमे भी शाया की थीं। स्वामी जी उन सबको अपने स्वभावानुसार उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे।"

अभियोग के दिनों मे स्वामी जी के पास कई गुमनाम पत्र ऐसे आये, जिनमें मारने की धमकी दी गई थी। न तो स्वामी जी ने ये पत्र कभी पुलिस के पास भेजकर अपनी रक्षा की प्रार्थना की और न ही अपने आदमियों को पहरे आदि का विशेष प्रबन्ध करने दिया। जब कभी स्वामी जी के निवास-स्थान पर स्वयंसेवकों का पहरा लगाया जाता था तब स्वामी जी अपनी आज्ञा से उन्हें हटा देते थे। धमकी से डरना स्वामी जी के स्वभाव में नही था। डराने का प्रयत्न उन्हें अपने निश्चय में और भी दृढ़ कर देता था।

उस वर्ष देश मे कौंसिलों के चुनाव की धूमधाम थी। पं० मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपतराय जी ने कांग्रेस से अलग एक नेशनलिस्ट पार्टी का संगठन किया था। कई हल्को से नेशनलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार खड़े किये गये थे। बनारस के हल्के से कांग्रेस ने बाबू श्रीप्रकाश जी को अपना उम्मीदवार निर्वाचित किया था। नेशनलिस्ट पार्टी ने उनके विरोध में सेठ घनश्यामदास बिडला को खड़ा किया था। संघर्ष बहुत कड़ा था। बिड़ला जी ने बार-बार स्वामी जी से अपने चुनाव में सहायता करने की प्रार्थना की। स्वामी जी का स्वास्थ्य अच्छा नही था और उन्हें कौंसिलो के चुनाव जैसे काम में अभिरुचि भी नहीं थी। तो भी जब बिडला जी ने बहुत अधिक आग्रह किया और मालवीय जी और लाला जी ने भी जोर दिया तो स्वामी जी चुनाव में सहायता देने के लिए गोरखपुर चले गये। सर्दी का मौसम था। चुनाव की थकान लेकर स्वामी जी जब दिल्ली वापिस आये तो रोगी होने की पूरी तैयारियां हो चुकी थीं। दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में स्वामी जी के शिथिल शरीर पर ब्रान्कोनिमोनिया का आक्रमण हुआ, जिसने उन्हें चारपाई पर डाल दिया। डाक्टर अंसारी स्वामी जी के निकट मित्रों में से थे। उनके इलाज पर स्वामी जी की बहुत आस्था थी। उनके प्रयत्न से धीरे-धीरे स्वामी जी की अवस्था सुधर रही थी कि एक ऐसी घटना हो गई जिसने देश भर में तहलका सा मचा दिया। इस घटना ने इस सचाई को प्रमाणित कर दिया कि 'प्रत्येक मनुष्य को वह मृत्यु मिलती है, जिसके कि वह योग्य होता है।'

उस महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हम पं० सत्यदेव विद्यालंकार द्वारा लिखित स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन-चरित्र से उद्धृत करते है :—

"प्रो० इन्द्र जी प्रतिदिन की भांति तारीख २३ दिसम्बर सन् १९२६ की दोपहर को स्वामी जी के दर्शनों के लिए गये। कमरे सब खुले पड़े थे और भीतर सब गाढ़ी नीद सोये हुए थे। कई दिन-रात की सेवा से थके हुए स्वामी जी के मन्त्री श्री धर्मपाल जी विद्यालंकार पास के कमरे में और सेवक धर्मसिंह स्वामी जी की चारपाई के पास दरी पर सोये हुए थे। सोते से किसी को जगाना उचित न समझ शाम को दर्शन करने की इच्छा से आप लौट आये। ईसाई से आर्यसमाजी बने हुए एक लड़के को ऊपर भेज दिया, जिससे स्थान अरक्षित न रहे। लगभग ढाई बजे कुछ सज्जन आ बैठे, जिनमे डाक्टर सुखदेव जी, कन्या गुरुकुल की आचार्या विद्यावती जी, भक्त जमनादास जो इत्यादि भी थे। पौने चार बजे स्वामी जी ने सबको विदा किया। सेवक धर्मसिंह ने कमोड ला दिया और स्वामी जी नित्य कर्मों से निवृत्त हो मसनद के सहारे सावधान होकर ऐसे बैठ गये, मानों अमृत पीने के लिए तैयार होकर ही बैठे थे।

"कमोड उठाकर बाहर रखा ही था कि सीढ़ियों में एक व्यक्ति दिखाई दिया। डाक्टर का आदेश था कि अधिक लोग स्वामी जी के पास न आवें। आपको पूरा आराम करने दिया जाय। सेवक के रोकने पर भी उसने दर्शन करने का आग्रह किया। स्वामी जी ने आवाज सुनी और कहा—"कौन है, अन्दर आने दो।" अन्तिम दिन का सन्देश लेकर जिसके आने की इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रहे थे, उसको सीढ़ियों के ऊपर, घर के द्वार तक, आ जाने के बाद खाली कैसे लौटाया जा सकता था? अन्दर आकर उसने स्वामी जी से कहा, "स्वामी जी मैं आपसे इस्लाम के मुतल्लिक कुछ गुफ्तगू करना चाहता हूँ।" स्वामी जी ने उत्तर दिया, "भाई मैं बीमार हूं, तुम्हारी दुआ से राजी हो जाऊंगा तो बातचीत करूंगा।" पानी मांगने पर स्वामी जी के आदेश से सेवक ने उसको पानी पिला दिया।

"पानी पीकर भीतर आते ही उस हत्यारे ने मसनद के सहारे बैठे हुए स्वामी जी पर पिस्तौल दाग दी। आंख की एक झपक में दो फायर हो गये। लपक कर सेवक ने हत्यारे को पीछे से पकड़ा, इतने में उसने तीसरा फायर भी कर दिया। धर्मसिंह ने अपनी जान की ममता छोड, सामने होकर उसका सामना किया, तो उस पर भी गोली दाग दी गयी। रान पर गोली खाकर बेचारा धर्मसिंह जमीन पर लोट गया। हत्यारा भागने की चेष्टा में ही था कि धर्मपाल विद्यालंकार ने आकर उसको दबा लिया। एक हाथ रिवाल्वर वाले हाथ पर और दूसरा उस पर रखे हुए उसको आध घंटा दबाये रखा।

"लुढ़कते-पुढकते धर्मसिंह ने मकान के छज्जे पर पहुंच कर शोर किया तो लोग दौड़े हुए चले आये। बिजली की तरह शहर में बात फैल गयी। चारों ओर मातम छा गया। जिसने सुना वही सन्न रह गया। अच्छा होने का समाचार सुनते-सुनते सहसा वैसे अवसान का समाचार सुनने के लिये कोई तैयार न था। फिर देहली की हिन्दू आबादी के ठीक बीच नया बाजार में दिन के समय वैसी दुर्घटना का घटना विश्वास से कुछ परे की चीज थी। लोग दौड़े चले आये। अन्तिम दर्शनों की लालसा ने लोगों को विह्वल कर दिया। नये बाजार में जनता की बाढ़ आ गई। बड़ी रात तक वहा वैसा ही दृश्य बना रहा। देहली की सड़कों, बाजारों, गलियों, मुहल्लो, दुकानों और घरो में—सब जगह सबके मुँह पर एक ही चर्चा थी। वह दुर्घटना क्या थी, देहली पर कल्पनातीत भयंकर वज्रपात था। यह (२३ दिसम्बर सन् १९२६ गुरुवार) वह दिन था, जिस दिन सूर्य-भगवान् ने दक्षिण दिशा की ओर से उत्तर की ओर प्रस्थान किया था और कोई पाच हजार वर्ष पहले महाभारत के भीष्म पितामह ने शर-शय्या पर पडे हुए स्वेच्छा से प्राणों का विसर्जन किया था और अब देहली के भीष्म पितामह, जनता के हृदय-सम्राट्, स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने भारत की प्राचीन आर्य संस्कृति के कुरुक्षेत्र मे छाती पर गोली खाकर अपने प्राणो का विसर्जन किया था।

"डा० चिम्मनलाल, डा० अन्सारी और डा० अब्दुर्रहमान आदि ने परीक्षा की और शरीर के बिलकुल ठंडा होने की सूचना दे दी। रोगी देह तो पहले ही ठंडा हो चुका था, गरम दवाइयों की गरमी से उसको जबरन गरम रखकर, यमराज के साथ लड़ाई लड़ते हुए, प्रकृति की अवश्यम्भावी घटना को टालने की व्यर्थ कोशिश की जा रही

थी। वह टल कैसे सकती थी ? पर उस कर्मशील जीवन को उस बुढ़ापे में भी अन्तिम दिन अन्तिम सास बीमारी के बिस्तर पर ही सिसकते हुए नहीं लेनी थी। अपितु जीवन की अवश्यम्भावी उस अन्तिम घटना को जीवन से भी अधिक स्फूर्तिदायक बना जाना था और इस संसार से जाते-जाते भी कुछ करते हुए ही जाना था। मुँहमांगी मुराद की तरह आपको वीरगति प्राप्त हुई। उकसाये हुए मतान्ध बेचारे अब्दुल रशीद को क्या मालूम था कि जो कुछ वह करने आया था, उससे ठीक विपरीत ही होगा। वह नहीं जानता था कि वह अपने उस अधम कृत्य द्वारा इस्लाम की चादर पर कभी न धुलने वाला एक काला दाग लगा जायगा और जिसको वह इस संसार से मिटाने आया था, उसको सदा के लिए अमर बना जायगा। निश्चय ही स्वामी जी को वह अमर पद प्राप्त हुआ, जिसकी खोज मे दुनिया पत्थर, पहाड़, कन्दरा, मन्दिर, मस्जिद, गिरजा और मथुरा, काशी, काबा आदि मे भटकती फिरती है।

"गोली चलने के आध घंटा बाद पुलिस घटनास्थल पर पहुंची। उसके थोड़ी देर बाद सीनियर सुपरिन्टेंडेंट पुलिस मार्गन और शेख नजरुल हक आये। हत्यारे को सिपाहियो के सुपुर्द कर जांच शुरू की गई। कुछ दिन मुकदमा चलने के बाद हत्यारे को फांसी की सजा हुई। प्रीवी कौंसिल तक मुकदमा लड़ा गया, पर वहां से भी फासी की सजा बहाल रही। इसलाम को नापाक करने वाले मुसलमानो ने तो हत्यारे को गाजी के पद से सुशोभित किया और प्रीवी कौंसिल मे की गई अपील के रद्द हो जाने पर भी स्वामी जी के औरस पुत्र के नाते प्रो० इन्द्र जी ने उसको फासी न देकर इस्लाम के हाथों में उसकी किस्मत का फैसला छोड़ देने की सम्मति प्रगट की।

"स्वामी जी के शव का देहली मे 'न भूतो, न भावी' सम्मान हुआ। सुदूर प्रदेशों से आकर लोग उसमें शामिल हुए। जिसके लिये भी देहली पहुंचना सम्भव था, वह सिर पर पैर रख आंखों के बल दौड़ा चला आया। हरिद्वार से गुरुकुल कांगड़ी के प्रायः सभी ब्रह्मचारी और कर्मचारी कुल-पिता के अन्तिम दर्शन करने देहली आ पहुंचे थे। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ भी उठकर देहली चला आया था। बलिदान के तीसरे दिन शनिवार को अर्थी का जो विराट् जलूस निकला, वह सम्राटों को भी रिझाने वाला था। जन-समूह का उस दिन देहली में समाना कठिन था। दो ढाई मील तक नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखाई पड़ते थे। अर्थी इतर-फुलेल और फूलों की वर्षा से इतनी भारी हो रही थी कि उसको संभालना कठिन हो रहा था। शहर के मुख्य-मुख्य भागों में घूमता हुआ जलूस सवेरे का चला हुआ दोपहर बाद जमुना के किनारे पहुंचा। अपने हृदय-सम्राट् के नश्वर शरीर को अग्निदेव की भेंट कर देहली के निवासी अपने घरों को ऐसे खाली हाथ लौटे जैसे उनका सर्वस्व ही लुट गया था, मानो अबोध बालक मां-बाप की असामयिक मृत्यु से बिल्कुल अनाथ हो गया था और जैसे लखपति बनने की आशा मे बैठे हुए साहूकार का दिवाला ही पिट गया था।"

चतुर्थ-खण्ड

धर्म-युद्ध की अवतरणिका

प्रथम अध्याय

बलिदान की प्रतिक्रिया

१. राष्ट्रीय नेताओं पर

जिस समय दिल्ली में स्वामी जी के बलिदान का महायज्ञ हो रहा था उस समय गोहाटी में इण्डियन नेशनल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन का शानदार आयोजन लगभग पूरा हो चुका था। प्रतिनिधिगण देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से चलकर या तो गोहाटी पहुंच चुके थे, या रास्ते में थे। एक धर्मान्ध मुसलमान की गोली से स्वामी जी की हत्या के समाचार ने देश भर में सनसनी सी पैदा कर दी। देश में फैले हुए साम्प्रदायिक विद्वेष को उत्पन्न करने में आर्यसमाज और स्वामी श्री श्रद्धानन्द जी का कितना भाग है, इस विकट प्रश्न का उत्तर उन लोगों को भी मिल गया जो तब तक सन्देह की अवस्था में थे। वे अनुभव करने लगे कि साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए आर्यसमाज को उत्तरदाता ठहराने में कुछ भूल हुई है। उनका यह अनुभव और भी दृढ़ हो गया, जब गोहाटी की कांग्रेस-अधिवेशन में स्वामी जी का वह सन्देश सुनाया गया जो उन्होंने बलिदान से एक दिन पहले दिल्ली से भेजा था। सन्देश यह था —

"In Hindu-Muslim unity lies the hope of salvation of India"

"भारत के मोक्ष की आशा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर आश्रित है।"

कांग्रेस में स्वामी जी के बलिदान के विषय में एक प्रस्ताव भी स्वीकार किया गया, जिसमें आततायी के कार्य की निन्दा की गई। ७ जनवरी १९२७ के 'यंग इण्डिया' में महात्मा गान्धी जी ने लिखा था—

"Let me assure my Musalman friends that he was no hater of Musalmans."

"मैं अपने मुसलमान मित्रों को विश्वास दिलाता हूँ कि वे मुसलमानों से घृणा नहीं करते थे।"

पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने आत्मचरित में स्वामी जी के सम्बन्ध में लिखा था—

Always I have admired sheer physical suffering in a good cause, even unto death. Most of us, I suppose, admire it. Swami Shraddhanand had an amazing amount of that fearlessness. His tall and stately figure, wrapped in a Sanyasi's robe, perfectly erect inspite of the advanced years, eyes flashing, sometimes a shadow of irritation or anger at the weakness of others passing over his

face—how I remember that vivid picture and how often it has come back to me !"

मैं सदा शारीरिक निर्भयता, अच्छे लक्ष्य के लिये शारीरिक (मृत्यु तक के) कष्टों को सहने के योग्य साहस का आदर करता रहा हूं। हममें से अधिकतम लोग साहस के पुजारी है। स्वामी श्रद्धानन्द की निर्भयता आश्चर्यजनक थी। उनका संन्यासी के वेश में ऊंचा और शाही शरीर जो कि बड़ी आयु हो जाने पर भी बिलकुल झुका नहीं था, उनकी चमकती हुई आंखें, दूसरों की निर्बलताओं पर कभी-कभी खिजलाहट और मन्यु की छाया से युक्त उनका चेहरा---यह स्पष्ट चित्र रह-रह-कर मुझे याद आता है।"

महात्मा जी ने तथा देश के अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने स्वामी जी के बलिदान पर जो टिप्पणियां कीं, उनसे स्पष्ट प्रतीत होता था कि उनका वह भ्रान्त विचार जाता रहा है कि हिन्दू और मुसलमानो के संघर्ष की उत्तरदायिता आर्यसमाज या स्वामी जी पर है। महातमा जी ने 'यंग इण्डिया' में कई लेख लिखे, जिनमें आर्यसमाज के समाज-सुधार तथा शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

२. हिन्दू जाति पर

स्वामी जी के बलिदान ने हिन्दू जाति को मानो आमूलचूल हिला दिया। हिन्दुओं पर जो पहली प्रतिक्रिया हुई वह थी विक्षोभ और क्रोध की। अपने एक चोटी के नेता के रोगी दशा में हत्यारे के हाथ से मारे जाने पर हिन्दू जनता का हृदय एक बार तो प्रज्वलित हो उठा, परन्तु शीघ्र ही जाति की स्वाभाविक शान्ति ने उस आकस्मिक आग को दबा दिया। पं० मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपतराय आदि हिन्दू जाति के प्रमुख नेताओं ने जाति को आत्म-सुधार और प्रचार के रचनात्मक कार्य की ओर प्रेरित कर दिया। आर्यसमाज के क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य जिन कार्यों की ओर स्वामी जी का प्रयत्न जारी था, उन्हें तीन शीर्षकों के नीचे लाया जा सकता है। वे शीर्षक हैं :—

१ शुद्धि।
२. दलितोद्धार।
३ अन्य समाज-सुधार सम्बन्धी कार्य।

इन कार्यों को सफलतापूर्वक चलाने में स्वामी जी को जिस उदारचेता, धर्म-प्रेमी, अर्थपति की सहायता मुख्य रूप से मिलती थी वे सेठ जुगलकिशोर बिडला थे। सेठ जुगलकिशोर बिडला जी प्रसिद्ध राजा स्वर्गीय बलदेवदास बिडला के सबसे बड़े पुत्र हैं। हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति के प्रति सेठ जी की आस्था असाधारण है। वे कई वर्षों तक स्वामी श्रद्धानन्द जी, पं० मदनमोहन मालवीय जी तथा लाला लाजपतराय जी आदि हिन्दू जाति के नेताओं को सार्वजनिक कार्य के लिए प्रति मास पुष्कल राशि सहायता रूप में देते रहे। बलिदान के पश्चात् उन्होंने अपने दान की मात्रा को और भी अधिक बढ़ा दिया। हिन्दू जाति के अन्य धर्मपरायण दानियों ने भी मुक्त हस्त से

सहायता दी। बलिदान के पश्चात् कुछ वर्षों तक हिन्दू शुद्धि सभा, दलितोद्धार सभा, हिन्दू महासभा आदि संस्थाओं के कार्य की गति तीव्र हो गई। स्वामी जी के भक्तों ने इस कार्य के लिए श्रद्धानन्द ट्रस्ट नाम की एक नई संस्था स्थापित की, जो उन सभी दिशाओं मे थोड़ा बहुत कार्य करती रही, जिनमें स्वामी जी की अभिरुचि थी। इसमें सन्देह नहीं कि देश के हिन्दू कार्यकर्ताओं ने स्वामी जी के बलिदान से उत्पन्न हुई जागृति को रचनात्मक रूप देने में बहुत प्रशंसनीय कार्य किया। थोड़ी बहुत मानसिक कलुषता का उत्पन्न होना तो स्वाभाविक ही था। कुछ लेखको तथा वक्ताओं की वाणी में चिरकल तक वह प्रकट होती रही परन्तु सामान्य रूप से बलिदान की घटना को हिन्दुओं ने अपने लिए एक चेतावनी और प्रेरणा समझा।

सेठ जुगलकिशोर बिडला

कई मुसलमान राष्ट्रीय कहलाने वाले नेताओ ने हत्यारे अब्दुल रशीद को अपने पाप-कार्य के फल से बचाने के लिये मुकदमे में जो अनथक परिश्रम किया, उसका राष्ट्रीय विचार के हिन्दुओं पर भी बहुत बुरा असर पड़ा। यह एक खुला रहस्य है कि अब्दुल रशीद को बचाने का प्रयत्न करने वालों मे मौ० शौकतअली, मौ० मुहम्मदअली और दिल्ली के मौ० अब्दुल्ला चूड़ीवाला थे।

उन्हीं दिनों अब्दुल रशीद के मकान के पास की गली मे पड़ा हुआ कागजों का एक बण्डल मिला था जो संभवतः तलाशी का खतरा होने पर अब्दुल रशीद के सम्बन्धियों ने खिड़की से बाहर फेक दिया था। उस बडल मे बड़े-बडे प्रसिद्ध मुसलमान मौलवियो के इस आशय के खत भी थे कि स्वामी श्रद्धानन्द काफिर हैं और मुसलमानो को मुरतिद बनाता है, इस कारण उसे मारना मुसलमान का फर्ज है। वह बडल एक सी० आई० डी० के आदमी ने लाकर श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति और लाला देशबन्धु गुप्त को दिया। उन दोनों ने वह बंडल ला० लाजपत राय जी के हाथो में दे दिया। लाला जी ने उसे स्वयं उस समय के होम मेम्बर मि० विन्सण्ट स्मिथ के पास पहुचा दिया। विन्सन स्मिथ" ने वह बंडल यह कहकर ले लिया कि हम इसकी तहकीकात करायेंगे। बस, वहा जाकर खतो का वह पुलिन्दा ऐसा गुम हुआ कि फिर न निकला। लाला जी के पूछने पर होम मेम्बर ने यह उत्तर दिया कि अभी देश के वातावरण मे गरमी है। जब कुछ शान्ति हो जायगी तब कुछ तहकीकात की जायगी। बात वहीं खतम हो गई। ऐसी घटनाओं से जानकार हिन्दुओं के मन पर यह प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था कि अंग्रेजी सरकार अब भी मुसलमानो को बढ़ावा देने पर तुली हुई है।

३. आर्यसमाज पर

स्वामी जी ने अनेक क्षेत्रो मे कार्य किया। वे कांग्रेस मे, हिन्दू महासभा में तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि अन्य अनेक सस्थाओ मे प्रमुख स्थान पर कार्य करते रहे।

परन्तु यह बात निर्विवाद है कि वे सब जगह और हर समय आर्यसमाज के नेता ही समझे जाते थे। अन्य संस्थाओं में भी वे आर्यसमाज का प्रतिनिधित्व करते थे। इस कारण उनके बलिदान का सबसे गहरा प्रभाव आर्यसमाज पर पड़ा। ऐसी शानदार मृत्यु पर अभिमान, क्षोभ आदि जो भाव हृदय में उत्पन्न हो सकते थे, वे संसार भर के आर्य-समाजियों के हृदयों में लहरा उठे। आर्यसमाज जन्म-काल से ही शारीरिक आक्रमणों को सहता रहा है। उसने कभी प्रत्याक्रमण नहीं किया। यह उसे वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्द की देन है। पुरानी पद्धति के अनुसार आर्यसमाज का क्षोभ शीघ्र ही शान्त हो गया परन्तु उसके कारण जो चेतना उत्पन्न हुई थी, वह चिरस्थायिनी हुई। बलिदान के कारण जो स्फूर्ति उत्पन्न हुई, वह मुख्य रूप से तीन रूपों में प्रकट हुई :

१ बलिदान का आर्यसमाजियों पर जो प्रभाव तत्काल हुआ वह यह था कि उनके आन्तरिक मतभेद, जो कुछ वर्ष पूर्व से शिथिल हो रहे थे, व्यवहार मे समाप्त से हो गये। पंजाब के दोनो दलों के बहुत से मुखिया कई वर्षो से यह यत्न कर रहे थे कि जहां तक सम्भव हो, परस्पर भेदों को मिटाकर मिलकर कार्य करने की प्रवृत्ति उत्पन्न की जाय। इस विचार-परम्परा के उद्भावक गुरुकुल दल की ओर से स्वामी श्रद्धानन्द जी और कालिज दल की ओर से लाला लाजपतराय जी थे। स्वामी जी के बलिदान ने उस विचार को पुष्टि दी। वीर की अर्थी के साथ जो अपार भीड़ थी, उसमे सभी प्रान्तों और सभी दलों के आर्यसमाजी एकमन होकर सम्मिलित हुए थे। सब की भाव-नायें एक सी थी और संकल्प भी एक से ही थे। उसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि उस समय से आर्यसमाज के आन्तरिक दलो की सीमाये नष्टप्राय हो गई है। जो थोड़ी बहुत भेद-रेखा दिखाई भी देती है, वह कई वर्षो के पुराने सस्कारों का बचा हुआ अवशेष है और शायद यह कहना भी अशुद्ध न होगा कि विद्यमान भेदभाव व्यक्तियों तक ही परिमित है।

२. स्वामी जी के बलिदान का दूसरा असर यह हुआ कि मलकानों और मूलों की ओर आर्यसमाज का ध्यान पहले से अधिक बल के साथ आकर्षित हो गया। कुछ वर्षो तक आर्यसमाज के समाचार-पत्रो मे और व्याख्यान-मंचों पर से विशेष रूप से शुद्धि की ही चर्चा होती रही और जो संस्थाएं शुद्धि का कार्य कर रही थीं, उनको अधिक पोषण मिलने लगा।

३. बलिदान ने आर्य-जगत् में आत्मरक्षा के लिए संगठन की भावना को जागृत कर दिया। जब उन्होंने देखा कि उनके नेता, उनके धर्म-मन्दिर और उनकी महिलाए तक आततायियो के आकस्मिक आक्रमणों के शिकार बन सकती है, तो उनके मन में स्वभावतः यह विचार उत्पन्न हुआ कि हमे अपनी रक्षा के लिए विधिपूर्वक कोई न कोई रक्षा-संगठन बनाना चाहिए। १९२७ ई० के जुलाई मास में दिल्ली में जो सार्व-देशिक आर्य महा सम्मेलन हुआ, वह इन पूर्वोक्त प्रतिक्रियाओ का स्थूल परिणाम था।

दूसरा अध्याय

सार्वदेशिक आर्य महा-सम्मेलन

सन् १९२७ के मुहर्रम के अवसर पर बरेली मे एक उपद्रव हुआ, जिसमें जहां एक ओर मुहर्रम के जलूस मे एकत्र हुए मुसलमानों ने हिन्दुओं और विशेषकर आर्यसमाजियों पर आक्रमण किये वहां स्थानीय पुलिस ने उपद्रवियों को रोकने या गिरफ्तार करने के स्थान पर आर्यसमाज पर ही हमला बोल दिया। वे लोग आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग मे घुस गये, जूते पहने हुए वेदी पर चढ गये और आर्यो को ही गिरफ्तार कर लिया। आर्य-जनता मे बलिदान की घटनाओं से जो विक्षोभ उत्पन्न हुआ था, वह अपने उग्रतम रूप मे था। जब बरेली के समाचार प्रकाशित हुए, तो उन्होंने आर्यसमाज को मानों झटका देकर प्रेरणा की कि वह आत्मरक्षा और धर्मरक्षा के उपायो पर गंभीरता से विचार करे। बरेली की घटना पर विचार करने के लिये सार्वदशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का २४ जुलाई, १९२७ को एक अधिवेशन हुआ, जिसमें निम्न लिखित प्रस्ताव स्वीकार किये गये :--

(१) बरेली की दुर्घटना के समाचार पढ़ कर इस सभा को महान् दुःख हुआ। सभा की सम्मति मे शहर कोतवाल और तहसीलदार का जूते पहन कर वेदी पर चढ़ जाना, साप्ताहिक अधिवेशन में विघ्न डालना, फिर निरपराध आर्य पुरुषों को गिरफ्तार करना, बारहदरी के पुलिस इन्सपैक्टर का आर्य पुरुषों के जनेऊ उतरवाना, अन्याययुक्त बलात्कारपूर्ण कार्य था और धार्मिक कार्य मे हस्तक्षेप और धर्म का अपमान था। इससे आर्य-जगत् मे गहरा असन्तोष फैला हुआ है। अतः यह सभा गवर्नमेंट से आशा करती है कि वह इन सब अन्यायपूर्ण कार्यो के उत्तरदाता अधिकारियों तथा अन्य अपराधियों को उचित दंड देकर आर्य पुरुषों के घायल हृदयो को आश्वासन देगी और भविष्य के लिये ऐसे आदेश देगी कि ऐसे अनियमित कार्य असभव हो जावे।

(२) सब नगरों और ग्रामो में ७ अगस्त १९२७ रविवार को सार्वजनिक सभाये की जावे, जिनमें हिन्दू, सिक्ख, जैनी, पारसी आदि समस्त आर्य लोग निमंत्रित किये जावे, सभाओं में बरेली संबंधी प्रस्ताव स्वीकार करके भारत सरकार, प्रान्तीय सरकार तथा पत्रों को भेजे जावें।

(३) आर्यसमाज की वर्तमान परिस्थिति पर विचार करने और आर्य जनता की सम्मति को प्रकाशित करने के लिये सितम्बर या अक्तूबर मे आर्य पुरुषों की एक कान्फ्रेन्स की जावे, जिसके प्रबन्ध के लिये एक स्वागतकारिणी सभा संगठित की जावे। स्वागतकारिणी के संगठन के लिये एक उपसमिति निम्न महानुभावो की बनायी जावे :--

१ स्वामी रामानन्द,
२ प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ।

इस निश्चय के अनुसार सम्मेलन की योजना तैयार हुई और सार्वदेशिक की अन्तरंग सभा में स्वीकृत हो गयी। शीघ्र ही स्वागतकारिणी सभा का निर्माण हो गया, जिसके प्रधान पं० रामचन्द्र जी देहलवी और प्रधानमन्त्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति चुने गये। अधिवेशन के अध्यक्ष महात्मा हंसराज जी निर्वाचित हुए। सम्मेलन में असाधारण उत्साह था। एकत्रित प्रतिनिधियों पर स्वामी जी के बलिदान का असर तो था ही, सम्मेलन के मंच पर सब दलों के प्रमुख आर्य नेताओं को एक स्थान पर बैठा देख कर तो मानो आर्य-जनता के हृदयों में जोश की बाढ आ गई। सम्मेलन में सब मिलाकर १८ प्रस्ताव स्वीकार किये गये जिन पर बोलने वालों में भाई परमानन्द जी, महाशय कृष्ण जी, प० नेकीराम जी शर्मा, पं० घासीराम जी, पं० विजयशंकर जी (बम्बई), चौ० मुख्तारसिंहजी (मेरठ), लाला देशबन्धु जी गुप्त, लाला रामप्रसाद जी, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, प्रो० दीवानचन्द्र एम० ए०, लाला खुशहालचन्द 'खुर्सन्द', श्री एम०जी० शर्मा आदि महानुभाव थे। सब से पहला प्रस्ताव बलिदान के सम्बन्ध में था। प्रस्ताव निम्न लिखित था :—

"यह सम्मेलन हिन्दू जाति और आर्यसमाज के सर्वमान्य नेता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के निर्दयतापूर्ण वध को, जो एक दीवाने मुसलमान द्वारा किया गया था, अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता है।

यह सम्मेलन मुसलमानों के उन प्रयत्नो को घृणा और क्रोध की दृष्टि से देखता है, जो उन्होंने प्रसिद्ध कार्यकर्ताओं के कायरतापूर्ण वधों के द्वारा सामान्यतया हिन्दू जाति को और मुख्यतया आर्यसमाज को भयभीत करने के लिये किये हैं।

यह सम्मेलन ला० बद्रीशाह, म० भैरोंसिंह, रायबहादुर बहादुरसिंह, म० मानकचन्द, म० बनवारीलाल, तथा अन्य शहीदों के कुटुंबियो के प्रति समवेदना प्रकट करता है और उन्हे इन अमर शहीदो की पुण्यस्मृति के द्वारा श्रेय स्थान प्राप्त कर लेने पर बधाई देता है।

इस सम्मेलन का यह दृढ़ निश्चय है कि अमर शहीद पूज्य श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के पवित्र पद-चिन्हों का अनुसरण करने एवं वैदिक धर्म की पवित्र वेदी पर प्राण देने के लिये हजारों वीर सन्नद्ध रहेंगे।"

यह पहला प्रस्ताव सम्मेलन के आयोजन के कारण और उसके मुख्य विषय का सूचक है। इस कारण हम ने पूरा-पूरा दिया है। सम्मेलन मे प्रतिनिधियो और दर्शको की मिलाकर उपस्थिति २० और ४० हजार के बीच मे रहती थी। जनता का जोश निरन्तर जंगल की आग की तरह प्रज्वलित दिखाई देता था। इसका मूल कारण था बलिदान की प्रतिक्रिया।

सम्मेलन के अध्यक्ष महात्मा हसराज जी का दिल्ली के स्टेशन पर बहुत शानदार स्वागत हुआ। उनका भाषण गंभीर, ओजस्वी और पथ-दर्शक था। महर्षि दयानन्द के सन्देश के बारे मे आपने कहा—

"............स्वामी दयानन्द ने अपना सन्देश एक वर्ग तक ही सीमित नहीं रखा। वे विश्वधर्म का प्रचार करने आये थे। इसलिये आवश्यक था कि वे न केवल हिन्दू धर्म में बढते वहमो से निबटे, बल्कि अन्य धर्मो मे भी ऐसी बुराइयो का विरोध करें ....और इस तरह सब को एक झडे---वैदिक धर्म---के नीचे इकट्ठा करना चाहते थे। इस महान् कार्य के लिये उन्होने यत्न किया और शायद कोई ही ऐसी कठिनाई होगी, जिसका उन्होंने सामना न किया हो।" इस प्रकार महर्षि दयानन्द के मिशन की चर्चा करते हुए आपने शुद्धि कार्य का प्रकरण छेड़ा और कहा, "शुद्धि कार्य में हमारी अपूर्व सफलता से कुछ मुसलमान भन्ना गये और उन्होंने हिन्दुओं को आतंकित करना शुरू कर दिया, जो कि किसी भी धर्म के अनुयायियों को शोभा नहीं देता। उनमें से कुछ ने इस कार्य में लगे लोगों पर घातक प्रहार भी किये। ऐसी घटनाओ से कुछ हिन्दू भयभीत हो जाते हैं। हत्यायें, घात और धमकिया देखकर वह चिल्ला उठते हैं कि अब क्या होगा। लेकिन इस बूढ़ी अवस्था मे भी मुझे कोई भी चीज नही डरा सकती और न निराश कर सकती हैं। मेरा विश्वास है कि जब शहीदों का खून बहेगा तो धर्म के अच्छे दिन आयेंगे। विभिन्न धर्मों के इतिहास मे भगवान् का ऐसा ही नियम देखने मे आता है।"

सम्मेलन में भाग लेने वालों मे लाला लाजपतराय जी, पंडित मदनमोहन मालवीय, भाई परमानन्द आदि महानुभावों के नाम उल्लेख-योग्य हैं। सम्मेलन में स्वीकृत हुए प्रस्तावों में से अधिक महत्वपूर्ण प्रस्ताव नीचे दिये जाते हैं। इन प्रस्तावों को पूर्ण रूप से देने का उद्देश्य यह है कि उस समय आर्य-जगत् के मन मे जो भाव थे, वे सर्वदा हमारे सामने रहें। वे अपने समय की मनोवृत्ति के सूचक थे और भविष्य की मनोवृत्ति के निर्माता थे।

सरकारी अधिकारियों के पक्षपात पर रोष

यह सम्मेलन म० राजपाल, श्री स्वामी सत्यानन्द जी और हिन्दू सगठन के आन्दोलन के साथ सम्बन्धित कार्यकर्ताओं के ऊपर किये गये घातक आक्रमणो का घोर प्रतिवाद करता है। सम्मेलन का दृढ़ निश्चय है कि ये वध और घातक आक्रमण उस उत्तेजना के परिणाम है, जो प्रकट रूप से जिम्मेदार और गैर-जिम्मेदार मुस्लिम आन्दोलनकारियो द्वारा प्रेस और प्लेटफार्मों से दी जा रही है। यह सम्मेलन राजकर्मचारियों की उस अकर्मण्यता पर अत्यन्त रोष प्रकट करता हुआ, जो उन्होने नीच गुंडों के दल की विद्यमानता में, क्रूरकर्मा घातकों के कार्यो की निर्लज्जतापूर्ण प्रशंसा करने और धर्म के पवित्र नाम पर कत्ल और कानून को हाथ में लेने का निरन्तर उपदेश जारी रहने की मौजूदगी मे दिखलाई है। यह सम्मेलन आर्य (हिन्दू) कार्यकर्ताओ की रक्षा करने के क्रियात्मक निषेध किये जाने पर, जो इनका ब्रिटिश नागरिकों की ओर से वैध अधिकार है, हिन्दू जनता का रोष प्रकट करता है। इस सम्मेलन की सम्मति में अधिकारियों ने उस गवर्नमेन्ट के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी है, जो इस देश में कानून के आधार पर स्थापित की हुई मानी जाती है। इस कर्तव्यहीनता के लिए स्वय गवर्नमेन्ट भी उत्तरदाता है।

प्रस्तावक---श्री रामप्रसाद जी मन्त्री, अछूतोद्धार सभा, दिल्ली।

अनुमोदक——चौ० मुख्तारसिंह जी (मेरठ)
समर्थक——पन्नालाल जी व्यास आदि।

मुसलमानों द्वारा आततायियों का समर्थन

इस सम्मेलन की सम्मति है कि मुसलमानो का अब्दुलरशीद की रक्षा के लिए पब्लिक चंदा जमा करना और बड़ी तादाद मे उसके छुटकारे तथा झूठी गवाही देने के लिए लोगो को प्रस्तुत करना, मुसलमानी अखबारों का खुदाबख्श और अब्दुलअजीज के पक्ष की पुष्टि करना, मुसलमानी प्रेस का खुले आम धमकियां देना और एक ही नाम पर प्रसिद्ध हिन्दुओ को कत्ल की धमकी के पत्रों का लिखा जाना ये सब इस विश्वास की पुष्टि करते है कि कत्ल और हमले षड्यन्त्र के फल है, जिसके पीछे दूसरे लोगों के दिमाग और धन-दौलत काम कर रहे है। यह सम्मेलन प्रान्तीय और बड़ी व्यवस्थापिका सभाओ के हिन्दू सदस्यों से प्रेरणा करता है कि वे लोग इस मामले में पूरी तहकीकात करने के लिये निष्पक्ष कमीशन बिठलाने पर बल देवें।

प्रस्तावक——म० कृष्ण जी (लाहौर)
अनुमोदक——श्री देशबन्धु जी (देहली)
समर्थक——श्रीमती चन्द्रावती जी आदि।

आर्य-जनों से अनुरोध

जहां यह सम्मेलन इस बात पर संतोष प्रकट करता है कि आर्य जाति ने विधर्मियों के लिये वैदिक धर्म का द्वार खोलना अंगीकार कर लिया है और गत चार वर्षों में शुद्धि का कार्य बहुत हुआ है, वहां यह कहने को बाधित है कि कुछ प्राचीन कुसंस्कारों और कुछ अपनी नासमझी के कारण अभी तक नव आर्य भाइयों के साथ समान सामाजिक व्यवहारों के आरम्भ करने में बहुत सी कठिनाइयां दिखायी देती है। यह सम्मेलन अत्यन्त आग्रहपूर्वक आर्य-मात्र से अनुरोध करता है कि वे नवागत भाइयों को समान व्यवहार द्वारा अपनावें। यह सम्मेलन आर्यसमाजों का ध्यान इस ओर खींचना चाहता है कि वे नव आर्य भाइयों के शिक्षण और अन्य सहायता प्रदान करने के लिये स्थायी प्रबन्ध शीघ्र और अवश्य करे।

आर्य-शिक्षणालयों को प्रेरणा

यह सम्मेलन आर्य शिक्षणालयों के संचालकों से बलपूर्वक अनुरोध करता है कि वे अपने शिक्षणालयों मे छात्रों को निःशुल्क प्रविष्ट करने में शुद्ध हुए निर्धन भाइयों के बालको को पहला स्थान दें।

(सभापति द्वारा)

दलितों के प्रति कर्तव्य

इस सम्मेलन को यह देख कर सन्तोष होता है कि जन्म से अस्पृश्यता का भाव, जो हिन्दू जाति पर एक कलंक था, दिनो दिन कम होता चला जा रहा है। परन्तु इसकी प्रगति मे अधिक वृद्धि की आवश्यकता है। चूँकि दलित अथवा अछूत कहलाने वाले भाई

जाति का एक बड़ा भाग है, इसलिये उनको जाति में पूर्णरूप से सम्मिलित कर लेना और उनको जाति के संगठन में यथोचित भाग देना प्रत्येक आर्य (हिन्दू) का धर्म होना चाहिये। यह सम्मेलन सर्व सामान्य हिन्दू जनता से साधारण रूप से और आर्यसमाजियों से विशेष रूप से अनुरोध करता है कि वे--

१ अछूत कहलाने वाले भाइयों के साथ अस्पृश्यता के भाव को बिल्कुल मिटा दें और उन्हें समान सामाजिक अधिकार दें।

२ उनकी आर्थिक दशा के सुधार को दृष्टि मे रखते हुए जहां तक हो सके, पहले उनको काम देने का यत्न करें, और

३. उनमें आर्य संस्कृति का संचार करने के लिये विशेष रूप से धर्म तथा विद्या के प्रचार का यत्न किया जाए।

साम्प्रदायिक एकता के प्रयत्न

भारतवर्ष में निवास करने वाली विविध जातियों में शान्ति और एकता स्थापित करने के लिए जो प्रयत्न सच्चे हृदय से किये गये हैं, उनका यह सम्मेलन स्वागत करता है। परन्तु कलकत्ता के सम्मेलन में जो प्रस्ताव स्वीकार किये गये हैं, और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जिनका समर्थन किया है, उनके विषय में इस सार्वदेशिक आर्य सम्मेलन की सम्मति इस प्रकार है :--

१-- मत परिवर्तन के सम्बन्ध मे जो प्रस्ताव स्वीकार किया गया है, वह बहुत न्यायपूर्ण और उचित है। यदि धार्मिक प्रचारकों ने उनका पूर्णतया सच्चे हृदय से अनुसरण किया तो वर्तमान शोचनीय जातिगत झगड़ों को दूर करने में बहुत सहायता मिलेगी।

२-- गोहत्या और मस्जिदो के सम्मुख बाजों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव स्वीकार किया गया है, उसका यह सम्मेलन घोर विरोध करता है। उसके द्वारा हिन्दुओं के साथ सर्वथा अन्याय किया गया है, क्योंकि--

क. इस प्रस्ताव द्वारा हिन्दुओं के अत्यन्त प्राचीन धार्मिक प्रश्न गो-हत्या और मुसलमानों के मस्जिद के सम्मुख बाजे के नवीन प्रश्न को एक समान महत्व दिया गया है।

ख. इस प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय किया गया है कि मस्जिदोंके सम्मुख किसी भी समय ठहर कर बाजे न बजाये जावें। इस प्रकार यह प्रस्ताव मुसलमानों की इस मांग से भी कि नमाज के अवसर पर, कुछ निश्चित समयो पर बाजे न बजाये जायें, आगे बढ़ गया है। इस प्रस्ताव पर अमल करने से कई शहरों में लंबे जलूस बिल्कुल बन्द हो जावेंगे, बिशेषतया जब कि नई मस्जिदों के बननेमें कोई रुकावट नहीं है।

ग. इस प्रस्ताव में हिन्दुओं को मस्जिद के सम्मुख बाजा बजाने और भजन गाने की जो स्वतंत्रता दी गई है, उसे मुसलमान यह कह कर

कि हमें इससे तकलीफ पहुंचती है, सर्वथा निरर्थक कर सकते हैं।

घ. इस प्रस्ताव द्वारा हिन्दुओं के पवित्रतम स्थानों, तीर्थ-स्थानो और उन स्थानों पर जहां अब तक कभी भी गोहत्या व किसी प्रकार की प्राणि-हत्या नहीं होती है व कानून द्वारा वर्जित है, वहां पर भी गोहत्या करने की अनुमति दी गई है, यह अनुमति आर्य और हिन्दू-मात्र के लिये असह्य है।

ङ इस प्रस्ताव मे म्युनिसिपैलिटियों द्वारा व अन्य स्वास्थ्यविषयक दृष्टियों से प्राणि-हत्या के सम्बन्ध में जो भी बाधाएं विद्यमान हैं, उनको एक दम दूर कर दिया गया है क्योंकि इस प्रस्ताव के अनुसार प्रत्येक मुसलमान अपने घर मे जो कि किसी मंदिर के समीप न हो, न केवल बकरा-ईद के अवस पर परन्तु अन्य समयों पर भी गो-हत्या कर सकता है।

३– यह सम्मेलन देश के नेताओं को यह सूचित कर देना आवश्यक समझता है कि उन सब निर्णयों को, जिनमें हिन्दुओं और आर्यसमाजियों के धार्मिक व सामाजिक अधिकारों का प्रश्न उपस्थित हो और जिनका निश्चय हिन्दू और आर्य-नेताओं की स्वीकृति के बिना किया गया हो, मानने के लिए आर्य हिन्दू जाति बाध्य नही है और न इस प्रकार के निर्णय हिन्दू और आर्य-नेताओं की स्वीकृति के बिना किसी को करने का अधिकार है।

प्रस्तावक––श्री राधाकृष्ण जी (लाहौर)

अनुमोदक––श्री भाई परमानन्द जी

समर्थक––श्री रामप्रसाद जी (दिल्ली)।

आर्य-रक्षा समिति तथा आर्य वीर दल की स्थापना

वर्तमान संकट और सामाजिक सेवाओं के महत्त्व को दृष्टि में रखता हुआ यह सम्मेलन आर्य जाति के धार्मिक तथा सामाजिक अधिकारों की रक्षा के लिए निम्न लिखित सज्जनों की आर्य रक्षा समिति बनाता है, जो सार्वदेशिक सभा के अधीन होगी। यह समिति देश भर में भ्रमण करके निम्नलिखित कार्यो का सपादन करे :––

१– दस हजार ऐसे स्वयंसेवकों की भर्ती करे, जो धर्मरक्षा के लिए प्राण तक अर्पण करने के लिए सर्वदा उद्यत रहें।

२– रक्षा-निधि के लिए ५० हजार रुपया एकत्र करें। इस निधि का धन सार्वदेशिक सभा के अधीन होगा।

३– स्थान और अनुकूलता देख कर शीघ्र से शीघ्र उस स्थान की प्रान्तीय आर्यप्रतिनिधि की सलाह से और सार्वदेशिक सभा की अनुमति से सब आवश्यक उपायों का, जिसमे सत्याग्रह भी शामिल है, अवलम्बन करे।

४– यह समिति अपने कार्य के लिये नियम बनाये और सम्मेलन के समाप्त होते ही उपर्युक्त कार्य आरम्भ कर दे।

समिति के सदस्य

१. श्री महात्मा नारायण स्वामी जी, देहली ।
२. श्री भाई परमानन्द जी, लाहौर ।
३. श्री प्रो० रामदेव जी, गुरुकुल कागड़ी ।
४. स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, लाहौर ।
५. म० कृष्ण जी, लाहौर ।
६. बा० सीताराम जी वकील, खीरी ।
७. कुं० चांदकरण जी शारदा, अजमेर ।
८. बा० रामप्रसाद जी, कोठी नं० ७, दिल्ली ।
९. श्री रामचन्द्र जी देहलवी ।
१०. श्री आनन्दप्रिय जी बड़ौदा ।
११. श्री श्रीराम जी, वृन्दावन ।
१२. श्री स्वामी रामानन्द जी, दिल्ली ।
१३. श्री विजयशंकर जी, बम्बई ।
१४. श्री देवेश्वर जी, रावलपिंडी ।
१५. श्री लाला देशबन्धु जी, दिल्ली ।
१६. श्री पं० इन्द्र जी दिल्ली ।

प्रस्तावक --श्री नारायण स्वामी जी ।
अनुमोदक--श्री पं० इन्द्र जी ।
समर्थक --श्री स्वामी रामानन्द जी ।
विरोधी --श्री नानकचन्द जी लाहौर और प्रिन्सिपल दीवानचन्द जी कानपुर ।

श्रद्धानन्द चतुर्थी

स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की देश तथा धर्म के प्रति सेवाओं, कुर्बानियों और सबसे बढ़कर अन्तिम बलिदान को दृष्टि में रखते हुए यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि ४ बदी मार्गशीर्ष को श्रद्धानन्द-चतुर्थी दिवस के रूप में मनाया जाय ।

(सभापति द्वारा)

जात-पात का उन्मूलन

यह सार्वदेशिक आर्य सम्मेलन निश्चय करता है कि आर्यसमाज का सार्व-भौमिक सुधार-सम्बन्धी कोई भी आन्दोलन अर्थात् शुद्धि, दलितोद्धार, अछूतोद्धार आदि तब तक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता जब तक वैदिक वर्ण-व्यवस्था को दृष्टि में रखकर भेदमूलक जन्म की जाति-पाति के बन्धनों को सर्वथा तोड़कर समानता के नाते से सारी आर्य जाति का एक भ्रातृ-संघ न बनाया जाय । इसलिए यह

सम्मेलन सब आर्यसमाजियों को इन बातों को अपने आचरण में लाने का आदेश करता है कि––

१. वैदिक शिक्षाओं के अनुसार जात-पात को वर-वधू के चुनाव का निर्णायक न मानकर योग्यता और गुणों को दृष्टि मे रखकर ही विवाह-सम्बन्ध करना चाहिए।

२. वर्तमान जात-पात की परवाह न करके विवाहो को यथासम्भव सुगम बनाने के लिए जो भी कानून पेश किये जावे, उनका समर्थन करना चाहिए।

३. यह सम्मेलन आर्यमात्र को प्रेरणा करता है कि वह जात और उपजातों की पृथक् सभाओं मे भाग न लिया करें।

प्रस्तावक––प्रो० रामदेव जी।
अनुमोदक––पं० भगवद्दत्त जी।
समर्थक––भाई परमानन्द जी।

नोट:––यह प्रस्ताव भाई परमानन्द जी के संशोधन सहित जिस रूप मे सम्मेलन में पास हुआ था, उसी रूप में यहां दिया गया है।

इन मुख्य प्रस्तावों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रस्ताव थे, जिनमे हिन्दुओं को प्रेरणा की गयी थी कि वे केवल व्यापार मे ही संतुष्ट न होकर कारीगरी के कामों को भी अपनायें तथा आर्य प्रतिनिधि सभाओं को निर्देश दिया कि वे अच्छे साहित्य के निर्माण के लिये व्यवस्था करें।

स्थायी कार्य को पुष्टि देने वाले प्रस्तावों में से सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रस्ताव आर्य रक्षा समिति सम्बन्धी था। आर्य सम्मेलन के १०वें प्रस्ताव में आर्य रक्षा समिति की स्थापना का निश्चय किया गया था। सम्मेलन के समाप्त होते ही समिति के प्रधान श्री नारायण स्वामी जी ने समस्त आर्यो और आर्यसमाजों से अपील की कि वे यथासम्भव शीघ्र दस हजार स्वयंसेवक और ५० हजार रुपये एकत्र करे। प्रतिज्ञा-पत्र छापकर समाजो में भेज दिये गये। इसी बीच में समिति के मंत्री श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति को भारतीय दण्ड-विधान की धारा १५३ के अनुसार लंबी कैद हो गई। सरकार ने समझा था कि सम्भवत: मंत्री को जेल भेज देने से भरती का काम शिथिल हो जायगा। परन्तु वैसा न हुआ और १९२८ का साल समाप्त होने से पूर्व आर्यवीरो की संख्या ११,५०० (साढे ग्यारह हजार) हो गई। धन-संग्रह का काम धीरे-धीरे हुआ। परन्तु अन्त में वह भी निश्चित राशि से आगे बढ़ गया। आगे आने वाले संकट के समयों में आर्य रक्षा समिति ने आर्यसमाज की अच्छी सेवा की।

आर्यसमाज के कार्यक्रम को समयानुकूल बनाने और सजीव करने में आर्य-सम्मेलन को बहुत सफलता मिली। सबसे बड़ी बात यह हुई कि स्वामी जी के बलिदान से आर्यजनों के हृदयों मे जो भयंकर विक्षोभ उत्पन्न हुआ था वह क्रियात्मक रूप मे परिणत होकर भविष्य के लिए कल्याणकारी बन गया।

तीसरा अध्याय

महाशय राजपाल जी का बलिदान

एक दृष्टि से महाशय राजपाल जी का बलिदान पं० लेखराम जी और स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदानों से भिन्न था। पंडित जी और स्वामी जी धर्मयुद्ध के प्रख्यात सेनानी थे। उनका सारा सार्वजनिक जीवन धर्म के रणक्षेत्र मे व्यतीत हुआ था। उन पर किसी धर्मान्ध व्यक्ति का आक्रमण अत्यन्त निन्दा के योग्य होकर भी समझ मे आ सकता था, परन्तु महाशय राजपाल का बलिदान तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे किसी बाप से नाराज होकर कोई आततायी उसके मासूम बच्चे के पेट मे छुरी भोंक दे। महाशय राजपाल एक अत्यन्त सौम्य और शान्त प्रकृति के धार्मिक व्यक्ति थे। सबसे हसकर बात करते थे और सच्चे व्यापारियों की तरह किसी को दुश्मन नहीं बनाना चाहते थे। वे किस प्रकार घटनाचक्र के और एक हत्यारे की छुरी के शिकार हुए इसकी कहानी बहुत दुःखजनक है।

राजपाल जी का जन्म अमृतसर के एक साधारण परिवार मे हुआ था। आपके पिता अर्जीनवीस थे। राजपाल जी अभी बहुत छोटे थे कि उनके पिता बच्चों और उनकी माता को निराश्रय छोड़कर कहीं चले गये और फिर लौटकर न आये। राजपाल जी उस समय स्कूल मे पढ़ते थे। कर्त्तव्यपरायण और परिश्रमी तो आप थे ही, उस अवस्था मे भी घबराये नही और मिडिल पास करके उर्दू की किताबत के काम मे लग गये। उर्दू की छपाई, टाइप से नहीं हाथ से लिखी हुई कापियो से होती है। शुद्ध और सुन्दर कापी लिखने वाले व्यक्ति कातिब कहलाते है। आप कातिब के पेशे से जो कुछ कमाते थे वह अपनी माता और छोटे भाई सन्तराम के पालन-पोषण में लगा देते थे।

कुछ समय के पश्चात् आप एक हकीम के यहा लेखक का काम करने लगे। प्रारम्भ से ही आपकी प्रवृत्ति लिखने-पढ़ने की ओर थी और आर्यसमाज का प्रेम रग-रग में व्याप्त था। १९०६ मे आप महात्मा मुन्शीराम जी द्वारा संपादित सद्धर्म प्रचारक (उर्दू) के कार्यालय मे क्लर्क के काम पर नियुक्त हो गये। वहां महात्मा जी के संसर्ग से आप के स्वाभाविक गुणों का खुला विकास हुआ। उनके स्वभाव और जीवनचर्या के सम्बन्ध में 'आर्यसमाज के महाधन' के लेखक स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने लिखा है--आपका रसूख और मेल-जोल बहुत अच्छा था। आपने हसमुख और मजाकिया तबियत पाई थी। सदा प्रसन्न बदन और पुलकित-शरीर रहा करते थे.. । उन दिनों आप बहुत सादा रहते थे और समय मिलने पर थोड़ा बहुत किताबत का काम भी करते थे। अपनी इस छोटी सी आयु में वे कुछ गुजारे के लिये अपने पास रखकर शेष छोटे भाई और माता

के निर्वाह के लिये अमृतसर भेज देते थे। अपनी मासी जी की भी आप ही मदद करते थे।"

जब 'सद्धर्म प्रचारक' उर्दू से हिन्दी में परिवर्तित होकर हरिद्वार चला गया तब राजपाल जी लाहौर चले गये और महाशय कृष्ण जी के उर्दू साप्ताहिक 'प्रकाश' के मैनेजर हो गये। यद्यपि आपको महाशय जी ने शुरू मे केवल २०) मासिक पर पत्र का मैनेजर नियुक्त किया था परन्तु अपनी सचाई, मेहनत और सौम्यता के कारण थोड़े ही वर्षों में आप महाशय जी के छोटे भाई और 'प्रकाश' के सर्वेसर्वा हो गये। मैनेजर तो थे ही, मुख्य रिपोर्टर भी थे और समय पड़ने पर संपादन का काम भी कर लेते थे। कई वर्षों तक पंजाब की आर्य जनता में प्रकाश और राजपाल अभिन्न वस्तु समझे जाते थे।

प्रकाश के प्रबन्ध-कार्य के साथ-साथ राजपाल जी पुस्तक-प्रकाशन का काम भी करने लगे थे। धीरे-धीरे प्रकाशन ने एक पुस्तक भण्डार का रूप धारण कर लिया, जिसका नाम 'सरस्वती आश्रम' और 'आर्य पुस्तकालय' रखा गया। आप प्रायः धार्मिक पुस्तकें प्रकाशित करते थे। आप परिश्रमी और मिलनसार तो थे ही, कुछ ही दिनों में आपका पुस्तकालय पंजाब भर में मशहूर हो गया। आप आर्यसमाज के विद्वानों से लिखाकर मौलिक पुस्तकें प्रकाशित करते थे और व्याख्यानों के संग्रह आदि भी छापते थे। महाशय राजपाल जी द्वारा 'रंगीला रसूल' नाम की पुस्तक के प्रकाशन और उसके परिणाम का वृत्तान्त हम स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के 'आर्यसमाज के महाधन' से उद्धृत करते है। स्वामी जी इसमें वर्णित घटनाओं में से कई के प्रत्यक्षदर्शी थे।

"—'उन्नीसवीं सदी का महर्षि' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। उसमे ऋषि दयानन्द के जीवन पर अनुचित आक्षेप किये गये थे। इसके पश्चात् मई १९२४ में महाशय राजपाल जी के सरस्वती पुस्तकालय की ओर से उक्त पुस्तक के जवाब में—'रंगीला रसूल' नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई। पहले 'रंगीला रसूल' पर गवर्नमेंट ने कोई रिपोर्ट नहीं ली थी, न उसे बुरा समझा था। किसी मुसलमान ने वह पुस्तक महात्मा गान्धी के पास भेज दी। उन्होंने सर्वप्रथम उसके विरुद्ध लिखा। इसके बाद मुसलमानों ने भी उसका विरोध करना आरम्भ किया और सभायें करके 'रंगीला रसूल' के विरुद्ध प्रस्ताव पास किया। इस पर पंजाब सरकार ने आप (म० राजपाल) पर इस पुस्तक को छापने के अपराध में मुकदमा चलाया और पुस्तक जब्त कर दी। यह मुकदमा पंजाब के अदालती इतिहास में विशेष महत्व रखता है। मुकदमा लम्बा खिचता गया और इनके हजारों रुपये इसमें लग गये परन्तु इन्होंने किसी भी सभा या समाज से एक पाई भी लेना स्वीकार न किया। मुकदमें की यह विशेषता थी कि जहां मुसलमानों की ओर से सैकड़ों मुसलमान और मौलवी इकट्ठे हो जाते थे वहां आर्यसमाज की ओर से अकेले राजपाल जी अन्त तक निर्भयता से डटे रहे। इन्हे जहां एक ओर मुकदमे की तैयारी मे न दिन को चैन था न रात को आराम, वहां दूसरी ओर मुसलमान अखबारों और मौलवियों ने इनके विरुद्ध बड़े जोरों का प्रचार किया और कुफ्र का फतवा देकर कत्ल करने की धमकी दी महाशय जी अभियोग मे पहले तो कैद हुए परन्तु हाईकोर्ट से साफ बरी हो गये।

म० राजपाल जी
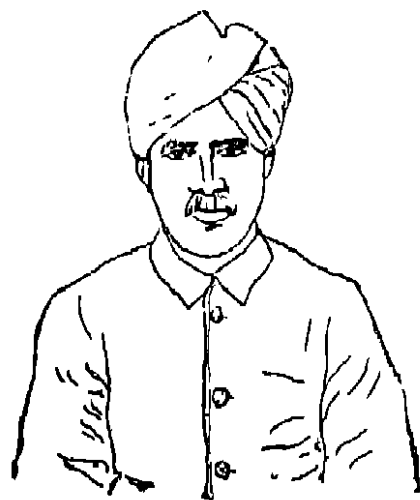
प्रिन्सिपल देवीचन्द जी
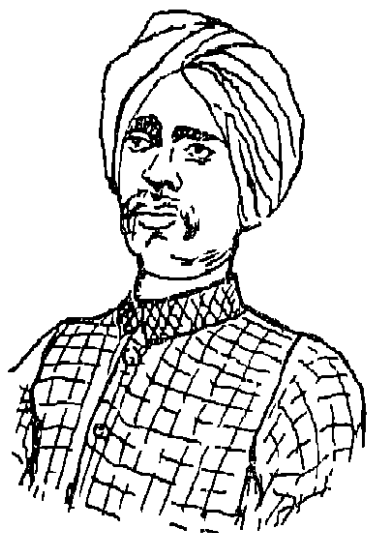
पं० तुलसीराम जी शहीद

पं० रामभजदत्त चौधरी

डा० सत्यपाल

ला० नारायणदत्त जी

कानून भी सत्य का गला नहीं दबा सका और मान लिया कि 'रंगीला रसूल' में दूध का दूध तथा पानी का पानी किया गया है।

"राजपाल जी एक शान्तिप्रिय पुरुष थे यदि वे चाहते तो उसके कई संस्करण निकाल लेते परन्तु ज्योंही उन्हें यह मालूम हुआ कि मुसलमान इस पुस्तक के प्रकाशन से रुष्ट है, उन्होंने दूसरा संस्करण निकालने का विचार छोड़ दिया और घोषणा कर दी कि वे मुसलमानों की भावनाओं का आदर करते हुए उक्त पुस्तक को दूसरी बार नहीं छपवायेंगे।

"मुसलमानों ने उनकी इस सहृदयता का क्या बदला चुकाया, यह भी देख लीजिये। २६ सितम्बर १९२७ के प्रातःकाल मैं (स्वतन्त्रानन्द) और श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ महाशय जी की दुकान पर खड़े बातचीत कर रहे थे। इतने में एक खुदाबख्श नाम का व्यक्ति आया और उसने झट महाशय जी पर प्रहार किया। उनके हाथ, बाहु तथा जंघा पर घाव लगे। उसको वहीं पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दिया गया। महाशय जी को महीना भर मेयो अस्पताल मे पड़ा रहना पड़ा।

"इसके पश्चात् फिर ९ अक्तूबर १९२७ को आक्रमण हुआ। महाशय जी की दूकान पर श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज किसी कार्यवश बैठे थे। अब्दुलअजीज ने उन्हीं को राजपाल समझकर पीछे से छुरी घोंप दी। वे अभी एक दो वर्ष के एकान्तवास से लौटे थे। स्वामी जी पर्याप्त समय हस्पताल में रहे। तब जाकर धीरे-धीरे स्वस्थ हुए। आक्रमणकारी को सजा मिली।

"इसी बीच महाशय जी को धमकियां मिलती रहीं कि मुसलमान हो जाओ अन्यथा कत्ल हो जाओगे। अन्त को ६ अप्रैल १९२९ को जब उसी दूकान पर बैठे महाशय जी हिसाब मिला रहे थे तब इल्मुद्दीन नामक एक युवक आया। वह झट महाशय जी पर झपटा और तुरन्त छुरी के घाट उतार गया।

"इल्मुद्दीन पर मुकदमा चला और इसे मियांवाली जेल में फांसी मिली। उसकी लाश खोद कर लाहौर लायी गयी और उसका शानदार जलूस निकाला गया। कोई बड़े से बड़ा मुसलमान न होगा जो इस अर्थी के साथ न गया हो। कादियानी पत्र 'लाइट' ने लिखा—"प्रत्येक हिन्दू राजपाल है, इसलिए प्रत्येक मुसलमान को इल्मुद्दीन बन जाना चाहिए।"

इस प्रसंग मे यह लिखना उचित प्रतीत होता है कि 'रंगीला रसूल' के लेखक पं० चमूपति एम० ए० थे। उनका नाम पुस्तक पर प्रकाशित नहीं हुआ था। अभियोग चलने पर भी राजपाल जी ने लेखक का नाम प्रकाशित नहीं किया।

इस प्रसंग मे दूसरी उल्लेख योग्य बात यह है कि महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' में रंगीला रसूल के सम्बन्ध में एक कठोर टिप्पणी लिखी थी। आर्य लोगों को प्रस्तुत टिप्पणी के सम्बन्ध मे यह शिकायत थी कि उसमें 'उन्नीसवीं सदी का महर्षि' को लगभग बेलाग छोड़कर सारा रोष रंगीला रसूल पर ही प्रकट किया गया था। राजपाल जी के विरुद्ध मजहबी जोश उत्पन्न होने में 'यंग इण्डिया के' नोट से पर्याप्त सहायता मिली, इसमें सन्देह नहीं।

चौथा अध्याय

बरेली में दूसरा आर्य महासम्मेलन

१९२७ में दिल्ली मे पहला आर्य महासम्मेलन हुआ था। उसके पश्चात् आवश्यकता होने पर बीच-बीच मे आर्य महासम्मेलन के अधिवेशन भिन्न-भिन्न स्थानों पर होते रहे हैं। उन महासम्मेलनों को हम आर्यसमाज के जीवन मे आने वाली महत्वपूर्ण घटनाओ के प्रतीक अथवा पर्व कह सकते हैं। उनके प्रस्ताव उस समय की देश की परिस्थिति और आर्यसमाज की मनोवृत्ति की सूचना देते हैं। दूसरा आर्य महासम्मेलन १९३१ के फरवरी मास मे बरेली में हुआ। इससे पूर्व कि हम बरेली के आर्य सम्मेलन का वृत्तान्त लिखें, यह आवश्यक है कि १९२८–१९३१ के मध्य की विशेष घटनाओं का दिग्दर्शन करा दिया जाय ताकि बरेली सम्मेलन की पृष्ठ-भूमि स्पष्ट हो जाय।

इन वर्षों में आर्यसमाज के नगर-कीर्तन अथवा प्रचार पर सरकार की ओर से प्रतिबन्ध लगाने की कई घटनाये हुई। पहली घटना मुरादाबाद में हुई। मुरादाबाद में पहले आर्यसमाज की स्थापना १८९२ में हुई थी। तब से वार्षिकोत्सव के अवसर पर सदा नगर-कीर्तन का जलूस निकाला जाता था। कभी कोई दंगा या फिसाद नहीं हुआ। सन् १९२६ में जिले के अधिकारियो ने बिना कोई कारण दिये नगर-कीर्तन पर लाइसेंस की पाबन्दी लगा दी। जब लाइसेंस के लिये अर्जी दी गयी तो पुलिस ने यह नई शर्त जोड़ दी कि जलूस में दो सौ से अधिक आदमी और ५ से अधिक भजन-मंडलियां न हों। अगले साल एक और शर्त बढ़ा दी गई कि जलूस में बाजा न बजाया जायगा। इस पर प्रतिवाद के रूप में मुरादाबाद के आर्यसमाज ने नगर-कीर्तन बन्द कर दिया।

संयुक्त प्रान्त की प्रतिनिधि सभा की अंतरंग सभा की १९ मई १९२९ की बैठक में नगर-कीर्तन की समस्या पर विचार हुआ। प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सरकार के अन्यायपूर्ण आदेश के विरुद्ध सत्याग्रह किया जाय। परन्तु सभा ने एकदम सत्याग्रह आरम्भ करने से पहले प्रान्त की सरकार से बातचीत करना आवश्यक समझा। सरकार से बातचीत हुई। उसका परिणाम यह निकला कि सभी सम्प्रदायो के धार्मिक जलूसों के लिये कुछ नियम बना दिये गये। उनमें से आर्यसमाज के नगर-कीर्तन से सम्बन्ध रखने वाले नियम निम्नलिखित थे :—

१. ईद और मुहर्रम के जमाने में यह जलूस न निकाला जायगा।

२ यह जलूस मसजिदों के सामने बिना ठहरे गुजर जायगा।

३. कम से कम एक मास पहले इस जलूस की सूचना पुलिस सुपरिन्टेंडेंट को दी जायगी और जलूस की तिथि से कम से कम एक सप्ताह पहले उसका प्रोग्राम जिलाधीश की सेवा में भेज दिया जायगा।

आर्यसमाज मुरादाबाद का उत्सव दीवाली पर और आर्यसमाज गंज का उत्सव रामनवमी के आसपास हुआ करता है। इस कारण जलूस सम्बन्धी नये नियमों से आर्यसमाज के नगर-कीर्तनों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था।

सरकार से आर्यसमाज के संघर्ष की दूसरी घटना १९३० ईस्वी के नवम्बर मास में हुई। आर्यसमाज बहादुराबाद सहारनपुर के जिले में है। २२ नवम्बर १९३० को कप्तान गफ नाम के एक अंग्रेज अफसर की कमान में कुछ सिपाहियों ने आर्यसमाज मन्दिर में घुसकर ओ३म् की ध्वजा को फाड़कर फेंक दिया। समाज के सहायक मंत्री पं० रामलाल जी को मारा-पीटा और समाज के बहुत से आवश्यक कागज जला दिये। इस आततायीपन के समाचार ने आर्यजगत् में बड़ा विक्षोभ उत्पन्न कर दिया। सार्वदेशिक सभा में इस दुर्घटना के विरुद्ध असन्तोष प्रकट करने वाले प्रस्तावों में यह माग की गई थी कि फौज की इस अनधिकार चेष्टा के विरुद्ध सत्याग्रह का मोर्चा लगा दिया जाय। सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री नारायण स्वामी जी महाराज ने जहां एक ओर आर्य जनों को शान्त रहने का परामर्श देते हुए यह आश्वासन दिया कि अन्याय का पूरा प्रतिकार किया जायगा वहां साथ ही सरकार को कड़ी चेतावनी दी कि यदि उसने अन्याय का उचित प्रतिकार न किया तो विरोधी आन्दोलन को काबू रखना कठिन हो जायगा।

समाचार-पत्रों में इस विषय की काफी चर्चा हुई। असेम्बली में श्रीयुत हरिराज स्वरूप एम० एल० ए० तथा ठा० मशालसिंह एम० एल० ए० ने सरकार से प्रश्न किये तो पहले तो सेना-सचिव ने एकदम जवाब दे दिया कि इस घटना के सम्बन्ध मे आर्यसमाज ने जो आरोप लगाये हैं, वे सच्चे नहीं हैं। न आर्यसमाज-मन्दिर भ्रष्ट किया गया, न रिकार्ड जलाया गया और न उनका झण्डा ही फाड़ा गया। परन्तु जब सभा-प्रधान श्री नारायण स्वामी जी महाराज ने एक वक्तव्य द्वारा उत्तर दिया तो सरकार की आंखे खुली। सयुक्त प्रान्त की सरकार के निमन्त्रण पर श्री महात्मा नारायण स्वामी जी, पं० रास बिहारी तिवारी, रायसाहब मंगाराम तथा पं० रामलाल बातचीत के लिये नैनीताल गये। बातचीत के समय पर कैप्टिन गफ भी उपस्थित था। बातचीत के पश्चात् कैप्टेन गफ ने निम्नलिखित शब्दों में क्षमा मागी :

"२२ नवम्बर १९३० को मैंने जो कुछ बहादुराबाद में किया था, उसके लिये मुझे खेद है और मै हृदय से क्षमा चाहता हूं।"

पानीपत में भी एक इसी प्रकार का मामला चला। वहां ऋषि-बोधोत्सव के अवसर पर प्रति वर्ष नगर-कीर्तन निकला करता था। सन् १९२६ में पुलिस ने यह मांग पेश की कि संकीर्तन के लिये लाइसेंस लिया जाय। बहुत सी बातचीत के बाद निश्चय हुआ कि लाइसेंस तो लिया जाय परन्तु उसमें कोई शर्त न हो। तीन साल तक तो यह व्यवस्था ठीक प्रकार से चलती रही परन्तु १९३० में मुसलमानों ने एक अड़चन लगा दी। उन्होंने कहा कि यह महीना रमजान का है। इसमें कीर्तन निकालने से हमारी सुबह की कुरान-शरीफ की तलावत में विघ्न पड़ता है। करनाल के डिप्टी कमिश्नर ने मुसलमानों के

एतराज को स्वीकार करते हुए आज्ञा दे दी कि जलूस उसी हालत में निकाला जा सकता है यदि उसमे बाजा न बजाया जाय, उसका समय जुम्मे की नमाज से पहले ही समाप्त हो जाना चाहिए और जलूस किसी मसजिद के पास से न गुजरने पायेगा। आर्यसमाज ने इन शर्तों को अन्याययुक्त समझा और संकीर्तन बन्द कर दिया। इस पर डिप्टी कमिश्नर ने फिर सार्वदेशिक सभा के कार्यकर्ताओं से बातचीत की परन्तु उससे भी कोई सन्तोषजनक परिणाम न निकला क्योंकि जो शर्तें लगाई गयी थी वे पंजाब की प्रान्तीय सरकार की ओर से थीं, पानीपत के अधिकारियों की ओर से नहीं। इस पर आर्य रक्षा समिति की एक विशेष बैठक की गई, जिसमे पानीपत में सरकार की आज्ञा के विरुद्ध सत्याग्रह करने का निश्चय किया गया। उस निश्चय की सूचना देश भर के आर्यसमाजों को और आर्य वीरों, आर्य वीर दलों को देकर, 'सत्याग्रह युद्ध के लिये तैयार रहो' की सार्वजनिक घोषणा कर दी गई।

जब बात यहां तक पहुंच गई तब पंजाब की सरकार ने अपनी आज्ञायें वापिस ले लीं। परिणाम यह हुआ कि संकीर्तन बिना किसी रोकटोक के बड़ी धूमधाम से निकला। परन्तु अगले वर्ष फिर किसी अज्ञात कारण से जिले के अधिकारियों ने इस संकीर्तन में कुछ प्रतिबन्ध लगाये जिनके कारण यह संकीर्तन प्रतिवाद के तौर पर बन्द कर दिये गये।

नगर-कीर्तनों पर प्रतिबन्ध के अतिरिक्त जेल में हवन पर प्रतिबन्ध लगाने के भी कई मामले हुए। देहली षड्यन्त्र केस के विचाराधीन कैदी मास्टर हरकेश जी दिल्ली जेल में बन्द थे। जेल के अधिकारियो ने उनके हवन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस पर मास्टर जी ने भूख हड़ताल कर दी। सार्वदेशिक सभा का पत्र-व्यवहार और आर्यसमाजों के पत्र-व्यवहार व्यर्थ गये। सरकार अपनी जिद पर अड़ी रही। यह घटना सन् १९३२ की है। अन्त में आर्य रक्षा समिति ने इस मामले को अपने हाथ में ले लिया और मास्टर जी से भूख हड़ताल तोड़ने का अनुरोध किया, जिसे मास्टर जी ने स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकार फर्रुखाबाद जेल मे श्रीमती सावित्री देवी को भी हवन पर प्रतिबन्ध लगने के कारण भूख हड़ताल करनी पड़ी। वह ६ दिन की भूख हड़ताल से बहुत निर्बल हो गयीं तब सरकार ने अपना हठ छोड़ा और हवन करने की इजाजत दे दी।

सहारनपुर जेल मे श्रीमती चमेली देवी जी को भी हवन करने से रोक दिया गया। इस पर उन्होंने भी भूख हड़ताल कर दी। आर्यसमाज मे इस समाचार से बहुत विक्षोभ पैदा हो गया और प्रतिवाद के प्रस्ताव सरकार के पास भेजे जाने लगे। पहले तो सरकार अपनी पुरानी प्रथा के अनुसार जिद्द पर अड़ी रही, परन्तु जब श्रीमती जी की सेहत बहुत बिगड़ने लगी तब सरकार ने अपनी मूँछ ऊंची रखने का यह तरीका निकाला कि समय से पहले चमेली देवी जी को रिहा कर दिया। जेल से छूटकर उन्होंने पहले हवन किया तब भोजन ग्रहण किया।

१९३४ मे मद्रास में आर्यसमाज की एक सार्वजनिक सभा हो रही थी। मुसलमानों की एक बड़ी भीड़ ने सभा में घुसकर मारपीट शुरू कर दी। मारपीट में पन्द्रह-

बीस आदमी घायल हुए और एक व्यक्ति मर गया। इस पर आठ-दस आर्य सभासद् गिरफ्तार कर लिये गये, जिनमें से एक को छोड़कर शेष सब पर्याप्त प्रमाण न मिलने पर छोड़ दिये गये। एक सदस्य पर मुसलमान की हत्या का अभियोग चलाया गया परन्तु अन्त में वह भी बेलाग छूट गया।

इन्हीं वर्षों में आर्यसमाज के दो कार्यकर्ताओं की हत्याएं ऐसे ढंग से हुईं कि जिससे यह सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि आर्यसमाजियों को मारने के लिये कोई विस्तृत षड्यन्त्र तैयार किया गया है। श्री बद्रीशाह जी बहराइच के प्रसिद्ध आर्यसमाज के कार्यकर्ता थे। आप शुद्धि आदि के कामों में आगे रहते थे। १९३४ के सितम्बर मास में उन्हें जंगल के रास्ते आते हुए कुछ लोगों ने मार डाला। इसके बाद दूसरी घटना कराची में हुई। कराची के कार्यकर्ता प० नाथूराम जी को एक धर्मान्ध मुसलमान ने मार डाला। इस घटना से आर्यसमाज में बेचैनी बहुत बढ गई। घातक कोर्ट में ही पकड़ लिया गया और अभियोग सिद्ध हो जाने पर उसे मृत्यु-दण्ड मिला।

इस प्रकार की सनसनीपूर्ण घटनाये प्रति वर्ष हो रही थीं, जिनके कारण सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने यह आवश्यक समझा कि बरेली मे आर्य महासम्मेलन का दूसरा अधिवेशन करने की अनुमति दे दी जाय। बरेली के आर्य महासम्मेलन का प्रबन्ध वहां के आर्यसमाज ने ही किया था। स्वागतकारिणी सभा के अध्यक्ष रायसाहब डा० श्यामस्वरूप सत्यव्रत थे। डा० श्यामस्वरूप जी आर्यसमाज के उन पुराने स्वयंसेवकों में से थे, जिन्हें महर्षि दयानन्द के मस्ताने भक्त कहा जा सकता है। वह गुरु के एक-एक वाक्य पर अटूट श्रद्धा रखते थे। नित्य कर्मो के ऐसे पक्के थे कि उनका घर लगभग ५० साल तक आर्य गृह का आदर्श नमूना समझा जाता था। बडे यशस्वी और पीयूष-पाणि चिकित्सक थे। किसी को राख की चुटकी उठाकर दे देते थे तो वह भी रामबाण का काम देती थी। जितना कमाया उतना ही समाज के काम में खर्च कर दिया। बरेली में आर्य महासम्मेलन का अधिवेशन करना उन्हीं के बल-बूते का काम था।

सम्मेलन का सभापतित्व श्री नारायण स्वामी जी महाराज ने किया। सम्मेलन के साथ एक प्रदर्शिनी भी की गई। प्रामाणिक विवरण से मालूम होता है कि सम्मेलन में प्रतिनिधियो की संख्या तीन सौ और दर्शकों की संख्या २ हजार थी।

सम्मेलन मे आर्य नेताओं के अनेक भाषण हुए। स्वीकृत प्रस्तावो की संख्या बीस थी। समय की विशेष परिस्थिति से सम्बन्ध रखने वाले निम्नलिखित तीन प्रस्ताव थे :—

जेल के नियमों में परिवर्तन

यह सम्मेलन सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित करता है कि जेल के नियमों मे इस प्रकार के आवश्यक परिवर्तन कर दिये जायें जिससे आर्य कैदियो के अपने धार्मिक कार्यो के अनुष्ठान अर्थात् सन्ध्या, हवन, यज्ञोपवीत, साधुओं के गेरुवे भेष धारण करने आदि में कोई कठिनाई न हो।

मुसलमानी रियासतों के सम्बन्ध में

इस सम्मेलन को यह जानकर दुःख है कि हैदराबाद, भूपाल, बहावलपुर और रामपुर आदि मुसलमानी रियासतों में रहने वाले आर्यसमाजी आर्य-साहित्य की जब्ती, जलूसों की बन्दिश तथा धर्म-परिवर्तन सम्बन्धी अनेक धार्मिक बाधाओं से पीड़ित हो रहे हैं और उन्हें राज्य-कर्मचारियों द्वारा अपमानित होना पड़ता है। यह सम्मेलन सार्वदेशिक सभा से प्रार्थना करता है कि इन शिकायतों को दूर करने के लिये उचित कार्यवाही करे।

आर्य वीर दलों को प्रोत्साहन

यह सम्मेलन समस्त आर्यसमाजों को प्रेरणा करता है कि वे अपने यहाँ आर्य वीर दलों की स्थापना करने की ओर विशेष ध्यान दें और आर्य वीरों के कार्यों में हर प्रकार से उचित सहयोग, सहायता और प्रोत्साहन प्रदान करने का यत्न करें। इन आर्य-वीर दलों का मुख्य काम आर्य संस्कृति की रक्षा, पीड़ितों की सहायता तथा सेवा होगा।

इस सम्मेलन में समाज से सम्बन्ध रखने वाले अन्य विषयों पर भी प्रस्ताव स्वीकार किये गये थे। सबसे पहले प्रस्ताव में आर्यसमाज के शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शों के प्रचार के लिए एक उप-समिति बनाने का सुझाव दिया गया था। चौथा प्रस्ताव भी शिक्षा सम्बन्धी था। उसमें विश्वविद्यालयों में धर्म-प्रचार के लिये दयानन्द लेक्चरशिप स्थापित कराने का अनुरोध सार्वदेशिक सभा से किया गया। समाज-सुधार सम्बन्धी प्रस्तावों में अस्पृश्यता-निवारण को पहला स्थान दिया गया था। उसमें दलितों को पृथक् प्रतिनिधित्व देकर हिन्दुओं से पृथक् करने का विरोध किया गया था। कुछ प्रस्ताव आर्यसमाज के आन्तरिक सुधार के सम्बन्ध में थे। उनमें आर्य लोगों का ध्यान सदाचार, नियन्त्रण और शारीरिक व्यायाम आदि की ओर खींचा गया था। बीसवें प्रस्ताव में आर्यसमाज की प्रचार-प्रणाली में परिवर्तन करने की आवश्यकता बतलाकर प्रान्तीय सभाओं को प्रेरणा की गयी थी कि वे प्रचार और उत्सवों की प्रणाली में सुधार करने के सम्बन्ध में उपसमितियों द्वारा विचार करें और तदनुसार कार्य-प्रणाली को सुधारें। कुछ प्रस्ताव राजनीतिक विषयों पर भी थे। छठे प्रस्ताव में मुसलमानों के उस आन्दोलन का विरोध किया गया था जो उस समय जम्मू-कश्मीर की हिन्दू जनता के विरुद्ध किया जा रहा था। एक प्रस्ताव में आर्य जनों से स्वदेशी वस्त्रों के धारण और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का प्रण लेने का अनुरोध किया गया था। राजार्य-सभा की स्थापना के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—

राजार्य-सभा

आर्य संस्कृति की रक्षा और स्थिरता, आर्यसमाजियों की आये दिन बढ़ती हुई राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा अन्य सम्प्रदायों की राजनीतिक प्रगतियों पर दृष्टि रखने तथा आवश्यकता और औचित्य के अनुसार उन्हें सहयोग देने के अभिप्राय से यह सम्मेलन निश्चय करता है कि एक राजार्य-सभा की स्थापना की जावे तथा सार्व-

देशिक सभा से प्रार्थना की जावे कि वह इस सभा को संगठित कर दे।

विचार के बाद निश्चय हुआ कि निम्न सज्जनों की उपसमिति बनायी जावे जो कि वे अपनी स्कीम बनाकर पेश करें :—

१. श्री महात्मा नारायण स्वामी जी।
२. श्री बा० पूर्णचन्द जी।
३. श्री बा० श्यामसुन्दर लाल जी।
४. श्री म० कृष्ण जी।
५. श्री देवशर्मा जी (संयोजक)
६. श्री प्रो० ताराचन्द जी गाजरा।

पांचवा अध्याय

अजमेर में दयानन्द निर्वाण अर्ध-शताब्दी

बरेली के आर्य महासम्मेलन के पश्चात् जिस आयोजन को हम आर्यसमाज के जीवन में प्रगति का एक पर्व कह सकते है, वह अजमेर में १९३३ में मनाया गया दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दी का महोत्सव था । इस उत्सव का विचार कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे विकास हुआ, इसके सम्बन्ध मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के २७ वर्षीय कार्य-विवरण में इस प्रकार उल्लेख है---

"जैसा कि आप पूर्व पढ़ चुके है कि सन् १९२५ में ऋषि दयानन्द जन्म-शताब्दी मथुरा में बड़े आनन्द और उत्साह के साथ मनायी गयी थी । वहां पहुंची हुई जनता ने उस उत्सव के वायु-मंडल को देख कर सतयुग और त्रेता काल का अनुभव किया था । कितने ही भद्र पुरुष उस उत्सव की कृतकार्यता से इतने प्रभावित हुए थे कि उनकी प्रबल इच्छा थी कि इस प्रकार के आर्यसमाज के उत्सव समय-समय पर हुआ करें । आर्य राजा श्रीमान् सर नाहरसिंह जी शाहपुराधीश भी इसी प्रकार के इच्छुक सत्पुरुषों में से थे । आपने ऋषि दयानन्द जी महाराज से गुरु-दीक्षा ली थी । उनके सत्संग से बहुत लाभ उठाया था, इसलिए आपकी गुरुभक्ति प्रेरणा कर रही थी कि ऐसा उत्सव एक बार राजपूताना की वीर भूमि मुख्यतः अजमेर में जहा पर ऋषि ने निर्वाण प्राप्त किया था, मनाया जावे । आपने अपना यह सुन्दर विचार परोपकारिणी सभा के अन्य अधिकारी श्री राव साहब बाबू रामविलास जी शारदा तथा श्री दीवान बहादुर बा० हरविलास जी शारदा इत्यादि के सम्मुख रखा । सबने ही श्री राजाधिराज के प्रस्ताव को अत्यन्त प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया । परोपकारिणी सभा ने भी इस उत्सव का मनाया जाना स्वीकार किया । कुछ वर्षो के पश्चात् सर नाहरसिंह जी महाराज का स्वर्गवास हो गया और उनकी अभिलाषा की पूर्ति उनके सुपुत्र श्री राजाधिराज उम्मेदसिंह जी शाहपुराधीश को करनी पड़ी ।

इस महोत्सव को सार्वदेशिक आर्य महोत्सव के रूप में मनाने के लिये इस सभा ने अपनी तारीख २८ जनवरी १९३३ की अन्तरंग सभा में अर्ध शताब्दी मनाने का प्रस्ताव स्वीकार किया तथा अपना पूरा सहयोग देना भी स्वीकार किया ।

अर्द्ध-शताब्दी प्रबन्धक कमेटी

सार्वदेशिक सभा के तमाम सदस्य, परोपकारिणी सभा के तमाम सदस्य, तथा प्रादेशिक सभा के सात सदस्यों को मिलाकर अर्द्ध शताब्दी की प्रबन्धक समिति बनायी

गयी। इस समिति के सभापति श्री राजाधिराज उम्मेदसिंह जी शाहपुराधीश, कार्यकर्ता प्रधान श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज और मन्त्री, दीवान बहादुर हरविलास शारदा थे।

स्वागतकारिणी सभा के प्रयत्न से अर्द्ध शताब्दी में सम्मिलित होने वाले सरकारी नौकरों को यह सुविधा दे दी गयी थी कि जो आर्यसमाजी सरकारी नौकर उत्सव में सम्मिलित होने के लिये छुट्टी का प्रार्थना पत्र दें उन्हें छुट्टी दे दी जाय। उत्सव १४ अक्तूबर से आरम्भ होने वाला था। देश और विदेश से आने वाले आर्यजनों की भीड़ १ अक्तूबर से ही जमा होनी आरम्भ हो गई थी। सात अक्तूबर को तो आर्य नगर में पूरी चहल-पहल दिखाई देने लगी थी। आर्य नगर अजमेर शहर से १ मील के फासले पर १०० एकड़ जमीन में बसाया गया था। स्विस कोटेज, बड़ी और छोटी छोलदारियां और छोटे इकपरते डेरों की बहुत बड़े पैमाने पर व्यवस्था की गई थी। एक ऊंचे स्थान पर २५ हजार श्रोताओं के बैठने योग्य मुख्य पंडाल नगर की शोभा को बढ़ा रहा था। प्रारम्भ में ब्रह्म-पारायण यज्ञ हुआ। यज्ञ के संयोजक श्री कन्हैयालाल जी बी० ए०, एल० टी० थे। आप आर्यसमाज के बहुत पुराने और श्रद्धालु कार्यकर्त्ता थे। इस यज्ञ में चारों वेदों के मन्त्रों के साथ आहुति दी जाने पर २० अक्तूबर को पूर्णाहुति दी गयी। ब्रह्मा के स्थान पर महामहोपाध्याय पण्डित आर्यमुनि जी आदि ५ विद्वान् क्रमशः विद्यमान हुए।

१६ अक्तूबर को नगर-कीर्तन का विशाल जलूस निकाला गया, जो अजमेर के इतिहास में अपूर्व था। इसमें उत्तर भारत के प्रान्तों के अतिरिक्त अफ्रीका, बर्मा, नैरोबी, फिजी, हैदराबाद दक्षिण, मद्रास, आसाम आदि प्रान्तों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। आगे व बीच में सब मिलाकर १ दर्जन बैण्ड थे और सौ कीर्तन-मण्डलियां थीं। जलूस के आगे-आगे एक हाथी जा रहा था, जिस पर स्वामी मुनीश्वरानन्द जी विराजमान थे। जलूस का नेतृत्व शाहपुराधीश श्री उम्मेदसिंह जी स्वयं पैदल कर रहे थे। संन्यासी, गुरुकुलों के स्नातक, गुरुकुलों के छात्र और छात्राएं, आर्यसमाज के कालिजों और स्कूलों के विद्यार्थीगण पृथक्-पृथक् मण्डलियां बनाकर नगर-कीर्तन की शोभा को बढ़ा रहे थे। महिलाओं की एक अलग मंडली थी, जिसमें सहस्रों महिलाएं सम्मिलित थीं। सब मिलाकर जलूस में ६०-७० हजार से अधिक व्यक्ति ही होंगे। नगरवासियों की ओर से स्थान-स्थान पर जलूस का हार्दिक स्वागत-सत्कार किया गया।

महोत्सव में कई सम्मेलन हुए, जिनमें से मुख्य था आर्य-सम्मेलन।

आर्य-सम्मेलन

सम्मेलन के प्रधान श्री आचार्य रामदेव जी थे। आर्य-सम्मेलन में सब मिलाकर ९ प्रस्ताव स्वीकार किये गये। पहले प्रस्ताव में आर्य नर-नारियों को अपने जीवनों के सुधार और संगठन को दृढ़ बनाने की प्रेरणा की गई थी। दूसरे प्रस्ताव में आर्यसमाजों का निम्नलिखित कार्यों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया गया था।

१. ग्रामों में वेद के स्वाध्याय और वेद के मंत्रों के व्याख्यान।

२. दलितो में वैदिक धर्म-प्रचार और उनकी आर्थिक व सामाजिक अवस्था की उन्नति ।
३. शुद्धि ।
४ प्रचलित जातपात पर ध्यान न देकर गुण-कर्मानुसार विवाह ।
५. दलितोद्धार ।
६. मादक द्रव्य-निवारण ।

तीसरे प्रस्ताव में आर्यसमाजों को यह निर्देश दिया गया कि कोई नवीन संस्था बिना प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा की स्वीकृति के न खोली जाय और जो संस्थाएं चल रही है, उनके संचालन के लिए रजिस्टर्ड ट्रस्ट बनाये जाएं। चौथे प्रस्ताव में सार्वदेशिक सभा को प्रेरणा की गयी कि वह न्यायार्य सभा का संगठन करे। पांचवे प्रस्ताव में सार्वदेशिक सभा से यह अनुरोध किया गया था कि वह भारतवर्षीय आर्य कुमार-परिषद् को अपने में प्रविष्ट कर ले और उस पर अपने एक विभाग की भांति दृष्टि रखें। छठे प्रस्ताव में सार्वदेशिक सभा का ध्यान वैदिक अन्वेषण के कार्य को आरम्भ करने की ओर खींचा गया था। इसी प्रकार अन्य प्रस्तावो मे शिक्षासम्बन्धी तथा समाज-सुधार से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर आर्यसमाज का मार्ग-प्रदर्शन किया गया था।

महर्षि-परिचय-सम्मेलन

१९ अक्तूबर को एक विशेष महत्वपूर्ण सम्मेलन किया गया, जिसमें उन महानुभावो ने अपने अनुभव बतलाये जिन्होंने महर्षि के दर्शन किये थे। सबसे पहले श्री हरविलास जी शारदा ने महर्षि के अन्तिम समय के दृश्य का आंखो देखा वर्णन सुनाया। उनके पश्चात् शाहपुराधीश श्री उम्मेदसिंह जी ने अपने बाल्यावस्था की स्मृति को ताजा करके बतलाया कि जब स्वामी जी मेरे पिता जी के साथ शाहपुरा आये तो मैं [illegible] दर्शन किया करता था। पं० आर्यमुनि जी, श्री नारायण स्वामी जी और श्री नाथमल [illegible] ने भी महर्षि के दर्शनों का संक्षिप्त विवरण सुनाया। महात्मा हंसराज जी ने बतलाया कि जब स्वामी जी महाराज लाहौर आये थे तो मैंने अपने पिता जी से सुना था कि यहा एक साधु महात्मा आये थे, जो सबका खंडन किया करते थे और जब देवियां उनसे उपदेश सुनने जाती थीं, तो वे उन से कहते थे कि तुम मेरे पास न आया करो, प्रत्युत अपने पतियों को भेजा करो। श्री विनायकराव जी नागपुर, श्री सुजानसिंह जी कोठारी, श्री ज्वालाप्रसाद जी बरेली आदि आर्यजनों ने भी अपने-अपने अनुभव सुनाये।

आर्य महिला-सम्मेलन

निर्वाण अर्द्ध शताब्दी के महोत्सव में जो महत्वपूर्ण सम्मेलन हुए, उनमें एक आर्य महिला सम्मेलन भी था। स्वागत समिति की प्रधाना राजस्थान की प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्त्री श्रीमती गुलाब देवी जी थी। स्वागत का सब प्रबन्ध आर्य महिलाओं ने ही किया था। सभानेत्री कन्या महाविद्यालय की आचार्या श्रीमती शन्नो देवी जी निर्वाचित की गई। स्वागताध्यक्षा और सभानेत्री दोनों के ही भाषण स्त्री जाति को जागृत करने वाले थे।

जलूस और उत्सव की सफलता मे कन्या गुरुकुल देहरादून, कन्या महाविद्यालय जालन्धर, कन्या गुरुकुल अलीगढ़, और कन्या महाविद्यालय बड़ोदा की कन्याओं ने विशेष भाग लिया।

सम्मेलन में १३ प्रस्ताव स्वीकार किये गये। प्रस्तावों में कुछ अत्यन्त महत्व-पूर्ण विषयों पर सुझाव दिये गये थे। एक प्रस्ताव नायक जाति के सम्बन्ध में था। उस प्रस्ताव में कहा गया था कि समस्त भारतवर्ष को कलंकित करने वाली नायक जाति के, जो अपने आपको क्षत्रिय कहते हुए वेश्यावृत्ति करके अपना उदरपोषण करती है, सुधार के वास्ते आर्य बहनों तथा बंधुओं को तन, मन, धन से सहायता करनी चाहिए। एक अन्य प्रस्ताव में सम्मति दी गई थी कि स्त्रियों की समस्त संस्थाओं का प्रबन्ध ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तानुसार स्त्रियो द्वारा ही होना चाहिये। एक अन्य प्रस्ताव में तलाक प्रथा का विरोध करते हुए पश्चिम की बहनों से प्रार्थना की गयी थी कि वे भी इस प्रथा का परित्याग कर दें। पत्नी का परित्याग करने वाले पतियों के बारे में यह सम्मति दी गई थी कि पहले तो अन्यायी पति को समझाने का यत्न किया जाय परन्तु यदि वह न माने तो उसका सामाजिक बहिष्कार किया जाय तथा उस स्त्री के लिए उसकी संपत्ति में आधा भाग दिलाया जाय। एक अन्य प्रस्ताव में सब आर्य बहनों के लिए स्वदेशी और विशेषतया शुद्ध खद्दर का पहनना आवश्यक बतलाया गया था। अन्तिम प्रस्ताव में परोपकारिणी सभा तथा अजमेर की प्रतिनिधि सभा से निवेदन किया गया था कि वह आनासागर के किनारे वाले ऋषि दयानन्द के बाग में नारी-सदन बनाने के लिए स्थान प्रदान करे।

सम्मेलन में जिन देवियों ने भाग लिया, उनके नाम निम्नलिखित है :—

१ श्री शारदा देवी जी, २ श्री अम्बाबाई जी, ३ श्री सुभद्राकुमारी जी, ४. श्री सरस्वती देवी जी, ५ श्री प्रेमकली देवी जी, ६ श्री लक्ष्मी देवी जी, ७ श्री चन्दन देवी जी, ८ श्री विद्यावती देवी जी, ९ श्री सुशीला देवी जी, १०. श्री अक्षय-कुमारी जी, ११ श्री विष्णुदेवी जी, १२ श्री डा० शकुन्तला देवी जी, १३. श्री देवकी देवी जी, १४. श्री सत्यवती देवी जी।

शारीरिक व्यायाम तथा बलप्रदर्शन

शारीरिक व्यायाम प्रदर्शनों के प्रबन्ध के लिए जो बड़ी समिति बनायी गयी थी, उसके प्रधान श्री कुंवर रणंजय सिंह जी, उपप्रधान बड़ोदा के प्रसिद्ध व्यायाम शिक्षक प्रो० माणिकराव, और मन्त्री तथा संयोजक प्रो० रमेशचन्द्र जी शास्त्री थे। हाकी, फुटबाल, वोलीबाल, कबड्डी, खो खो, और रस्साकशी में आर्य सस्थाओं के दलों में साम्मुख्य हुए। शारीरिक बल-प्रदर्शनो में गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल सूपा, गुरुकुल सिकन्दराबाद के छात्रों तथा कन्या महाविद्यालय बड़ोदा की छात्राओं ने भाग लिया। सफल दलों तथा छात्रों को पारितोषिक वितीर्ण किये गये। पारितोषिक प्रो० माणिक-राव जी के कर-कमलों से वितीर्ण कराये गये। सब पारितोषिक संख्या में ३१ थे। इनमें शील्ड, कप और मैडल तीनों प्रकार के पारितोषिक थे।

मुख्य पण्डाल की कार्यवाही

मुख्य पंडाल मे श्रीमद्दयानन्द निर्वाण अर्द्ध-शताब्दी का महोत्सव १४ से २० अक्तूबर तक बहुत उत्साहपूर्वक मनाया गया। विशेष व्याख्यानों के अवसरो पर मुख्य पण्डालों में १९-२० हजार तक की हाजरी हो जाती थी। १३ अक्तूबर के सायं-काल अजमेर के चीफ कमिश्नर कर्नल ओग्लिव ने अखिल भारतवर्षीय स्वदेशी औद्योगिक प्रदर्शनी का उद्‌घाटन करके एक प्रकार से महोत्सव के प्रारम्भ की घोषणा कर दी थी। प्रतिदिन कार्यवाही प्रातःकाल ८ बजे आरम्भ होती थी। दूसरी बैठक मध्याह्नोत्तर २-३ बजे और फिर रात्रि के समय भजन, व्याख्यान आदि होते थे। पहले दिन प्रारम्भ में देश के कुछ नेताओं के संदेश सुनाये गये।

महात्मा गांधी जी ने वर्धा से लिखा था— "ऋषि दयानन्द हिन्दू सभ्यता के बड़े सुधारकों में से एक थे। उन्होंने वैदिक सुधार के लिये अन्यान्य कुरीतियों के साथ अछूतपन का भाव भी दूर किया।"

कवि-सम्राट् डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सन्देश भेजा था कि "मैं इस महान् व्यक्ति के स्मरण में अपनी श्रद्धांजलि उपस्थित करता हूं, जिसने अपने देश के लिए एक ऐसे उच्च जीवन का आदर्श देशवासियों के सामने रखा है, जो मृत्यु की सीमा से बाहर है।"

माननीय प० मदनमोहन मालवीय जी का निम्नलिखित संदेश सुनाया गया— "आपके निमन्त्रण के लिए धन्यवाद करता हुआ लिखता हूं कि यदि मेरा स्वास्थ्य मुझे उत्सव में सम्मिलित होने का सौभाग्य देता तो मैं बडा प्रसन्न होता। यद्यपि मुझे कई सिद्धान्तो मे महर्षि के सिद्धान्तों से मतभेद है तो भी परमात्मा की एकता की उच्च भावना वाले शानदार आचार्य के तौर पर मेरा मस्तक उनके चरणों में झुक जाता है। वे हमारी प्राचीन सभ्यता के अनन्य प्रेमी थे।

"आर्यसमाजी और सनातनधर्मी, जैसा कि हमें कहा जाता है, पारस्परिक गहरे सम्बन्ध में बंधे हुए हैं। मैं उन्हें केवल एक परिवार का सभासद् ही नहीं समझता किन्तु भाई-भाई समझता हूं। यद्यपि कई जगह हममें मतभेद हैं, किन्तु हमारे प्राचीन धर्म और सभ्यता में बहुत एकता पाई जाती है।

"मुझे प्रयाग में श्री स्वामी जी का व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उस समय से इन ५० वर्षों मे, आर्य समाजों और सनातन धर्मियों के आपस के सम्बन्धों मे, बहुत अधिक अच्छा परिवर्तन आ गया है। मेरा विचार है कि हर एक दूसरे के दृष्टिकोण व भावों का सम्मान करता है और हम आज पहले की अपेक्षा एक दूसरे के अधिक पास हैं। हमारे सामने अब मुख्य काम यह है कि जहां हमे अपनी आत्मिक उन्नति के लिये असत्य को छोड़ने और सत्य को ग्रहण करने के लिये हर समय तैयार रहना चाहिये, वहां हमें अपने आपको एक पलटन के दो दस्तो की तरह मिलकर काम करना चाहिए। मेरी परमात्मा से प्रार्थना है कि यह उत्सव आर्य समाज की बढ़ती हुई शक्तियों को जागृत कर हमारे

पारस्परिक सम्बन्धों को दृढ़ करने में सहायक हो, और वैदिक (हिन्दू) धर्म की शानदार शिक्षा को फैलावे ।"

प्रातःकाल के समय श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का उपदेश हुआ । मध्याह्नोत्तर की दूसरी बैठक में शताब्दी-महोत्सव के प्रधान शाहपुराधीश श्री उम्मेदसिंह जी का प्रारम्भिक भाषण हुआ जिसमे आपने आर्यसमाज के तब तक के कार्य की संक्षिप्त चर्चा करते हुए अन्त में निम्नलिखित प्रार्थना की—"मैं परम प्रभु परमात्मा से प्रार्थना करता हू कि आर्यजन प्रेमपूर्वक आपस में मिलते हुए ऋषि दयानन्द जी द्वारा प्रदर्शित वेद-मार्ग का स्वयं अनुसरण करते तथा इस प्रकार संसार के सामने उच्च आदर्श रखकर वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए अपना जीवन सफल बनाने में समर्थ हों ।"

तत्पश्चात् पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय का और रात्रि के समय पं० बुद्धदेव विद्यालंकार का व्याख्यान हुआ ।

दूसरे दिन स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी, श्री शिवदत्त जी ज्ञानी तथा महता जैमिनि के व्याख्यान हुए । तीसरे दिन की कार्यवाही पं० आर्यमुनि जी के वेदोपदेश से आरम्भ हुई । उस दिन की बैठकों मे पं० प्रियव्रत विद्यावाचस्पति तथा पं० जगन्नाथ निरुक्तरत्न के महत्वपूर्ण व्याख्यान हुए । चौथे दिन जिन विद्वानो के भाषण हुए, उनके नाम निम्न-लिखित है :—

१ श्री स्वामी गंगागिरि जी ।
२ श्री पं० ठाकुरदत्त जी ।
३ श्री प० दीनबन्धु जी ।
४. श्री डा० सूर्यदेव जी एम० ए० ।

पांचवें दिन श्री स्वामी वेदानन्द जी, लाला देवीचन्द जी एम० ए० तथा प्रो० रामदेव जी ने अपने व्याख्यानों द्वारा श्रोताओं को वैदिक धर्म का सन्देश सुनाया ।

छठा दिन दीवाली का था । उस दिन आर्य नगर में असाधारण भीड़ थी । उस दिन को महोत्सव मे विशेष महत्व दिया गया था । प्रातःकाल पं० लोकनाथ जी उपदेशक, कुंवर चांदकरण जी शारदा और पं० बुद्धदेव जी के भाषण हुए । मध्याह्नोत्तर के समय का कार्यक्रम सबसे अधिक रोचक और और गौरवपूर्ण था । प्रारम्भ में ओंकार की ध्वजा का आरोपण हुआ । फिर सब उपस्थित नर-नारियों ने अपने जीवनों को धर्मानुसार बनाने और वैदिक धर्म के प्रचार के लिए सदा उद्यत रहने का व्रत मन ही मन में ग्रहण किया । जिसके पश्चात् सबने मिलकर एक सम्मिलित प्रार्थना की । वह प्रार्थना इससे पूर्व ही बाहर के सब समाजों में भी जा चुकी थी । जिस समय वह प्रार्थना अर्द्ध शताब्दी के मण्डप में की जा रही थी, उसी समय वह पृथ्वी के अन्य सब आर्यसमाजों में भी सम्मि-लित रूप से की गयी ।

उस दिन रात्रि के समय शारीरिक व्यायाम के प्रदर्शन हुए । सातवें दिन श्री ताराचन्द्र जी गाजरा, महता जैमिनि, तथा पं० आत्माराम अमृतसरी आदि कई विद्वानों के भाषण हुए । यह अन्तिम दिन था । समाप्ति पर श्री नारायण स्वामी जी महाराज ने उपस्थित आर्यजनों को सूचना दी कि शिकागो मे जो सर्वधर्म सम्मेलन हो रहा है, सार्वदेशिक

आर्य प्रतिनिधि सभा ने उसमें सम्मिलित होने के लिए प्रिन्सिपल बालकृष्ण जी, आचार्य रामदेव जी और प० अयोध्याप्रसाद जी को अपना प्रतिनिधि चुना है। पंडित अयोध्याप्रसाद जी सम्मेलन में व्याख्यान दे चुके हैं। उनके व्याख्यान को अमेरिकावासियों ने बहुत पसन्द किया है और उन्हें विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने के लिये निमंत्रित किया गया है।

महोत्सव में अन्य भी कई सम्मेलन हुए। महात्मा हंसराज जी के सभापतित्व में *शुद्धि सम्मेलन* हुआ, जिसमें भाई परमानन्द जी के तथा अन्य विद्वानों के व्याख्यान हुए। *वर्ण-व्यवस्था सम्मेलन* टिहरी के चीफ जज पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० की प्रधानता में हुआ। इस सम्मेलन में आर्य जनों से अनुरोध किया गया कि वे जात-पांत को सर्वथा त्याग कर गुण-कर्मानुसार विवाह आदि सम्बन्ध किया करें। *आर्यसिद्धान्त रक्षा सम्मेलन* में आर्य नर-नारियों को धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करने की प्रेरणा की गयी। १७ अक्तूबर को *आर्य वीर दल सम्मेलन* का एक महत्वपूर्ण अधिवेशन हुआ, जिसमें सार्वदेशिक सभा से प्रार्थना की गई कि वह आर्य वीर दल के संगठन पर विशेष ध्यान दे। अन्य भी कई सम्मेलन हुए। उनमें से *आर्य कुमार सम्मेलन*, *आर्य भाषा सम्मेलन*, *संस्कृत भाषा सम्मेलन*, *कवि सम्मेलन*, *संन्यासी सम्मेलन*, *प्रवासी सम्मेलन*, *अस्पृश्यता-निवारण सम्मेलन* तथा *विधवा विवाह सम्मेलन* आदि मुख्य थे।

इस प्रकार राजस्थान के आर्य पुरुषों के पुरुषार्थ और आर्य जनता के उत्साह से यह महान् यज्ञ बहुत सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इस सफलता में दो महानुभावों का विशेष भाग था। श्री पूज्य नारायण स्वामी जी महाराज के अनुभवपूर्ण नेतृत्व ने इतने विशाल आयोजन को निर्विघ्न पूर्णता प्रदान की और शाहपुराधीश श्री उम्मेदसिंह जी महाराज की प्रधानता के कारण उसकी लोकप्रियता में चार चांद लग गये। महोत्सव के प्रबन्ध का अधिकतर श्रेय आर्य स्वयंसेवकों को था। आर्यसमाज के गुरुकुलों तथा अन्य शिक्षणालयों के छात्रों और छात्राओं के मन्त्रोच्चारण, संगीत, बैण्ड आदि वाद्य तथा संस्कृत भाषणों से सभा-सम्मेलनों की शोभा द्विगुणित हो जाती थी। इसमें सन्देह नहीं कि यह महोत्सव सारे देश के लिये समान रूप से और राजस्थान के लिए विशेष रूप से उत्साहवर्द्धक सिद्ध हुआ।

बम्बई के प्रसिद्ध आर्य सेठ शूरजी वल्लभदास की योग्य पुत्री कुमारी लक्ष्मी बाई के धाराप्रवाही संस्कृत भाषण को इस महोत्सव की एक विशेष घटना माना गया।

सार्वदेशिक सभा के कार्य का विस्तार

इन वर्षों में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्य अधिक संगठित और विस्तृत होता रहा। उसके रेखा चित्र में रंग भर गये, और अधिकारो की सीमाओं का विस्तार हुआ। कई प्रदेशों में नई प्रतिनिधि सभाएं स्थापित हुई, कई सार्वदेशिक सम्मेलन हुए और बहुत से नये विभाग खोले गये। आर्य सार्वदेशिक सभा आर्य मात्र के पथ-प्रदर्शन के कार्य में अग्रसर होती रही।

नयी प्रतिनिधि सभाओं की स्थापना

सिन्ध में आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना १९१९ में हुई थी। यह वह वर्ष था जब भारत भर में रौलट एक्ट के सम्बन्ध में जोरदार आन्दोलन जारी हुआ था। इस सभा का मुख्य कार्यालय कराची में था। इसमें सम्बद्ध आर्यसमाजों की संख्या ५० थी।

बंगाल तथा आसाम की प्रतिनिधि सभा की पृथक् स्थापना १५ मार्च १९३० के दिन हुई। इससे पहले बंगाल और बिहार का सम्मिलित प्रान्त था। १९३० मे बंगाल और आसाम की पृथक् सभा बन गयी और बिहार के साथ उड़ीसा मिला दिया गया।

हैदराबाद दक्षिण मे आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना १९३१ में हुई। इससे पूर्व इस प्रदेश में सार्वदेशिक सभा प्रचार की सीधी व्यवस्था करती थी। १९३१ में, बैरिस्टर विनायक राव विद्यालंकार की अध्यक्षता मे इस प्रदेश का अलग संगठन बन गया। उस संगठन के नेतृत्व में हैदराबाद ने आर्यसमाज के इतिहास का एक अत्यन्त उज्ज्वल परिच्छेद लिखने मे सफलता प्राप्त की।

१९२६ में मारीशस मे आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई। उसका मुख्य कार्यालय पोर्ट लुईस जैरब स्ट्रीट नं० २ मे था। इसमें सम्मिलित समाजों की संख्या ३० थी।

पूर्वी अफ्रीका में आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना १९२० मे हुई, इसका रजिस्टर्ड कार्यालय नैरोबी में था।

सभी प्रतिनिधि सभायें अपने जन्म काल से ही सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध हो गई, जिससे सभा का व्यापक रूप सार्थक और सम्पुष्ट होता गया।

२. अखिल भारतीय सम्मेलन तथा समारोह

हम इससे पूर्व मथुरा तथा टंकारा की जन्म-शताब्दियों का, दिल्ली और बरेली के आर्य सम्मेलनो का और अजमेर की निर्वाण अर्द्ध शताब्दी का वर्णन कर आये है। वे सब आयोजन या तो सार्वदेशिक सभा की प्रेरणा और देखरेख में हुए, अथवा सर्वथा उसी की व्यवस्था में हुए। वे सभी आयोजन आर्यसमाज के सार्वदेशिक रूप को सम्पुष्ट करने वाले थे। वे आर्यसमाज में संघ शक्ति की वृद्धि के फल भी थे, और कारण भी।

सार्वदेशिक सभा द्वारा आयोजित इन सम्मेलनों की कार्यवाहियों और उनमे स्वीकृत हुए प्रस्तावों की गम्भीर और विस्तृत आलोचना करने से जो एक न्यूनता प्रतीत होती है, उसकी ओर निर्देश करना भी इतिहास-लेखक के नाते हम अपना कर्त्तव्य समझते है। हमें उन विविध सम्मेलनों मे स्पष्ट मार्ग-प्रदर्शन का अभाव दिखाई देता है। मथुरा, दिल्ली, बरेली तथा अजमेर के प्रस्तावों को साथ-साथ रख कर पढ़ें तो अनुभव होने लगता है कि सभा ने सम्मेलन बुलाकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है, वहा जो कुछ होता है, उसमें पूर्वापर सम्बन्ध है या नही, उसका आर्यसमाज के कार्य-क्रम के साथ कोई वास्ता भी है या नहीं, इस पर दृष्टिपात नहीं किया। केवल एक दिल्ली के आर्य सम्मेलन के प्रस्तावों का एक लक्ष्य मालूम होता है, इस कारण कुछ परिणाम भी हुआ। आर्य रक्षा समिति तथा आर्य वीर दल की स्थापना हो गई, और आर्य जनों की कार्य-शक्ति को उपयोग मे आने का एक रास्ता मिल गया। अन्यथा प्रायः सम्मेलनों में या तो वही पुरानी बाते दुहराई गयी, अथवा उपस्थित प्रतिनिधियों के सम्मुख जो चालू प्रश्न आया, उस पर सम्मति दे डाली। आर्यसमाज के कार्यो पर उसके प्रभाव, अथवा उनके साथ सम्बन्ध का भी विशेष ध्यान नहीं रखा गया। इससे यह अनुभव होता है कि सार्वदेशिक सभा जब यह अनुभव करती थी कि आर्य जनता किन्ही विषयो पर मार्ग-प्रदर्शन चाहती है तो सम्मेलन करने की अनुमति दे देती थी, और फिर वह नाव को पानी मे छोड़ देती थी। इसका कारण शायद यह हो कि वह स्वय मार्ग की तलाश में थी। अथवा सम्भव है कि हमारा जनतन्त्रता का बहुत बढ़ा हुआ भाव मार्ग-प्रदर्शन को दोष मानता हो। इसका एक कारण यह भी सम्भव है कि जिस प्रकार विचार मस्तिष्क से उठते है और शरीर के सब अंगो मे फैल जाते है उसी प्रकार जो विचार केन्द्रीय स्थान पर पूर्ण विवेक के साथ उठते है और पीछे से जनता में फैलते है वे अधिक सफल होते है। जो आयोजन साधारण जनता से आरम्भ होकर केन्द्र तक पहुंचते है उनमे जोश तो अधिक होता है परन्तु बीज शक्ति कम होती है। अधिकतर प्रस्ताव सम्मेलन मे शरीक होने वाली जनता से शुरू हुए और केन्द्र पर उनको लाद दिया गया। बडी सभाए आन्दोलन का विस्तार कर सकती हैं, अधिक सोच नही सकती। जोश मे अनेक व्यावहारिक परि-स्थितियां आंख से ओझल हो जाती है। कारण कुछ भी हो, यह अवश्य अनुभव होता है कि उन लगभग सात-आठ वर्षो में आर्य सम्मेलन तो कई हुए परन्तु उनसे आर्यसमाज का मार्ग-प्रदर्शन नहीं हो सका। सभा को जागृत करने के लिए जितनी बड़ी ठोकर की

आवश्यकता थी, वह या तो १९२६ में स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान के समय लगी थी, और या फिर हैदराबाद रियासत में आर्य समाज के प्रचार कार्य पर प्रतिबन्ध लगने पर लगी। इस बीच, जिसे संकल्पपूर्वक मार्ग-प्रदर्शन कहा जाता है, उसका अभाव सा रहा। यों, एकता और संगठन की भावनाओं को पुष्टि मिलती रही, जिसका सुपरिणाम यह हुआ कि जब हैदराबाद की राज-शक्ति ने आर्यसमाज को चुनौती दी, तो आर्यसमाज एक-दिल होकर अधिकार-रक्षा के लिए खड़ा हो गया।

चौमुखी प्रगति

सामान्य रूप से अपने प्रारम्भिक २७ वर्षों में सार्वदेशिक सभा की चौमुखी प्रगति जारी रही। उस प्रगति और सन् १९३७ में सभा के कार्य की जो दशा थी, उसका विस्तृत विवरण हमें सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के सत्ताईस वर्षीय कार्य-विवरण से ज्ञात होता है। यह विवरण उस समय के सभा के प्रधान श्री नारायण स्वामी जी महाराज की देखरेख में, सभा-कार्यालय से प्रकाशित हुआ था। यहां कुछ मुख्य और आवश्यक बातें दी जाती हैं। आर्य समाज के इतिहास का मौलिक अध्ययन करने वालों को उस विवरण का साद्यन्त अध्ययन करना चाहिए।

सभासद्

सार्वदेशिक सभा की स्थापना का निश्चय २५ सितम्बर १९०८ को हुआ था, परन्तु वस्तुतः उसकी स्थापना ३१ अगस्त १९०९ के दिन हुई। उस समय सभा में ६ प्रान्त सम्मिलित हुए थे। धीरे-धीरे अन्य प्रान्तीय सभाएं भी सम्मिलित होती गयीं। १९३७ में निम्नलिखित १३ प्रान्तों की सभायें सार्वदेशिक सभा में सम्मिलित थीं।

१. पंजाब
२ सयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश)
३ राजस्थान
४ बंगाल
५. मध्य प्रदेश तथा विदर्भ
६ बम्बई
७. सिन्ध
८. ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका
९ नैटाल––दक्षिण अफ्रीका
१०. फिजी
११. मारिशस
१२. बिहार
१३ दक्षिण हैदराबाद।

इन सभाओं के प्रतिनिधि तो सभा के सभासद् थे ही, सशोधित नियमों की धारा ५(र) के अनुसार जिन आर्यसमाजों के ५० या इससे अधिक सभासद हों, वे भी अपनी आय का दशांश देकर सभा में सम्मिलित हो सकते थे, अतः ११ आर्यसमाजों

के प्रतिनिधि सीधे सभा के सदस्य बने हुए थे। उसी धारा के अनुसार ५००) या इससे अधिक दान देने वाले महानुभाव भी सभा के आजीवन सदस्य बन सकते थे। ऐसे ९ दानी सभा के आजीवन सदस्य बन चुके थे। सभा वार्षिक अधिवेशन में विशेष योग्यताओं के कारण कुछ प्रतिष्ठित सभासद भी चुनती है। नियम यह है कि प्रतिष्ठित सभासदों की संख्या अन्य सभासदों की संख्या के अष्टमांश से अधिक नहीं हो सकती। ऐसी रीति चल गई है कि प्रति वर्ष ५ प्रतिष्ठित सदस्य चुने जाते हैं। इस प्रकार १९३७ में, सभासदों की निम्नलिखित श्रेणियों में, सभासद थे :--

१. प्रतिनिधि सभाओं के प्रतिनिधि
२. समाजों के प्रतिनिधि
३. ५००) के दानी--आजीवन सदस्य
४. प्रतिष्ठित सदस्य ।

अधिकारी

प्रारम्भ में एक वर्ष तक अजमेर के पं० वंशीधर शर्मा एम० ए०, एल-एल० बी० सभा के प्रधान रहे, उनके पश्चात् सात वर्ष महात्मा मुन्शीराम जी ने प्रधान चुने जाकर सभा के कार्य का संचालन किया, कुंवर हुक्मसिंह जी दो वर्ष तक प्रधान पद पर आरूढ़ रहे। उसके पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द जी (महात्मा मुन्शीराम जी) फिर प्रधान निर्वाचित हुए। मथुरा में भी श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी महोत्सव उनकी प्रधानता में ही हुआ। इन्हीं वर्षों में महात्मा नारायण स्वामी जी कई वर्षों तक मंत्री की हैसियत से सभा के कार्य को सुचारु रूप से संभाल चुके थे। मथुरा के शताब्दी उत्सव में कार्यकर्ता प्रधान की हैसियत से आपने जो अद्‌भुत कार्य किया, उससे आपमें आर्य जनता की आस्था बहुत बढ़ गई थी। फलतः स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रधान पद छोड़ने पर महात्मा नारायण स्वामी जी सर्वसम्मति से प्रधान निर्वाचित हुए, और जीवन की समाप्ति तक थोड़े बहुत व्यवधानों के साथ प्रधान पद से सभा के कार्य का संचालन करते रहे। सम्मानित स्वामी जी का जीवन उन वर्षों के आर्यसमाज के जीवन में पूरी तरह ओतप्रोत होने के कारण इतना महत्वपूर्ण है कि हम एक पूरा अध्याय उसके अर्पण करेंगे।

इस खण्ड में हम जिन वर्षों (१९२६-१९३७) का इतिहास लिख रहे हैं, उसके अन्त में नारायण स्वामी जी ही सभा के प्रधान थे।

बीच में छः-छः मास के लिए पं० घासीराम जी (मेरठ) और लाला रामकृष्ण जी (जालन्धर) प्रधान चुने गये।

उपप्रधानों में बा० गुलराज गोपाल गुप्त, बा० बालकृष्ण सहाय, पं० गंगाप्रसाद एम० ए०, आचार्य रामदेव जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, बा०श्री राम जी, और बा० घनश्याम सिंह जी गुप्त के नाम उल्लेख योग्य हैं।

प्रारम्भ में एक वर्ष तक पं० भगवानदीन जी मन्त्री रहे। उनके पश्चात् ८ वर्ष तक म० नारायणप्रसाद जी ने मन्त्री का कार्य किया और उनके पश्चात् क्रम से ला० नारायण दत्त जी, कुंवर हुक्मसिंह जी, डा० केशवदेव शास्त्री, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति,

स्वा० आनन्द भिक्षु, प्रो० सुधाकर एम० ए० और ला० देशबन्धु मन्त्री-पद पर निर्वाचित हुए। इनमें से सबसे अधिक वर्षों तक पं० केशवदेव शास्त्री मन्त्री रहे। आपने निरन्तर छ: वर्ष तक यह कार्य किया। शास्त्री जी की चर्चा इसके पहले के अध्यायों में हो चुकी है। वे अमरीका से बिजली द्वारा इलाज की शिक्षा प्राप्त करके आये थे, और दिल्ली में अपनी अमरीकन पत्नी के साथ चिकित्सा करते थे। आप अत्यन्त सौम्य सुशिक्षित और उत्साही कार्यकर्त्ता थे। आपके आकर्षक व्यक्तित्व के कारण सभा के कार्य को पर्याप्त पुष्टि मिली। प्रो० सुधाकर जी का मन्त्रित्व-काल बहुत महत्वपूर्ण रहा। आप भी अपनी योग्यता और मधुर प्रकृति के कारण आर्यजनों के प्रेम तथा आदर के पात्र बन गये थे।

सभा के अन्य अधिकारियों तथा अन्तरंग सदस्यों की सूची में आर्य-जगत् के प्रायः सभी प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओं, विद्वानों और संन्यासियों के नाम आते हैं।

भवन तथा कार्यालय

प्रारम्भ में सभा का कार्यालय उस मकान में था जो अब सार्वदेशिक भवन के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय वह "ज्योति पाठशाला" इस नाम से प्रसिद्ध था। यह मकान लाल किले के सामने, एस्प्लेनेड रोड पर सिविल अस्पताल के समीप होने के कारण नगर के केन्द्र स्थान में बना हुआ था। दिल्ली के एक सम्भ्रान्त व्यापारी लाला ज्वाला-प्रसाद ने मरने के समय जो वसीयत की थी, उस द्वारा उस मकान पर पूरा अधिकार अपनी धर्मपत्नी श्रीमती जानकी देवी जी को दे दिया था। श्रीमती जानकी देवी जी ने हिब्बेनामे द्वारा वह मकान सार्वदेशिक सभा को दान कर दिया। कई वर्षों तक इसमें कार्यालय के अतिरिक्त ज्योति पाठशाला के नाम से एक संस्कृत पाठशाला भी रही, जिसे छात्रों की न्यूनता के कारण बन्द कर देना पड़ा।

जब श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान के पश्चात् उस सारी इमारत को जिसमें स्वामी जी का बलिदान हुआ था, सभा ने सेठ रघूमल ट्रस्ट से ले लिया तो सभा का कार्यालय उसी में चला गया। उस इमारत का एक-चौथाई भाग स्वामी जी के परम श्रद्धालु सेठ रघूमल जी ने पहले से स्वामी जी के निवास और सार्वजनिक कार्यों के लिये दे रखा था। बलिदान के पश्चात् शेष ३ भाग भी सभा ने खरीद लिये। सारी इमारत का नाम "श्रद्धानन्द बलिदान भवन" रखा गया। सभा का कार्यालय तबसे वहीं है।

देश-देशान्तर प्रचार

सार्वदेशिक सभा की ओर से मद्रास प्रचार की जो योजना प्रारम्भ की गयी थी, उसकी चर्चा हम इससे पहले कर आये हैं। १९३७ के अन्त में दक्षिण के चार प्रदेशों में प्रचार का कार्य चल रहा था। तामिल भाषी प्रदेश और आन्ध्र में पंडित केशवदेव जी ज्ञानी और मालाबार और कर्नाटक में पंडित धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति आर्यसमाजों की स्थापना तथा प्रचार के कार्य में लगे हुए थे। ज्ञानी जी के प्रयत्न से १५ और विद्या-वाचस्पति जी के प्रयत्न से १४ आर्य समाजें स्थापित हो चुकी थीं। दक्षिण वर्तमान समय की भांति उस समय भी पौराणिक हिन्दू धर्म का गढ़ था। वहां के ब्राह्मणों में विशेष बात

यह थी कि दक्षिण में संस्कृत का प्रचार बहुत अधिक था। आज भी दक्षिण के पढ़े लिखे लोगों में संस्कृत का गहरा ज्ञान उत्तरीय भारत की अपेक्षा बहुत बड़ी मात्रा में पाया जाता है। फलतः रूढ़ि के गढ़ को तोड़ने के लिए संस्कृत की उद्भट योग्यता आवश्यक थी। पण्डित धर्मदेव विद्यावाचस्पति न केवल संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् और वक्ता थे, अंग्रेजी पर भी उनका पर्याप्त प्रभुत्व था। दक्षिण में रहते हुए उन्होंने वहां की कई प्रदेशीय भाषाओं का अध्ययन भी कर लिया था। कई ऐसे अवसर आये जब उन्हें संस्कृत के प्रसिद्ध पंडितों से धार्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ करना पड़ा। संस्कृत और दक्षिण की भाषाओं के पाण्डित्य ने ऐसे अवसरों पर उनकी बहुत सहायता की। प्रदेशीय भाषाओं में आर्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में पुस्तकें और पुस्तिकायें भी प्रकाशित की गयीं।

विदेश प्रचार

दिल्ली में प्रथम आर्य महासम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था, उसमें देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में प्रचार के लिए धन की अपील की गयी थी। उस पर पचास हजार के लगभग रुपया एकत्र हुआ था। सभा ने उस राशि को प्रचार-निधि के रूप में अलग कर दिया, और उससे विदेश-प्रचार की कई योजनाओं को कार्यान्वित करने में प्रयोग किया। १९३३ में अमेरिका के शिकागो नगर में एक विश्व धर्म-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। यह आयोजन अमेरिका की "World Fellowship of Faith" नामक संस्था की ओर से किया गया था। जब समाचार पत्रों में सम्मेलन की घोषणा हुई तब सभा ने निश्चय किया कि आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० अयोध्याप्रसाद जी को आर्यसमाज का प्रतिनिधि बनाकर भेजा जावे। पंडित जी ने सम्मेलन में सम्मिलित होकर जो योग्यतापूर्ण भाषण दिये, उनसे आर्यसमाज की शिक्षा और कर्त्तव्यों के प्रति अमेरिका के नर-नारियों की दिलचस्पी बड़ी मात्रा में जागृत हुई। सम्मेलन समाप्त हो जाने पर उसके मंत्री ने सार्वदेशिक सभा के मन्त्री को यह पत्र भेजा। पत्र अंग्रेजी में था, यहां उसका हिन्दी अनुवाद दिया जाता है :—

प्रियवर मन्त्री महोदय,

नमस्ते।

श्री पं० अयोध्याप्रसाद जी बी० ए० को विश्व धर्म सम्मेलन शिकागो के अधिवेशन में भेजने के लिए आपको तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में आपके सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद।

श्री पं० अयोध्याप्रसाद जी ने सभाओं में कई भाषण दिये हैं। उनके व्याख्यान खोजपूर्ण तथा प्रभावशाली होते हैं। बहुत से अधिवेशनों का कार्यारम्भ उन्होंने सुन्दर और ओजस्विनी वेद-ऋचाओं और ईश्वर-प्रार्थनाओं से कराया है। उन्होंने वैय्यक्तिक बातचीत तथा सभा-सोसाइटियों द्वारा उत्तम परामर्श दिये हैं।

सारांश यह है कि हम उनके नेतृत्व, ज्ञान और उत्साह वर्द्धन के लिए, और उन्होंने भ्रातृत्व की सुन्दर भावना से सर्व धर्म सम्मेलन में जो योग दान दिया है, उसके लिये अत्यन्त कृतज्ञ हैं। इन गुणों के कारण उन्होंने अपने को सर्वप्रिय बना लिया है।

अब चूंकि वे लम्बी यात्रा करके शिकागो तक आये है, यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वे कुछ अधिक समय तक यहां ठहरे, विभिन्न सभाओं मे व्याख्यान दे, हमारी अमरीकन संस्थाओं से परिचित हो और उन्हे आर्यसमाज के महान् आन्दोलन के आदर्श चरित्र और सफलताओ से परिचित करायें ।

आपका भाई
चार्ल्स फ्रेडरिक वेलर

इस पत्र के आने पर सभा ने पण्डित अयोध्याप्रसाद जी को एक वर्ष तक अमेरिका मे रह कर वैदिक धर्म का प्रचार करने की अनुमति दे दी । अमेरिका की कई संस्थाओं ने धर्म-विषय पर आपके व्याख्यान कराये । एक विश्वविद्यालय ने आपकी व्याख्यान-माला से प्रभावित होकर तुलनात्मक धर्म की पाठ-विधि मे आर्यसमाज का विषय भी सम्मिलित कर लिया । अमेरिका से लौटते हुए पंडित अयोध्याप्रसाद जी ट्रिनिडाड, ब्रिटिश गायना आदि द्वीपों मे भी प्रचार का कार्य करते आये । ट्रिनिडाड में आपके व्याख्यानों के प्रभाव से लगभग तीन सौ ईसाई तथा मुसलमानों की शुद्धियां हुई । आर्यसमाज स्थापित हो गया और उसका मन्दिर भी बन गया । वहां के उत्साही आर्य पुरुषों के उद्योग से ट्रिनिडाड मे आर्यसमाज का प्रचार निरन्तर बढता रहा है ।

डच गायना मे आर्य समाज का प्रचार पहले से ही था । पडित जी के व्याख्यानो से उसे बहुत पुष्टि मिली है । लगभग एक दर्जन आर्यसमाजें स्थापित हो गयीं, जिनके सदस्यो की सम्मिलित संख्या हजारों तक पहुच गई । गायना निवासियों ने आर्थिक सहायता देने मे भी उदारता दिखाई । आर्यसमाज को जो दान मिले, उनमे से पारा-मारीबो नामक नगर की निवासिनी श्रीमती महादेवी जी का दान विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है । आप स्वर्गीय पं० रामप्रसाद जी की धर्मपत्नी थीं । आपने १८,००० रुपये आर्यसमाज मन्दिर के निर्माण के लिए दिये । डच गायना की राजधानी सुरीनाम मे आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हो गई । सभा की ओर से 'आर्य दिवाकर' नाम की एक पहले से चली हुई सस्था का अन्त कर दिया गया, जो धर्म के सम्बन्ध मे द्वीप के निवासियों में भ्रम पैदा कर रही थी ।

डच गायना से पडित जी ब्रिटिश गायना मे गये । वहां भी आपके व्याख्यानों से आर्य जाति के लोगो मे बहुत जागृति पैदा हुई । इस सारे प्रचार कार्य मे पंडित जी को जो सफलता प्राप्त हुई उसका मुख्य कारण पण्डित जी की योग्यतापूर्ण वक्तृत्व-शक्ति के अतिरिक्त वैदिक धर्म पर दृढ़ विश्वास भी था ।

सभा के अन्य विभाग

सभा के अन्य विभागों मे से *प्रकाशन विभाग* विशेष रूप से महत्वपूर्ण है । प्रकाशन विभाग मे श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी द्वारा प्रकाशित 'संस्कृत सत्यार्थ प्रकाश' आदि ग्रन्थो के अतिरिक्त बहुत से अंग्रेजी और हिन्दी के ऐसे भी ग्रन्थ थे जो उसने स्वयं प्रकाशित कराये थे ।

हम पहले बतला आये हैं कि दिल्ली के आर्य महासम्मेलन में *आर्य वीर दल* की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकार किया गया था। यह भी निश्चय हुआ था कि आर्य वीरो की संख्या दस हजार तक पहुंच जानी चाहिए। तदनुसार सभा के अन्तर्गत स्वयं सेवको की अभीष्ट संख्या भी भरती हो गई। सभा ने दल के संचालन के लिए एक अलग समिति बना दी। दल के मुख्य अधिकारी का नाम 'आर्य वीर दल का प्रधान सेनापति' यह रखा गया।

मथुरा के श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव के अवसर पर यह निश्चय किया गया था कि महर्षि दयानन्द के लेखानुसार आर्यसमाज के संगठन में पूर्णता लाने के लिए *धर्मार्य सभा, विद्यार्य सभा तथा राजार्य सभा* नाम की तीन सभाये स्थापित की जायें। सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा ने २० जनवरी १९२८ के अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा *धर्मार्य सभा* की बुनियाद रख दी। सभा की निम्नलिखित योजना बनाई गई :—

प्रत्येक प्रान्तीय सभा से प्रार्थना की जावे कि अपने-अपने प्रान्त से अपने-अपने प्रतिनिधि के तौर पर निम्न संख्या में विद्वानों को निर्वाचित करे :—

१. पंजाब	७
२. संयुक्त प्रान्त	७
३. राजस्थान, बिहार-बंगाल, बम्बई (प्रत्येक ५)	१५
४. मध्य प्रदेश तथा सिन्ध (प्रत्येक ३)	६
५. उन समाजों के प्रतिनिधि जहां प्रान्तीय सभायें नहीं	३
६ संन्यासी	५
७. सार्वदेशिक सभा के प्रतिनिधि	५
८ विदुषी स्त्रियां (सार्वदेशिक सभा द्वारा)	३
योग	५१

धर्मार्य सभा सभा ने अपने उपनियमों का निर्माण करके कार्य आरम्भ कर दिया, और अनेक विवादग्रस्त विषयों पर अपनी व्यवस्थाएं प्रकाशित की।

१९३५ मे सभा के अन्तर्गत *दयानन्द मेडिकल मिशन हौस्पिटल* की स्थापना हुई थी। कैप्टिन डा० रामचन्द्र बहुत उत्साही आर्यसमाजी थे। सरकारी सिविल सर्जन पद से रिटायर होने पर आपने सभा से यह निवेदन किया कि वह उस मैडिकल मिशन की संरक्षकता स्वीकार करे, जिसे वह चलाना चाहते हे। सभा ने इनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। १६ जून १९३५ को महात्मा नारायण स्वामी जी द्वारा मसूरी मे मिशन के हस्पताल का उद्घाटन हो गया। डाक्टर रामचन्द्र जी आखों के आपरेशन मे विशेष निपुण थे। उनके चिकित्सालय मे लगभग ६०० मोतिया-बिन्द के रोगियों ने नीरोगता प्राप्त की। १९३७ तक यह कार्य चलता रहा था। उसके पश्चात् डाक्टर जी के स्वर्गवास होने के कारण मिशन का हस्पताल बन्द हो गया।

१९३० मे सभा ने *श्रीमद्दयानन्द सेवा संघ* के नाम से कार्यकर्त्ताओ के एक मडल की स्थापना की। इस संघ के सेवकों के लिए यह आवश्यक था कि व न्यून से न्यून १८

वर्ष तक सार्वदेशिक सभा की सेवा निर्वाह मात्र पर करे। प्रारम्भ मे पंडित केशवदत्त ज्ञानी और पंडित धर्मदेव विद्यावाचस्पति इस संघ के सदस्य बने। परन्तु इन दोनों में से कोई भी संघ के नियमों के अनुसार नियत काल तक सेवा न कर सका। कोई सदस्य न रहने से संघ स्वयं समाप्त हो गया।

सभा की संरक्षा मे *भारती-मातृ-मन्दिर* नाम की एक संस्था १९३० मे स्थापित हुई थी। इसकी मुख्य कार्यकर्त्री उड़ीसा की प्रसिद्ध लेखिका और कवयित्री श्रीमती डाक्टर कुन्तल कुमारी थीं। लगभग चार वर्ष तक संस्था का कार्य जारी रहा। उसके पश्चात् व्यवस्था के असंतोषजनक होने की शिकायतें आने पर सभा ने उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

श्री पं० गंगाप्रसाद जी चीफ जज (टिहरी गढ़वाल) ने सभा को २०००) इस अभिप्राय से दिये कि वह उसका गढवाल में स्वीकृत नियमानुसार खर्च करे। उस धन के प्रबन्ध के लिए सभा ने एक ट्रस्ट बना दिया, जो वर्ष के अन्त में सहायता की राशि यथा-स्थान भेजता रहा।

इस समय पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रबन्ध में जो *कन्या गुरुकुल* चल रहा है, वह प्रारम्भ में सार्वदेशिक सभा के अधिकार मे था। कन्या-गुरुकुल के संचालकों की इच्छानुसार १९१८ मे सभा ने गुरुकुलों को अपने प्रबन्ध में ले लिया। कन्या गुरुकुल की स्थापना मुख्य रूप से सेठ रघुमल जी के एक लाख रुपये के दान से हुई थी। उनकी इच्छा थी कि गुरुकुल अन्त में उस ट्रस्ट के हवाले कर दिया जाय, जिसे उसी उद्देश्य से सेठ जी बनायेंगे। इस प्रस्ताव पर बहुत सा मतभेद था। अन्त मे सभा ने निश्चय किया कि कन्या गुरुकुल को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सुपुर्द कर दिया जाय। यह प्रस्ताव १९२६ ईस्वी के मई मास में स्वीकृत हुआ। तदनुसार कन्या गुरुकुल के लिए जो भूमि बदरपुर गांव के पास क्रय की गयी थी, वह और बची हुई राशि प्रतिनिधि सभा को दे दी गयी।

'सार्वदेशिक' मासिक पत्र

सभा की ओर से 'सार्वदेशिक' कब और क्यों निकाला गया, इस प्रश्न का उत्तर सभा के १९३७ में प्रकाशित सत्ताईस वर्षीय कार्यविवरण मे इस प्रकार दिया गया है :—

"इस सभा को स्थापित हुए लगभग १९ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। मथुरा शताब्दी के बाद सभा के बढ़ते हुए कार्य सम्बन्धी सूचनायें आर्य जनता को सरक्यूलर द्वारा दी जाती थीं। सरक्यूलरों द्वारा काफी व्यय करने पर भी अभिलषित प्रयोजन सिद्ध नही होता था। इस युग मे आन्दोलन करने तथा जनमत उत्पन्न करने के लिए समाचार-पत्र अत्यन्त आवश्यक साधन तथा शक्ति है। पत्र के अभाव में सभा की नीति का प्रचार करना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव था। अत: इस सभा ने ता० ६ फरवरी १९२७ की अन्तरंग सभा में निश्चय किया कि एक मासिक पत्रिका ४० पृष्ठों की निकाली जावे, जिसका मूल्य २) वार्षिक हो। पत्रिका का नाम 'सार्वदेशिक' रखा जावे। उसी समय से यह पत्र सभा द्वारा प्रकाशित हो रहा है। यद्यपि पत्र के लिए पृथक् वैतनिक सम्पादक नही, अवैतनिक

सम्पादक के द्वारा ही उसका संपादन होता है, परन्तु फिर भी ग्राहकों की कमी के कारण उसे घाटे ही में चलना पड़ता है।"

मासिक 'सार्वदेशिक' अब भी सार्वदेशिक सभा के सन्देश और आदेश को आर्य जगत् तक पहुचाने का मुख्य साधन है। वह निरन्तर उन्नति कर रहा है।

अनुसन्धान-विभाग

सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा ने १५ सितम्बर १९२९ ई० के अधिवेशन मे यह निश्चय किया कि सार्वदेशिक सभा आर्यसमाज के विरुद्ध लिखी हुई पुस्तकों के उत्तर देने तथा वैदिक सिद्धान्तों पर अच्छे लेख तथा ग्रन्थ लिखवाने तथा अन्वेषण-सम्बन्धी अन्य कार्य करने के लिए एक अनुसन्धान-विभाग खोले।

इस प्रस्ताव का दूसरा भाग यह था कि स्वामी वेदानन्द जी से प्रार्थना की जाय कि वे अपना हैडक्वार्टर देहली में बनावें और इस कार्य को चलायें। स्वामी वेदानन्द जी देहली न आ सके अतः कार्य भी आरम्भ न हो सका। तब २३ नवम्बर १९३० के अधिवेशन में अन्तरंग सभा ने अनुसन्धान कार्य की योजना तैयार करने का काम पंडित धर्मेन्द्रनाथ जी को सुपुर्द किया। पंडित धर्मेन्द्रनाथ जी की तैयार की हुई योजना ३ मार्च १९३१ की अन्तरंग सभा में उपस्थित हुई। निश्चय हुआ कि एक उप सभा तीन महाशयों की बनाई जावे, जो सब योजनाओं पर विचार करके एक क्रियात्मक योजना बनाए और उसे पांच हजार रुपये एकत्रित होने पर कार्यान्वित किया जाय। यह योजना इस रूप मे सफल हुई कि पडित प्रियरत्न आर्ष जी द्वारा वेद के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखाई गई, जिस का नाम "यम पितृ-परिचय" था। यह पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

अजमेर की दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दी के अवसर पर अनुसन्धान-विभाग की योजना ने नया रूप धारण किया। वहां सभा की अन्तरंग का जो अधिवेशन हुआ, उसमें कुछ विद्वानों की ओर से इस आशय का पत्र पेश हुआ कि सार्वदेशिक सभा की ओर से वेदों का सरल और प्रामाणिक भाषानुवाद प्रकाशित होना चाहिए। अन्तरंग सभा ने सभा प्रधान के जिम्मे यह काम लगाया कि वे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के परामर्श से वेदों के सरल भाषानुवाद की योजना बना कर अगले अधिवेशन में उपस्थित करें।

यह निश्चय अभी कार्यान्वित नहीं हुआ था कि पंजाब और संयुक्तप्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभाओं की ओर से यह घोषणा की गई कि उन्होंने एक-एक वेद का भाषानुवाद कराना आरम्भ कर दिया है। इस पर सार्वदेशिक सभा की ओर से उक्त सभाओं को पत्र लिखे गये कि वे अलग-अलग भाषानुवाद के कार्य को जारी न रख कर सार्वदेशिक सभा के साथ मिल कर यह काम करें। परन्तु प्रान्तीय सभायें इस के लिए तैयार न हुईं। तब यह निश्चय करके कि जब तक प्रान्तीय सभाओं के कराए हुए भाषानुवाद प्रकाशित न हो जाएं, तब तक दूसरे केन्द्र में उसी कार्य को करना उचित न होगा, भाषानुवाद के कार्य को स्थगित कर दिया गया। उधर प्रान्तीय सभाओं का प्रयत्न पूर्ण न हुआ। फलत. वेदों के सरल भाषानुवाद का कार्य जैसा का तैसा रह गया।

आर्य-विवाह ऐक्ट

श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी के अवसर पर, आर्य सम्मेलन के अधिवेशन में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज द्वारा प्रस्तावित होकर निम्नलिखित ठहराव स्वीकृत किया गया था ––

"यह आर्य सम्मेलन निश्चय करता है कि शीघ्र ही लैजिस्लेटिव असेम्बली में आर्य विवाह बिल को उपस्थित कराया जावे ताकि आर्यसमाज के प्रचार में जो बाधाएं उपस्थित होती है, उन का निवारण हो सके और आर्य जनता में गुण, कर्म और स्वभावानुसार विवाह आदि संस्कारों का प्रचार हो सके।"

सार्वदेशिक सभा ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया और मेरठ के असेम्बली सदस्य श्री चौधरी मुख्तार सिह जी को प्रेरणा की कि वे बिल को असेम्बली द्वारा स्वीकृत कराने का कार्य अपने जिम्मे ले। बिल तैयार हो जाने पर चौधरी जी ने २० फरवरी, १९२३ को उसे असेबली मे उपस्थित कर दिया। प्रस्ताव तो यह था कि बिल को सिलेक्ट कमेटी के सुपुर्द किया जाय परन्तु सरकारी सदस्यों के जोर देने पर उसे लोक मत जानने के लिए प्रसारित करने का निश्चय हुआ।

यहां तक पहुंच कर बिल का रास्ता कुछ समय के लिए बन्द हो गया क्योंकि असहयोग आन्दोलन के कारण कांग्रेसी सदस्यो ने असेम्बली का परित्याग कर दिया। वह द्वार तब खुला जब १९३५ में श्री घनश्यामसिंह गुप्त मध्य प्रदेश की ओर से असेंबली के सदस्य चुने जा कर दिल्ली आ गये। सभा ने बिल की किश्ती को पार लगाने का काम गुप्त जी को सौपा, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। यह बिल सिलेक्ट कमेटी से हो कर १९३७ में श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त द्वारा भारतीय धारा सभा में प्रस्तुत हुआ और काफी लम्बे वाद-विवाद के पश्चात् स्वीकार हुआ। इस कानून का मुख्य आदेश-रूपी भाग निम्नलिखित है––

"चाहे हिन्दू कानून, प्रथा अथवा रिवाज कुछ ही हो, आर्यसमाजी पुरुष और स्त्री का कोई विवाह जो इस कानून के बनने से पूर्व अथवा पीछे आर्यसमाज की विधि से सम्पन्न हुआ हो, फिर चाहे वह पुरुष और स्त्री भिन्न-भिन्न जातियों अथवा उपजातियों के हो, या विवाह से पहले वह किसी अहिन्दू धर्म के मानने वाले हो, नियम विरुद्ध नही माना जायगा।"

इस कानून के बनने से न केवल आर्यसमाजियो की अपितु सारे हिन्दू समाज की एक बहुत कठिन समस्या हल हो गई और समाज-सुधार का द्वार खुल गया।

मनुष्य-गणना

यहा हमने सार्वदेशिक सभा की कुछ मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। वस्तुत. आर्य जाति के सामने जिस समय जो समस्या आती रही, सार्वदेशिक सभा उस के समाधान करने का क्रियात्मक प्रयत्न करती रही। १९३१ की मनुष्य-गणना के समय सार्वदेशिक सभा की ओर से यह आन्दोलन किया गया कि वह धर्म के खाने में वैदिक और जाति खाने मे आर्य लिखायें। इस विषय पर सभा का मनुष्य-गणना के अधिकारियों

से पत्र-व्यवहार हुआ। मनुष्य-गणना वाले जाति के खाने में आर्य लिखने के लिए तो तैयार नहीं हुए, परन्तु यह मान गये कि यदि कोई व्यक्ति अपनी जात (Castc) न लिखाना चाहे तो उस से आग्रह न किया जाय और जाति का खाना खाली छोड़ दिया जाय। जिन आर्यजनों ने मनुष्य-गणना के समय अपनी आर्य जाति बतलाई, उन में से कुछ एक को छोड़कर शेष सब के जात के खाने खाली छोड़ दिये गये। जिन लोगों ने बहुत आग्रह किया या क्लर्क लोग जिन के रौब में आ गये, उनकी आर्य जाति लिख ली गई।

सातवां अध्याय

महात्मा नारायण स्वामी जी

यदि हम आर्यसमाज की जीवन-यात्रा के मार्ग पर व्यक्तियों के नाम के साइन-बोर्ड लगाना चाहें तो पहला साइनबोर्ड महर्षि दयानन्द के नाम का लगेगा, दूसरा आर्य-पथिक पंडित लेखराम जी के नाम का, तीसरा स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम का और चौथा महात्मा नारायण स्वामी जी के नाम का लगना चाहिए। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के बलिदान के पश्चात् लगभग २० वर्षों तक जिस कर्णधार ने आर्यसमाज की नौका के चप्पू को सम्भाले रखा वे महात्मा नारायण स्वामी जी थे। उनके समय में आर्यसमाज पर कई बड़े संकट आये। स्वामी जी ने उन सब संकटों को युद्धपंक्ति के आगे खड़े होकर अपनी छाती पर लिया। आप का नाम आर्यसमाज के उन आधा दर्जन महापुरुषों में गिना जायेगा, जो आर्यसमाज के वर्तमान रूप के निर्माता समझे जा सकते हैं।

श्री नारायण स्वामी जी के जीवन के विकास की एक विशेषता है। कुछ लोग जन्म से ही अपने माथे पर महापुरुषता की रेखा लेकर उत्पन्न होते हैं। उन की साधारण शक्तियां बाल्यकाल से ही भासित होने लगती हैं। पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी वैसे जन्मना महापुरुषों के एक दृष्टान्त थे। वे यदि चिर काल तक जीवित रहते तो उनका आर्यसमाज में अथवा सार्वजनिक जीवन की किसी भी अन्य शाखा में ऊंचे पद पर पहुंचना अवश्य-म्भावी था। श्री नारायण स्वामीजी महाराज के जीवन की यह विशेषता है कि उसके निर्माण में नैसर्गिक रेखाओं का भाग कम और अध्यवसाय, परिश्रम तथा सत्यनिष्ठा का भाग अधिक था। स्वामी जी ने स्वयं अपने को नेतृत्व के लिए तैयार किया। उन्हें हम ठीक अर्थों में स्वनिर्मित नेता कह सकते हैं।

स्वामी जी का बचपन का नाम नारायणप्रसाद था। उन के पिता बाबू सूर्य-प्रसाद जी सिकन्दराराऊ (उत्तर प्रदेश) में सब रजिस्टरार थे। कायस्थ होने से उनके कुल का पुराना पेशा सरकारी नौकरी ही था। नारायण प्रसाद जी का जन्म १९२६ विक्रमी (१८६९ ईस्वी) में हुआ। आपने प्रारम्भिक शिक्षा एक मौलवी से प्राप्त की थी। मौलवी साहब उर्दू और फारसी पढ़ाते थे। नारायणप्रसाद जी की गिनती अपनी श्रेणी के मध्यम योग्यता के अच्छे लड़कों में से थी। अध्यापक लोग आपकी फारसी की योग्यता से बहुत प्रसन्न थे।

नारायणप्रसाद जी अलीगढ़ के गवर्नमेंट हाई स्कूल की नवीं क्लास में पढ़ते ही थे कि उनके पिता की अकस्मात् मृत्यु हो गई। इस घटना ने उनकी शिक्षा के मार्ग में बाधा डाल दी। उन्हें पढ़ना छोड़कर २२ साल की अवस्था में ही नौकरी करनी पड़ी। वे

मुरादाबाद के कलक्टर के दफ्तर में क्लर्क पद पर नियुक्त हो गये। उनका विवाह २३ वर्ष की अवस्था मे हो गया था। स्वामी जी ने अपनी आत्म-कथा मे लिखा है कि "उस समय की सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा के अनुसार मुझे पांच वर्ष तक परिवार से अलग रहना पड़ा।" उसके पश्चात् आपका संकल्प था कि चालीस वर्ष की अवस्था तक गृहस्थ रहकर उसके पश्चात् वानप्रस्थ और पचास साल की अवस्था मे संन्यास ले लेंगे। अकस्मात् चालीसवां वर्ष प्रारम्भ ही हुआ था कि आपकी सहधर्मिणी संसार से विदा हो गईं। उसके पश्चात् आपका जीवन वस्तुतः एक वीतराग का जीवन ही रहा।

मुरादाबाद मे रहते हुए आपका कई आर्य पुरुषो से मेलजोल हो गया। सत्संग का फल यह हुआ कि आपने सत्यार्थप्रकाश पढना आरम्भ कर दिया। सबसे पहले आपको जिस वस्तु ने अपनी ओर आकृष्ट किया, वह आर्यसमाज के दस नियम थे। उनकी सरलता और ऊंचाई पर आप मोहित हो गये। यहीं से आपके आर्यसामाजिक जीवन का सूत्रपात हुआ। विश्वास की दृढता और विश्वास के अनुसार कार्य करने में मुस्तैदी, ये दो विशेषताएं मुन्शी नारायणप्रसाद जी की पहले से ही थीं। आर्यसमज के सिद्धान्तो पर विश्वास जमते ही आप सक्रिय आर्यसमाजी बन गये। मुरादाबाद के आर्यसमाज का बहुत सा काम आपने संभाल लिया। आर्यसमाज का कार्य करते हुए आपको अपनी एक न्यूनता अखरी। सस्कृत का ज्ञान न होने से धर्म ग्रन्थों के पढ़ने और यज्ञादि के करने-कराने मे कठिनाई होती थी। मुरादाबाद मे पंडित कल्याणदत्त नाम के एक संस्कृत के विद्वान् थे। आप उनसे अष्टाध्यायी पढने लगे।

जब संयुक्त प्रान्त मे आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हो गई और नियम-पूर्वक काम चलने लगा तो एक ऐसे अधिकारी की आवश्यकता हुई, जो लिखा पढ़ी कर सके और प्रबन्ध को संभाल सके। सबकी दृष्टि मुन्शी नारायणप्रसाद जी पर पड़ी। आपने सहर्ष साथियों की बात मान ली और प्रतिनिधि सभा के कार्यालय का काम अपने जिम्मे ले लिया। उन दिनो आप "मुहर्रिक" नाम के उर्दू साप्ताहिक पत्र के अवैतनिक सम्पादक भी थे। इन सभी कामो में लिखना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि आपको लेखन-रोग (Writing disease) हो गया। यह रोग ऐसा होता है कि पहले लिखने मे दायें अंगूठे मे पीड़ा होती है। यदि लिखना जारी रखा जाय तो यह पीड़ा सारे हाथ मे फैल कर कन्धे तक अपना प्रभाव जमा लेती है। नारायणप्रसाद जी ने जब दाहिने अंगूठे मे पीड़ा अनुभव की तो सव्यसाची का अनुकरण करते हुए बायें हाथ से लिखना आरम्भ कर दिया। लिखने का बहुत सा काम बाए हाथ से करने लगे। विश्राम पाकर दाहिना अंगूठा धीरे-धीरे बहुत कुछ नीरोग हो गया। तो भी आपने बायें हाथ से लिखने का अभ्यास नही छोड़ा।

१८९६ में नारायणप्रसाद जी आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री चुने गये। थोड़े ही समय में आप सभा के लिये इतने आवश्यक हो गये कि सभा का कार्यालय ही मुरादाबाद मे पहुंच गया। अधिवेशन कहीं हो, स्थायी कार्यालय मुरादाबाद मे ही रहने लगा।

उन दिनों नारायणप्रसाद जी के सामने एक विषम समस्या उपस्थित हो गई। बुन्देलखण्ड मे अकाल पड़ जाने के कारण सरकार को कुछ ऐसे आदमियो की आवश्यकता

अनुभव हुई, जो उद्यमी होने के साथ-साथ पक्के ईमानदार हों। नारायणप्रसाद जी मे दोनों गुण विद्यमान थे। मुरादाबाद के कलक्टर ने आपको बुलाकर पूछा कि क्या आप-बुन्देलखंड जाने को तैयार है। आर्थिक दृष्टि से नया पद आकर्षक था परन्तु उससे आर्य-समाज के कार्य को हानि पहुंचने की संभावना थी। कलक्टर को आज्ञा थी कि मुन्शी जी नई नियुक्ति को धन्यवादपूर्वक स्वीकार कर लेंगे। परन्तु पहले तो आपने सोचने के लिए एक दिन का अवकाश मागा और दूसरे दिन बुन्देलखंड जाने से इन्कार कर दिया। साहब को उस इन्कार पर आश्चर्य हुआ, परन्तु जब उसे मुन्शी जी ने पूरा कारण बताया तब वह सन्तुष्ट हो गया।

वह आर्यसमाज के विकास का प्रारम्भ काल था। सुधारक समाज के पहले अनुयायियों को प्रायः बहुत सी अग्नि-परीक्षाओ में से होकर गुजरना पड़ता था। सबसे कड़ी परीक्षा होती है, सामाजिक बहिष्कार की। हिन्दू समाज मे उस समय बहिष्कार का यह स्वरूप होता था कि सुधारको को जाति से बाहर कर दिया जाता था और हुक्का-पानी बन्द करके उनके बच्चों के विवाह आदि सम्बन्धों के रास्ते रोक दिये जाते थे। नारायण-प्रसाद जी को भी उन सब परीक्षाओं में से गुजरना पड़ा। मुरादाबाद मे आपने बहुत सी शुद्धियां करवाई थीं। आपने प्रस्ताव किया कि केवल नाम मात्र की शुद्धि से सतोष न करके शुद्ध हुए व्यक्ति के हाथ से सब आर्य जनो को पानी पीना चाहिए। इस पर आर्य सभासदों में भयानक वावेला मच गया। म्लेच्छ के हाथ से पानी पीना--यह तो बिलकुल नई बात थी। बहुत से सभासद् त्याग पत्र देने को तैयार हो गये। परन्तु कुछ लोग मुन्शी जी के साथ सहमत हो गये और उन्होंने ईसाई से शुद्ध हुए पंडित श्रीराम के हाथ से पानी पी लिया। इस पर हिन्दू-समाज ने म्लेच्छ के हाथ से पानी पीने वाले नास्तिकों पर सामाजिक दमन के तीर फेंकने शुरू कर दिये। कहारों को पानी भरने से मना कर दिया। मेहतरो से कहा गया कि उनके घर की सफाई मत करो। उनके परिवार के लोगों को कुएं पर चढ़ने से रोक दिया गया। ये सब सामाजिक अत्याचार मुन्शी जी ने और उनके साथियों ने बड़े धैर्य से सह लिये। सरकारी अफसरों ने चाहा कि सामाजिक अत्याचारों के विरुद्ध अदालत में रपट लिखाई जाय परन्तु मुन्शी जी ने स्पष्ट उत्तर दे दिया कि स्वामी दयानन्द जी के अनुयायी अत्याचार सह लेंगे, अपने भाइयों के विरुद्ध सरकार का दरवाजा न खटखटाएंगे। इस उत्तर से प्रभावित होकर स्थानीय अधिकारियों ने स्वय उत्पात मचाने वालो को कठोर चेतावनी देकर ठंडा कर दिया। उसके पश्चात् आर्यसमाज का कार्य निर्विघ्न होने लगा।

१९०२ में पजाब प्रान्तीय गुरुकुल के हरिद्वार के समीप कागड़ी ग्राम मे आ जाने पर पश्चिमोत्तर प्रदेश के आर्यसमाजियों मे भी गुरुकुल स्थापित करने की चर्चा आरम्भ हो गई। १९०५ में सिकन्दराबाद में एक छोटा सा गुरुकुल खुल गया। २ वर्ष बाद आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल को सिकन्दराबाद से फर्रुखाबाद मे परिवर्तित कर दिया। परन्तु वहां का वातावरण भी गुरुकुल के लिए अनुकूल नही था। सभा गुरुकुल के लिए उचित स्थान की तलाश कर ही रही थी कि हाथरस के राजा महेन्द्रप्रताप जी ने वृन्दावन

के समीप अपना एक बाग गुरुकुल के लिये दान दे दिया। फलतः १९११ के अन्तिम महीने में गुरुकुल वृन्दावन में पहुंच गया।

जिस समय यह बाग गुरुकुल को दान में मिला, उस समय उसमें झाड़-झखाड़ भरे हुए थे और रहने योग्य कोई स्थान नहीं था। सभा ने निश्चय किया कि १९११ के दिसम्बर मे गुरुकुल का जो उत्सव हो, वह वृन्दावन की भूमि मे ही किया जाय। समय बहुत कम था और काम अत्यधिक। इतना काम और किसी के बलबूते का नहीं था। सभा को निश्चय था कि मुन्शी नारायणप्रसाद जी ही इस किश्ती को पार लगा सकेंगे। आप सच्चे कर्मयोगी थे। जमकर गुरुकुल भूमि मे बैठ गये और थोड़े से दिनों मे ही चमत्कार कर दिखाया। उत्सव से पूर्व बाग की सफाई हो गई। ब्रह्मचारियों के रहने योग्य मकान बन गये और उत्सव की व्यवस्था भी भली प्रकार हो गयी। उन दिनों नया स्थान होने के कारण वहां चोरो का डर बहुत रहता था। उसे दूर करने के लिए मुन्शी नारायणप्रसाद जी जिन्हें अब असाधारण सेवाओ के कारण आर्य जनता ने महात्मा की पदवी दे दी थी बन्दूक कन्धे पर रखकर रात-रात भर पहरा दिया करते थे। आप तब गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पद पर आरूढ़ थे। गुरुकुल का कार्य करने के लिए आपने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया था।

महात्मा नारायणप्रसाद जी ने सन् १९१३ मे गुरुकुल के कार्य को संभाला था। आठ वर्ष तक अथक परिश्रम करके आपने उसे एक सुव्यवस्थित संस्था का रूप दे दिया। आवश्यक इमारतें बन गयी, पठन-पाठन का क्रम विधिपूर्वक जारी हो गया और आर्थिक व्यवस्था भी बहुत कुछ ठीक हो गई। सन् १९१९ की वसन्त पंचमी पर महात्मा नारायण स्वामी जी की आयु का पचासवां वर्ष समाप्त हो गया। आपका संकल्प था कि आप पचास वर्ष की आयु होने पर विरक्ति धारण कर लेंगे। वसन्त पंचमी पर आप गुरुकुल को छोड़कर एकान्तवास के लिए विदा हो गये। इससे पूर्व दिसम्बर १९१८ के वार्षिकोत्सव पर आर्य प्रतिनिधि सभा और आर्य जनता की ओर से आपको एक प्रेमपूर्ण अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया गया था।

गुरुकुल से निवृत्त होकर महात्मा नारायण स्वामी जी ने अल्मोड़े के समीप रामगढ़ में एकान्त स्थान देखकर एक आश्रम की स्थापना की जिसका नाम नारायणाश्रम रखा गया। वहां बैठकर आपने तपश्चर्या और स्वाध्याय द्वारा अपने को संन्यास आश्रम के लिए तैयार किया और सन् १९२२ के मई मास (वैशाख १९७९) मे संन्यास ले लिया। आपने अपना नाम नारायण स्वामी रखा। आचार्य का कार्य स्वामी सर्वदानन्द जी ने किया।

संन्यास लेने के पश्चात् आप सर्वात्मना आर्यसमाज की सेवा मे लग गये। १९२३ मे स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के त्याग-पत्र देने पर आप सार्वदेशिक सभा के प्रधान चुने गये। इस पद से आपने सबसे अधिक महत्वपूर्ण और स्मरणीय जो कार्य किया उसका मथुरा की श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के प्रकरण मे विस्तार से वर्णन हो चुका है। मथुरा के बाद टंकारा में जन्म शताब्दी मनाई गई और फिर अजमेर मे श्रीमद्दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दी का महोत्सव हुआ। सार्वदेशिक सभा के प्रधान की हैसियत से इन

दोनों महोत्सवों की सफलता में श्री नारायण स्वामी जी का मुख्य भाग रहा। सार्वदेशिक सभा के कार्यालय को और अर्थ विभाग को व्यवस्था में लाने की ओर स्वामी जी का प्रारम्भ से ही अधिक ध्यान था। प्रारम्भिक जीवन के संस्कारो के कारण प्रबन्धसम्बन्धी कार्यो मे उनका प्रवेश भी अत्यधिक था। यह बात असंदिग्ध है कि सार्वदेशिक सभा के आन्तरिक प्रबन्ध को ठीक रखने तथा उसे सुव्यवस्थित रूप देने का अधिकतर श्रेय श्री नारायण स्वामी जी महाराज को ही है।

इन प्रबन्धसम्बन्धी कार्यो के साथ-साथ आपका वाणी तथा लेख द्वारा प्रचार निरन्तर जारी रहता था। उन दिनों शायद ही आर्यसमाज का कोई बडा उत्सव होता हो, जिसमें स्वामी जी का व्याख्यान न होता हो। आपके व्याख्यान प्रायः गम्भीर और विचारपूर्ण होते थे। आपने धर्म विषय पर कई ग्रन्थ भी लिखे।

१९३८ मे आर्यसमाज को एक महान् धर्मयुद्ध मे कूदना पड़ा। उसमे आर्य समाज की शान्तिमयी सेना के प्रधान सेनापति श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज थे। उस युद्ध का वृत्तान्त सुनाने से पहले हमने यह आवश्यक समझा है कि जिस महारथी के नेतृत्व में आर्यसमाज ने सफलता प्राप्त की, उसके पूर्व जीवन की एक झाकी दिखा दी जाय। श्री नारायण स्वामी जी का सार्वजनिक जीवन इतना लम्बा और क्रियात्मक रहा था कि जब कठोर परीक्षा की घडी आई तब वे उसके लिए सर्वथा तैयार हो चुके थे।

आठवाँ अध्याय

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब की अर्द्ध शताब्दी

१९२७ से १९३७ तक के दस वर्षों में पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा के जीवन में जो सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण प्रदर्शन किया गया वह था उसकी अर्द्ध शताब्दी का महोत्सव। सन् १९३२ के नवम्बर मास में लाहौर में आर्य प्रतिनिधि सभा का एक विशेष अधिवेशन हुआ, जिसमें यह निश्चय किया गया कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अर्द्ध शताब्दी मनाई जाय। सभा की स्थापना १८८५ मे हुई थी। १९३५ में उसके जीवन के पचास वर्ष पूरे हो जाते थे। सभा की अंतरंग सभा ने १९३४ के मई मास मे घोषणा की कि अर्द्ध शताब्दी का उत्सव १९३५ के नवम्बर अथवा दिसम्बर मास में किया जायेगा। सभा ने इस कार्य की पूर्ति के लिए ५०००) रुपये की और स्थिर कार्यों के लिए ढाई लाख रुपयों की अपील प्रकाशित की।

१९३२ में अर्द्ध शताब्दी मनाने के प्रारम्भिक प्रस्ताव स्वीकार होने के समय से ही पंजाब की आर्य जनता मे काफी उत्साह उत्पन्न हो गया था। आशा बन गई थी कि न केवल महोत्सव बड़े समारोह से मनाया जायेगा, उस अवसर पर वेद प्रचार तथा अन्य कार्यों के लिए इतना धन भी इकट्ठा हो जायेगा कि भविष्य मे प्रचार कार्य को बढाया और सुचारु रूप से चलाया जा सके। अंतरंग सभा ने १९३४ के अक्तूबर मास में अर्द्ध शताब्दी महोत्सव की तैयारी के लिए निम्नलिखित सज्जनो की एक उपसभा बनाई :—

१ आचार्य रामदेव जी प्रधान,
२ महाशय कृष्ण जी,
३ पंडित विश्वम्भरनाथ जी,
४ प० भीमसेन जी विद्यालंकार,
५. पं० ठाकुरदत्त जी,
६ प्रो० शिवदयालु जी,
७. पं० चमूपति जी,
८. पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार,
९. पं० ज्ञानचन्द जी,
१०. ला० गुरुदित्ताराम जी,
११ श्री रा० सा० अमृतराय जी।

निश्चय हुआ था कि महोत्सव १९३५ के बडे दिनों की छुट्टियों के दिनों मे मनाया जायेगा। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'—भले कामों मे प्राय बहुत से विघ्न आया करते

है। महोत्सव के प्रारम्भ मे भी एक बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हुई। उन दिनों सामान्यतः देश भर में और विशेष रूप से पंजाब में सिक्खों और मुसलमानो की परस्पर तनातनी बहुत बढ़ रही थी। उसका कारण लाहौर के शहीदगंज का आन्दोलन था। शहर में दफा १४४ लगी हुई थी। महोत्सव का आरम्भ धार्मिक जलूस से होने वाला था। उसके लिए अनुमति नहीं मिल रही थी। सभा के अधिकारियों का शिष्टमंडल यह आश्वासन देने के लिए डिप्टी कमिश्नर से मिला कि जलूस धार्मिक होगा, इस कारण कोई अड़चन नहीं उत्पन्न होगी। परन्तु कोई लाभ न हुआ। सरकार अपनी बात पर अड़ी रही। फलतः महोत्सव समिति को उस समय जलूस तथा अन्य सब कार्यवाही स्थगित कर देनी पड़ी। प्रान्त भर के आर्यसमाजो मे स्थानीय सरकार के दुराग्रह पर घोर असंतोष प्रकट किया गया।

सभा ने स्थगित उत्सव को अप्रैल १९३६ की १० से १३ तक की तारीखों में मनाने का निश्चय किया। परन्तु वस्तुत: उसका मंगलाचरण ३ अप्रैल से ही आरम्भ हो गया। सबसे पहले ब्रह्मपारायण यज्ञ हुआ। यह यज्ञ प्रतिदिन प्रातःकाल उत्सव के आरम्भ मे होता रहा। शेष समय में व्याख्यानों का सिलसिला बराबर जारी रहा। ४ अप्रैल को रात्रि के ८ बजे सभा के प्रधान आचार्य रामदेव जी ने रेडियो पर एक भाषण ब्राडकास्ट किया, जिसका आशय निम्नलिखित था :—

"भाइयो तथा बहिनो! आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जो कि पंजाब, काश्मीर तथा अन्य पंजाब की रियासतो, उत्तर पश्चिमीय प्रान्त और ब्रिटिश बिलोचिस्तान की आर्य समाजो की प्रतिनिधि सभा है, अब अपना पचासवां वर्ष पूर्ण कर रही है। इसका इन प्रदेशों में ५०० से अधिक आर्यसमाजों पर शासन है।

"आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने ऐसे समय में जन्म लिया जबकि लोग प्रकृतिवाद की ओर झुक रहे थे और वेदादि शास्त्रों को जंगलियों की वार्ताएं समझते थे। ऋषि ने उन आधुनिक विचारो के प्रति आन्दोलन किया और लोगों को ईश्वर, जीव और वेद के सत्य स्वरूप को बताया। ऋषि के आने से लोगों के विचारों में एक प्रकार की क्रान्ति सी आ गई। मैकटरलिक जैसे दार्शनिक कहने लग गये है कि वेदों की गम्भीर समस्याओं को साधारण लोग नही समझ सकते। रोमां रोला का कहना है कि महर्षि ने हिन्दू जाति मे नवजीवन का संचार किया है।

"इस जाति के लोग पहले जहां अंग्रेजों के पास उनकी संस्कृति का पाठ पढ़ने के लिए जाया करते थे, वे अब ऋषि की कृपा से अपनी पैतृक संस्कृति पर गर्व करना सीख गये है। ऋषि ने लोगों को सांस्कृतिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता के विचार दिये और राजनीतिक शब्द-शास्त्र को "स्वराज्य" शब्द दिया। आजकल क्या दास, क्या विधवाये, क्या पठित स्त्रिया और क्या बालक और बालिकाए, सभी आर्यसमाज, जिसने इतना उपकार किया है, के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है।

"यह सभा गुरुकुल कांगड़ी, कन्या गुरुकुल देहरादून, वेद प्रचार निधि और दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर को चला रही है। कन्या महाविद्यालय जालन्धर तथा डी० ए०

वी० कालेज लाहौर इस सभा ने ही स्थापित किये थे। यह सभा उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर जा रही है।

"ईश्वर करे कि ग्राम-सुधार, वेद भाष्य, मैडिकल मिशन और आदर्श नगर—इन आयोजनों को, जिनको लेकर सभा अपनी स्वर्ण जयन्ती मना रही है, भारतीयों तथा अन्य भारत-प्रशंसक बाहर के लोगो का नैतिक तथा आर्थिक सहयोग प्राप्त हो।

"वह परब्रह्म परमेश्वर हमें आशीर्वाद दे कि हम उसके यश को बढ़ाने वाले बनें।"

५ अप्रैल से ब्रह्म-पारायण-यज्ञ आरम्भ हुआ। उसके पश्चात् उपदेश तथा व्याख्यान होते रहे। मुख्य कार्यक्रम १० अप्रैल से मुख्य पंडाल में प्रारम्भ हो गया। सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री नारायण स्वामी जी ने ओ३म् की पताका की आरोहण-विधि सम्पन्न की।

११ अप्रैल के सायंकाल वह विराट् जलूस निकाला गया, जिसे लाइसेंस न मिलने के कारण १९३५ के दिसम्बर मास में स्थगित करना पड़ा था। जलूस बहुत शानदार था। सहस्रों नर-नारियो ने तथा आर्यसमाज के गुरुकुलों, स्कूलों, कन्या पाठ-शालाओं और अनाथालयो के छात्र-छात्राओं ने सहस्रों की संख्या मे भाग लिया। १० से १३ तक संकीर्तनो, व्याख्यानो और सम्मेलनों का ताता लगा रहा। जो सम्मेलन हुए, उनमें से आर्य-सम्मेलन, शिक्षा-सम्मेलन, ब्रह्मचर्य-सम्मेलन, व्यायाम-सम्मेलन आदि मुख्य थे। एक धर्म-चर्चा-सम्मेलन भी हुआ, जिसमें प्रश्नोत्तर किये गये। पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर की अध्यक्षता में वेद-सम्मेलन हुआ, जिसमें पंडित चन्द्रमणि विद्या-लंकार, पंडित विश्वनाथ विद्यालंकार और पंडित धर्मदेव विद्यावाचस्पति आदि के महत्वपूर्ण व्याख्यान हुए। आर्य-सम्मेलन की अध्यक्षता श्री घनश्यामसिंह गुप्त ने, शिक्षा-सम्मेलन की अध्यक्षता महात्मा हंसराज जी ने और ब्रह्मचर्य-सम्मेलन की अध्यक्षता श्री विनोबा भावे जी ने की।

आर्य-वृद्ध-सम्मेलन पंजाब के अर्द्ध शताब्दी महोत्सव की विशेषता थी। इसमें उन्हीं आर्य जनों ने भाग लिया, जिनके लिये वृद्ध शब्द का प्रयोग हो सकता था। वक्ताओं में लाला ज्ञानचन्द जी, लाला केदारनाथ थापर, लाला लभूराम नैयर, दीवान रत्नचन्द्र हड़ाली निवासी तथा लाला चिरंजीलाल जी श्रीनगर निवासी के व्याख्यान हुए।

१२ अप्रैल को हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री प्रेमचन्द जी के सभापतित्व मे आर्यभाषा-सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में जो प्रस्ताव स्वीकार किये गये, उनमें आर्य जनों को प्रेरणा की गई थी कि वे अपने बच्चों को हिन्दी पढ़ायें और स्वयं भी हिन्दी में ही पत्र-व्यवहार करें। १३ अप्रैल के प्रातः काल महिला-सम्मेलन हुआ। इसकी सभानेत्री कन्या गुरुकुल देहरादून की आचार्या श्रीमती विद्यावती सेठ थीं। सम्मेलन में कई उपयोगी प्रस्ताव स्वीकार किये गये। १३ अप्रैल के मध्याह्नोत्तर व्यवसाय-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। इस सम्मेलन के सभापतित्व के लिए बम्बई के श्री सेठ शूरजी वल्लभदास को निर्वाचित किया गया था, परन्तु वे किसी कारण से लाहौर नही पहुंच सके। उनका भाषण पहुंच गया था। वह पढा गया। आपने अपने भाषण के अन्त मे यह सुझाव दिया

था कि आर्यसमाज की एक उपशाखा 'व्यवसाय आर्यसमाज' के नाम से चलाई जाय, जो आर्यसमाजियों को व्यवसाय में उन्नति करने मे सहायक हो। प्रस्तावों में आर्य-नौजवानों से परिश्रम द्वारा व्यवसाय में सफल होने और शिल्प की ओर अधिक ध्यान देने की प्रेरणा की गयी थी। अन्त मे ग्राम-वेद-प्रचार-सम्मेलन डाक्टर भक्तराम सहगल के सभापतित्व मे हुआ। उसमें आर्य सभाओं से अनुरोध किया गया था कि वे अपने यहां ग्राम प्रचार को पुष्टि देने के लिए ग्राम वेद प्रचारिणी सभाओ का संगठन करे, और उनका सम्बन्ध ग्राम वेद प्रचारिणी सभा लाहौर के साथ स्थापित किया जाय ताकि ग्राम प्रचार को पुष्टि मिल सके।

महोत्सव की समाप्ति पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान आचार्य रामदेव जी ने अन्तिम भाषण दिया। उन्होंने बतलाया कि "यह एक ऐसी अर्द्ध शताब्दी है, जो भारत में पहली बार इस तरह सफल हुई है। संगठन की स्मृति मे इतनी शानदार जयन्ती कभी नही मनायी गयी। अमेरिका के बिना और किसी देश मे ऐसी प्रणाली नही है। अन्त मे आपने कहा, मैं आप लोगों का धन्यवाद करता हूं कि आप इतनी संख्या मे महर्षि दयानन्द के संगठन की शान बढाने के लिए एकत्र हुए है। महात्मा हंसराज जी सभा के प्रधान थे, रायबहादुर बद्रीदास जी सभा के प्रधान रह चुके है, मैंने इन महानुभावों के चरणों मे बैठकर सेवा करने का ढंग सीखा है। मै उन्हें प्रणाम करता हूं।" समाप्ति पर ईश्वर का धन्यवाद करके आपने महोत्सव की समाप्ति की सूचना दी।

अर्द्ध शताब्दी के उत्सव पर एक विशेष बात यह हुई कि प्रतिनिधि सभा के उस समय के प्रधान आचार्य रामदेव जी और मंत्री पंडित भीमसेनजी विद्यालंकार की ओर से भूतपूर्व प्रधान लाला रामकृष्ण जी की सेवा में अभिनन्दन पत्र पेश किया गया, जिसका उपस्थित आर्य जनता ने समर्थन किया। लाला रामकृष्ण जी १२ वर्षो तक सभा के प्रधान रहे। उन १२ वर्षो में सभा मे न जाने कितने तूफान उठे और कितने भूकम्प आये। रामकृष्ण जी उन सब तूफानों मे चट्टान की तरह अडिग रहे। उनकी गम्भीरता और दूरदर्शिता असीम थी। उनके प्रति आभार-प्रदर्शन करके पंजाब की जनता ने शुभ कार्य ही किया।

दस वर्षों में प्रगति

इस इतिहास के तीसरे खण्ड में हम १९२६ ईस्वी के अन्त मे आर्य समाज की पंजाब में जो दशा थी, उसका विवरण दे आये है। १९२७ से १९३७ तक के दस वर्षो में पंजाब प्रान्त और पंजाब के आर्यसमाजों मे प्रचार तथा संगठन की जो उन्नति हुई उसे संतोषजनक कहा जा सकता है। १९१० के पश्चात् से हरियाना प्रान्त आर्यसमाज का विशेष कार्य-क्षेत्र बन गया था। वहा के निवासियो में से अधिकतर लोगों के दो पेशे हैं—कृषि और युद्ध। वे या तो खेती करते है अथवा पुलिस या सेना मे भरती हो जाते है। वर्ण व्यवस्था की दृष्टि से जाट, गूजर और अहीर, क्षत्रिय और वैश्य गुण-कर्मों के मिश्रण हैं। वे लोग परिश्रमी, साहसी और भावुक होते है। उनके लिए रूढ़ियों को तोड़ना बहुत आसान है। जब रोहतक और हिसार मे आर्यसमाज का प्रचार आरम्भ हुआ तो उसने

बहुत शीघ्र वेग पकड़ लिया । कुछ ही वर्षों में वे जिले आर्यसमाज के गढ़ बन गये । हरियाने के इलाके में प्रचार के अध्यक्ष पंडित ब्रह्मानन्द जी थे । उन दिनों वे जाट-गुरु के नाम से मशहूर हो गये थे । श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के प्रति हरियाना निवासियों की बहुत गहरी श्रद्धा थी । उनके बलिदान का प्रभाव भी उन पर बहुत पड़ा । यही कारण है कि मूलो और मलकानो की शुद्धि का वेग १९२७–१९३७ के मध्यकाल मे तीव्र हो गया ।

ग्राम-प्रचार की आवश्यकता को अनुभव करते हुए १९२८ में लाहौर मे ग्राम-प्रचार मडली की स्थापना हो गई, जिसका प्रभाव प्रान्त के अन्य जिलों पर भी पड़ा । प्रचार के कार्य को प्रबल बनाने के लिए जिलो में मंडलो की स्थापना की गई, जिनका उद्देश्य यह था कि प्रान्त को प्रचार के ऐसे हल्कों मे बांट दिया जाय, जिनमें स्थायी उप-देशको, और प्रचारकों द्वारा जहां प्रचार कार्य हो सके, वहा आर्यसमाजों की साप्ताहिक सत्संग तथा सस्कारों एवं यज्ञादि की आवश्यकतायें भी पूरी होती रहें ।

यह निर्देश पहले किया जा चुका है कि पं० गुरुदत्त जी की स्मृति के रूप में लाहौर में गुरुदत्त-भवन का निर्माण हो गया था । प्रति वर्ष आवश्यकता के अनुसार उसमे कुछ न कुछ वृद्धि हो जाती थी । ज्यों-ज्यो नई-नई संस्थाए बनती गयीं, गुरुदत्त-भवन से सम्बद्ध इमारतो मे भी वृद्धि होती गई । उपदेशक विद्यालय तथा विद्यार्थी आश्रम की स्थापना होने पर उन संस्थाओ के योग्य कमरे तैयार हो गये । गुरुदत्त भवन में एक धर्मार्थ-चिकित्सालय और अपना डाकखाना भी खुल गया । धीरे-धीरे गुरुदत्त भवन लाहौर के सार्वजनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बनता जा रहा था ।

उन दिनो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से दो मासिक पत्र निकलते थे, हिन्दी में 'आर्य' और अंग्रेजी मे 'वैदिक मैगजीन' । १९२६ मे 'आर्य' मासिक से साप्ताहिक हो गया । 'वैदिक मैगजीन' जिसका प्रारम्भ पंडित गुरुदत्त जी ने किया था, उनकी मृत्यु पर बन्द हो गया था । उसे गुरुकुल मे पुनर्जन्म मिला । जब आचार्य रामदेव जी गुरुकुल छोड़कर लाहौर पहुंच गये तो 'वैदिक मैगजीन' भी लाहौर से ही निकलने लगा । इन दोनों पत्रों में से पहले का प्रचार अधिकतर प्रान्त में था, और 'वैदिक मैगजीन' के ग्राहक देश भर में फैले हुए थे । उसकी बहुत सी प्रतियां विदेशों में भी जाती थी ।

प्रतिनिधि सभा के अन्तर्गत कई संस्थाएं थी, जो इन वर्षो में निरन्तर उन्नति करती रही । दयानन्द सेवा-सदन का उद्देश्य समाज की सेवा में ऐसे उत्साही नवयुवकों को प्रवेश की सुविधा देना था, जो जीवन का बड़ा भाग उसी कार्य में लगाने को उद्यत हों । उसके सदस्यों में से आचार्य रामदेव जी कई वर्षो तक गुरुकुल के आचार्य रहे और उसके पश्चात् सभा के प्रधान पद पर आसीन हुए । पंडित बुद्धदेव जी सभा के उपदेशक थे । पण्डित चमूपति जी 'आर्य' का सम्पादन करते थे, पंडित सत्यव्रत जी तथा डाक्टर राधाकृष्ण गुरुकुल कागडी में उपाध्याय थे ।

महाशय रामचन्द्र जी के बलिदान की चर्चा इससे पूर्व की जा चुकी है । उसका परिणाम यह हुआ कि सभा ने पंजाब दलितोद्धार मंडल की स्थापना की । इसने विशेष-रूप से जम्मू के जिले में काम किया । सभा की १९८० विक्रमी की रिपोर्ट से विदित

होता है कि उस समय तक जम्मू में २५ हजार के लगभग मेघ वैदिक धर्मी बन चुके थे। अन्य जिलों में भी दलितोद्धार का काम बराबर चल रहा था।

सभा ने उपदेशक परीक्षाओं का एक क्रम जारी किया था, जिसमे प्रतिवर्ष २० से २५ तक की सख्या में परीक्षार्थी भाग लेते थे।

दयानन्द उपदेशक विद्यालय जिसके भवन की आधार शिला १९२४ ईस्वी में वसन्त पंचमी के दिन श्री स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा रखी गई थी, दूसरी इमारत में रामनवमी के दिन खुल गया। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी आचार्य और श्री स्वामी वेदानन्द जी मुख्याध्यापक नियत किये गये। उत्तीर्ण छात्रो को दो वर्ष के पश्चात् सिद्धान्तभूषण और तीसरे वर्ष की परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर सिद्धान्त शिरोमणि की उपाधियां दी जाती थीं।

१९८१ विक्रमी मे आर्य विद्यार्थी आश्रम में ४१ छात्र निवास करते थे। ज्यों-ज्यो कमरों की संख्या बढ़ती गई, छात्र भी बढ़ते गये। स० १९८५ विक्रमी की रिपोर्ट से पता चलता है कि आश्रम में ६१ विद्यार्थी रहते थे।

प्रान्त मे आर्य समाजों के अधीन कई स्कूल खुले हुए थे, दर्जनो कन्या पाठशालाएं थीं। इन सब शिक्षणालयो को एक श्रृंखला मे बांधने और व्यवस्था में लाने के लिए १९२५ में सभा ने पंजाब आर्य शिक्षा-समिति की स्थापना की। प्रारम्भ मे १० स्कूलों और २४ कन्या पाठशालाओ ने इसके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित किया। आगे चलकर इस समिति का अधिकाधिक विस्तार होता गया। बहुत से नये स्कूल स्थापित हुए और मोगा में मथुरादास कालेज की भी स्थापना हो गई। ये सभी संस्थाएं शिक्षा-समिति की देखरेख मे आती गयी।

प्रान्त के आर्यसमाजो की देखरेख के लिए प्रतिनिधि सभा ने महाशय देवनाथ जी को निरीक्षक नियुक्त किया था। आप साल भर भ्रमण करते थे। सभा की रिपोर्टों से विदित होता है कि निरीक्षण के कार्य से समाजो के हिसाब-किताब और संगठन में पर्याप्त उन्नति हुई। इन्ही वर्षो मे आर्य युवक-संघ, दयानन्द दलितोद्धार-सभा और श्रद्धानन्द-स्मारक, शुद्धि-सभा आदि सभाओं की स्थापना भिन्न-भिन्न उद्देश्यो से की गई।

सन् १९३५ के मई मास की ३१ तारीख को क्वेटा मे भयंकर भूकम्प आया। यह भूकम्प भी बिहार के भूकम्प की भांति खंड प्रलय का दूसरा रूप ही था। समृद्ध क्वेटा नगर सर्वथा बरबाद हो गया। आर्यसमाज की विशेष हानि हुई। क्वेटा मे दो आर्य समाजें थीं और दोनों ही बहुत समृद्ध दशा मे थी। उस भूकम्प से न केवल आर्यसमाज मन्दिर ही गिर गये, आर्यसमाज के दो नवयुवक प्रचारक भी गिरे हुए मकानो के नीचे दबकर मर गये। पण्डित भीमसेन विद्यालंकार १९९२ विक्रमी से सभा की ओर से पुरोहित के रूप में क्वेटा आर्य समाज में कार्य कर रहे थे। आप अभी डेढ मास तक ही सेवा कर सके थे कि भूकम्प ने आपकी जीवन लीला समाप्त कर दी। दूसरे नवयुवक स्नातक जो भूकम्प की भेंट चढ़ गये, श्री इन्द्र वेदालंकार थे। आप विवाह के एक मास बाद अवकाश लेकर क्वेटा गये थे। वहां भूकम्प मे उनका शरीरान्त हो गया। दोनों ही स्नातक बहुत

लोकप्रिय और सफल प्रचारक थे। भूकम्प के रोमांचकारी समाचारों से सारे देश में सनसनी सी फैल गई। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने सात सदस्यो की एक उप सभा क्वेटा में सेवा कार्य करने के लिए बनाई। उसके प्रधान पंडित ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य (अमृतधारा वाले) थे। सरकार की ओर से उस समय क्वेटा जाने पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा हुआ था। विशेष आज्ञा लेकर सभा के चार प्रतिनिधि क्वेटा पहुंचे और वहा भूकम्प पीड़ित लोगो में अन्न-वस्त्रादि बांटने का काम आरम्भ कर दिया। सभा ने आर्य जनों से धन की अपील की, जिस पर बीस हजार से अधिक धन एकत्र हो गया। उन परिवारों की सूचियां बनवाई गईं, जिन्हें सहायता की आवश्यकता थी और उनके अनुसार आर्थिक सहायता बांटी गई। तात्कालिक सहायता के अतिरिक्त स्थिर सहायता की भी व्यवस्था की गई, जिसके चार भाग थे :—

१—जिनके संरक्षक क्वेटा भूकम्प में गुजर गये थे, ऐसी कन्याओ की पढ़ाई जारी रखने के लिए मासिक सहायता।

२—जिन स्त्रियों के पति गुजर गये थे, उनकी पढ़ाई अथवा दस्तकारी सिखाने की व्यवस्था।

३—परिवारों के गुजारे के लिए सहायता।

४—गुरुकुल के जिन ब्रह्मचारियों के संरक्षक मर गये थे, उनके शुल्क की रियायत।

इससे पूर्व सन् १९३४ में बिहार मे जो भूकम्प आया था, उसमे भी सभा के सदस्यो ने सेवा का कार्य किया था।

हम बता आये हैं कि १९२५ ईस्वी तक लाला रामकृष्ण जी सभा के प्रधान रहे। वृद्धावस्था के कारण उनके त्याग-पत्र देने पर दीवान बद्रीदास एम० ए०, एल० एल० बी०, सभा के प्रधान निर्वाचित हुए। सन् १९३५ में आचार्य रामदेव जी प्रधान बने।

मन्त्रियों में भी इसी प्रकार कुछ परिवर्तन हुए। १९१७ ईस्वी मे महाशय कृष्ण जी मन्त्री थे। १९१८ से परिवर्तन आरम्भ हुआ। क्रमश: लाला धर्मचन्द बी० ए०, पं० ठाकुरदत्त शर्मा और फिर १९३१ ईस्वी में महाशय कृष्ण जी मन्त्री हुए। १९३५ मे मन्त्री-पद पर पण्डित भीमसेन जी विद्यालंकार का चुनाव हुआ। वार्षिक रिपोर्टों से विदित होता है कि इस सभा के उपदेशको की संख्या और वार्षिक आय में निरन्तर वृद्धि होती रही।

नवाँ अध्याय

संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में नव-जागरण

१९२६ के अन्त मे श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के बलिदान ने देश भर में जो प्रतिक्रिया उत्पन्न की थी, उसका सबसे गहरा असर आर्यसमाज पर पड़ा। यह स्वाभाविक भी था। जो गोली स्वामी जी की छाती में लगी थी, वस्तुतः उसका असली लक्ष्य आर्यसमाज ही था। स्वामी जी के अतिरिक्त म० राजपाल, श्री बद्री शाह, श्री भैरवसिंह, श्री बहादुरसिंह और बनवारीलाल आदि आर्यसमाजियों पर भी धर्मान्ध मुसलमानों ने घातक आक्रमण किये। उन सबका परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाज में एक नई जागृति उत्पन्न हो गई। सभी प्रान्तो में आर्य प्रतिनिधि सभाओ ने और आर्यसमाजों ने नयी-नयी योजनायें बनाकर उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

आर्यसमाज के कार्यों में प्रान्त के मुसलमानों की ओर से जो बाधाएं डाली जाती थीं, उनके अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियो द्वारा भी प्रायः अड़चनें खड़ी करने का प्रयत्न किया जाता था। १९२७ में ही हमें १० ऐसी घटनाओं का निर्देश मिलता है। बदायूं मे वेद प्रचार-सप्ताह के अवसर पर जो प्रात. संकीर्तन किया जाता था, उस पर पुलिस ने यह नया प्रतिबन्ध लगा दिया कि पांच और छः बजे के बीच मे मस्जिदों के सामने संकीर्तन न किया जाय। इस पर प्रतिवाद रूप में संकीर्तन बन्द कर देना पड़ा।

नैनीताल में आर्यसमाज का उत्सव हो रहा था। उत्सव के दूसरे दिन जिला मजिस्ट्रेट की ओर से अधिकारियो को आज्ञा दी गई कि वे किसी अन्य धर्म के विषय मे और विशेष रूप से इस्लाम के विषय मे कोई आलोचनात्मक व्याख्यान न करवायें। जलाली और दुगड्डा मे १४४ धारा लगाकर आर्यसमाज के उत्सव और उसके पूर्व होने वाले नगर-कीर्तन को बन्द कर दिया गया। गुरुकुल रुद्रपुर मे दो मुसलमान अधिकारी हवन-वेदी पर जूतों के साथ चढ़ गये और रोकने पर गाली-गलौच किया।

बरेली में एक विचित्र घटना हुई। मुहर्रम के ताजिये शान्तिपूर्वक बाजार से निकल गये। तब एक मुसलमान पुलिस सिपाही ने कोतवाल से यह शिकायत कर दी कि ताजिये निकलने के समय आर्यसमाज मन्दिर में भजन गाये जा रहे थे। समाज मन्दिर आम रास्ते से बचा हुआ एक गली के अन्दर है। खबर पाकर कोतवाल साहब ने जोश मे आकर नायब तहसीलदार को भजन बन्द कराने के लिए भेजा। उस समय समाज का साप्ताहिक सत्संग हो रहा था। कुछ देर तक बन्द रख कर भजन फिर प्रारम्भ कर दिये गये। इस पर पुलिस के आदमी समाजमन्दिर मे घुस गये और उनके पीछे-पीछे आने वाली मुसलमानो की भीड ने समाज के दरवाजे आदि तोड़ दिये। कोत-

वाल साहब को इतना जोश आया कि वे यज्ञशाला में जूते पहन कर चढ़ गये और १२ आर्यसमाजियों को गिरफ्तार कर लिया। कोतवाली में पहुँच कर एक मुसलमान सब-इन्सपैक्टर ने उनके यज्ञोपवीत भी उतरवा दिये। इन समाचारों से आर्य-जगत् में बहुत सनसनी फैल गई। जब मुकदमा अदालत में पेश हुआ तो श्री नारायण स्वामी जी महाराज, पं० रासबिहारी तिवारी तथा अन्य कई प्रतिष्ठित आर्य-नेता उस समय उपस्थित थे। अन्त में सरकार को हार माननी पड़ी। सब आर्यसमाजी छोड़ दिये गये।

मुरादाबाद में आर्यसमाज के नगर-कीर्तन के सम्बन्ध में पुलिस ने एक उपहास-जनक आज्ञा देकर अपनी मनोवृत्ति का परिचय दिया। आज्ञा यह थी कि नगर कीर्तन तो निकाला जाय परन्तु उसमें न संगीत हो न बाजा। इस बेहूदा आज्ञा का पालन करना उचित न समझ कर उत्सव और नगर-कीर्तन स्थगित कर दिये गये। कासगंज में नगर-कीर्तन को निकालने की अनुमति नहीं दी गई। बीसलपुर में बहुत वर्षों से आर्यसमाज द्वारा प्रचार का कार्य किया जाता था। कभी उसके कारण कोई गड़बड़ नहीं हुई। १९२७ में परगना के हाकिम के दिमाग में न जाने क्या समाया कि १४४ धारा लगाकर प्रचार को बन्द कर दिया।

ये सब दृष्टान्त उन कठिनाइयों को सूचित करते हैं, जो उन वर्षों में आर्य-समाज के सामने आती थी। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी आर्यसमाज की प्रवृत्तिया विस्तृत होती गईं। पहले से चले हुए कार्यों में उन्नति हुई और नये-नये विभाग खोले गये।

जरायम पेशा लोगों का सुधार

आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त की ओर से जो सुधारसम्बन्धी अनेक कार्य किये जाते थे, उनमें से मुख्य जरायम पेशा सुधार का था। संयुक्त प्रान्त में उन लोगों की संख्या, जिनका पेशा ही अपराध करना माना जाता था, पचास हजार से ऊपर थी। ये लोग अपना निर्वाह चोरी आदि से करते थे। सरकार ने १८७१ में एक कानून द्वारा इनको अपने नियत्रण में ले लिया और उन्हें कुछ निश्चित स्थानों पर बसा दिया गया। १९०२ तक तो वे कैदियों की तरह रखे गये परन्तु उसके पश्चात् सरकार ने इस नीति की घोषणा की कि उनका सुधार किया जायगा। सरकार को सुधार का केवल एक ही उपाय सूझा कि ईसाइयों की 'साल्वेशन आर्मी' नाम की संस्था को जरायम पेशा लोगों में प्रचार का काम सौंप दिया। जिनका सुधार करना अभीष्ट था वे लगभग सभी हिन्दू थे। ऐसी दशा में उनको ईसाई पादरियों के सुपुर्द करना सर्वथा अनुचित समझकर संयुक्त प्रान्त के प्रख्यात नेता बाबू गंगाप्रसाद वर्मा ने कौंसिल में यह प्रस्ताव किया कि सुधार का कार्य ईसाई पादरियों से लेकर हिन्दू संस्थाओं को दे दिया जाय। सरकार ने उस प्रस्ताव को नहीं माना। सन् १९२१ में रायबहादुर लाला सीताराम जी ने फिर यह प्रस्ताव कौंसिल के सामने प्रस्तुत किया कि जरायम पेशा लोगों की बस्तियां ईसाइयों के हाथ से निकालकर हिन्दू संस्थाओं को दे दी जायें। उस समय उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग के सचिव प्रसिद्ध पत्रकार श्री सी० वाई० चिन्तामणि थे। उन्होंने विश्वास दिलाया कि यदि कोई हिन्दू संस्था इन बस्तियों को लेने के लिए तैयार होगी तो सरकार उस पर सहानुभूति से

विचार करेगी। ऐसी चर्चा सालों तक चलती रही। जब सन् १९२४ मे दिल्ली की भारतीय दलितोद्धार सभा की ओर से सरकार को यह लिखा गया कि जरायम पेशा लोगों की बस्तियों का काम संभालने के लिए वह तैयार है, तब उत्तर प्रदेश सरकार के अंग्रेज डिप्टी सेक्रेटरी ने उत्तर दिया कि बस्तियों का काम भली प्रकार चल रहा है, किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। इस परिस्थिति मे जरायम पेशा वाली बस्तियों का पादरियो के असर से उद्धार करने के लिये उत्तर प्रदेश सरकार ने एक अलग विभाग खोला, जिसके अधिष्ठाता लखनऊ के उत्साही कार्यकर्ता पण्डित रासबिहारी तिवारी थे। तिवारी जी प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य थे। उन्होंने २ नवम्बर सन् १९२७ को इस आशय का प्रस्ताव कौंसिल में उपस्थित किया कि सरकार यथासम्भव शीघ्र जरायम पेशा लोगों के सुधार का काम उन सार्वजनिक सभाओं को सौंपने की व्यवस्था करे, जिनका उनके समान ही धर्म हो। प्रस्ताव पर निम्नलिखित संशोधन प्रस्तुत किया गया, "यदि वह वर्ग हिन्दू धर्म को मानने वाला हो तो उनके सुधार का कार्य किसी दलितोद्धार करने वाली संस्था को दिया जाय।" संशोधन के साथ प्रस्ताव स्वीकार हो गया।

प्रस्ताव स्वीकार हो जाने पर आर्य प्रतिनिधि सभा सयुक्त प्रान्त की ओर से तिवारी जी ने सरकार से बातचीत शुरू कर दी, जिस पर यह निश्चय हुआ कि लखनऊ के समीप किसी स्थान पर केवल जरायम पेशा लोगों की नई बस्ती बनाकर उसका प्रबन्ध प्रतिनिधि सभा को दिया जाय। तदनुसार लखनऊ से सात मील की दूरी पर चिल्लावा ग्राम में बस्ती स्थापित हो गई। इस प्रकार जरायम पेशा लोगो मे ईसाई पादरियों की ठेकेदारी को तोड़कर संयुक्त प्रान्त की प्रतिनिधि सभा ने एक प्रशंसनीय कार्य किया। इस बस्ती का नाम आर्य नगर सैटिलमेंट रखा गया।

नायक जाति में सुधार कार्य

संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा ने दूसरा जो अत्यन्त उपयोगी कार्य अपने हाथ मे लिया, वह 'नायक' जाति के सुधार का था। यह जाति संयुक्त प्रान्त के पहाड़ी इलाकों में रहती है। गढवाल में इसकी बहुतायत है। नायक लोग शिक्षा में बहुत पिछड़े हुए थे, और उनमें सामाजिक कुरीतियो की भरमार थी। उनमें विशेष बुराई यह थी कि नायक जाति की बहुत सी स्त्रियां वेश्या बन जाती थी। १९२७ ईस्वी में संयुक्त प्रान्त की प्रतिनिधि सभा ने एक समिति बनाई, जिसके मन्त्री और अधिष्ठाता आगरा निवासी बाबू गजाधरप्रसाद जी नियत किये गये। इस समिति की ओर से पहाड़ी इलाके में कई उपदेशक भेजे गये, जो प्रचार और सुधार का कार्य करते रहे। आर्यसमाज के वयोवृद्ध कार्यकर्ता रायबहादुर ठाकुर मशाल सिंह जी ने कौंसिल में इस आशय का प्रस्ताव पेश किया कि कानून द्वारा नायक जाति की स्त्रियों को वेश्या बनने से रोका जाय। यह प्रस्ताव १९२८ ईस्वी में पास हो गया, जिससे नायक स्त्रियों के वेश्यावृत्ति में जाने का प्रवाह रुक गया।

आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त की सन् १९२६–२७ की रिपोर्ट में एक आर्य-को-आपरेटिव बैंक का विवरण मिलता है। इसका उद्देश्य आर्यजनों को शिक्षा,

रोजगार आदि में सहायता देना था। आगे चलकर रिपोर्टों में उसकी कोई चर्चा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि यह विभाग किन्हीं कारणों से स्थगित कर दिया गया।

आर्य विद्या सभा

सभा ने सन् १९२८ के अप्रैल मास में एक प्रान्तीय आर्य-विद्या सभा का निर्माण किया। इस सभा का उद्देश्य आर्यसमाज की संस्थाओं को नियम और नियंत्रण में लाना था। आर्यविद्या सभा ने आर्य कन्या-पाठशालाओं के लिए नियम, उपनियम बनाकर प्रकाशित किये और कन्या पाठशालाओं के लिए शिक्षिकाएं तैयार करने के उद्देश्य से एक अध्यापिका श्रेणी की योजना बनाई।

सभा की ओर से दलितोद्धार विभाग, जातपांत तोड़क मंडल विभाग, महिला सुधार मंडल, ट्रैक्ट विभाग आदि अनेक उपयोगी विभाग चलते रहे, जो अपने-अपने क्षेत्र में पर्याप्त उपयोगी काम करते रहे। बीच-बीच में आर्यसमाज से सम्बन्ध रखने वाले तथा अन्य जो भी सार्वजनिक कार्य आते रहे, उनमें संयुक्त प्रान्त पूरा हिस्सा लेता रहा। अजमेर ऋषि निर्वाण-अर्द्धशताब्दी का जो महोत्सव मनाया गया, उसमें प्रान्त के आर्य जनो ने धन और उपस्थिति द्वारा पूरा सहयोग दिया। बिहार के भूकम्प से पीडितों की सेवा करने वालो में भी हम संयुक्त प्रान्त के अनेक कार्यकर्ताओं के नाम पाते हैं।

मंडल निर्माण

संयुक्त प्रान्त का आकार बहुत बड़ा है। उसे मंडलों में बांटे बिना प्रचार की ठीक-ठीक व्यवस्था होना कठिन है, इस कारण इस प्रान्त में प्रारम्भ से ही अनेक उप-प्रतिनिधि सभाएं काम करती रही है। हम रिपोर्टों में निम्नलिखित उप-प्रतिनिधि सभाओं के विवरण पाते है :—

१ आर्य उप प्रतिनिधि सभा बिजनौर—गढ़वाल। इस सभा की स्थापना १९१९ ईस्वी मे हुई थी। इसके पदाधिकारियों में बाबू जगन्नाथशरण जी वकील (प्रधान), चौधरी चुन्नीसिंह जी रईस नहटौर तथा पंडित भवानीप्रसाद जी हल्दौर (उप प्रधान), मास्टर गुमानीसिंह जी पुरैनी (मन्त्री), लाला ठाकुरदास जी रईस हल्दौर (औडिटर) तथा बाबू ललिताप्रसाद जी नजीबाबाद आदि आर्य महानुभाव थे।

२. आर्य उप-प्रतिनिधि सभा, जिला बदायूं—इस सभा की स्थापना २७ अक्तूबर सन् १९२६ को हुई। १९२७ में इसके प्रधान चौधरी बदनसिंह जी एम० एल० सी० और मन्त्री बाबू अनन्तराम जी थे।

३ जिला अलीगढ की उप प्रतिनिधि सभा के मन्त्री बाबू विश्वम्भर सहाय जी थे और प्रधान जलेसर के ठाकुर सरनाम सिंह जी।

४ सहारनपुर में भी उप प्रतिनिधि सभा थी। इसकी स्थापना १९०९ ईस्वी मे हुई थी। उप सभा का कार्यालय छुटमलपुर मे था। इसके प्रधान चौधरी जयमल सिंह और मन्त्री पंडित भोजराजेश्वर थे।

इसके अतिरिक्त मैनपुरी, मुजफ्फरनगर, प्रयाग आदि कई अन्य जिलों मे भी

उप प्रतिनिधि सभाएं स्थापित थीं। जिन द्वारा प्रचार, दलितोद्धार तथा शुद्धि आदि के कार्य उत्साहपूर्वक होते रहते थे।

प्रान्त में अनेक संस्थायें चल रही थीं। वृन्दावन के मुख्य गुरुकुल के अतिरिक्त ज्वालापुर, सिकन्दराबाद, बिरालसी, डौरली, अहरौला, बदायूँ और अयोध्या में भी छोटे-छोटे गुरुकुल थे। कानपुर में एंग्लो-वैदिक कालेज तथा बनारस आदि १० शहरों में डी० ए० वी० हाई स्कूल चल रहे थे। कन्या पाठशालाओं, अछूत पाठशालाओ, संस्कृत पाठशालाओं तथा अनाथालयों को मिलाकर १०० के लगभग और शिक्षा-संस्थाएं ऐसी थीं, जिनका संचालन आर्यसमाजो द्वारा हो रहा था।

उन दिनों इस सभा की यह विशेषता थी कि सभा का केन्द्र बदलता रहता था। जिस नगर का मंत्री चुना जाता था, प्रायः अगले वर्ष के लिए कार्यालय वहीं चला जाता था।

सभा के मुख्य पत्र साप्ताहिक 'आर्य मित्र' की दशा आर्यसमाज की संस्थाओं के अन्य सामयिक पत्रो की अपेक्षा बहुत अच्छी थी। पण्डित हरिशंकर जी शर्मा 'कविरत्न' के योग्य सम्पादकत्व में यह पत्र निरन्तर उन्नति कर रहा था। ग्राहक संख्या भी अन्य आर्य पत्रों की अपेक्षा अधिक थी। १९२७ ईस्वी में भी इसे दैनिक करने की चर्चा आरम्भ हुई थी, परन्तु पर्याप्त आर्थिक सहायता न मिलने पर चर्चा का कुछ परिणाम न निकला।

इस काल के आरम्भ में सभा के प्रधान पंडित घासीराम जी और मन्त्री पण्डित रासबिहारी तिवारी थे। बीच में कुछ वर्षों तक रायबहादुर मशालसिंह जी प्रधान और बाबू प्रीतमलाल जी तथा बाबू उमाशंकर जी मंत्री रहे। सन् १९३५ में फिर बाबू मदनमोहन सेठ सभा के प्रधान चुने गये। १९३६ के अप्रैल मास में लखनऊ में कांग्रेस का बृहद् अधिवेशन हुआ। उस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से प्रचार का आयोजन किया गया। आर्य समाज के अनेक प्रसिद्ध वक्ताओ ने अपने भाषणों द्वारा जनता तक वैदिक धर्म का संदेश पहुंचाया।

विशेष व्यक्ति

इस समय के इस प्रान्त के प्रमुख कार्यकर्त्ताओ में कुछ विशेष नाम ऐसे मिलते हैं, जिनकी इतिहास में आगे भी चर्चा आयेगी। इस कारण उनका संक्षिप्त परिचय यहीं दे देना ठीक है।

पण्डित घासीराम जी एम० ए०, एडवोकेट न केवल संयुक्त प्रान्त में, अपितु सारे देश में ही अपनी योग्यता के कारण प्रख्यात थे। आप बहुत विचारशील, विद्वान्, सुवक्ता और प्रभावशाली लेखक थे। आपका अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और बंगला आदि भाषाओं में समान रूप से प्रवेश था। आप प्रतिनिधि सभा के प्रधान, उपप्रधान तथा गुरुकुल वृन्दावन के आचार्य आदि पदों पर चिरकाल तक रहे। आप जिस काम में पड़ते थे, उसी को शोभा मिल जाती थी। आपने ऋषि दयानन्द की जीवनी लिखने के अतिरिक्त गीता का उर्दू पद्यानुवाद भी किया है।

श्री ठाकुर मशाल सिंह जी संयुक्त प्रान्त के प्रमुख कार्यकर्ता थे। कई वर्षो तक लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर रहे। आप संगठन और व्यवस्था करने में बहुत निपुण थे।

बाबू मदनमोहन सेठ एम० ए०, एल एल० बी० विद्यार्थी अवस्था से ही आर्य-समाज के कामों मे सहयोग देते रहते थे। वकालत आरम्भ करने पर आप पूरे मनोयोग से आर्यसमाज की सेवा मे लग गये। वकालत छोड़कर और जज की कुर्सी पर बैठकर भी आपने आर्यसमाज के कामो मे अपने उत्साह को कम नहीं होने दिया। अपनी मधुर प्रकृति, मिलनसारी और तत्परता के कारण आप जिस अधिकार पर भी रहे, वही सफलता प्राप्त की। आप कई वर्षो तक सार्वदेशिक सभा के प्रधान भी रहे है। सेठ जी ने अंग्रेजी और हिन्दी में आर्यसमाज के सम्बन्ध मे कई पुस्तके लिखकर प्रकाशित की, जो सामयिक होने के कारण बहुत उपयोगी सिद्ध हुई।

पण्डित गगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए० आर्यसमाज के उन थोड़े से विद्वानो मे से है, जिन्होंने हिन्दी और अग्रेजी में बहुत ऊंचे दर्जे का और उपयोगी धार्मिक साहित्य उत्पन्न किया हैं। आप कई वर्षों तक आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान रहने के पश्चात् सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री भी रहे। आपके व्याख्यानो और लेखों मे गभीरता के साथ सरलता का मिश्रण रहता है। 'आस्तिकवाद' नाम के ग्रन्थ पर आपको मगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था।

डाक्टर श्यामस्वरूप 'सत्यव्रत' का कार्यक्षेत्र यद्यपि मुख्य रूप से बरेली मे ही परिमित रहा, परन्तु उनके तेजस्वी व्यक्तित्व की किरणें प्रान्त भर मे फैलती रही। वे उन कट्टर स्वाध्यायशील आर्यसमाजियो मे से थे जिन्हे "दयानन्दी" की उपाधि दी जाती थी। आपका घर क्या था, आर्यसमाज की धर्मशाला थी, जिसने आकर नमस्ते की, वह घर का निवासी बन गया। आपने खूब कमाया और उसे अपने ढंग पर आर्य-समाज के कामों मे दिल खोलकर खरचा। बरेली की अधिकतम आर्य संस्थाएं आपके दृढ़-विश्वास, परिश्रम और धुन की ही उपज हैं। आप आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान भी रहे।

पंडित रासबिहारी तिवारी अपने आपमे एक पृथक् संस्था ही थे। वे लखनऊ आर्य समाज के जीवन-प्राण थे। वर्षो तक सभा के मंत्री रहे। सयुक्त प्रान्त की कौंसिल के सदस्य की हैसियत से उन्होंने जरायम पेशा जातियो के सुधार के लिए जो कार्य किया, उसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। ये सब तो उनके प्रत्यक्ष कार्य थे। वैसे लखनऊ के सार्वजनिक जीवन मे तिवारी जी का वह स्थान था जो किसी चक्र में केन्द्र का होता है। धर्म और जाति के प्रत्येक कार्य मे आवश्यकता पड़ने पर वे जान को भी जोखम में डाल देते थे।

प्रिन्सिपल दीवानचन्द एम० ए० संयुक्त प्रान्त को पंजाब की देन है। आप पहले लाहौर के डी० ए० वी० कालेज में फिलासौफी के प्रोफेसर थे। वहा से डी० ए० वी०, कालेज के प्रिंसिपल होकर आप कानपुर आये। आपके कारण डी० ए० वी० कालेज कानपुर ने अभूतपूर्व उन्नति की। कई वर्षो तक आप आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान रहे और अन्तरंग सदस्य रहे। आप बडे गम्भीर वक्ता और विद्वान् लेखक है। इन

ठाकुर माधोसिंह जी

कविवर पं० नाथूराम 'शंकर'

पं० घासीराम एम० ए०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

पं० नन्दकुमार देव शर्मा

पं० हरिशंकर शर्मा

योग्यताओ के कारण आप कई वर्षों तक आगरा विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर भी रहे हैं।

उस समय के प्रमुख आर्यसमाजियों मे से श्री उमाशंकर जी, श्री गजाधरप्रसाद जी, बाबू श्रीराम जी तथा महाशय शालिग्राम जी आदि महानुभावों के नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं। महिलाओ में से हाथरस गुरुकुल की आचार्या श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी १९१०-११ ईस्वी से निरन्तर आर्यसमाज की सेवा में लगी रही हैं। उनका उत्तर प्रदेश के आर्य जनों मे अपना विशेष स्थान है। उस समय के अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओं की चर्चा अगले प्रकरण मे आ जायेगी। उस समय के विद्वान् वक्ताओ में हम पण्डित बृहस्पति जी वेदशिरोमणि, पं० रामबिहारीलाल जी शास्त्री वेदतीर्थ, पं० इन्द्रमणि जी वकील, प० बिहारीलाल जी शर्मा काव्यतीर्थ, प० धुरेन्द्र जी शास्त्री, पं० अलगूराय जी शास्त्री आदि के नाम पाते हैं।

आर्यसमाज के कार्यों की सर्वतोमुखी उन्नति का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि जहा १९२७ में सभा से सम्बद्ध आर्यसमाजों की संख्या ४१७ थी, वहां १९३६ में वह ५३४ तक पहुंच गई। जिला उपसभाओं में तीन की वृद्धि हो गई। रिपोर्टों के देखने से प्रतीत होता है कि इन वर्षो मे सभा के उपदेशकों की संख्या, गुरुकुल आदि संस्थाओं तथा वार्षिक आय आदि में उन्नति होती रही।

दसवाँ अध्याय

आर्य-प्रादेशिक-प्रतिनिधि-सभा

पहले भाग में हम लिख आये हैं कि पंजाब के आर्य मंडल में परस्पर मतभेद हो जाने पर डी० ए० वी० कालेज के समर्थक आर्य जनों ने प्रचार के कार्य के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा से अलग आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का संगठन कर लिया था। इस सभा की रजिस्ट्री १९०३ ई० में हो गई। सभा के चार उद्देश्य रखे गये थे :

१ प्रचारकों और साहित्य द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार करना।

२ वैदिक साहित्य का पुस्तकालय खोलना।

३ विधवाओं, अनाथो और पीड़ितो की सहायता करना।

४ आर्यसमाज की उन्नति के समस्त साधन सोचना।

इस सभा के प्रारम्भकर्ताओं में महात्मा हंसराज जी, लाला लाजपतराय जी, रायबहादुर लाला लालचन्द जी, रायसाहब मूलराज आदि प्रभावशाली महानुभाव थे।

सभा की अर्द्ध शताब्दी पर जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उससे प्रतीत होता है कि उसके पास उस समय ७० उपदेशक थे, जो पंजाब में और पंजाब के बाहर भी घूम-घूम कर प्रचार का कार्य करते थे। सभा की ओर से कई प्रचारक अफ्रीका, मारीशस, बर्मा, अमेरिका आदि देशों में भी प्रचार के लिए भेजे गये। लेख द्वारा प्रचार के साधनों में से उर्दू का 'आर्य गजट' और हिन्दी का 'आर्य जगत्', ये दो पत्र मुख्य थे। रिपोर्ट से पता चलता है कि सभा के प्रकाशन विभाग द्वारा ३० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं।

प्रादेशिक सभा की ओर से संकट के समयों में सेवा और सहायता के कार्य की विशेष व्यवस्था की जाती थी। १८९७ में मध्यभारत में दुर्भिक्ष पड़ा। यदि सरकारी रिपोर्टों को ठीक मानें तो तीस लाख आबाल-वृद्ध नर-नारियों की मृत्यु हुई। दुर्भिक्ष पीड़ितो की सहायता के लिए प्रादेशिक सभा की ओर से आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं का एक दल जिसमें प्रिन्सिपल दीवानचन्द, लाला गणपतराय, लाला भगतराम आदि सज्जन सम्मिलित थे, भेजा गया। सभा की ओर से वहां सहायता के कई केन्द्र खोले गये, भूखो को अन्न दिया गया, नंगों को वस्त्र दिये गये तथा अनाथों को आश्रय दिया गया। रिपोर्ट में लिखा है कि ३ हजार २ सौ अनाथों को विधर्मियों के हाथों में जाने से बचाया गया और पजाब लाकर फिरोजपुर, लाहौर, अमृतसर, गुरदासपुर, बटाला, कोहाट आदि के अनाथालयो में रखा गया।

अगले कुछ वर्षों में बीकानेर, राजपूताना तथा अवध में जो अकाल पडे, उनमें प्रादेशिक सभा की ओर से सेवा का कार्य किया गया। १९१८ ई० मे गढवाल के इलाके में भयंकर अकाल पड़ा था, उसमें आर्यसमाज ने जो सेवा का कार्य किया, उसका विवरण पहले दिया जा चुका है। प्रादेशिक सभा की ओर से सभा के प्रधान महात्मा

हंसराज जी ने धन की अपील की तो लगभग ८४ हजार रुपया एकत्र हो गया। महात्मा जी स्वयं सभा के अनेक कार्यकर्ताओं के साथ गढ़वाल गये और अनेक अकालग्रस्त केन्द्रों पर अन्न तथा वस्त्रों का वितरण किया। १९२० ई० में उड़ीसा में और १९२१ में पंजाब के कुछ इलाकों में दुर्भिक्ष होने पर भी प्रादेशिक सभा की ओर से सहायता देने का आयोजन किया गया।

१९२७ ईस्वी में मोपला लोगों ने विद्रोह का झंडा तो खड़ा किया अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध, परन्तु उसकी मार पड़ी वहां के हिन्दू निवासियों पर। मलाबार की घटनाओं के सम्बन्ध में हम यहां प्रादेशिक सभा की 'सेवा के पचास साल' नाम की रिपोर्ट में दिया हुआ विवरण उद्धृत करते हैं :—

"अगस्त १९२७ में मदरास में मोपला-विद्रोह आ खडा हुआ। हिन्दुओं के सैकड़ों मन्दिर भ्रष्ट कर दिये गये, उनकी सम्पत्ति लूट ली गई, अनेक हिन्दुओं को बलात् मुस्लिम बना लिया गया और जिन्होंने इन्कार किया, उन्हें निर्दयतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया गया। उनकी यह विपद् सुनकर श्री महात्मा हंसराज जी का कोमल हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने इसे चुनौती समझा और निश्चय कर लिया कि जिन ढाई हजार हिन्दुओं को बलात् मुस्लिम बनाया गया है, उन्हें जब तक शुद्ध न करा लिया जाय, चैन न लूँगा। लाला खुशहालचन्द जी, पंडित मस्तानचन्द जी, पं० ऋषिराम जी, प्रोफेसर ज्ञानचन्द जी, महता सावनमल जी और बहुत से अन्य कार्यकर्ता मलाबार भेजे गये। कालीकट, साईनद, विरवान और अन्य स्थानों पर अन्न क्षेत्र खोले गये। पहले ही दिन इनमें २००० व्यक्तियों ने भोजन पाया। आगे चलकर यह संख्या १२ हजार तक पहुंच गई। जो लोग अपने प्राण और धर्म की रक्षा के विचार से जंगलो और गुफाओं में भाग गये थे, उन्हें सहायता-केन्द्रों में वापस लाया गया। जिन्हें पतित कर लिया गया था, उन्हें फिर शुद्ध कर लिया गया था; जिन हिन्दू स्त्रियों को अपहृत कर लिया गया था, उन्हें भी वापस लिया गया। आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं ने तब तक दम न लिया जब तक उन २५०० हिन्दुओं को शुद्ध न कर लिया और तमाम हिन्दू नर-नारियों को वापस न ले लिया। कार्यकर्ताओ को अन्य अनेक असुविधाओं को सहने के अतिरिक्त अपनी जान का भी हर समय खतरा रहा करता था।"

१९३४ ई० के बिहार भूकम्प और १९३५ ई० के क्वेटा भूकम्प में प्रादेशिक सभा के अनेक कार्यकर्ताओं ने मौके पर पहुंच कर सेवा का प्रशंसनीय कार्य किया। १९४२ ईस्वी में बंगाल और उड़ीसा में अभूतपूर्व दुर्भिक्ष पड़ा। सभा की रिपोर्ट से विदित होता है कि वहां के सेवा कार्य के लिए सभा को साढे चार लाख से ऊपर धन राशि प्राप्त हुई। महाशय खुशहालचन्द जी तथा अन्य अनेक आर्य सज्जनों ने वहां जाकर पीड़ितों को हर प्रकार की सहायता दी। इस प्रकार यह सभा प्रत्येक संकट के समय समाज सेवा के कार्य में अग्रसर होती रही। डी० ए० वी० कालेज और डी० ए० वी० स्कूलों का विशाल संगठन यद्यपि वैधानिक रूप से प्रादेशिक सभा से अलग है, परन्तु वस्तुतः वह प्रादेशिक सभा का ही एक अंग है। होशियारपुर में लाला देवीचन्द जी की अध्यक्षता में दलितोद्धार का जो कार्य हो रहा है उसका श्रेय भी प्रादेशिक सभा के संगठन ही को है।

ग्यारहवां अध्याय

राजपूताना

राजस्थान व मालवा की आर्य प्रतिनिधि सभा की वार्षिक रिपोर्टों के देखने से विदित होता है कि ये दस साल (१९२७ से १९३६) उस प्रान्त में कुछ अधिक उत्साह-पूर्ण नहीं रहे। सभा के काम चलते रहे। उपदेशकों ने भ्रमण किया, कई वार्षिकोत्सव और शास्त्रार्थ हुए और जहां कहीं समाजों मे थोड़े बहुत आपसी झगड़े उत्पन्न हुए, उन्हें सभा की ओर से निपटाने का यत्न किया गया। सभा का मुख-पत्र 'आर्य मार्तण्ड' नियम से निकलता रहा और आर्यसमाज के समाचार देता रहा। सभा के प्रबन्ध से ३ संस्थाएं चल रही थीं। पहली 'श्रीमद्दयानन्द साधु आश्रम' अजमेर। इसकी स्थापना श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने की थी। वर्षों तक इसका संचालन श्री स्वामी लक्ष्मणानन्द जी करते रहे। इस संस्था के सम्बन्ध मे १९३७ की वार्षिक रिपोर्ट में लिखा है, "जिस प्रकार की उन्नति आश्रम में होनी चाहिए, वैसी तो नही हुई, परन्तु नही से कुछ होना ठीक है। इसके कई कारण हो सकते है, जो समय के अनुकूल प्राप्त होने से यथार्थ उन्नति होने की सम्भावना है।"

दूसरी संस्था थी 'श्री मथुराप्रसाद गुलाब देवी आर्य कन्या पाठशाला'। यह संस्था यथापूर्व चल रही थी। उसके आय-व्यय के सम्बन्ध में रिपोर्ट में निम्नलिखित उल्लेख है—"पाठशाला की स्थिर आय से तो उसका साधारण कार्य भी चलना कठिन है किन्तु पाठशाला के हितैषी, स्त्री-शिक्षा प्रेमी महानुभावों की कृपा से ही पाठशाला का कार्य किसी प्रकार चल रहा है। धन की कमी के कारण प्रचुर अध्यापिकाएं नहीं रख सकते और कई आवश्यक बातें भी जो पाठशाला में होनी चाहिएं, अब तक नहीं हो सकी है। अतः राजस्थानीय समस्त बन्धुओं और बहिनों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर उनसे साग्रह प्रार्थना है कि वे यथाशक्ति सहायता देकर उसे समुन्नत दशा को पहुंचाने में हाथ बटायें।"

तीसरी संस्था 'आर्य नागरी पाठशाला' थी। १९३७ मे इस पाठशाला में ५० छात्र शिक्षा पा रहे थे। इसमें तीन कक्षायें थीं।

सन् १९२७ मे प्रान्त भर में आर्यसमाजों की संख्या १६० थी। १९३१ में वह बढ़कर १६५ हो गई। परन्तु उसके पश्चात् वह धीरे-धीरे घटने लगी। १९३६ की रिपोर्ट में कई स्थलों पर चिन्ताजनक आर्थिक स्थिति की चर्चा है। १९२९ ई० की रपोर्ट में लिखा है, "रिपोर्ट के अन्य सब अंश उत्साहजनक है और सारा चित्र बड़ा समुज्ज्वल है परन्तु जब सभा के आय-व्यय चित्र की ओर दृष्टि जाती है तो दिल बैठ जाता है।" सन

१९३१ की रिपोर्ट में निम्नलिखित लेख है, "इस सत्र में सभा को जिस आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ा है, वह कदाचित् सभा के इतिहास में अद्वितीय होगी।" इसके पश्चात् की रिपोर्ट में आर्थिक संकट का इस प्रकार वर्णन है—"कई वर्षों से सभा पर आर्थिक संकट चला आ रहा है। इस वर्ष की सभा की आय संतोषजनक नहीं हुई। कारण कि जहां देखो वहां घाटा और घटोतरी ही नजर आती है।"

इस शोचनीय परिस्थिति के तीन कारण प्रतीत होते हैं। पहला कारण तो राजस्थान की आर्थिक दरिद्रता है, जिसके साथ निरक्षरता मिलकर राजस्थान को सदा पिछड़ा हुआ देश बनाये रखती है। दूसरा कारण यह प्रतीत होता है कि सन् १९२८ में श्री सूर्यकरण जी शारदा एम० ए०, एल एल० बी० का देहान्त हो गया। कुंवर सूर्यकरण जी कुंवर चांदकरण जी के बड़े भाई थे। वे अजमेर के सार्वजनिक जीवन का केन्द्र बने हुए थे। आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान होने के अतिरिक्त सेवा समिति के प्रधान थे, प्रान्तीय हिन्दू सभा के उपप्रधान और हिन्दू टूर्नामेंट के संस्थापक थे। उनके निधन के कारण आर्यसमाज के कार्य को बहुत हानि पहुंची। प्रान्त में आर्यसमाज के काम की शिथिलता का तीसरा कारण प्रतिनिधि सभा और आर्यसमाज केसरगंज का परस्पर झगड़ा था। इस झगड़े की रिपोर्टों में स्थान-स्थान पर चर्चा है। आर्य प्रतिनिधि सभा अन्य आर्यसमाजों के परस्पर झगड़े को तो निपटाती रही, परन्तु इस बड़े झगड़े से छुटकारा न पा सकी। बीस से अधिक वर्षों तक इस गृह-कलह ने राजस्थान के सार्वजनिक जीवन को निर्बल बनाये रखा। १९५५ में यह झगड़ा निपट गया है अतः उसके कारण तथा स्वरूप का विवेचन बिल्कुल व्यर्थ है। अब तो उस समस्त काण्ड से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि गृह-कलह समाज-रूपी शरीर का सबसे बड़ा रोग है, उससे छुटकारा पाने के लिए थोड़े बहुत स्वाभिमान और भावनाओं की कुर्बानी भी करनी पड़े तो कर डालनी चाहिए।

उस समय के प्रमुख कार्यकर्ताओं में हम श्री मास्टर कन्हैयालाल जी, प्रो० सुधाकर एम० ए०, कुंवर चांदकरण शारदा, पं० ब्रह्मदत्त भार्गव, वैद्य कल्याणसिंह जी, प्रो० घीसूलाल जी एडवोकेट, पं० जयदेव विद्यालंकार, पं० भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण, डा० मानकरण शारदा और डा० महावीर सिंह जी के नाम पाते हैं। इन वर्षों में सभा के प्रधान प्रायः श्री कन्हैयालाल जी रहे, जिनके नाम के साथ महात्मा शब्द लगाया जाने लगा था। मन्त्री पद पर कुंवर सूर्यकरण जी के पश्चात् कुंवर चांदकरण शारदा आरूढ़ हुए। सन् १९२९ में प्रो० घीसूलाल जी मन्त्री चुने गये और थोड़े बहुत व्यवधान को छोड़कर शेष वर्षों में वे ही मन्त्री रहे।

प्रान्त में आर्यसमाज की स्थिति साधारण रही। न कोई विशेष उन्नति हुई और न कोई ऐसी दुर्घटना ही हुई जो देश भर का ध्यान प्रान्त की ओर खींच देती।

बारहवाँ अध्याय

बम्बई

बम्बई प्रान्त में आर्यसमाज के विस्तार को भली प्रकार समझने के लिए उसे दो भागों में बांटना उपयुक्त होगा--(१) आर्यसमाज गिरगांव रोड, बम्बई, (२) बम्बई आर्य प्रतिनिधि सभा, पहले हम इन दो का अलग-अलग विवरण देते हैं।

आर्यसमाज बम्बई

सबसे पहला आर्यसमाज होने के कारण इस समाज का विशेष महत्व समझा जाता रहा है। पहले आर्यसमाज के स्थापना-दिवस का विषय चिरकाल से विवादग्रस्त रहा है और अब तक भी वैसा ही विवादग्रस्त चला जाता है। स्थापना-दिवस के सम्बन्ध में जो विवाद चल रहा है, उसमें एक उलझन यह उत्पन्न हो गई है कि प्रायः आर्यसमाज बम्बई और आर्यसमाज मन्दिर बम्बई में जो भेद है, उसे भुला दिया जाता है। आर्य समाज की स्थापना का दिवस और आर्यसमाज काकड़देवी के समाज मन्दिर की स्थापना के दिवस अलग-अलग हो सकते हैं। इस विषय पर बहुत सा विचार हम प्रथम भाग के परिशिष्ट में कर आये हैं। यहा तो केवल प्रस्तुत प्रकरण के प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए उस विचार के परिणाम को लिखना पर्याप्त है। अब तक के उपलब्ध प्रमाणों से प्रतीत होता है कि प्रथम आर्यसमाज की स्थापना महर्षि की उपस्थिति में चैत्र सुदी १, संवत् १९३२ विक्रमी तदनुसार ७ अप्रैल सन् १८७५ ई० को गिरगांव रोड पर सायंकाल के समय डा० मानकचन्द्र जी की वाटिका में हुई। आर्यसमाज की स्थापना के समीप ही किसी दिन महर्षि के हाथों से समाज मन्दिर की आधारशिला भी रखी गई। प्रारम्भ में यज्ञशाला की वेदी ही बनी थी। धीरे-धीरे बम्बई के ढंग का विशाल भवन और अन्य इमारतें भी बनाई गईं। आवश्यकता होने पर साथ की और भूमि भी खरीद ली गयी। भूमि और मन्दिर के प्रबन्ध के लिए श्रीमान् गोपालहरि देशमुख आदि पांच प्रतिष्ठित महानुभावों का एक ट्रस्ट बना दिया गया और ट्रस्ट-डीड बनाकर हाईकोर्ट में उसकी रजिस्ट्री करा ली गई। मूल ट्रस्टियो के मर जाने पर निम्नलिखित ट्रस्टी चुने गये --

१. राजा बहादुर गोविन्दलाल जी मोतीलाल जी,

२ सेठ रणछोड़दास भवान,

३. सेठ शूर जी वल्लभदास,

४. श्री देवीदास देसाई ,

५. श्री शिवदास चापसी।

इन पांच महानुभावों के नाम से दूसरा ट्रस्ट-डीड १९ मार्च १९३२ को रजिस्टर्ड कराया गया।

इस ट्रस्ट ने न केवल समाजमन्दिर को बढ़ाया और अधिक उपयोगी बनाया, उसने मन्दिर के सामने खाली पड़ी हुई भूमि पर एक विशाल इमारत खड़ी करके उसके किराये से आर्यसमाज की आर्थिक दशा को उन्नत करने का भी सफल प्रयत्न किया। आगे चलकर उसमें कुछ विवाद उत्पन्न हो गया था। श्री सेठ रणछोड़दास भवान ने ट्रस्टी पद से त्याग पत्र दे दिया। इस पर आर्यसमाज ने उनके स्थान पर श्री विजयशंकर जी को ट्रस्टी नियुक्त कर दिया। कुछ समय तक इस सम्बन्ध में मतभेद रहा, परन्तु अन्त में झगड़ा निबट गया। झगड़े को मिटाने के लिए पण्डित विजयशकर जी ने ट्रस्टी पद से त्यागपत्र दे दिया। उनके स्थान पर श्री रणड़छोलाल ज्ञानी ट्रस्टी नियुक्त हुए। तबसे ट्रस्ट का कार्य शान्तिपूर्वक चल रहा है।

बम्बई आर्यसमाज का कार्य अच्छे सुव्यवस्थित रूप से चलता रहा। सब पर्व उत्साहपूर्वक मनाये जाते रहे, वार्षिकोत्सव भी धूमधाम से होते रहे। किराये की आमदनी प्राप्त हो जाने से आर्थिक दशा संतोषजनक रही जिससे सभी कार्य धूमधाम से होते रहे। श्रद्धानन्द सप्ताह, ऋषि बोधोत्सव, श्री कृष्ण-जन्माष्टमी महोत्सव, श्रावणी उपाकर्म, महर्षि निर्वाण दिवस आदि उत्सवों पर यज्ञ, प्रवचन, तथा व्याख्यानादि में नगर के आर्यजन अच्छा सहयोग देते रहे है।

प्रारम्भिक दिनों में पडित बालकृष्ण शर्मा ने बम्बई प्रान्त में अपने विद्वत्तापूर्ण भाषणो तथा सौम्य स्वभाव द्वारा वैदिक धर्म का पुष्कल प्रचार किया। उनके देहावसान के पश्चात् गुरुकुल वृन्दावन के सुयोग्य स्नातक पंडित द्विजेन्द्रनाथ जी बम्बई आर्य समाज के मुख्य प्रचारक रहे। उनके अतिरिक्त निम्नलिखित विद्वान् बम्बई नगर और प्रान्त में प्रचार का कार्य करते रहे। स्वामी ओंकारसच्चिदानन्द जी, पं० रामचन्द्र जी स्नातक, प० रणछोड़लाल जी ज्ञानी, श्री परघु भाई, पं० लक्ष्मणराव ओघले, मणिशंकर जी, पं० विद्यानिधि विद्यालंकार, पं० अयोध्याप्रसाद जी और पं० विजयशंकर जी आदि विद्वानो के भाषणों की चर्चा समाज की रिपोर्टों में मिलती है। आर्यसमाज की ओर से कुछ संस्थाएं भी चल रही थीं। श्रीमती मीठाभाई संस्कृत पाठशाला, श्रीमद्दयानन्द पुस्तकालय-वाचनालय, सवाद वर्धिनी सभा, आर्य वीर दल तथा वैदिक धर्म प्रचार मंडल अपने-अपने क्षेत्र मे उपयोगी कार्य करते रहे।

बम्बई का मुख्य (काकड़वाड़ी) आर्यसमाज प्रारम्भ से ही नगर के अन्य भागों में आर्यसमाजों की स्थापना और संचालन के कार्य को अपनाता रहा है। माटुंगा आर्य समाज धीरे-धीरे एक प्रभावशाली और कर्मयोगी आर्यसमाज के रूप में परिणत हो गया है। फोर्ट का आर्यसमाज भी प्रगतिशील रहा है। भापकला, चिचपोकली आदि बस्तियो मे छोटी-छोटी आर्यसमाजे थीं, जो प्रायः बम्बई आर्यसमाज क सहारे पर ही चलती रहीं।

इस प्रकार प्रचार तथा सगठन का कार्य तो होता रहा, परन्तु यह शिकायत प्रायः बनी रही कि बम्बई के लगभग पच्चीस तीस लाख निवासियों पर समाज का बहुत

कम असर है। इसका कुछ आभास इस बात से मिलता है कि जहा १९३०–३१ की रिपोर्ट में कुल मतदाता सभासदों की संख्या ५४४ लिखी है, वहां १९३६–३७ की रिपोर्ट मे मतदाता सभासदों की संख्या केवल २४५ लिखी है। जिससे विदित होता है कि सभवतः आन्तरिक मतभेदों के कारण बम्बई के निवासियों मे वैदिक धर्म का प्रचार पर्याप्त मात्रा में नहीं हो सका। रिपोर्टों से यह भी विदित होता है कि इन वर्षों में समाज की आय में भी विशेष वृद्धि नही हुई। १९३१–३२ की रिपोर्ट मे वर्ष भर की आय की राशि १२,१७०) रु० और व्यय की राशि १०,८३२) रु० दिखाई गई है। १९३५–३६ वर्ष की रिपोर्ट से विदित होता है कि आय की राशि ११,९८७ और व्यय की राशि ११,३६८ हो गई। इन राशियों की तुलना से प्रतीत होगा कि बीच के वर्षों में समाज की आर्थिक अवस्था में भी कोई विशेष उन्नति नहीं हुई।

आर्य प्रतिनिधि सभा––बम्बई

यह पहले लिखा जा चुका है कि बम्बई प्रान्त मे आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना १९०२ ईस्वी के ३० दिसम्बर को हुई थी। इसका मुख्य केन्द्र आनन्द में रहा। १९३७ में इसके प्रधान श्री गिरजाशंकर निर्भयराम जी और मन्त्री श्री बापूभाई कुबेरदास जी आर्य थे। सभा के प्रतिनिधियों की संख्या ९१ थी। सभा से संबद्ध समाजों की संख्या ६२ थी। इस सभा की ओर से एक 'बम्बई प्रदेश आर्य विद्या सभा' नाम की संस्था नियुक्त की गई थी, जिसकी ओर से ये शिक्षण संस्थाएं चलती थीं:––१. बाल-मन्दिर, २ प्राथमिक पाठशाला, ३. हाई स्कूल, ४. विधवाश्रम। सभा की ओर से 'आर्य प्रकाश' नाम का साप्ताहिक पत्र निकलता था जो अब भी निकलता है। वह सभा के अपने प्रेस में छपता था। प्रेस का नाम 'आर्य प्रकाश प्रेस' था। सभा की ओर से चार पुरुष उपदेशक, एक स्त्री उपदेशिका और एक भजनीक काम करते थे। अनेक कारणों से बम्बई के आर्य समाज प्रतिनिधि सभा में सम्मिलित नहीं हुए थे। इस कारण सभा की शक्ति प्रान्त के विस्तार और सामर्थ्य को देखते हुए बहुत कम रही।

बड़ौदा–केन्द्र

प्रथम भाग में पंजाब के प्रतिष्ठित आर्यजनो के कार्यों का विवरण देते हुए हमने मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी की चर्चा की थी। वे धार्मिक विषयो के अच्छे विद्वान् और सुवक्ता थे। वे बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही पंजाब को छोड़ कर बड़ौदा चले गये थे। बड़ौदा के प्रगतिशील महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ने उन्हें अपनी रियासत में दलितोद्धार का काम सौंप दिया था। मास्टर जी ने कारेली बाग में अपना केन्द्र बनाकर न केवल दलितों की शिक्षा का कार्य ही किया, अपनी विद्वत्ता और भाषण-शक्ति के प्रभाव से स्वयं यश कमाया और आर्य समाज के यश की भी वृद्धि की। आप गुजरात और महाराष्ट्र में पंडित नाम से निर्दिष्ट किये जाते थे। महाराज ने कार्य से प्रसन्न होकर आपको "राज्यरत्न" की उपाधि से विभूषित किया। धीरे-धीरे कारेलीबाग का आश्रम आर्यसमाज और समाज-सुधार का एक प्रभावशाली केन्द्र बन गया।

१९२४ मे उस केन्द्र मे आर्य कन्या-महाविद्यालय बड़ौदा की स्थापना हुई। इस विद्यालय मे संस्कृत, हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषाओ के अतिरिक्त अन्य सब आधुनिक विषय भी पढ़ाये जाते है। इसकी एक मुख्य विशेषता कन्याओ को अनिवार्य रूप से शारीरिक व्यायाम की शिक्षा देना है। प्रारम्भ से ही इसका संचालन स्वर्गीय पंडित आत्माराम जी के सुपुत्र पण्डित आनन्दप्रिय जी करते रहे है। विद्यालय की आचार्या कुमारी सुशीला पंडित भी राज्यरत्न की सुपुत्री है।

तेरहवां अध्याय

दक्षिण हैदराबाद

दक्षिण हैदराबाद मे आर्य समाज का बीज बहुत पहले बोया गया था। इस प्रदेश में सबसे पहले आर्यसमाज की स्थापना पंडित भगवानस्वरूप जी तथा तथा श्री गोकुल प्रसाद जी के प्रयत्न से धारूर में हुई। धारूर छोटी जगह थी, इस कारण रियासत में उसका विशेष प्रभाव नहीं फैला। १८९२ ईस्वी में सुल्तान बाजार हैदराबाद में केन्द्रीय आर्य समाज की स्थापना हुई। केन्द्र में आर्यसमाज का कार्य प्रारम्भ हो जाने का परिणाम यह हुआ कि अन्य स्थानो पर भी आर्य समाज की चर्चा होने लगी। प्रारम्भ से ही रियासत के हाईकोर्ट के जज श्री श्री प० केशवराव जी आर्यसमाज के प्रधान स्तम्भ थे। वे ही सब आर्यसामाजिक प्रवृत्तियों के केन्द्र थे। पं० केशवराव जी उन आदि काल के आर्य समाजियों मे से थे, जो वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्द के परम भक्त होने के कारण धर्म को धन अथवा राज-सम्मान से ऊंचा स्थान देते थे। निजी जीवन मे वे नीतिकार की इस उक्ति के दुर्लभ दृष्टान्त थे :—

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यता याति लोके,
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः।
इति महति विरोधे विद्यमाने समाने
नृपति-जनपदानां दुर्लभ- कार्यकर्ता॥

(जो व्यक्ति राजा का हित करनेवाला हो, उससे प्रजा द्वेष करने लगती है और जो प्रजा के हित को अपना लक्ष्य बना ले, उससे राजा लोग शत्रुता करने लगते हैं। ऐसा स्वाभाविक विरोध होने पर ऐसे कार्यकर्ता दुर्लभ होते है, जो दोनों के विश्वासपात्र हो सकें।)

ऐसे दुर्लभ कार्यकर्ता पं० केशवराव जी थे। उन पर जितना निजाम को विश्वास था, उतना ही प्रजा को भी था। उनके पुराने साथियों में से ठाकुर गोविन्दसिंह जी तथा पं० श्यामलाल जी वकील विशेष रूप से स्मरणीय है।

जब महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना के लिए ३० हजार रुपया एकत्र करने के उद्देश्य से देश में भ्रमण कर रहे थे, तब प० केशवराव जी के विशेष निमन्त्रण पर वे हैदराबाद भी गये थे। उस समय रियासत के कई नगरों में स्वामी जी के विशेष व्याख्यान कराये गये। उन व्याख्यानों से आर्यसमाज के प्रचार को पर्याप्त सहायता मिली।

आर्यसमाज सुल्तान बाजार के ३७वें वार्षिकोत्सव पर ४ अप्रैल, १०३१ ई० को हैदराबाद के देवीदीन बाग में रियासत के आर्य-प्रतिनिधियों की एक सभा हुई, जिसमें ६९ प्रतिनिधि उपस्थित थे। सभा में आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद स्टेट की स्थापना की गई। नियम पास किये गये और अधिकारियों का चुनाव किया गया। निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये—

प्रधान—पण्डित केशवराव जी, जज हाई कोर्ट
उपप्रधान—पं० श्यामलाल जी वकील
मन्त्री—श्री चन्दूलाल जी
उपमन्त्री—पं० राजरत्नाचारी जी
कोषाध्यक्ष—पं० विनायकराव जी विद्यालंकार
पुस्तकाध्यक्ष–पं० दत्तात्रेय वकील हाईकोर्ट

उसी वर्ष पं० केशवराव जी का दुःखद देहान्त हो गया। १९३३ में अधिकारियों का जो चुनाव हुआ, उसमें स्व० पं० केशवराव जी के सुपुत्र पं० विनायकराव जी प्रधान पद पर चुने गये। गत २३ वर्षों के अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र का दृष्टान्त यदि ढूंढना हो तो वह इससे अच्छा नहीं मिल सकता। पं० विनायक राव जी ने प्रत्येक दृष्टि से अपने पिता के उत्तराधिकार को सफलतापूर्वक निभाया है।

१९३१-३२ के लगभग रियासत के अनेक केन्द्रों से यह शिकायत आने लगी कि आर्यसमाजियों पर रियासत की पुलिस अत्याचार कर रही है। सभा के दूसरे अधिवेशन में, जो १९३२ के मार्च मास में हुआ, इस समस्या पर विचार किया गया और पं० विनायक राव जी विद्यालंकार, पं० गोपालराव जी वकील तथा पं० दत्तात्रेयप्रसाद जी वकील हाईकोर्ट की एक उपसमिति शिकायतों की जाँच करने के लिये बनाई गई। जांच करने पर मालूम हुआ कि शिकायतें बहुत कुछ सत्य हैं। तब एक शिष्ट-मंडल ने रियासत के पोलिटिकल मिनिस्टर से मिलकर सब शिकायतें मौखिक रूप में उपस्थित करने के अतिरिक्त एक लिखित आवेदन पत्र भी पेश किया। रियासत का एक अखबार–'सिद्दीक दीनदार'—आर्यसमाज पर बहुत जहर उगल रहा था, उसकी भी शिकायत की गई। रियासत के पोलिटिकल मिनिस्टर नवाब महदियारजंग ने निम्न-लिखित उत्तर दिया—

१—मैं आपके वफद से बहुत खुश हुआ। क्योंकि गवर्नमेन्ट का फर्ज है कि वह रियाया की शिकायत को सुने और तवज्जह दे।

२—मैं आपको इतमिनान दिलाता हूं कि यहां हर एक मजहब व मिल्लत का शख्स मसावी तौर पर रह सकता है। ख्वा वह मुसलमान हो या आर्य या ईसाई।

३—हमारी गवर्नमेन्ट की मुलाजमत में अदना व आला ओहदे पर मुख्तलिफ मजहब के लोग मुतायन हैं। अब आप देखते हैं कि मैं शिया हूं। (नवाब अकबर यार जंग बहादुर की ओर इशारा करके) आप कादियानी हैं। और

(जनाब अर्मिष्ट्रांग साहब को बतलाकर) आप ईसाई है। इस तरह आर्य-समाजी भी मिलकर रह सकते है।

४—हुकूमत का कोई मजहब नहीं होता।

५—आपकी बड़ी शिकायत 'सिद्दीकी दीनदार' के निस्बत है। इससे तो गवर्नमेन्ट भी नाराज है। हमारी गवर्नमेन्ट से महीना ५०) जो इमदाद उनको मिला करती थी, वह राजातन मौकूफ कर दी गई है। इस पर भी अगर वह सम्भल जाय तो अच्छा है। वरना मुमकिन है कि उसको भी निकाल दिया जाये।

६—अखबारी वाकियात ऐसे है, उनको रोकना हमारे लिए बड़ा दुश्वार है। क्योंके कोई ऐसा जरिया नहीं है के खबरों की जांच की जाय। हर शख्स खबर दे देता है। इस तरह ब्रिटिश इण्डिया में भी है। मगर वह खबर गलत हो या इजाल-ए-हैसियत-ए-उर्फी के हद तक पहुंचती हो चारा-कार कानूनी अख्तियार करना चाहिए। हमारे पास—'गोलकुण्डा-पत्रिका' के निस्बत भी ऐसे ही शिकायतें आई है।

७—पं० चन्द्रभानु जी के निस्बत जो अमल हुआ, उसका कोई ताल्लुक उनके आर्यसमाजी होने से नहीं था। बल्के हमारे पास—खुफिया पुलिस ब्रिटिश-इण्डिया—से रिपोर्ट आयी के इनका ताल्लुक ऐसे लोगों और सोसाइटी से है, जो पोलिटिकल मामलात से ताल्लुक रखते है और हुकूमत को उलट देना चाहते है। लिहाजा इनका अखराज किया जाय, ताके यहां इन्कलाबी तहरीक न होने पाए। हमको इनपर निगरानी रखने का हुक्म था। हमारे यहा के पुलिस की कोई शिकायत नहीं है और न आर्यसमाज के मुताल्लक कोई वाकिया है।

८—अजला के मुख्तलिफ वाकियात का जिकर किया गया है। इसके मुताल्लक मैं कहूंगा के आप पहले मुकामी ओहदेदारों से दरख्वास्त कीजिए, अदालत में कार्रवाई कीजिए। इस पर भी कोई दादरसी न हो तो गवर्नमेन्ट उसे सुनने को तैयार है और तसफिया करने को आमादा है।

९—मैं यह दावा नहीं कर सकता के हमारे कुल कारकुन बेदाग है। मैं आपको इतमिनान दिलाता हूं के हमारी गवर्नमेन्ट की तरफ से किसी महकमे को कोई इशारा नही है कि आर्यसमाज के मुताल्लक खास अमल किया जाय। अगर कोई ओहदेदार जाती तौर पर इस तरह बर्ताव करे तो उसकी कार्य-वाही ओहदेदार बाला के पास आते ही उसका इन्सदाद हो सकता है। मसलन उस्मानाबाद के एक ओहदेदार के निस्बत एक लड़की की ईजारशानी के बारे में शिकायत पेश हुई और उसको सजा दी गई। इससे जाहिर होता के गवर्नमेन्ट इन्साफ के मुकाबले में ओहदेदारों का पास नहीं करती।

१०—इजाजत जलूस के मुतल्लक मैं यह कहता हूं के उसके कवायद बनाने का काम एक-रुकुन बाने हुकूमत-के सुपुर्द किया गया था। जो किसी फिरके से ताल्लुक नहीं रखते। यानी वे न तो हिन्दू है, न मुसलमान। यानी करमल

सर रिचर्ड ट्रेंच साहब। इन्होंने कवायद मुरत्तिब किये जिनकी तहत में पुराने जलूस वैसे ही निकल सकते हैं जैसे कदीम से निकला करते हैं। जदीद जलूस को ओहदेदार मुतालका (मुहत्तिबा कवायद के मुताबिक) इजाजत देंगे। जलूस की मस्जिदों के सामने बाजा नवाजी सिर्फ इस वजह ममनूँ है के जाहल लोग इसकी वजह से लड़ पड़ते हैं। जिसकी वजह से अमन बाकी नहीं रहता। चे जाय के हुकूमत का फर्ज यही है कि अमन कायम रखें। जाहलों की रोकटोक मुश्किल हो जाती हैं। दर असल जलूस के निकलने से गवर्नमेन्ट को कोई बहस या उजर नहीं है। मगर जाहलों की वजह के झगड़े का अन्देशा रहता है। जिसको रोकथाम जरूरी है। इसलिए जुलूस के लिए पाबन्दियां मुकर्रर की जाती हैं।

११—जलसे के मुतालक कवायद बनाए गये हैं। कई मर्तबा ऐसे वाकियात पेश हुए हैं कि तालिमी वगैरा जलसे के उनवान से इजाजत हासिल कर ली गई। मगर पोलिटिकल लेक्चर दिया गया। जिसमें रईस पर और हुकूमत पर हमला किया गया। इस वजह से यह इंतजाम किया गया है कि उन से जमानत व इकरारनामा लिया जा कर इजाजत दी जाए। अगर खिलाफ इकरार तकरीर हो तो जमानत जप्त होगी।

१२—बजरये कमेटी तहकीकात करवाना बेजरूरत है। क्योंकि हम तो आपसे बदगुमान नहीं हैं कि गलत वाकियात का इंदिराज किया गया होगा। अलबत्ता अगर बाजाप्ता चाराजोई करने के बावस्फ भी इन्साफ न हो तो गवर्नमेन्ट के महकुमे मुतालका के पास आप रुजू हो सकते हैं। जो बशर्ते जरूरत तहकीकात करेगी।

१३—आखिर में मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि आर्यसमाजी को भी वही हुकूक हासिल हैं, जो एक मुसलमान और दीगर मजाहब वालो को हासिल हैं। और अमन से जिंदगी बसर कर सकता है।"

यह उद्धरण पूरा इस कारण दिया गया है कि भविष्य में रियासत में होने वाली घटनाओं से पोलिटिकल मिनिस्टर के उत्तर में प्रगट की गई नीति का बहुत गहरा सम्बन्ध है। उस समय मुलाकात का अच्छा असर हुआ। सभा की ओर से उर्दू में 'वैदिक-आदर्श' नाम से एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हो रहा था, उसने भी आर्यसमाज की स्थिति को स्पष्ट करने में पूरी सहायता दी। लगभग एक वर्ष तक आर्यसमाज के काम पर कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं डाले गये, परन्तु रियासत के कर्मचारी मंडल के मन में आर्यसमाज के प्रति इतनी विरोध-भावना भरी हुई थी कि वह १९३४ में प्रगट हुए बिना न रह सकी। उस वर्ष आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं ने वार्षिकोत्सव के अवसर पर पं० रामचन्द्र जी महोपदेशक को व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रित किया। आपके कई व्याख्यान हुए, जिन में जनता बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित होती रही। पं० रामचन्द्र जी बहुत सिद्धहस्त व्याख्याता हैं। आप तर्क और प्रमाण द्वारा अन्य मत-मतान्तरों की आलोचना अवश्य करते हैं परन्तु आलोचना करने में शिष्टाचार को कभी नहीं छोड़ते और शब्दों के चुनाव

में इतने सावधान हैं कि विरोधियों को भी उनका सिक्का मानना पड़ता है। भारत भर में व्याख्यान देते और शास्त्रार्थ करते हुए उन्हें लगभग चालीस वर्ष हो गये, कहीं पुलिस को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं हुई। परन्तु हैदराबादकी पुलिस ने उनके भाषणों में 'तौहीने-इस्लाम' की ध्वनि सुन ली और उत्सव की समाप्ति पर उन पर तथा पंडित बंशी-लाल जी आदि तीन अन्य कार्यकर्ताओं पर नियम धारा, २३६, ८३,१३४ के अधीन अभि-योग चला दिया। इस पर न केवल हैदराबाद में, अपितु सारे भारतवर्ष में एक सनसनी सी फैल गई। पं० रामचन्द्र जी के आर्यजाति के सम्मानित व्याख्याता होने के कारण सार्व-देशिक आर्यप्रतिनिधि सभा ने आप पर चलाये गये अभियोग के मामले को अपने हाथ में ले लिया। सभा के मन्त्री प्रो० सुधाकर जी स्वयं हैदराबाद जाकर पोलिटिकल मिनिस्टर तथा पुलिस के अधिकारियो से मिले। प्रोफेसर जी को विश्वास दिलाया गया कि अभि-योग उठा लिया जायेगा। अभियोग तो उठा लिया गया, परन्तु १८ जुलाई के एक फरमान द्वारा उन्हें रियासत से बाहर निकल जाने की आज्ञा देते हुए यह भी सूचना दे दी गई कि वे विशेष हुक्म लिये बिना भविष्य में रियासत में प्रवेश नहीं कर सकेंगे।

पंडित जी को रियासत के बाहर भेज देने के पश्चात् हैदराबाद की पुलिस ने आर्य-समाज के कामों में स्थान-स्थान पर प्रतिबन्ध डालने आरम्भ कर दिये। धीरे-धीरे रियासत की नीति आर्य समाज के प्रति कठोर होती गई। उस नीति के अन्तर्गत रियासत की पुलिस ने क्या-क्या कारनामे किये और उनका आर्यसमाज ने क्या उत्तर दिया, इन प्रश्नों के उत्तर अगले खंड में मिलेंगे। वह आर्यसमाज के इतिहास का एक अत्यन्त अलग पर्व है, जो किसी अध्याय का अंग नहीं बन सकता।

चौदहवां अध्याय

विविध प्रदेशों में आर्यसमाज

१. बिहार

१९११ ईस्वी में बिहार और बंगाल की सम्मिलित आर्यप्रतिनिधि सभा स्थापित हुई थी। बिहार में आर्यसमाज का प्रचार बड़ी तीव्रता से हो रहा था, इस कारण यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि उसे अलग प्रान्त बना दिया जाय। तदनुसार २८ मार्च १९३० को बंगाल से अलग बिहार की आर्यप्रतिनिधि सभा की स्थापना की गयी। उसी वर्ष मई मास में उसकी रजिस्ट्री हो गई। सभा का मुख्य कार्यालय पटना में रक्खा गया। सभा से सम्बद्ध समाजों की संख्या शीघ्र ही १५० तक पहुंच गई। सभा की ओर से कई संस्थायें चलती थीं। सीमान्त (सारन) में डी० ए० वी० कालेज की स्थापना १९४० में हुई, परन्तु चार डी० ए० वी० स्कूल कई वर्षों से चल रहे थे। प्रान्त में चलने वाले छोटे-छोटे गुरुकुलों की संख्या ४ थी, उनमें से वैद्यनाथधाम का गुरुकुल सुविख्यात और बड़ा था। तीन अनाथालय, तीन संस्कृत पाठशालायें भिन्न-भिन्न नगरों में विद्यादान का काम कर रही थी। केन्द्र में एक बिहार प्रान्तीय हिन्दू वनिता आश्रम भी था, जिसमें अनाथ और विपद्-ग्रस्त महिलाओं की रक्षा और शिक्षा का प्रबन्ध था।

इस प्रान्त में सोन नदी के तट पर स्नान के अनेक बड़े-बड़े मेले होते हैं। उन में आर्यसमाज के प्रचार की विशेष व्यवस्था की जाती थी। सोनपुर में हरिहर क्षेत्र का मेला सब से बड़ा होता है, उस पर दस दिनों तक अखंड प्रचार किया जाता था। सभा के विवरण से प्रतीत होता है कि सन्थाल परगना और छोटा नागपुर के सन्थाल, भील, उराम, डोम आदि जंगली जातियों में प्रचार की विशेष व्यवस्था की गई थी। स्वामी शिवानन्द जी और पं० बद्रीनारायण जी का कार्य विशेष रूप से प्रशंसनीय समझा गया था। प्रान्त में आर्यसमाजों के अतिरिक्त आर्यवीर दल, आर्यकुमार सभा आदि संस्थायें भी प्रचार तथा रचनात्मक कार्य में पूरा सहयोग दे रही थी।

प्रान्त के विशेष कार्यकर्ताओं में हम निम्नलिखित नाम पाते हैं---रायबहादुर बाबू व्रजनन्दन सिंह जी, पं० वेदव्रत जी वानप्रस्थ, डा० कार्तिकीप्रसाद जी, पं० महादेव शरण जी, पं० वासुदेव जी शर्मा, पं० बद्रीनारायण शर्मा, पं० सिद्धेश्वर शर्मा, बाबू रामचन्द्र प्रसाद जायसवाल, मेहता चूड़ामणि वर्मा, स्वामी रामानन्द जी संन्यासी इत्यादि।

इस प्रान्त के प्रसिद्ध प्रचारकों में सब से पहला नाम स्वामी मुनीश्वरानन्द जी का है। स्वामी जी का केन्द्र स्थान दानापुर में था, परन्तु उनका दौरा देश भर में

लगता रहता था। वे ऊंचे दर्जे के त्यागी, स्पष्टवक्ता, और वाग्मी संन्यासी थे। उनके भाषणों का असर सर्वसाधारण जनता पर बहुत पड़ता था। धनी-मानी तथा अधिकारी कभी-कभी उनकी स्पष्टवादिता से तिलमिला उठते थे, परन्तु उनका हृदय इतना निष्कपट था कि न वे किसी से देर तक रुष्ट रहते थे और न कोई अन्य उन से देर तक नाराज रह सकता था। उनमें एक निर्भय प्रचारक के पूरे गुण थे।

२. मध्य प्रदेश तथा विदर्भ

"मध्य प्रदेश व विदर्भ" प्रान्त में सब से पहला आर्यसमाज, जिसकी स्थापना का लिखित प्रमाण मिलता है, वह जबलपुर का है। आर्यसमाज जबलपुर के वार्षिक वृत्तान्तों में निम्न लिखित लेख है—"यह आर्यसमाज सन् १८८२ में स्थापित हुआ और सन् १८८३ में इस प्रान्त की प्रतिनिधि सभा में सम्मिलित हुआ। इसके संस्थापक श्रीयुत महाशय रलाराम जी इंजिनियर थे। कुछ वर्षों के पश्चात समाज ने अपना निजी भवन तिलकभूमि, जवाहर गंज में बनाया।" इस लेख से विदित होता है कि जबलपुर में आर्यसमाज की स्थापना १८८२ ई० में हुई। इससे यह भी विदित होता है कि प्रान्त की प्रतिनिधि सभा इससे पूर्व विद्यमान थी।

आर्यसमाज अमरावती के वार्षिक वृत्तान्त में उल्लेख है कि १८८९ ईस्वी में श्री पंडित इन्द्रदत्त जी शर्मा द्वारा समाज सुसंगठित रूप से स्थापित किया गया। यों नाम मात्र की स्थापना १८८७ ईस्वी में ही हो चुकी थी। इस समाज के संरक्षक हैदराबाद रियासत के मनसबदार ठाकुर गोविन्दसिंह जी को बनाया गया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सं० १९९७ विक्रमी की डायरेक्टरी में श्री स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा २७ दिसम्बर १८८९ को मध्य प्रदेश की प्रतिनिधि सभा के स्थापित होने की चर्चा है। यह सूचना भ्रमात्मक ही प्रतीत होती है। पहले सभा का कार्यालय नरसिंहपुर में था, फिर जबलपुर में गया और १९३४ में नागपुर सभा का केन्द्र स्थान बन गया। प्रारंभ में सभा से सम्बद्ध समाजों की संख्या केवल ७ थी। १९३७ ई० में वह १२५ के लगभग हो गई। सभा की ओर से १ दर्जन के लगभग उपदेशक प्रचार का कार्य करते थे।

सभा की ओर से "आर्य सेवक" नाम का मासिक पत्र प्रकाशित होता था, जो अब तक भी प्रान्त में वैदिक धर्म के प्रचार का एक मुख्य साधन बना हुआ है।

इस प्रान्त को यह सम्मान प्राप्त है कि इसने आर्यसमाज को श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त बी० एस सी०, एल-एल० बी० जैसा योग्य उत्साही और कुशल नेता प्रदान किया है। गुप्त जी ने सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान की तथा हैदराबाद सत्याग्रह के एक प्रमुख कार्यकर्ता की हैसियत से आर्यसमाज की जो बहुमूल्य सेवायें की हैं, उन से सारा देश परिचित है। मध्य प्रदेश के आर्यसमाजों के तो आप कर्णधार ही हैं। वर्षों से आप प्रान्तीय सभा के प्रधान हैं।

गुरुकुल होशंगाबाद इस प्रान्त के आर्यजनों की प्रमुख संस्था है। पहले गुरुकुल एक कमेटी की ओर से स्थापित किया गया था। कमेटी की ओर से ब्रह्मचारी ब्रह्मा-

श्री बालकृष्ण सहाय जी, रांची

श्री श्यामकृष्ण सहाय जी, रांची

स्वा० मुनीश्वरानन्द जी

पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ

श्री राधेमोहन जी
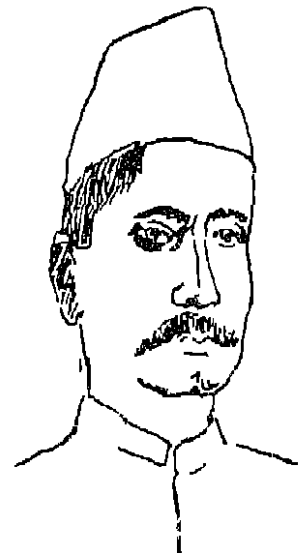
पं० अयोध्याप्रसाद जी

नन्द जी इसका प्रबन्ध करते थे। १९१४ मे गुरुकुल का प्रबन्ध प्रान्तीय सभा की संरक्षकता मे आ गया और १९२० मे वह पूर्णरूप से सभा के अधीन हो गया। सभा के प्रबन्ध मे आकर गुरुकुल की निरन्तर उन्नति होती गई। छात्रों की संख्या, वार्षिक आय तथा प्रबन्ध की सुव्यवस्था के कारण १९२५ में उसको प्रान्त की प्रमुख संस्थाओं मे गणना पाते हैं। सेठ जमनालाल बजाज तथा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान पंडित भगवानदीन जी आदि महानुभावों का गुरुकुल में जाना और अच्छी सम्मति लिखना इसका प्रमाण है।

३. सिन्ध

सिन्ध १९१९ ईस्वी से पूर्व आर्यसमाज की दृष्टि से पंजाब का हिस्सा माना जाता था। उस समय भी कराची और हैदराबाद के आर्यसमाज बहुत कर्मठ और समृद्ध समझे जाते थे। आर्यसमाज की संस्थाओ को सिन्ध के व्यापारियो से पर्याप्त सहायता मिलती थी। १९१९ मे सिन्ध में पृथक् आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हो गई। १९३६-३७ में सभा के तीन वैतनिक प्रचारक प्रान्त में प्रचार का कार्य करते थे। १२ अन्य अवैतनिक प्रचारक सभा की ओर से प्रचारकार्य मे सहायता देते थे। सभा की ओर से 'आर्य सन्देश' नाम का पत्र कुछ वर्षों तक चलता रहा। डाइरेक्टरी से विदित होता है कि धनाभाव के कारण पत्र को बन्द करना पड़ा। सिन्ध जैसे धनियो के प्रान्त में धन की कमी के कारण एक साप्ताहिक पत्र न चल सका, यह आश्चर्य में डालनेवाली बात है।

प्रतिनिधि सभा द्वारा आर्यसमाज के प्रायः सभी देशव्यापी कार्यों में सहायता दी जाती रही। हैदराबाद सत्याग्रह में सिन्ध ने ७५ सत्याग्रही भेजे। दलितोद्धार, आर्यवीर दल और वेद प्रचार आदि सब विभागों में सिन्ध की आर्यसमाजें भाग लेती रहीं। प्रान्त के विशेष कार्यकर्ताओं मे महाशय तेजोमल जी कमल, प्रो० ताराचन्द जी गाजरा, महाशय हासानन्द जी लड़काना और प्रो० हासानन्द जी कण्डियारी आदि के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखयोग्य हैं।

श्री ताराचन्द गाजरा

४. बंगाल तथा आसाम

१९३० ई० के मार्च महीने तक बंगाल और बिहार प्रान्त मिले हुए थे। बिहार में आर्य समाजों की संख्या और उसकी संस्थाओं की काफी वृद्धि हो जाने पर उसमें पृथक् प्रतिनिधि सभा की स्थापना हो गई। इधर आसाम में सार्वदेशिक सभा तथा बंगाल प्रति-निधि सभा के उपदेशकों के प्रयत्न से कई आर्यसमाजें स्थापित हो चुकी थीं। फलतः १५ मार्च १९३० ई० को बंगाल तथा आसाम की सम्मिलित आर्य प्रतिनिधि सभा स्थापित की गई। इस सभा का मुख्य कार्यालय आर्यसमाज मन्दिर कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता में बनाया गया। कई वर्षों तक इसके प्रधान श्री हरगोविन्द गुप्त और मन्त्री श्री मेहरचन्द्र

जी धीमान् रहे। आर्य डाइरेक्टरी से विदित होता है कि १९४० तक इसमें ३०० आर्य-समाजें सम्मिलित हो चुकी थीं।

कलकत्ता स्वयं बहुत बड़ा नगर होने के कारण एक प्रान्त के समान महत्व रखता है। कार्नवालिस स्ट्रीट के मुख्य आर्यसमाज के अतिरिक्त बड़ा बाजार, दक्षिण कलकत्ता, जोड़ा बागान, बाग बाजार, खिदिरपुर, सलकिया, भवानीपुर, रामकृष्णपुर तथा कांकी-नारा आदि स्थानों में पृथक् आर्यसमाजे अपने-अपने हल्के मे प्रचार आदि कार्य करती है। कलकत्ते से बाहर टीटागढ़, बारकपुर, आलम बाजार, आसनसोल, दार्जिलिंग आदि नगरों में भी आर्यसमाज स्थापित हुए।

इस प्रान्त में आर्यसमाज को सब से बड़ी संस्था आर्य कन्या महाविद्यालय है। इस संस्था का मुख्य आर्यसमाज के साथ मिला हुआ विशाल भवन है। महाविद्यालय की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है। एक दयानन्द वैदिक पुस्तकालय भी है, जिस मे बहुत सी दुष्प्राप्य पुस्तकों का संग्रह है। यद्यपि आर्यसमाज का अपना कोई मुख पत्र नहीं था, तो भी श्री मेहरचन्द जी धीमान् का 'जागृति' नाम का पत्र आर्यसमाज का प्रबल समर्थक था। यह पत्र पहले साप्ताहिक था फिर दैनिक हो गया। लाखो रुपयों की हानि उठा कर धीमान् जी इस पत्र को केवल समाज-सेवा के भाव से वर्षो तक चलाते रहे।

जब कभी बंगाल अथवा आसाम पर दुर्भिक्ष या बाढ का संकट आया, बंगाल की आर्यप्रतिनिधि सभा सेवा के कार्य में अग्रसर होती रही। कलकत्ते के सौभाग्य से वहां सदा उत्तरीय भारत से गये हुए कुछ ऐसे सज्जन रहे है, जिन से आर्यसमाज को पुष्कल दान मिलता रहा है। सेठ जयनारायण पोद्दार का नाम इस दृष्टि से विशेषतः उल्लेख-योग्य है। आर्यसमाज का शायद ही ऐसा कोई सार्वजनिक कार्य होता हो, जिसमें वे खुले हाथ से सहायता न देते हो। अब भी उनके उत्तराधिकारियों में से सेठ दीपचन्द पोद्दार और सेठ कृष्णलाल पोद्दार कुल-प्रथा को जीवित रख रहे हैं। श्री मेहरचन्द जी धीमान् दानी भी हैं और उत्साही कार्यकर्ता भी। परमात्मा ने उन्हें धन कमाने और प्रचार करने की शक्तिया समान रूप में दी है। बंगाल की आर्यसमाजों के आदि पुरुष पडित शंकरनाथ जी के पीछे जिन महानुभावों ने आर्यसमाज के कार्य को बंगाल मे न केवल जीवित रखा, उसे आगे भी बढाया, उन में श्री हरगोविन्द जी गुप्त, पंडित अयोध्याप्रसाद जी बी० ए०, पं० दीनबन्धु जी शास्त्री तथा प० अवधविहारी आदि मुख्य है।

५. आर्य प्रतिनिधि सभा, मौरीशस

मौरीशस द्वीप में आर्यप्रतिनिधि सभा की स्थापना १९२६ में और उसकी रजिस्ट्री १९२७ में हुई।

मौरीशस में वैदिक धर्म के प्रचार का सूत्रपात १९१० में डा० चिरंजीव भारद्वाज ने किया था। वे सफल चिकित्सक थे, इस कारण उनके उपदेशों का प्रभाव भी बहुत अच्छा होता था। उनके रास्ते में अनेक विघ्न आये, जिन्हें अपनी दृढता और सेवा के प्रभाव से दूर कर के आपने द्वीप में आर्यसमाज की जड़ें मजबूत कर दी। १९१५ में डा० भारद्वाज भारत में वापिस आ गये।

डा० भारद्वाज के लगाये हुए पौदे को सींचने के लिए १९१६ में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी मारिशस गये। आपके त्यागभाव और उपदेशों के प्रभाव से पहले से बने हुए आर्यसमाजो को पुष्टि मिली और कई नये समाज स्थापित हुए। समाजों की संख्या बढ़ती गई और १९२६ में सभा की स्थापना के समय उनकी संख्या ३० थी। १९२६ की रिपोर्ट से विदित होता है कि उस समय सभा के पास ३० हजार रुपये की सम्पत्ति थी। सभा के अधीन ४ वैतनिक उपदेशक काम करते थे, छः अवैतनिक प्रचारक थे, जिन मे से एक देवी भी थीं।

आर्यसमाजों के अधीन छः कन्या-पाठशालाये थीं, जिनमें हिन्दी द्वारा शिक्षा दी जाती थी। एक पाठशाला में हिन्दी के साथ-साथ मराठी की शिक्षा भी दी जाती थी, क्योंकि वहां महाराष्ट्र से आये हुए लोगों की संख्या अधिक थी। एक पाठशाला में छोटे बालक और बालिकाये एक साथ शिक्षा पाते थे। इन पाठशालाओं के अतिरिक्त प्रत्येक आर्यसमाज में आर्य भाषा की शिक्षा देने के लिए रात्रि-पाठशालायें चल रही थी। पाठशालाओं का प्रबन्ध स्थानीय कमेटियों द्वारा होता था, और प्रतिनिधि सभा उनका निरीक्षण करती थी।

मारीशस मे आर्यसमाज के प्रचार के कारण दो बहुत प्रशंसनीय कार्य हुए। एक तो दलितों की समस्या सर्वथा हल हो गई। मौरीशस में उसका इतना अधिक प्रभाव हुआ है कि सनातनधर्मी भाई भी खुले दिल से अन्तर्जातीय विवाह करने लगे। हिन्दी भाषा का प्रचार भी पर्याप्त मात्रा मे हुआ। आर्थिक स्थिति के काफी मजबूत न होने पर भी आर्यसमाज ने ३०००) की लागत से अपना 'श्रद्धानन्द प्रेस' स्थापित किया, जिससे आर्यसमाज का मुख-साप्ताहिक पत्र 'आर्यवीर' निकलता था। यह पत्र हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था।

६. पूर्वीय अफ्रीका

ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों की भांति पूर्वी अफ्रीका में भी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग मे बहुत से भारतवासी बस गये थे। उनमें से अधिकांश ऐसे थे, जो पांच वर्ष के बड़े पट्टे पर मजदूरी करने के लिए गए थे और पट्टे की अवधि समाप्त होने पर वही रहकर व्यापार करने लगे। बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे उनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो गई थी। शिक्षा के प्रचार के साथ-साथ उनमे अपने धर्म के प्रति आस्था भी जाग उठी।

प० ईश्वरदत्त विद्यालकार

१९२० में एक आर्य सम्मेलन हुआ, जिसके अध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक पं० ईश्वरदत्त विद्यालंकार थे। पण्डित ईश्वरदत्त जी पूर्वीय अफ्रीका के आर्यजनों के निमन्त्रण पर

सम्मेलन मे भाग लेने के लिए वहां गये थे । इस सम्मेलन का फल यह हुआ कि १९२० के मध्य में पूर्वीय अफ्रीका के आर्यसमाजों की आर्य प्रतिनिधि सभा स्थापित हो गई। नैरोबी और जंजीबार के आर्यसमाजियो ने सभा की स्थापना मे नेतृत्व किया। प्रारम्भ मे सभा मे यह छः समाजें सम्मिलित हुई :—

(१) जंजीबार, (२) दारस्सलाम, (३) मुंबासा, (४) नैरोबी, (५) किसूनू, (६) कम्पाला । इसके पश्चात् कुछ और समाजो की स्थापना हुई । १९३६ मे सभा से सम्बद्ध आर्यसमाजों की संख्या १७ थी। सभा के प्रधान श्री डी० डी० पुरी और मन्त्री श्री डी० आर० मडल का उद्योग विशेष सराहनीय था। १९३५ मे श्री मंडल को अपने देश भारत लौट आना पड़ा, इस कारण उनके स्थान पर श्री प्रभुदयाल जी मंत्री चुने गये ।

१९२५ मे जब मथुरा में श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी का महोत्सव मनाया गया तब पूर्वीय अफ्रीका के सब समाजों मे भी उत्सव किये गये। सभा इससे पहले २१०० शिलिंग मथुरा की जन्म शताब्दी की सहायता के रूप में भेज चुकी थी।

प्रारम्भ से ही उपनिवेश की समाजो मे शिक्षणालयों को खोलने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई थी। किसी समाज में कन्या पाठ्शाला थी, तो किसी में स्कूल। पं० ईश्वरदत्त जी के प्रभावशाली व्याख्यानो के प्रभाव से आर्य पुरुषों में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के लिए विशेष प्रेम उत्पन्न हो गया । सौभाग्यवश काठियावाड़ के प्रसिद्ध धर्मभक्त सेठ नान जी कालीदास मेहता का ध्यान उपनिवेश के आर्यजनों की निर्बल धार्मिक दशा की ओर खिच गया। १२ मई १९२८ को नैरोबी मे नाना जी सेठ के सभापतित्व मे आर्यजनो की एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमे सेठ जी ने गुरुकुल की पद्धति पर श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्याश्रम और वेद प्रचार के कार्य के लिए पर्याप्त सहायता भी दी। आश्रम का भवन बनाने के लिए आपने छः एकड़ जमीन और उस पर बनी हुई इमारत दान की। यह आश्रम निरन्तर उन्नति करता हुआ १९३६ में एक विशाल शिक्षण-संस्था के रूप में परिणत हो गया।

७. ब्रह्म देश

जब १८८६ ईस्वी में अंग्रेजों ने ब्रह्मदेश (बर्मा) के राजा को जीतकर उस देश को ब्रिटेन के भारत साम्राज्य का हिस्सा बना दिया तबसे हिन्दुस्तान के व्यापारी व्यापार के लिए वहां के बडे-बड़े नगरों मे जाकर बसने लगे। थोड़े ही वर्षों मे उनका व्यापार खूब चमक उठा और बर्मा का भारतीय समाज समृद्धिशाली समझा जाने लगा । वहां बसे हुए भारतवासियों में से बहुत से आर्यसमाजी भी थे। वे लोग समय-समय पर आर्यसमाज के प्रचारकों को भारतवर्ष से बुलाते रहते थे। बर्मा मे प्रचार तथा संस्थाओ के लिए धन-संग्रह के लिए जाने वालों में हम स्वामी श्रद्धानन्द जो, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी आदि प्रभावशाली नेताओं के नाम पाते है। बर्मा की आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ २५ आर्य समाजें सम्बद्ध थीं। उसका मुख्य कार्यालय रंगून में था। सभा के प्रधान लाला जगतराम जी, उपप्रधान पंडित परमानन्द जी बी० ए०, श्री लक्ष्मणदास जी वर्मा वकील और बाबू

हंसराज जी ओवरसियर तथा मंत्री श्री भारद्वाज जी थे। सभा का अपना भवन था, जिसकी लागत दस हजार रुपया समझी जाती थी । माण्डले में एक अनाथालय था, जिसके लिए सेठ ईश्वरदास जी तथा श्री लाजपतराय जी ने दस हजार रुपये की लागत का एक विशाल भवन दान मे दिया था। बर्मा की ओर से हैदराबाद सत्याग्रह मे दस हजार रुपये की सहायता के अतिरिक्त सत्याग्रहियों के दो जत्थे भी भेजे गये। सभा ने बर्मा निवासियो में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बर्मी भाषा मे सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद प्रकाशित कराया था। यह अनुवाद सारनाथ बर्मा बौद्ध मन्दिर के महन्त श्री भिक्षु अकृत्तिमानन्द जी ने किया था।

८. बगदाद

बगदाद भारत से पर्याप्त दूरी पर पडा हुआ एक विदेशी नगर है। व्यापार और सरकारी नौकरी के सिलसिले में बहुत पहले से उद्योगी भारतवासी वहां जाकर बसने लगे थे। चारो ओर मुसलमानो की आबादी है, उनके बीच में पड़ी हुई हिन्दुस्तानियो की बस्ती को छावनी का नाम ही दिया जा सकता है। उस छावनी मे आर्य समाजी भाइयो ने १९२८ में आर्य समाज की स्थापना करके बड़े साहस का कार्य किया। प्रारम्भ मे ईराक में भारतवासियों की सरकारी सेवाओं में नियुक्ति पर कोई प्रतिबन्ध न होने के कारण आर्यसमाज का बल काफी बढता गया। परन्तु कुछ समय पीछे सरकार की नीति बदल गई, जिसके कारण बगदाद में हिन्दुओ की संख्या घटने लगी। फिर भी आर्यसमाजी कार्यकर्ताओ के उत्साह से समाज की उपयोगिता बढ़ती गई। धीरे-धीरे आर्यसमाज बगदाद के हिन्दू निवासियों का धार्मिक और सास्कृतिक केन्द्र बन गया। आर्य समाज से सम्बद्ध अन्य सस्थाए भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में काम कर रही थीं। डिबेटिंग क्लब वाक्शक्ति को पुष्ट करती थी तो स्त्रीसमाज स्त्रियों में जागृति उत्पन्न करने का शुभ कार्य कर रही थी। वहां के विशेष कार्यकर्ताओं में हम निम्नलिखित नाम पाते है :—

१ पंडित गंगाप्रसाद झा शास्त्री,
२ श्री लालचन्द लाल,
३. श्री जे० जे० लाड,
४. श्री जगन्नाथ गुलारी,
५. श्री किशनचन्द आर्य,
६. श्री पं० नारायणचन्द्र गोस्वामी,
७. श्री भमरनाथ महेन्द्र,
८. श्री सेठ देवराज,
९ महाशय पुत्तूलाल सक्सेना,
१० श्री सेठ जे० एस० वर्मा,
११. श्री कुप्पू स्वामी नायडू,
१२ श्री महाशय मुन्शीराम आदि।

९. दक्षिण अफ्रीका

हम इससे पूर्व दक्षिण अफ्रीका में आर्यसमाज की स्थापना तथा उसके विस्तार का वृत्तान्त दे चुके हैं। उपनिवेशों में सबसे अधिक कार्य दक्षिण अफ्रीका में ही हुआ। विस्तार और स्थिरता की दृष्टि से वह अन्य उपनिवेशों से बहुत आगे रहा। मथुरा के ऋषि दयानन्द जन्म शताब्दी के उत्सव से पूर्व ही दक्षिण अफ्रीका की राजधानी डरबन में जन्म शताब्दी महोत्सव मनाया गया था। प्रारम्भ मे महायज्ञ किया गया, जिसमें यजुर्वेद के २० अध्यायों से आहुतियां दी गयी। भारत की सीमाओं से बाहर अपने ढंग का यह पहला ही यज्ञ था। १६ फरवरी १९२४ से २२ फरवरी तक तामिल इन्स्टीच्यूट में उत्सव मनाया जाता रहा। प्रतिदिन सायंकाल छ. बजे से रात के ९ बजे तक महर्षि के जीवन तथा वैदिक सिद्धान्तों पर विद्वानों के व्याख्यान तथा निबन्ध होते थे। वक्ताओं में मुख्यतया निम्नलिखित विद्वान् थे--पं० भवानीदयाल जी, श्री पी० आर० पत्तर, श्री एस० एन० रिचार्ड, श्री एफ० रामलगन, श्री एस० एल० सिंह, श्री एस० भगवानदीन, श्री सत्यदेव, श्री आर० एम० नायडू श्री मोहकमचन्द और श्री टी० एम० नायर। श्री एच० एन० रिचार्ड एक ईसाई युवक थे, उन्होंने महर्षि दयानन्द के प्रति गहरी भक्ति और श्रद्धा के भाव अभिव्यक्त किये।

२१ फरवरी को आर्य नर-नारियों का एक विराट् जलूस निकाला गया। उस अवसर पर हुए अन्य आयोजनो में से प्रथम वैदिक परिषद्, विद्यार्थी सम्मेलन, आदि समारोह मुख्य थे।

जन्म शताब्दी उत्सव के अवसर पर जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य हुआ, वह आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना का था। २२ फरवरी १९२५ को शिवरात्रि के अवसर पर श्री आर० एन० नायडू ने यह प्रस्ताव रखा कि दक्षिण अफ्रीका में वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए केन्द्रीय आर्य वैदिक सभा की स्थापना की जाय। यह प्रस्ताव श्री पं० भवानीदयाल जी के संशोधन के साथ इस रूप मे पास हुआ--"ऋषि दयानन्द जन्म शताब्दी पर इस सम्मेलन में पधारे हुए लोग निश्चय करते हैं कि एक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हो तथा उसके द्वारा दक्षिण अफ्रीका मे वैदिक धर्म का प्रचार हो।" सभा का केन्द्र स्थल डरबन मे रखने का निश्चय हुआ। पं० भवानीदयाल जी सभा के प्रथम और श्री बी० ए० मेघराज तथा पी० आर० पत्तर क्रमशः मन्त्री तथा उपमंत्री नियुक्त हुए। १९२७ में यह सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध हो गयी।

आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना के पश्चात् उपनिवेश में आर्य समाज की प्रवृत्तियां बहुत बढ गई। आगामी वर्षों मे वैदिक परिषद् के छः अधिवेशन हुए, जिनसे प्रचार के कार्य को बहुत पुष्टि मिली। १९२८ में प्रसिद्ध भजनोपदेशक ठाकुर प्रवीणसिंह जी उपनिवेश के आर्यजनों के विशेष निमंत्रण पर वहां गये। उनके सरल और जोश से गाये हुए भजनों का वहा के श्रोताओं पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। १९३३ ई० मे जब अजमेर मे महर्षि दयानन्द की निर्वाण-अर्द्ध शताब्दी मनाई गई तब डरबन मे भी निर्वाण-सप्ताह

का आयोजन किया गया । सभा की स्थापना के समय से ही उपनिवेश के आर्यों की प्रबल इच्छा थी कि सभा का अपना भवन बनाया जावे । कार्य धन-साध्य था । केवल जमीन खरीदने के लिए ही दो हजार पौंडो की आवश्यकता थी । कार्यकर्ताओं को अपनी इच्छा पूरी करने में दस साल लगे । १९३६ में साहस करके सभा ने जमीन खरीद ली । इस कार्य के लिए उसे बहुत बड़ी राशि ऋण रूप में लेनी पड़ी । सभा के अधिकारी वर्ग ने भगीरथ प्रयत्न करके पांच वर्षो में उस ऋण को उतार दिया और कुछ अधिक धन इकट्ठा करके काम चलाऊ भवन भी तैयार कर लिया । शुभ कार्य के लिए किया गया साहस भी कभी व्यर्थ नही जाता । भवन के निर्माण पर कार्य प्रारम्भ हो जाने पर १९४० ईस्वी में सभा के उस समय के प्रधान श्री आर० बोधासिंह जी ने वेद मन्दिर के निर्माण के लिए एक लाख बत्तीस हजार रुपया दान देने की घोषणा की । कुछ ही वर्षों में आर्यसमाज की भूमि पर शानदार वेदमन्दिर खड़ा हो गया ।

दक्षिण अफ्रीका में आर्यसमाज के प्रचार का जो इतिहास गुरुकुल कांगडी के स्नातक पं० नरदेव वेदालंकार ने लिखा है, उसमें से हम एक महत्वपूर्ण प्रसंग उद्धृत करते हैं :—

"भारत सरकार के दक्षिण अफ्रीका के राजदूत सर सैयद रजाअली ने जनवरी १९३६ मास में किम्बर्ली की एक हिन्दू कन्या कु० सामी से विवाह करना तय किया । इस कारण से हिन्दू समाज में घोर आन्दोलन उठ खडा हुआ । इस विरोध का सूत्रपात प्रतिनिधि सभा ने किया । इस विवाह के विरुद्ध १९ जनवरी १९३५ के दिन सभा ने समस्त हिन्दुओं का एक विराट् अधिवेशन बुलाया, जिसमे सहस्रो हिन्दू उपस्थित थे । इसमें उक्त विवाह का घोर विरोध हुआ और बड़े गरमागरम भाषण हुए । सभा की प्रेरणा से कई संस्थाओ ने उग्र विरोध के प्रस्ताव पास किये । हरेक हिन्दू संस्था को श्री सैयद रजाअली से असहयोग करने के लिए प्रार्थना की गई । इस तरह इस विवाह के विरुद्ध सारे दक्षिण अफ्रीका में उग्र विरोध जाग उठा । इसके परिणामस्वरूप सर सैयद रजाअली ने रजिस्ट्रेशन द्वारा विवाह किया और मृत्यु पर्यन्त कु० सामी का धर्म-परिवर्तन नहीं हो सका ।"

आर्यसमाज की संस्थाओं का सिंहावलोकन

१. गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

अब हम आर्यसमाज के इतिहास के दूसरे युग की समाप्ति पर पहुंच रहे हैं। इस कारण यह उचित प्रतीत होता है कि दूसरे युग मे आर्यसमाज की तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली अन्य संस्थाओ की प्रगति का भी सिंहावलोकन कर ले। दूसरा युग गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के इतिहास में विशेष घटना-पूर्ण और सनसनीदार रहा। इस कारण उसकी चर्चा हम सबसे पूर्व करेंगे।

जल-प्रलय

हम इतिहास के इसी खंड के प्रारम्भिक अध्यायों में गुरुकुल कांगडी के विस्तार का वृत्तान्त लिख आये हैं। १९२४ तक गुरुकुल की कई बडी-बड़ी शाखाएं खुल चुकी थीं। मुलतान, कुरुक्षेत्र, झज्जर, भटिण्डा, मटौण्डू आदि पंजाब के स्थानों मे और सूरत जिले के सूपा ग्राम मे गुरुकुल की जो शाखाये स्थापित हुई थी, उनमें सैकड़ों ब्रह्मचारी शिक्षा पा रहे थे। कन्या गुरुकुल, जो दिल्ली से उठकर देहरादून मे पहुंच गया था, गुरुकुल का ही एक अन्तरीय अंग था। वह दिनोंदिन उन्नति कर रहा था। उसकी आचार्या श्रीमती विद्यावती सेठ बी० ए० का तपस्वी जीवन आर्य जगत् की अन्य महिलाओं के लिए दृष्टान्त का कार्य दे रहा था। श्रीमती सेठ ने पश्चिमोत्तर प्रदेश के एक प्रतिष्ठित और समृद्ध घराने में जन्म लिया था। बी० ए० तक पढ़ने के पश्चात् आपने यह संकल्प किया कि अविवाहित रहकर जन्म भर स्त्री जाति की सेवा करेंगी। इसी भावना से प्रेरित होकर आपने कन्या गुरुकुल का आचार्य पद अंगीकार किया। इसमें सन्देह नहीं कि आपके दृढ़ संकल्प और जीवन से कन्या गुरुकुल को विकसित और उन्नत होने में बहुत सहायता मिली।

भगवान् उन्नति के समय में ही व्यक्तियो और संस्थाओं की बल-परीक्षा लिया करते है। १९२४ में गुरुकुल कांगड़ी को भी परीक्षा के गहरे भंवर मे से गुजरना पड़ा। उस वर्ष सितम्बर मास मे बहुत वृष्टि के कारण देश के अनेक भागों मे जल-विप्लव का जो आक्रमण हुआ, उसने एक बार तो गुरुकुल कांगड़ी के भौतिक कलेवर को सांगोपांग उखाड़कर फेंक दिया। गंगा की बाढ़ ने जहां हरिद्वार और कनखल के कई हिस्सों को हानि पहुंचाई, वहां उसने गुरुकुल द्वीप की सभी मुख्य इमारतो को या तो सर्वथा नष्ट कर दिया अथवा तोड़-फोड़ कर निकम्मा कर डाला। विद्यालय का आश्रम, प्रेस, भंडार,

चिकित्सालय आदि की इमारतें बाढ़ में बह गईं, जो थोड़ी सी पक्की इमारतें थी, वे भी बसने लायक न रही। इस प्रकार २२–२३ वर्षो मे जो विशाल भवन खड़ा किया गया था, वह रेत मे समा गया।

गुरुकुल के संचालको के लिए वह समय गहरी चिन्ता और कड़ी परीक्षा का था। उस समय गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पं० विश्वम्भरनाथ जी और आचार्य प्रो० रामदेव जी थे। दोनो महानुभावों ने बड़ी वीरता से परिस्थिति का सामना किया। आर्य प्रतिनिधि सभा के सामने दो प्रस्ताव थे। एक प्रस्ताव था कि गुरुकुल की उसी भूमि के समीप पहाड के नीचे नये भवन बनाये जाये और दूसरा प्रस्ताव था कि गंगा से पश्चिम की ओर नहर और नदी के बीच की भूमि खरीद कर उस पर गुरुकुल का पुर्ननिर्माण किया जाए। बहुत से विचार के अनन्तर सभा ने दूसरे प्रस्ताव को स्वीकार किया। तदनुसार गुरुकुल के दोनो मुख्य अधिकारी कमर कसकर नयी सृष्टि की रचना में लग गये। आर्य जनता ने भी उनका पूरा साथ दिया। आज गुरुकुल का जो विशाल रूप विद्यमान है, वह अधिकारियो और आर्यजनो के उसी साहसिक परिश्रम का फल है।

रजत जयन्ती

१९२७ मे गुरुकुल कांगड़ी की रजत जयन्ती मनाई गई। वस्तुतः गुरुकुल को गुजरावालां में स्थापित हुए २५ वर्ष तो १९२५ मे ही पूरे हो गए थे, परन्तु बाढ़ के कारण जो सकट आया, उसने जयन्ती के मनाने में कुछ विलम्ब कर दिया। यों कांगड़ी के स्थान मे गुरुकुल का पहला उत्सव १९०२ में ही हुआ था। रजत जयन्ती के उपलक्ष मे उस वर्ष का वार्षिकोत्सव बहुत धूमधाम से मनाया गया। देश के महात्मा गाधी, पंडित मदनमोहन मालवीय, श्री श्रीनिवास आयगर, बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी, सेठ जमनालाल बजाज, डा० मुंजे और श्री शकरलाल बेंकर आदि नेताओ ने पधार कर गुरुकुल के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया। देश के विद्वानों में से प्रिन्सिपल ध्रुव, साधु वास्वानी, डा० अविनाशचन्द्रदास और श्री पीयूषकान्ति घोष ने उपस्थित होकर उत्सव की शोभा को बढाया। आर्यसमाज के अनेक नेता, संन्यासी और विद्वान् गुरुकुल के कार्यकर्ताओं और ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित हुए थे। गुरुकुल कांगड़ी में वह महोत्सव २५वा था। आर्य जनता को यह अनुभव करके बड़ा दुःख हुआ कि यह पहला उत्सव था जिसमें संस्था के संस्थापक श्री श्रद्धानन्द जी महाराज उपस्थित नहीं थे। उत्सव से लगभग तीन महीने पहले उनका बलिदान हो चुका था। उत्सव पर लगभग ५० हजार की उपस्थिति थी और डेढ़ लाख के लगभग रुपया प्राप्त हुआ, १ लाख ३० हजार की प्रतिज्ञाएं हुईं, जिनका धन पीछे से वसूल हो गया।

रजत जयन्ती की सफल समाप्ति के पश्चात् पंडित विश्वम्भरनाथ जी गुरुकुल से विदा हो गये। सभा ने उनके स्थान पर आचार्य रामदेव जी को मुख्याधिष्ठाता भी नियुक्त कर दिया। आचार्य रामदेव जी ने अपने तन और मन की सारी शक्ति लगाकर गुरुकुल को पुरानी शान तक पहुंचाने का अनथक प्रयत्न किया और बहुत दूर तक सफल भी हुए।

सत्याग्रह आन्दोलन और गुरुकुल

सन् १९३० में महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत की स्वाधीनता के लिए सत्याग्रह-संग्राम का प्रारम्भ हुआ। वह संग्राम नवयुवकों को त्याग और तपस्या के लिए आह्वान कर रहा था। गुरुकुल के विद्यार्थी ऐसे समय में शान्त नहीं रह सके। उन दिनों ब्रह्मचारी सर्वमित्र १४ वीं श्रेणी में पढ रहे थे। वह एक अत्यन्त होनहार विद्यार्थी थे। इनके नेतृत्व में गुरुकुल के विद्यार्थियों ने देश के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन का निश्चय किया। गुरुकुल के अधिकारी इसके लिए अनुमति नहीं दे सकते थे, क्योंकि गुरुकुल का एक संस्था के रूप में सत्याग्रह-संग्राम में भाग लेना संभव नहीं था। अतः अधिकारियों से अनुमति प्राप्त न होने पर भी विद्यार्थियों ने स्वराज्य-संग्राम में भाग लिया और विवश होकर कुछ महीने के लिए गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में अवकाश करना पड़ा। बहुत से विद्यार्थी कैद हो गये और ब्र० सर्वमित्र तथा उनके साथी ब्र० सत्यभूषण देहातों में काम करते हुए बीमार पड़े और स्वर्ग सिधारे। घोर विपत्तियों और प्रचण्ड महामारी की परवाह न कर जिस ढंग से इन ब्रह्मचारियों ने अपने प्राणों को मातृभूमि के लिए स्वाहा किया, उसे हम 'बलिदान' कहे तो अनुचित न होगा।

कुछ मास के असाधारण अवकाश के बाद गुरुकुल तो खुल गया, परन्तु अनेक छात्र सत्याग्रह-संग्राम में लगे रहे। सत्याग्रह के स्थगित होनें पर ये फिर गुरुकुल में प्रविष्ट हुए और अपनी पढ़ाई को पूर्ण किया।

सन् १९३२ में आचार्य रामदेव जी भी सत्याग्रह में भाग लेने के लिए गुरुकुल से चले गये। उनके स्थान पर प्रो० चमूपति जी मुख्याधिष्ठाता नियत किये गये। आचार्य पद पर पं० अभयदेव जी की नियुक्ति हुई। पं० चमूपति जी विद्वान्, कवि और सुवक्ता थे। आचार्य अभयदेव जी वेदों के पण्डित और तपस्वी ब्रह्मचारी थे। दोनो ने पांच वर्ष तक गुरुकुल की बहुमूल्य सेवा की। १९३५ में पं० चमूपति जी ने त्यागपत्र दे दिया। उनके स्थान पर पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार मुख्याधिष्ठाता पद पर नियुक्त किये गये।

विद्या-सभा की स्थापना

१९३५ मे गुरुकुल की प्रबन्ध-व्यवस्था मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल विश्वविद्यालय के संचालन के लिए एक विद्या सभा की स्थापना कर दी। उससे पूर्व अन्तरंग सभा ही वेद-प्रचार और गुरुकुल दोनो का कार्य संचालन करती थी। उससे गुरुकुल के कार्य में बाधा पड़ती थी। पृथक् विद्या-सभा के बन जाने से गुरुकुल को विश्वविद्यालय के रूप में विकसित होने का सुअवसर मिल गया। उससे पूर्व प्रतिनिधि सभा गुरुकुल के विकास के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार कर चुकी थी :—

"शिक्षा सम्बन्धी क्षमता को बढ़ाने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है कि वर्तमान गुरुकुल को ऐसे विश्वविद्यालय के रूप मे परिणत किया जाय, जिससे भिन्न-भिन्न विषयों

में शिक्षा दी जा सके। इसलिए निश्चय हुआ कि इस विश्वविद्यालय के साथ निम्नलिखित महाविद्यालय सम्बन्धित होंगे :—

क—वेद महाविद्यालय,
ख—साधारण महाविद्यालय,
ग—आयुर्वेदिक महाविद्यालय,
घ—कृषि महाविद्यालय,
च—व्यवसाय महाविद्यालय।

आयुर्वेद महाविद्यालय तथा गुरुकुल फार्मेसी

नई व्यवस्था के अनुसार गुरुकुल का महाविद्यालय, वेद महाविद्यालय तथा साधारण महाविद्यालय इन दो भागो में पहले ही विभक्त हो चुका था। महाविद्यालय में आयुर्वेद की जो पढ़ाई होती थी, उसे भी आयुर्वेद महाविद्यालय का रूप दिया जा चुका था। पृथक् विद्या-सभा बन जाने पर तीव्र गति से महाविद्यालयों का विकास होने लगा। थोड़े ही वर्षों मे आयुर्वेद महाविद्यालय ने इतनी उन्नति कर ली कि उसके लिए आयुर्वेद महाविद्यालय का अलग भवन बनाने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

आयुर्वेद महाविद्यालय की उन्नति का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ कि गुरुकुल के अधिकारियों का आयुर्वेद की औषधियों के निर्माण की ओर ध्यान विशेष रूप से खिंचा और पहले संक्षिप्त से रूप में गुरुकुल-फार्मेसी का सूत्रपात हुआ। उन दिनों के गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार थे। उनकी प्रेरणा से फार्मेसी का असाधारण विकास हुआ। अब फार्मेसी का जो विशाल रूप है, उसका बहुत सा प्रारम्भिक श्रेय पंडित सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार की व्यावहारिक प्रतिभा को है। आपने गुरुकुल भूमि में आमों के कई बाग भी लगवाये जो अब बहुत वर्षों से गुरुकुल को आर्थिक लाभ पहुंचा रहे है।

आचार्य देवशर्मा जी के तपोमय जीवन का ब्रह्मचारियो पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। व्रताभ्यास द्वारा नियम पालन की पद्धति का आविष्कार आपके ही समय में हुआ।

अंग्रेजो के राज्यकाल में पढ़े-लिखे भारतवासी भी यह मानते थे कि अंग्रेजी के माध्यम के बिना ऊंची शिक्षा नही दी जा सकती। उनका भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर भी विश्वास नहीं था। गुरुकुल के परीक्षण ने इन दोनो भावनाओं को निर्मूल सिद्ध कर दिया था। साथ ही यह भी अद्भुत बात थी कि सरकार से किसी तरह की सहायता लिये बिना और प्रायः सरकार का कोप-भाजन रहकर भी गुरुकुल निरन्तर उन्नति कर रहा था। इन दोनों बातो ने न केवल गुरुकुल कागड़ी को अपितु प्रायः सभी गुरुकुलों को राष्ट्र का प्रेम-भाजन बना दिया था। उसी राष्ट्रप्रियता का परिणाम था कि उन वर्षों में गुरुकुल मे आने वाले दर्शकों मे हम महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, डा० राजेन्द्रप्रसाद, डा० अन्सारी, मि० आसफअली, आदि देश-नेताओं के नाम पाते है। ये महानुभाव गुरुकुल में आये, सब कुछ देखकर प्रसन्न हुए और आशीर्वाद देकर गये।

२. गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन

गुरुकुल वृन्दावन की स्थापना और प्रारम्भिक विकास का वृत्तान्त हम इसी खंड के आरम्भ मे दे आये है। गुरुकुल वृन्दावन को भी न्यूनाधिक रूप में उन्ही सब कठिनाइयो और परीक्षाओ मे से गुजरना पड़ा, जिनमें से गुरुकुल कांगड़ी गुजरा। बंग-विच्छेद के कारण देश भर में जो राजनैतिक उत्थान हुआ, उससे घबराकर अंग्रेजी सरकार प्रायः सभी उन्नतिशील संस्थाओं के सम्बन्ध मे राजद्रोह का संदेह करने लगी थी। कई वर्षो तक आर्यसमाज और उसके गुरुकुल सरकार की फाइलो मे राजद्रोहियो की सूची मे अंकित होते रहे। अन्त मे सरकार के वहमी अफसरों को भी मानना पड़ा कि आर्यसमाज की शिक्षा देशभक्ति तो अवश्य सिखाती है परन्तु उसे राजद्रोही कहना असत्य है। वृन्दावन में गुरुकुल के भवन की आधारशिला रखते हुए उस समय के पश्चिमोत्तर प्रदेश के गवर्नर सर जेम्स मैस्टन ने कहा था, "गुरुकुल के गुरुओ और ब्रह्मचारियो! जहां तक मै समझता हूं आपके धर्म, आपके मिशन और आपकी भावनाओ में, सच्ची शक्ति का इतना समावेश है कि आप अन्धकार की शक्तियों पर हावी हो जावेंगे। मै आपके भवन का उद्घाटन करता हुआ आपको यह विश्वास दिलाता हूं कि सरकार आपकी हित-चिन्तक और मित्र है। मुझे आशा है, आप इस आश्वासन को स्वीकार करेंगे।"

सन् १९१८ में गुरुकुल वृन्दावन ने विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया। उस वर्ष शिरोमणि उपाधि प्राप्त करने के लिए स्नातकों की पहली मंडली ने दीक्षान्त-समारोह में भाग लिया।

१९२० तक गुरुकुल वृन्दावन का संचालन महात्मा नारायण प्रसाद जी ने किया। उसके पश्चात् वे संन्यास आश्रम में प्रवेश करने की तैयारी के लिए एकान्तवास के लिए चले गए। उनके पश्चात् प्रसिद्ध विद्वान् पं० गंगाप्रसाद एम० ए० भूतपूर्व डिप्टी कलक्टर, और चीफ जज टिहरी गढ़वाल, गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य बने। आपके कार्य काल में गुरुकुल के शिक्षा-क्रम को व्यवस्था में लाने का अत्यन्त उपयोगी कार्य हुआ। उनके गुरुकुल से चले जाने पर ३ वर्ष तक प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी तर्कशिरोमणि ने आचार्य पद पर कार्य किया। उनके पश्चात् राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी तथा आगरे के बाबू श्रीराम जी ने गुरुकुल के संचालन मे मुख्य भाग लिया। इसी बीच में मेरठ के पं० घासीराम जी एम० ए० जो प्रतिनिधि सभा के प्रधान का कार्य कर रहे थे, गुरुकुल के प्रबन्ध मे विशेष मनोयोग देने लगे।

१९३२ से १९३७ तक पंडित बृहस्पति जी शास्त्री, वेदशिरोमणि आचार्य का कार्य करते रहे। उस समय की एक विशेष घटना यह हुई कि गुरुकुल के कार्य से सन्तुष्ट होकर आवागढ नरेश ने अपने व्यय से आवागढ के २०० विद्यार्थी प्रविष्ट कराये, जिनके पालन-पोषण का व्यय स्वय देने का निश्चय किया। यह प्रलोभन तो बड़ा भारी था, परन्तु गुरुकुल के सचालक उसमे फंसे नहीं। उन्होने आवागढ़ नरेश की शर्तो को स्वीकार नही किया। उस पर आवागढ के विद्यार्थी वापिस बुला लिये गये। एक बार तो इस अप्रिय घटना से गुरुकुल को बहुत धक्का लगा परन्तु संचालकों के दृढतापूर्वक उद्योग करते रहने से शीघ्र ही गुरुकुल उन्नति के मार्ग पर चलने लगा।

विद्यालय से महाविद्यालय और महाविद्यालय से विश्वविद्यालय तक पहुंचने का विकास क्रम वृन्दावन में भी वैसा ही रहा जैसा गुरुकुल कांगड़ी मे। पाठ्यक्रम भी बहुत कुछ समानान्तर ही चलता रहा। मुख्य भेद इतना ही है कि गुरुकुल वृन्दावन में स्नातकों को शिरोमणि उपाधि से विभूषित किया जाता है जबकि गुरुकुल कांगडी की वेदालंकार, विद्यालंकार आदि है। आश्रम की व्यवस्था गुरुकुल कांगड़ी के समान ही है। शिक्षा नि:शुल्क है।

१९१५-१६ के लगभग गुरुकुल में आयुर्वेदिक प्रयोगशाला की स्थापना की गयी थी। उस प्रयोगशाला मे आयुर्वेद की औषधिया तैयार की जाती हैं। उस प्रयोगशाला को अब एक लिमिटेड कम्पनी का रूप दे दिया गया है। कम्पनी को जो लाभ होता है, वह गुरुकुल के काम आता है।

जिन अन्य महानुभावों ने बड़ी तल्लग्नता से गुरुकुल वृन्दावन के सचालन में भाग लिया, उनमे से पंडित शंकर देव जी पाठक काव्यतीर्थ, ठाकुर कर्णसिह जी, पण्डित द्विजेन्द्रनाथ जी सिद्धान्त-शिरोमणि आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखयोग्य है।

३. डी० ए० वी० कालेज

हम डी० ए० वी० कालेज की स्थापना और प्रारम्भिक विकास का वृत्तान्त पहले भाग में दे आये है। दयानन्द एंग्लो-वैदिक-स्कूल की स्थापना १ जून १८८६ को हुई थी। १९१२ मे कालेज की रजत जयन्ती मनाई गई। तब तक संस्था बहुत विशाल रूप धारण कर चुकी थी। छात्रों की सख्या और परीक्षाओं मे सफलता की दृष्टि से संस्था का स्थान सारे पंजाब में पहला समझा जाता था। रजत जयन्ती के समय जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उससे विदित होता है कि यूनिवर्सिटी द्वारा निश्चित साधारण पढ़ाई के अतिरिक्त आयुर्वेद और इंजीनियरिंग की शिक्षा का भी विशेष प्रबन्ध किया गया था। डी० ए० वी० कालेज की प्रारम्भ से ही यह विशेषता रही कि उसने कभी अंग्रेजी सरकार से अनुदान नही लिया।

दयानन्द ब्राह्म-महाविद्यालय

१८९६ में कालेज के साथ धार्मिक शिक्षा की विशेष व्यवस्था करने के लिए कालेज-कमेटी ने दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय की स्थापना की। इस महाविद्यालय का उद्देश्य ऐसे उपदेशक तैयार करना था जो आर्यसमाज के अच्छे प्रचारक बन सके। आर्यसमाज को योग्य प्रचारकों की इतनी अधिक आवश्यकता थी कि थोड़े ही समय में मलाबार, मैसूर, हैदराबाद (दक्षिण), उड़ीसा, गढ़वाल, मौरिशस जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशों से विद्यार्थी आने लगे। शिक्षा बिना किसी शुल्क के दी जाती थी। छात्रों के पालन-पोषण के लिए मैनेजिग कमेटी और आर्यसमाजों की ओर से छात्रवृत्तियो की व्यवस्था थी। सब छात्रो को विद्यालय के आश्रम में ही रहना पड़ता था। पूरी पढाई छः वर्षो मे समाप्त होती थी। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० विश्वबन्धु जी संस्था के आचार्य थे।

ब्राह्म महाविद्यालय के साथ ही लगा हुआ एक अनुसंधान विभाग भी था। कालेज कमेटी के पहले प्रधान श्री लालचन्द जी के निधन पर उनकी स्मृति में इतिहास और

संस्कृत साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थों के एक पुस्तकालय की योजना कार्यान्वित की गई थी। उसका नाम लालचन्द लायब्रेरी रखा गया। अनुसन्धान विभाग खुलने पर वह पुस्तकालय बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। अनुसधान विभाग ने एक उपयोगी कार्य यह किया कि प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत पुस्तको के संग्रह और संरक्षण की व्यवस्था की। उसमे हस्त-लिखित पुस्तकों की संख्या लगभग हजार तक पहुंच गई थी।

हिन्दी को प्रोत्साहन

जब डी० ए० वी० कालेज की स्थापना हुई तब पंजाब में अंग्रेजी और उर्दू का बोलबाला था। राजभाषा अंग्रेजी को और लोकभाषा उर्दू को माना जाता था। पंजाब में डी० ए० वी० हाईस्कूल पहली ऐसी संस्था थी, जिसने हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा देनी आरम्भ की। आज यह बात साधारण मालूम होती है, परन्तु १८८६ में वह सर्वथा नई और असंभावित बात थी। तबसे डी० ए० वी० कालेज की संस्था हिन्दी और संस्कृत के प्रचार के लिए निरन्तर प्रयत्न करती रही। यद्यपि अधिकतर आर्य समाजी हिन्दी-संस्कृत के बारे में उसके कार्य की प्रगति से संतुष्ट नहीं थे और गुरुकुल की स्थापना उसी असंतोष का परिणाम थी परन्तु यह मानना पड़ेगा कि सरकारी विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखते हुए उस दिशा में जो कुछ किया जा सकता था, उसके पूरा करने का भरसक यत्न किया गया। १९३६ मे समाप्त होने वाले जिस युग का वृत्तान्त हम लिख रहे हैं, उसकी समाप्ति पर हम डी० ए० वी० कालेज और उसकी शाखाओं को एक विशाल हरे-भरे और फलशाली वृक्ष के रूप में परिणत हुआ पाते है। उस समय के प्रिन्सिपल प्रो० साईंदास जी एम० ए० थे।

श्री विरजानन्द वैदिक शोध-संस्थान

१९०३ ई० में स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी और स्वामी नित्यानन्द जी ने यह संकल्प किया था कि एक वैदिक कोष बनाया जाय। शिमले में स्वामी-युगल ने जिस शान्ति-कुटीर का निर्माण किया था, उसका मुख्य उद्देश्य भी कोष निर्माण और अनुसंधान का केन्द्र स्थान बनाना ही था। स्वामी नित्यानन्द जी का देहान्त पहले ही हो चुका था। स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी का देहान्त १९२५ मे हुआ। उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की विधिपूर्वक रजिस्ट्री कराई गई। संस्थान के सदस्यों की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या २१ थी, जिनमें पंजाब के सभी श्रेणियों और सम्प्रदायों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को रखा गया था। शोध-कार्य में परामर्श देने के लिए विद्वानों की एक परामर्श-समिति की रचना की गई थी, जिसमें देश और विदेश के सभी प्रसिद्ध संस्कृतज्ञो के नाम विद्यमान थे। एक तीसरी समिति 'संस्थानीय कर्मिष्ठ वर्ग' के नाम से बनाई गई, जिसके मुख्य सचालक तथा सपादक श्री विश्वबन्धु शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल० थे। इस समिति के कार्य को देश भर में इतना अधिक पसन्द किया गया कि धनी-मानी सज्जनों ने दिल खोलकर सहायता दी। भारत सरकार की ओर से भी संस्थान को पुष्कल सहायता मिलती रही है। भारत के विभाजन से पूर्व संस्थान का कार्यालय लाहौर में था। डी० ए० वी० कालेज और उससे संबद्ध संस्थाओं के लाहौर

से चले जाने के पश्चात् संस्थान का कार्यालय होशियारपुर में स्थापित हो गया। संस्थान का अपना प्रेस है, पुस्तकालय है और पुस्तकें बेचने की व्यवस्था है। सभा का मुख्य कार्य वैदिक शब्दों का कोष तैयार करना है। परन्तु उसके अतिरिक्त रामायण-पुराण आदि ग्रन्थों के अनुवाद और संशोधित संस्करण प्रकाशित करने का कार्य भी जारी है। प्रारम्भ में पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० भी डी० ए० वी० कालेज के स्थिर सेवक और अनुसन्धान-विभाग के कार्यकर्ता थे। कुछ समय पीछे उनका पं० विश्वबन्धु जी से बहुत गहरा मतभेद हो गया। पं० भगवद्दत्त जी का मत था कि पं० विश्वबन्धु जी के लेखों में स्वामी दयानन्द जी के विचारों के प्रति हल्की सी विरोध की बू है। दोनों ओर से कुछ लेख लिखे गये, जिनका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि पं० भगवद्दत्त जी ने डी० ए० वी० कालेज के प्रबन्ध से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। अब पं० भगवद्दत्त जी अपना स्वतन्त्र अनुसंधान का कार्य करते हैं।

डी० ए० वी० कालेज कमेटी के प्रबन्ध में इस समय कई कालेज और बीसों हाई स्कूल चल रहे हैं।

४. गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का विकास

इस भाग के पहले खण्ड में ज्वालापुर में गुरुकुल महाविद्यालय की स्थापना की संक्षिप्त चर्चा हो चुकी है। गुरुकुल कांगड़ी से आचार्यवर पं० गंगादत्त शास्त्री, गुरुवर पं० काशीनाथ शास्त्री, पं० भीमसेन शर्मा, पं० नरदेव शास्त्री तथा पं० पद्मसिंह शर्मा आदि विद्वानों के नई संस्था में पहुँच जाने से उसे आर्यजगत् में एकदम ख्याति प्राप्त हो गई। आर्यसमाज के अनेक प्रभावशाली कार्यकर्ता, जो महाविद्यालय द्वारा सम्मत पाठप्रणाली से सहमत थे, उधर झुक गये। तदनन्तर अपनी निश्चित दिशा में महाविद्यालय निरन्तर उन्नति करता गया। श्री स्वामी दर्शनानन्द जी का संरक्षण प्राप्त ही था। संस्था श्री स्वामी शुद्धबोध तीर्थ (पं० गंगादत्त जी) के आचार्यत्व और पं० नरदेव शास्त्री के प्रबन्ध में शीघ्र ही सुव्यवस्थित शिक्षणालय के रूप में आ गई। कई वर्षों तक मुख्याध्यापक का कार्य साहित्याचार्य पं० भीमसेन जी करते रहे।

महाविद्यालय के वार्षिक विवरणों से उसकी क्रमिक उन्नति का अनुमान लगाया जा सकता है। १९१५ में संस्था में छात्रों की संख्या ७१ थी। १९३३ में छात्रों की संख्या १८९ अंकित है। १९१३ में अध्यापकों की संख्या १५ थी। १९३१ में वह २० तक पहुँच गई। विद्यालय की अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण करने पर "विद्यारत्न" तथा "विद्या-भास्कर" की उपाधियाँ दी जाती थीं। १९४८ के वार्षिक विवरण में विद्याभास्कर तथा विद्यारत्न उपाधि प्राप्त स्नातकों की जो सूची दी गई है उसमें १३० नाम हैं। इस सूची में डा० सूर्यकान्त शास्त्री, पं० उदयवीर शास्त्री, पं० व्यासदेव शास्त्री, पं० विश्वनाथ शास्त्री आदि अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान भी हैं।

धीरे-धीरे विद्यालय की आर्थिक स्थिति भी पुष्ट होती गई। आश्रम, विद्यालय, पुस्तकालय, गोशाला, वाटिका, कृषिविभाग आदि सभी आवश्यक विभागों के लिए अलग-अलग इमारतें बन गईं। आनन्दाश्रम, गृहस्थाश्रम आदि नामों से कई आश्रमों की चर्चा भी विवरणों में मिलती है।

विद्यालय के प्रबन्ध के लिए १९२० में विद्यासभा की स्थापना की गई जिसके अधिवेशन आवश्यकतानुसार होते रहते थे। छात्रों के लिए आर्य किशोर सभा, विद्वत्कला-परिषद् आदि नाम की सभायें थीं जिनमें छात्र लोग बोलने तथा लिखने का अभ्यास करते थे।

गुरुकुल कांगड़ी और महाविद्यालय ज्वालापुर के उत्सव प्रायः साथ-ही-साथ होते रहे हैं। देश के जो प्रतिष्ठित महानुभाव एक जगह आते थे वे प्रायः दूसरी जगह भी होकर आते थे। श्री सत्यमूर्ति, डा० राधाकृष्णन्, प० विधुशेखर भट्टाचार्य, पं० अमरनाथ झा आदि मान्य विद्वानों ने महाविद्यालय को भी देखा और वहाँ की व्यवस्था तथा पाठविधि पर संतोष प्रकट किया।

हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह के अवसर पर महाविद्यालय ज्वालापुर के ब्रह्मचारियों, स्नातकों तथा शिक्षकों ने आगे बढ़ कर बहुत प्रशंसनीय कार्य किया। इस कार्य के संबंध में हम 'भारतोदय' के सत्याग्रह-विशेषांक मे मुख्याधिष्ठाता द्वारा दिये गये वृत्तान्त का कुछ भाग उद्धृत करते हैं :

"महाविद्यालय के लिए यह सचमुच परीक्षाकाल था और पास एक पाई भी न रहते हुए उसने वह अपूर्व कार्य किया जिसको अन्य कोई न कर सका। महाविद्यालय ब्रह्मचारियों को सत्याग्रह में भेजे तो भेजे कैसे, सहस्रों रुपये तो किराये में ही लगते थे और जनता का दान का प्रवाह शोलापुर की ओर ही चल पडा था और प्रवाह का उधर जाना आवश्यक भी था, पर महाविद्यालय में तो प्रतिदिन के खर्चे के ही लाले पड़ रहे थे। हम बड़ी चिन्ता में पड़ गये। उधर शोलापुर से विज्ञप्तियाँ निकल रही थीं कि जहाँ-जहाँ चन्दा हो रहा है वह सब चन्दा सीधे शोलापुर आना चाहिए। दो-चार जगह हमने सहायता माँगी थी किन्तु उन्होंने शोलापुर को लिखा वहाँ से उनके पास उत्तर आया कि महाविद्यालय को मत दो, चन्दा सीधे इधर भेजो। फिर हमने पजाबकेसरी ला० खुशहालचन्द जी प्रधान आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान को लिखा। उन्होंने प्रथम जत्थे का व्यय भेजने का वचन दिया और भेज भी दिया। इस प्रकार विधाताने हमारी सहायता की और एक जत्था श्री ला० खुशहालचन्द्र जी के साथ ही शोलापुर चला गया। आर्यसमाज रुड़की व शामली के भाइयों ने भी खूब मदद की जिससे द्वितीय तथा तृतीय जत्थे भी यथासमय शोलापुर पहुँच गये। वहाँ से पहला जत्था श्री चांदकरण शारदा जी के साथ गुलबर्गा गया, दूसरा जत्था श्री खुशहालचन्द्र जी के साथ गुलबर्गा में पकडा गया, तीसरा जत्था श्री ज्ञानेन्द्र जी सिद्धान्तभूषण के साथ बम्बई से गया और वह भी गुलबर्गा में पकड़ा गया। महाविद्यालय के जत्थे के अधिनायक और सत्याग्रही ब्रह्मचारी तथा स्नातकों का उत्साह प्रशंसनीय तथा देखने योग्य था। उनकी वैसी आकृति क्या कभी देखने को मिलेगी। इन तीनों जत्थों में महाविद्यालय के पंडित थे, संन्यासी थे, स्नातक थे और ब्रह्मचारी थे। हम तो यह चाहते थे कि सारा महाविद्यालय ही सत्याग्रह में चला जावे। हम तो यही चाहते थे कि चाहे महाविद्यालय वर्ष डेढ़ वर्ष के लिए बन्द करना पड़े किन्तु सत्याग्रह युद्ध मे किसी भी सस्था से पीछे न रहे। अस्तु, अठारह वर्ष से नीचे की आयु वाले ब्रह्मचारी नहीं जा सकते थे। जेल के कष्ट का सामना था।

और अनेक कठिनाइयां थीं, नहीं तो सोलह वर्ष की उम्र से लेकर अठारह वर्ष तक की उम्र वाले ही ३०–४० ब्रह्मचारी तैयार बैठे थे। वे ही भेजे गये, जो जेल की किसी भी यातना को सहर्ष झेल सकते थे। हवन के लिए हमारे ब्रह्मचारियों ने बहुत कष्ट सहे, नारे लगाने पर कई ब्रह्मचारियों को कालकोठरी दी गई। कठिन-से-कठिन परिश्रम कराया गया, पर वीर, यति, व्रती ब्रह्मचारियों ने सब कुछ सहा और परीक्षा में पूर्ण सफल हुए। महाविद्यालय से जिस शान से विदा किये गये थे उससे दुगनी-तिगनी शान से वापस आये।"

सब मिलाकर ५१ सत्याग्रही महाविद्यालय से सत्याग्रह में भाग लेने के लिए हैदराबाद गये।

महाविद्यालय से जो पहला जत्था गया उसके सदस्य निम्नलिखित थे: १. स्वामी विवेकानन्द जी, आप जत्थे के अधिनायक थे। २. श्री भगीरथलाल जी वानप्रस्थी ३. भाई रणवीर जी महाविद्यालय के व्यायामाध्यापक। (४) पं० कनकसिंह जी ब्रह्मचारियों के संरक्षक। ५. पं० हितपाल जी शास्त्री विद्याभास्कर। ६. ब्रह्मचारी कपिलदेव द्वादश श्रेणी। ७. ब्र० धर्मदेव। ८. ब्र० धर्मेन्द्र। ९. ब्र० श्रुतिधर। १०. ब्र० जगदीशचन्द्र। ११. ब्र० हरिश्चन्द्र। १२. ब्र० सुखपाल। १४. ब्र० दयाराम। १४. ब्र० महावीर। १५. ब्र० दिनेशचन्द्र। १६. ब्र० काशीप्रसाद।

६. आर्य कुमार परिषद

आर्य कुमार परिषद् का प्रारम्भ १९०९ में हुआ था। प्रो० सुधाकर जी एम० ए० और प्रो० सिद्धेश्वर जी एम० ए० आदि कुछ आर्य नवयुवकों ने रावलपिंडी में आर्यकुमारों का संगठन करने का निश्चय किया। डा० केशवदेव शास्त्री उन दिनों वहीं थे। उनके नेतृत्व मे आर्य कुमार सभा की स्थापना हुई। आर्य कुमार सभाओं का वार्षिक समारोह आर्य कुमार-परिषद् के नाम से प्रति वर्ष होने लगा। परिषद् का उद्देश्य कुमारों तथा युवकों में ईश्वर, वैदिक धर्म और स्वदेश के प्रति भक्ति उत्पन्न करना और उन्हें क्रियाशील बनाना था। साधनों में आर्यकुमार सभाओं की स्थापना तथा धार्मिक परीक्षाओं का नियत करना था।

श्री डा० केशवदेव शास्त्री

प्रारम्भ से ही कार्यकर्ताओं ने बड़े प्रयत्न से कुमार सभाओं की स्थापना के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न कर दिया। थोड़े ही वर्षों में देश भर में कुमार सभाओं का जाल फैल गया। स्थान-स्थान पर आर्य कुमार परिषद् के अधिवेशन बड़ी सफलता से होने लगे। अधिवेशनों में जो महानुभाव सभापति पद को अलंकृत करते रहे, उनकी सूची से विदित होता है कि आर्य समाज ने कुमार सभाओं के आन्दोलन का हृदय से स्वागत किया। सभापतियों में से कुछ नाम ये हैं :—

श्री डा० केशवदेव जी शास्त्री, आचार्य रामदेव जी, लाला लाजपतराय जी, स्वामी सत्यानन्द जी महाराज, महात्मा मुन्शीराम जी, प्रिन्सिपल बालकृष्ण जी, महात्मा हंसराज जी, पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए०, भाई परमानन्द जी एम० ए०, महात्मा नारायण स्वामी जी, मा० आत्माराम जी अमृतसरी, सेठ गोविन्दलाल जी पित्ती, पं० विष्णु-भास्कर जी केलकर, पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, रा० सा० मदनमोहन जी सेठ, पं० रामचन्द्र जी देहलवी, महाराजाधिराज सर नाहरसिंह जी शाहपुराधीश, श्री पं० गंगा-प्रसाद जी उपाध्याय।

परिषद् का कार्यालय पहले कुछ वर्षो तक सहारनपुर में रहा, उस समय उसके अध्यक्ष श्री अलख मुरारी जी बी० ए०, एलएल० बी० थे। उसके पश्चात् ५ वर्षों तक कार्यालय अजमेर मे रहा, जहां श्री कुंवर चांदकरण जी शारदा बी० ए०, एलएल० बी० उसकी देखरेख करते रहे। वहां से काशी होता हुआ कार्यालय दिल्ली पहुंच गया। कुछ वर्षों तक डा० युद्धवीरसिंह जी उसका संचालन करते रहे। उसके पश्चात् भी यह कार्यालय निरन्तर भ्रमण करता रहा। "आर्यकुमार" मासिक पत्र का भी प्रकाशन परिषद् की ओर से किया गया।

परिषद् की ओर से धार्मिक परीक्षाओं की योजना सन् १९२७ मे कार्यान्वित की गई। उस समय उनका नाम "वैदिक धर्म विशारद" परीक्षा, (प्रथम खंड, द्वितीय खंड, तृतीय खंड,) था। बाद में सन् १९३६ से चार परीक्षाएं निम्न प्रकार रखी गई :—

पहली सिद्धान्त सरोज, दूसरी सिद्धान्त रत्न, तीसरी सिद्धान्त भास्कर, चौथी और अन्तिम सिद्धान्त शास्त्री। प्रवेश शुल्क क्रमशः ॥), १), २) और ३) रखा गया। इन परीक्षाओं मे सहस्रों परीक्षार्थी बैठकर उत्तीर्ण हुए हैं। समय के साथ इनकी लोक-प्रियता बढ़ती गई है। अजमेर के डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए०, डी० लिट्०, इन परीक्षाओं के दस वर्ष से अधिक समय तक परीक्षा-मंत्री रहे, उस काल में इनकी विशेष उन्नति हुई।

पांचवाँ खण्ड

(हैदराबाद मे सत्याग्रह)

पहला अध्याय

हैदराबाद के शासक और उनकी नीति

१६५८ ईस्वी में, आबिदकुली खां नाम का एक युवक बुखारा से घूमता-फिरता भारत पहुंचा और दिल्ली में बादशाह औरंगजेब के दरबार में हाजिर हुआ। आदमी चतुर था। बादशाह को पसन्द आ गया। वह बढ़ता-बढ़ता १६८१ मे औरंगजेब का वजीरे-आजम बन गया। वह बादशाह के साथ दक्षिण के संग्राम में जाकर युद्ध में मारा गया। उसका लड़का मीर शहाबुद्दीन भी बहुत कार्यकुशल समझा गया। उसे औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया।

मीर शहाबुद्दीन के लड़के का नाम चिनकुलिच खा था। १७१३ में बादशाह फर्रुखसीयर ने उसे दक्षिण की सूबेदारी सौंप दी। चिनकुलिच खां अपने बाप-दादा से भी अधिक चालाक था और महत्वाकांक्षी भी खूब था। उन दिनों दिल्ली की बादशाहत बहुत ही निर्बल हो रही थी। जैसा ऐसी अवस्था में प्रायः हुआ करता है, महत्वाकांक्षी रईस राज्य का प्रधान मंत्री बनने के लिए चारों ओर से चीलों की तरह झपट्टा मार रहे थे। चिनकुलिच खां भी उन चीलों में शामिल हो गया और दिल्ली आकर संघर्ष में पड़ गया। दिल्ली में उस समय सैयद भाइयो का जोर था। वे मुगल बादशाह नाम के कई बुतों को तोडकर उनके स्थान पर नए बुत बिठा चुके थे। चिनकुलिच खां उन पर हावी न हो सका और निराश होकर दक्षिण वापिस चला गया। वहां उसकी अनुपस्थिति में उसका प्रतिनिधि मुबारिज खां मौका पाकर स्वयं दक्षिण का शासक बन गया था। चिनकुलिच खां के पास पर्याप्त सेना थी, उसकी सहायता से उसने मुबारिज खां को मार दिया और दक्षिण की सूबेदारी संभाल ली। दिल्ली के निर्बल बादशाह ने जब देखा कि चिनकुलिच खां विजयी हो गया है, तो उसे प्रसन्न करने के लिए न केवल उसे दक्षिण की सूबेदारी पर संपुष्ट कर दिया, उसे पुरस्कार रूप में एक हाथी और कुछ हीरे भेजने के अतिरिक्त आसिफजाह की उपाधि से भी विभूषित कर दिया। उसके कुछ समय पश्चात आसिफजाह ने बादशाह के पुरस्कार का यह उत्तर दिया कि मुगलों की अधीनता का जुआ कंधो से उतार कर फेंक दिया और पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर दी। दक्षिण हैदराबाद नाम की रियासत के जन्म का यही इतिहास है। इतिहास से स्पष्ट है कि यह रियासत चालाकी और स्वामी-द्रोह की बुनियाद पर खड़ी हुई थी। आसिफजाह वंश के बादशाह निज़ाम कहलाने लगे।

भारत पर नादिरशाह के आक्रमण के समय की एक घटना से निजाम के चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। जब मुगल बादशाह ने यह समाचार सुना कि विजयी नादिरशाह ने भारत की ओर अपने घोड़े का मुँह घुमाया है, तो उसने अपने सब सरदारों और मित्रो को दिल्ली पहुचने का आदेश भेजा। जो सरदार दिल्ली पहुंचे, उनमें से निजाम और सफदरजंग मुख्य थे। निजाम धूर्त था और सफदरजग सीधा पठान। मुगल बादशाह करनाल के मैदान मे परास्त हो गया। उसने नादिरशाह से सन्धि की शर्ते तय करने के लिए निजाम और सादत खा को अपना दूत बनाया। दोनों ने यह सोचकर कि डूबते हुए नक्षत्र से उदित होते हुए नक्षत्र की उपासना करना अधिक उपयुक्त होगा, नादिरशाह को ऐसी सलाह दी जिससे मुगल बादशाह और दिल्ली वालो की मुसीबते बढ गईं। नादिरशाह ने दिल्ली पहुच कर पहले किस प्रकार शहर मे लूट-मार कराई और फिर कत्लेआम कर दिया, यह जगत्प्रसिद्ध बात है। जब भारतवासियों के सोने और रक्त से अपनी प्यास बुझाकर नादिरशाह अपने देश को वापिस लौटने लगा तब दोनों सरदार अपने स्वामी-द्रोह का इनाम पाने के लिए नादिरशाह के सामने पहुचे और इनाम की प्रार्थना की तो नादिरशाह ने उत्तर दिया, "मैं तुम दोनो को लानत भेजता हूं और मेरा यह गुस्सा तुम्हारे लिए कहर की निशानी है।" यह कह कर उसने दोनो विश्वासघातियो की दाढ़ी पर थूक दिया और उन्हे दरबार से बाहर निकलवा दिया। कहते हैं कि दोनों अपमानित रईसों ने बाहर जाकर निश्चय किया कि इतनी बेइज्जती के पीछे जीना असम्भव है, इस कारण दोनों को जहर खाकर मर जाना चाहिए। निजाम ने पहल की उसने घर जाकर कुछ पी लिया और धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा। सादतखा का दूत यह सब कुछ देख रहा था। उसने अपने मालिक को जाकर सूचना दी कि निजाम मर गया। तब सादत खां को अपने बच जाने पर बहुत ग्लानि हुई और उसने तेज जहर का प्याला पीकर तत्काल आत्महत्या कर ली। उसकी मृत्यु का समाचार ज्योंही निजाम के कानों तक पहुंचा कि वह उठकर खडा हो गया। कहते हैं, निजाम जीवन भर इस घटना को सुनाकर कहा करता था कि मैंने खुरासान के भौंदू को खूब गधा बनाया। इस प्रकार निजाम ने मुगल बादशाह के मन्त्री के मार्ग में से एक काटा निकाल दिया।

यहा यह घटना मैंने आसिफजाही वंश के आदि पुरुष के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए दी है। इस वंश का अगला सारा इतिहास उस प्रारम्भिक विशेषता से अंकित है। निजाम का राज्य मराठा राज्य का पड़ोसी था। उन दोनों में संधि और संघर्ष का होते रहना स्वाभाविक था। निजाम अपनी नीति का निश्चय केवल अवसरवादिता के आधार पर करता था। जब आवश्यकता समझता सुलह कर लेता और जब लाभ देखता, तब आक्रमण कर देता था। मैसूर के सुल्तान हैदर अली और मराठो से अंग्रेजी सरकार का संघर्ष आरम्भ होने पर भी निजाम शासकों की यही नीति जारी रही। वे जब चाहते अग्रेजों के मित्र बन जाते और जब चाहते शत्रुता करने लगते। अन्त में अपनी इच्छा से अपने गले मे दासता की जंजीर बांधने वाले नरेशों मे से सबसे पहला नम्बर निजाम ने ही पाया। अधीनतापूर्ण सन्धि (Subsidiary alliance) को सर्वप्रथम निजाम ने ही मंजूर किया। इस प्रकार की संधि का अभिप्राय यह था कि हैदराबाद के शासक ने

अपनी रक्षा के लिए अपने राज्य मे कुछ अंग्रेजी सेनाओं को रखना स्वीकार कर लिया और उनके सारे खर्च की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। इसी प्रकार की संधिया थी, जिन्होंने धीरे-धीरे देसी राजाओ की स्वाधीनता की समाप्ति कर दी। अग्रेजी राज्य के प्रारम्भ काल में यह अधीनता-पूर्ण सन्धि विष-कन्या सिद्ध हुई। सबसे पहले उसे अंगीकार करने का श्रेय निजाम ने प्राप्त किया।

हैदराबाद रियासत की एक विशेषता यह रही कि वहा के हिन्दुओ मे सामूहिक मत-परिवर्तन की चाल नही चली। इसका एक कारण तो यह था कि दक्षिण मे हिन्दुत्व की भावना बहुत प्रबल थी। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि आसिफजाह के वंशज दिल से पूरे मुसलमान रहते हुए भी प्रत्यक्ष रूप से यही घोषित करते रहे कि उनके लिए हिन्दू और मुसलमान बराबर हैं। उन्होंने कभी जिहादी मनोवृत्ति को खुलकर खेलने का मौका नही दिया।

भारत के मुसलमान निजाम को अपनी शक्ति का स्तम्भ समझते रहे है। जब से टर्की के खलीफा का सूर्य अस्त हुआ, तब से तो भारत के मुसलमानो ने यह आन्दोलन आरम्भ कर दिया था कि निजाम को ही संसार भर के मुसलमानों का खलीफा मान लिया जाय। मुसलमानों की इस मनोवृत्ति का वर्तमान निजाम की मनोवृत्ति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। इनके पिता नवाब मीर महबूब अली खां बहादुर बहुत नरम दिल के शासक माने जाते थे। उनके समय में रियासत में बहुत शान्ति रही। अपने मुख्य मन्त्री राजा सर किशनप्रसाद और हाईकोर्ट के जज प० केशवराव जी उनके बहुत विश्वासपात्र थे। वर्तमान निजाम का पूरा नाम नवाब सर मीर उस्मान अली खा है।

सर उस्मान अली खां के गद्दी पर बैठने के समय से रियासत की नीति मे परिवर्तन आना आरम्भ हो गया। नये निजाम मे पहले से ही तीन विशेषताएं रही है। वह अंग्रेजी सरकार का परमभक्त, कवि होने के कारण विद्याप्रेमी और कट्टर मुसलमान है। अवसर-वादिता, जिसका दूसरा नाम कूटनीति है, आसिफजाही वश में प्रभूत मात्रा मे सदा से विद्यमान रही है। वह मीर उस्मान अली खां में भी विद्यमान है ही।

इन सब विशेषताओ से युक्त नये निजाम के सामने जब यह आशा आविर्भूत हुई कि सम्भव है उसे दुनिया भर के मुसलमानों का खलीफा मान लिया जाय तो उसका स्वाभाविक मजहबी प्रेम तीव्र हो गया, जिसके कारण उसके पिता के समय में रियासत मे साम्प्रदायिक पक्षपातहीनता की जो नीति प्रचलित थी, उसका अन्त हो गया। निजाम को ऐसा अनुभव होने लगा कि कट्टर मुसलमान बनने में ही अपना भला है।

हैदराबाद रियासत की साम्प्रदायिक स्थिति की जो विशेषता है, वह नीचे दी हुई जनसख्या (सन् १९३६) की तालिका से प्रकट हो जायेगी।

हिन्दू.................. १,२१,७२,८४५
आदि हिन्दू............ ५,४४,७८९
मुसलमान.............. १५,३४,६६६

शेष सब सम्प्रदायो की सख्या लगभग २२ हजार थी। इन सख्याओं से स्पष्ट है कि रियासत में लगभग ८७ फी सदी हिन्दू, ४ फी सदी आदि हिन्दू और १०½ फीसदी

मुसलमान थे। आदि हिन्दुओं को भी हिन्दुओं में ही जोड़ लिया जाय (हिन्दू होने से उनकी संख्या जुड़नी भी चाहिए) तो हिन्दुओं की और मुसलमानो की आबादी का अनुपात लगभग ९० और १० का हो जाता है। यदि न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो हैदराबाद के शासन में केवल शासक के मुसलमान होने के कारण इस्लाम का अथवा मुसलमानों का विशेष पक्षपात होना किसी प्रकार भी उचित नहीं समझा जा सकता था। परन्तु जब हम सन् १९३८ के रियासती गजट में दिये हुए सरकार के उच्चाधिकारियों की सूची पर दृष्टि डालते हैं तो यह देखकर हमें आश्चर्य होता है कि उसमें मुसलमानों और हिन्दुओं का अनुपात आबादी के अनुपात से बिलकुल उलटा है। सब विभागों में उच्चाधिकारियो की संख्या का अनुपात निम्नलिखित था :--

मुसलमान	१३३१
हिन्दू	३१६

इसी प्रकार न्याय-विभाग में १७४ मुसलमानों के मुकाबले में २३ हिन्दू और पुलिस में ३६ मुसलमानों की तुलना में १० हिन्दू अधिकारी थे।

जब तक देश में राजनीतिक जागृति उत्पन्न नहीं हुई, शासन की इस प्रकार की अंधेरगर्दी चलती रही। परन्तु जब राजनीतिक जागृति की लहरें रियासत की दीवारों को लांघती हुई हैदराबाद में प्रविष्ट हो गईं तब यह स्वाभाविक ही था कि रियासती प्रजा में गहरा असंतोष उत्पन्न होता। वह असंतोष दो धाराओं में चल रहा था। एक धारा राजनीतिक थी। अन्य रियासतों की प्रजा की भांति हैदराबाद की प्रजा भी चाहती थी कि उसे तानाशाही की काल कोठरी से निकाला जाय। दूसरी धारा धार्मिक थी। हिन्दुओं का यह अनुभव करना सर्वथा स्वाभाविक था कि अत्यन्त बहु-संख्या में होते हुए भी उनके साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता है। असंतोष की इन दोनों धाराओं को रोकने के लिए निजाम की सरकार ने क्या-क्या उपाय किए, इसका विवरण अगले अध्याय में दिया जायेगा। इस अध्याय में उस पृष्ठभूमि का संक्षिप्त वर्णन किया गया है, जिस पर आर्यसमाज के सत्याग्रह का चित्र अंकित हुआ।

दूसरा अध्याय

जागृति और दमन

हम गत अध्याय में ऐतिहासिक सिंहावलोकन करके बतला आये हैं कि आसिफ-जाही वंश की नीति सदा अवसरवादिता से प्रभावित रही है। अवसरवादिता पर आधारित नीति कभी सर्वथा स्पष्ट या सीधी नहीं होती। वह पेंचदार और परस्पर विरुद्ध घोषणाओं से भरी होती है। देश में जागृति का दौर होने पर हैदराबाद की रियासत की प्रजा में जो असंतोष उत्पन्न हुआ, उसके प्रति निजाम का व्यवहार भी पेचीदा और परस्पर विरोधी रहा। वाणी द्वारा निजाम की ओर से प्रजा के साथ सहानुभूति प्रकट की जाती रही और व्यवहार में शिकंजों को कसने का प्रयत्न होता रहा।

रियासत की प्रजा में राजनीतिक जागृति का प्रारम्भ १९१९ में हो गया था। यह वह वर्ष था जिसमे महात्मा गांधी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह संग्राम का झण्डा खड़ा किया था। उसकी प्रतिक्रिया प्रायः सभी रियासतो मे हुई। निजाम की प्रजा ने भी उससे प्रभावित होकर राजनीतिक अधिकार मांगना आरम्भ कर दिया। उत्तर मे निजाम ने एक फरमान निकाला, जिसमें राज्य की प्रबन्धकारिणी समिति के अध्यक्ष सर अली इमाम को आदेश दिया गया कि वह ऐसी सामग्री इकट्ठी करे, जिसके आधार पर विधान सभा की योजना तैयार की जा सके। यह कार्य एक साल तक होता रहा। परन्तु कोई परिणाम न निकला। इस पर राज्य की प्रजा में आन्दोलन होने लगा और ब्रिटिश भारत में राजनीतिक प्रगति का वेग भी बढ़ गया था। तब असंतोष की बाढ को रोकने के लिए लाचार होकर निजाम ने एक दूसरा फरमान निकाला, जिसमें विधान सभा की योजना तैयार करने के लिए एक कमेटी बनाई गई।

इधर विधान सभा की आशा दिलाने वाले फरमान प्रकाशित किये जा रहे थे और उधर १९२२ में एक तीसरा फरमान निकाला गया, जिस द्वारा सब राजनीतिक सभाओं का करना जुर्म करार दे दिया गया। कुछ दिनो पीछे एक काली गश्ती चिट्ठी निकाली गई, जिस द्वारा राजनीतिक रंगवाली सब सभाओं को बन्द कर दिया गया। देश में राजनीतिक आन्दोलन का तापमान इतना ऊंचा जा रहा था कि निजाम के फरमान बहुत कुछ व्यर्थ होते गए क्योंकि वहा की प्रजा का जोश ठंडा होने की जगह बढ़ता गया। १९३१ और ३२ के भारतव्यापी सत्याग्रहो मे हैदराबाद के सैकड़ो स्वयंसेवकों ने भाग लिया। सब रुकावटों के होते हुए भी स्थान-स्थान पर कांग्रेस कमेटियों और नौजवान सभाओं की स्थापना हो गई, जिनकी ओर से झंडे की सलामी, विदेशी कपडे का बहिष्कार आदि कांग्रेस की नियमित प्रवृत्तियां होने लगीं।

कई वर्षों की सुख-निद्रा के पश्चात् १९३७ में फिर निजाम के कानों के पास असंतोष की सरसराहट का शब्द पहुंचा । तब उन्होंने एक विशेष सन्देश द्वारा अपनी विधान सभा को यह सूचना दी कि दीवान बहादुर आयंगर की अध्यक्षता मे एक विशेष समिति नियुक्त की जाती है, जो सरकारी कामो मे प्रजा के सहयोग में वृद्धि उपायों की योजना तैयार करे । एक वर्ष तक सरकारी कारखानों में योजना घड़ी जाती रही । इधर हैदराबाद प्रजा-परिषद् ने जनता की ओर से सुधारों की एक पूरी योजना बनाकर १९३८ के आरम्भ मे सरकार के सामने रख दी । निजाम की सरकार ने उस योजना को भी रद्दी की टोकरी में डाल दिया ।

१९३७ तक कांग्रेस की यह नीति रही कि रियासतो मे कांग्रेस कमेटियो की स्थापना न की जाय, क्योंकि महात्मा जी रियासतों के शासकों से लड़ाई आरम्भ नहीं करना चाहते थे । हरिपुरा मे कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, उसमे देशी राज्य सम्बन्धी नीति का रूप बदल गया । देशी राज्यों की प्रजा का असंतोष इतना बढ़ गया था और वह इतनी बडी संख्या मे हरिपुरा पहुंची कि काग्रेस के कर्णधारों को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा । यद्यपि कोई औपचारिक प्रस्ताव स्वीकार नही किया गया तो भी देशी राज्यो की प्रजा को अपने पाव पर खड़े होने की प्रेरणा करके काग्रेस ने उन्हे प्रकारान्तर से कांग्रेस का संगठन करने की अनुमति दे दी । फलतः १९३८ के मध्य मे हैदराबाद राज्य कांग्रेस की स्थापना हो गई । थोडे ही समय में राज्य कांग्रेस के सभासदो की सख्या हजारों तक पहुंच गयी । काग्रेस का प्रभाव इतना बढ़ा कि बहुत से राज-नीतिक मनोवृत्ति रखने वाले मुसलमान भी काग्रेस मे सम्मिलित हो गये ।

तब तो हिज एक्जाल्टेड हाइनेस निजाम का आसन डोल गया । कुछ समय तक तो रियासत के नये वजीरे-आजम सर अकबर हैदरी ने वैधानिक सुधारो से शाब्दिक सहानुभूति और साम्प्रदायिक विचारों से विरोध प्रकट करना जारी रखा । परन्तु अन्त में ७ सितम्बर १९३८ को राज्य की कांग्रेस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । ९ सितम्बर को काग्रेस का अधिवेशन होने वाला था, वह रोक दिया गया । इस समय निजाम की सरकार यह कहने लगी थी कि कांग्रेस कमेटी एक साम्प्रदायिक संस्था है । रियासत की सरकार के आक्रमण का उत्तर कांग्रेस ने सत्याग्रह द्वारा दिया । २५ अक्तूबर को कांग्रेस-कमेटी के सब सदस्य और अन्य बहुत से सभासद् गिरफ्तार कर लिये गए ।

आर्यसमाज के सत्याग्रह के प्रसंग में रियासत की राष्ट्रीय आन्दोलन सम्बन्धी नीति की चर्चा करने का अभिप्राय यह है कि उस समय की निजाम सरकार की कुटिल और अनुदार नीति का चित्र सामने आ जाय । यह ध्यान मे रखने योग्य बात है कि जिस समय आर्यसमाज का सत्याग्रह आरम्भ हुआ, उस समय काग्रेस का सत्याग्रह चल रहा था ।

धार्मिक मामलों मे भी निजाम की वही कूटनीति थी, जिसका प्रयोग वह राज-नीति में करता था । निजाम की घोषणाओं को पढ़ें तो प्रतीत होता है कि वह उदारता का अवतार है । साम्प्रदायिक भावना उसे छू तक नहीं गई । ६ मई १९२९ के दिन निजाम सरकार ने एक विशेष गजट निकाला था, जिसमे कहा गया था कि "जहां तक सार्वजनिक शान्ति और व्यवस्था आज्ञा देती है, प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण धार्मिक स्वाधीनता प्राप्त है ।"

८ जुलाई १९२९ को नादेर के गुरुद्वारे के सम्बन्ध मे निजाम ने निम्नलिखित घोषणा की थी, "यह प्रत्येक सरकार का कर्त्तव्य है कि वह अपने भिन्न धर्मावलम्बी प्रजाजनो के जीवन, सपत्ति और धर्म-स्थानो की रक्षा करे। मेरे पूर्वजो की यही नीति रही है और मै भी उसी मार्ग का अनुसरण कर रहा हूं।"

इस इतिहास के चौथे खड मे हमने हैदराबाद में आर्यसमाज की स्थापना और उसके विकास का वृत्तान्त लिखते हुए एक आर्यसमाजियों के शिष्टमंडल की चर्चा की थी, जो रियासत के होम मेम्बर से मिला था। शिष्ट मडल ने होम मेम्बर के सामने ऐसे बहुत से दृष्टान्त रखे थे, जिनसे सिद्ध होता था कि रियासत के अधिकारी आर्यसमाज के कार्य में बाधाये डालते है। उत्तर देते हुए होम मिनिस्टर ने उन्हीं सब शुभ विचारों को दोहराया था, जिनकी निजाम की ओर से कई बार घोषणा हो चुकी थी । यह तो हुए शब्द, अब निजाम सरकार के व्यवहार पर भी दृष्टि डालिये। यह हम देख आये है कि हैदराबाद मे आर्यसमाज की स्थापना करने वालों मे, हैदराबाद हाईकोर्ट के जज प० केशवराम जी जैसे निजाम के विश्वस्त व्यक्ति थे। प्रतिष्ठित राव जी की मृत्यु के पश्चात् उनके सुयोग्य पुत्र, बैरिस्टर विनायकराव विद्यालंकार आर्यसमाज के कर्णधार बने। आर्यसमाज के सभी प्रमुख व्यक्ति उत्तरदायी और गम्भीर प्रकृति के थे। वे व्यर्थ में रियासत की सरकार से कोई विरोध नही पैदा करना चाहते थे । उनके इस सही व्यवहार की आप रियासत के निम्नलिखित कारनामो से तुलना करके देखिए तो विदित होगा कि निजाम सरकार के शब्द और कार्य एक दूसरे से सर्वथा विरुद्ध थे।

आर्यसमाज के अनेक उत्सवो को विविध बहाने करके रोक दिया गया। पहल-गाव आर्यसमाज के उत्सव को रोकने का यह कारण दिया गया कि यह संस्था नयी है। इसकी स्थापना के लिए सरकार की मजूरी नहीं ली गई, इस कारण इसे धार्मिक कृत्य नहीं कहा जा सकता । उदगीर की आर्य कुमार सभा का उत्सव भी इसी आधार पर रोक दिया गया कि उसकी स्थापना से पूर्व सरकार की इजाजत नहीं ली गयी।

आर्य प्रतिनिधि सभा निजाम राज्य के मंत्री श्री श्यामलाल वकील ने एक दर-ख्वास्त दी कि उन्हें सुलतान बाजार में अखिल भारतीय आर्य सम्मेलन करने की अनुमति दी जाय। उन्हे उत्तर मिला कि अदालत और कोतवाली के विभाग ने निर्णय किया है कि इस सम्मेलन की स्वीकृति नही दी जा सकती।

किशनगंज मे आर्यसमाज का मन्दिर खड़ा हो रहा था, उसके बारे मे हुक्म हुआ कि सरकार से स्वीकृति प्राप्त किये बिना धर्म-मंदिर बनाना कानून के विरुद्ध है। ऐसी स्वीकृति प्राप्त करने के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजना चाहिए और यह भी लिखा जाय कि स्वीकृति के बिना मन्दिर बनाना क्यो आरम्भ किया गया ?

ग्राम हल्लीखेड़ के कुछ सज्जन १९३३ में दशहरे के अवसर पर एक धार्मिक जलूस निकालना चाहते थे। कोतवाली ने उस जलूस की आज्ञा न देने का यह कारण बताया कि यह काम नया है, पहले नही होता था।

श्री भगवानराव होगीराव आर्य ने मिलागा ताल्लुके मे धार्मिक विषयों पर व्याख्यान दिए। इस पर उन्हे निम्नलिखित आज्ञा दी गयी--"तुम्हें सूचना दी जाती है कि हनुमान

देवल, हिसामाबाद मे तुम्हारा व्याख्यान देना गैर कानूनी है। तुम्हें व्याख्यान देना बन्द कर देना चाहिए और पहले तत्सम्बन्धी अधिकारियों से आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। अन्यथा तुम पर कानूनी कार्यवाही की जायेगी।"

इसी प्रकार श्री रामचन्द्र राव राजेश्वर राव आर्य को भी व्याख्यान देने से रोकते हुए यह आज्ञा दी गई--"आज दिवाली के दिन हल्लीखेड़ से बंसीलाल तुम्हारे पास आया है और यह भी खबर लगी है कि वह तुम्हारे मकान में व्याख्यान देने वाला है। लिहाजा तुम्हें हुकम दिया जाता है कि वह व्याख्यान रोक दिया जाय। अन्यथा तुम्हारे विरुद्ध कानूनी कार्रवाही की जायेगी।"

मुहम्मद खान नाम के नाकासोनी के एक सरकारी कर्मचारी के नाम बहुत ही मनोरंजक हुक्मनामा प्राप्त हुआ था। उससे आर्यसमाज के प्रति रियासत की नीति पर खुला प्रकाश पड़ता है। हुक्मनामा यह था--"मुझे खबर लगी है कि साले गांव में कुछ आर्यसमाजी आये हैं। तुम्हें हुक्म दिया जाता है कि तुम फौरन उस गांव में पहुंचो और नीचे लिखी बातें दरयाफ्त करके रिपोर्ट भेजो:--

क--किस तारीख को और किस वक्त ये लोग गांव में पहुंचे ?

ख--किस व्यक्ति के पास ठहरे ?

ग--उनके आने का मंशा क्या है ?

घ--उनके नाम क्या है ?

ङ--उनके मुखिया का क्या नाम है ?

च--उन्हें किसने बुलाया है ?

छ--वे कब तक ठहरेंगे ?

ज--क्या उनके पास कोई सरकारी हुक्मनामा है ?

झ--पुलिस पटेल ने उनकी सूचना मेरे पास क्यों नहीं भेजी ? पटेल को फौरन मेरे पास भेजा जाए।

ञ--अगर आर्यसमाजियों की तादाद ज्यादा हो तो तुम्हें चाहिये कि तुम वहीं ठहरो और इस बात की निगरानी रखो कि किसी तरह का कानून भंग न हो। अगर फिसाद का अंदेशा हो तो मुझे फौरन खबर दो।"

१९३७ ईस्वी मे पं० बलदेव, श्री भगवन्तराव पटेल तथा श्री गोविन्दराव पटवारी को इस कारण नौकरी से अलग किया गया कि वे आर्यसमाज के जलसों में आते जाते हैं।

पुलिस के सब-इन्सपैक्टर ख्वाजा मुमुनुद्दीन ने निलंगा आर्यसमाज के मंत्री श्री रामराव वकील के नाम एक आज्ञा पत्र भेजा था जिसमे निम्नलिखित प्रश्न पूछे गये थे --

१--तुम किस तारीख को आर्यसमाज मे प्रविष्ट हुए ?

२--तुमने सनातन धर्म कब छोड़ा ?

३--तुम्हे आर्यसमाज का मंत्री किसने बनाया है ?

४--मन्त्री के तौर पर तुम्हारे क्या कर्त्तव्य हैं ?

५--मन्त्री शब्द के क्या अर्थ है ?

६––तुम आर्यसमाज में जो व्याख्यान देते हो, क्या उसके लिए सरकारी आज्ञा प्राप्त कर ली है ? कर ली है तो उसकी नकल भेजो। नही की तो उसका कारण बताओ।

७––तुमने अब तक कितने व्याख्यान दिए है और किन-किन विषयों पर दिये हैं। इन व्याख्यानों को लिखकर भेजो और आगे से जो व्याख्यान दो, उसकी नकल हमारे पास भेजते रहो।

रियासत के बाहर के व्याख्याताओं पर विशेष प्रतिबन्ध लगाये गये। पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री हैदराबाद गये तो सुलतान बाजार आर्यसमाज के मन्त्री को हुक्म दिया गया कि उनका अथवा किसी बाहर वाले व्यक्ति का व्याख्यान समाज में न कराया जाय।

ऐसे मामले प्रायः होते रहते थे जिनमें किसी मुसलमान ने हिन्दू को मार डाला या कोई फिसाद हो गया। ऐसे मामलों में पुलिस प्रायः हिन्दुओं को ही गिरफ्तार किया करती थी। आर्यसमाजियो पर पुलिस की विशेष कृपा-दृष्टि थी इसलिए ऐसे अवसरों से लाभ उठाकर रियासत के अधिकारी आर्यसमाजियो को धर दबाते थे। हसन खां नाम के एक मुसलमान ने सत्यनाप्पा नाम के एक हिन्दू को मार डाला। मारने वाला भाग गया या लापता कर दिया गया। कागज का पेट भरने के लिए २८ आर्यसमाजियों को गिरफ्तार करके दफा १०४ के अनुसार उन पर अभियोग चला दिया, जो कई महीनों तक चलता रहा। अण्डूर, नन्दुर्ग और बेलारचित गोपा में भी इसी प्रकार के मामले हुए और उनमे भी आर्यसमाजियों को व्यर्थ में परेशान किया गया।

ये सब अत्याचार होते रहे और फिर भी हिज हाइनेस निजाम अपनी निष्पक्षता का डंका बजाते रहे। इसकी तह में भी एक मायाजाल था। रियासत में एक महकमा था, जिसका नाम था, महकमये-अमूरये-मजहबी, जिसका अभिप्राय यह है कि धार्मिक विषयों का सरकारी महकमा। इस विभाग को बहुत विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। रियासत भर की मस्जिदों, मन्दिरों, सार्वजनिक सभाओं, धार्मिक जलूसों और उत्सवों की व्यवस्था उसका मुख्य कार्य समझा जाता था। उसकी आज्ञा के बिना न कोई नया मन्दिर बन सकता था और न कोई मरम्मत हो सकती थी। किसी समाज या सभा की स्थापना के लिए आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक था। लिखित आज्ञा प्राप्त किये बिना सम्मिलित प्रार्थना कराना या निजी घरों मे इकट्ठा होकर धार्मिक चर्चा करना तक अपराध माना जाता था। परिणाम यह था कि रियासत में धार्मिक सुधार अथवा जागृति की कोई चर्चा नहीं हो सकती थी। कुछ बड़े मन्दिर थे, जो शायद आसफजाही वंश की स्थापना से भी पुराने थे। उन्हें रियासत की ओर से आर्थिक सहायता अवश्य दी जाती थी परन्तु उससे हिन्दुओ के धार्मिक जीवन को इतनी पुष्टि नही मिलती थी, जितनी निजाम की सत्ता दृढ़ होती थी। पुराने मठ और मन्दिर प्रायः राजभक्ति के गढ़ बन जाया करते है। महकमये-अमूरये-मजहबी का यह रिवाज था कि मुसलमानो को मागो का समर्थन करना और सुधारक हिन्दुओं या आर्यसमाजियों की प्रवृत्तियों में रुकावटें डालना। ऊपर से निष्पक्षता का दम भरते हुए भी रियासत के अधिकारी इस्लाम

को बढ़ावा देने मे कोई कसर नही छोड़ते थे। दर्जनों शहरों और ग्रामों के पुराने नामों को बदल कर मुसलमानी रूप दे दिया गया था। अखोली से जहीराबाद, बीदर से मुहम्मदाबाद, धाराशिव से उस्मानाबाद, तन्दूर से बशीराबाद बना कर पुराने समय के चिन्हों तक को मिटाने का यत्न किया जा रहा था। रियासत मे हरिजनों को मुसलमान बनाने की विशेष चेष्टा की जाती थी। उन्हे नौकरियों और आर्थिक लाभ की आशाएं दिला कर इस्लाम को अंगीकार करने के लिए प्रेरित किया जाता था।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि गत पचास-साठ वर्षो मे उर्दू को जितनी पुष्टि हैदराबाद रियासत से मिली है और किसी से नहीं मिली। रियासत मे संस्कृत और हिन्दी को मिटाकर उर्दू को प्रतिष्ठापित करने का श्रेय तो निजाम मीर उस्मान अली को है ही, देश के अन्य शिक्षा केन्द्रों में लाखों रुपये देकर उर्दू को प्रबल बनाने का श्रेय भी उसी को है। रियासत के स्कूलों मे राजभाषा के तौर पर उर्दू पढाई जाती थी। जिसका परिणाम यह था कि जिन बालकों की मातृभाषा हिन्दी, मराठी या कन्नड थी, उन्हे भी आवश्यक तौर से उर्दू पढ़नी पड़ती थी।

तीसरा अध्याय

संघर्ष का सूत्रपात

आर्यसमाज हिन्दुओं के सम्मुख आर्य धर्म की श्रेष्ठता रखकर उन्हें अपने आर्य धर्म पर दृढ़ रहने की प्रेरणा करने के अतिरिक्त अन्य मतावलम्बियों को भी आर्य धर्म में प्रवेश करने का खुला निमन्त्रण देता था, इस कारण इस्लाम के धर्मान्ध प्रचारक और उनके अनुयायी प्रारम्भ से ही आर्यसमाज से विद्वेष करने लगे थे। धर्मवीर पण्डित लेखराम का बलिदान उस विद्वेष-भाव का पहला फल था। आर्यसमाज ने उन सब आक्रमणों का जो उस पर किए जाते रहे, सदा शान्ति से उत्तर दिया। उसके पश्चात् क्रमशः स्वामी श्रद्धानन्द जी, महाशय राजपाल जी आदि के बलिदान हुए। उन सबके उत्तर में आर्यसमाज ने अद्भुत शान्तिप्रियता का प्रमाण देते हुए निर्भयता से अपने प्रचार कार्य को जारी रखा। इससे चाहिए तो यह था कि उसके विरोधी यह अनुभव करते कि आर्यसमाज को न विक्षुब्ध करना सम्भव है और न भयभीत करना। परन्तु अदूरदर्शी लोगों ने आर्यसमाज के व्यवहार से उल्टा ही परिणाम निकाला। उन्होंने समझा कि यदि पर्याप्त शक्ति से समाज पर चौतरफा आक्रमण किया जाय तो उसके रास्ते बन्द किए जा सकते हैं और अकेले डालकर उसका दमन किया जा सकता है। हैदराबाद की रियासत को उस समय के जोशीले मुसलमान इस्लाम का सबसे अधिक संगीन गढ़ समझते थे। इस कारण उन्होंने आर्यसमाज के विरुद्ध आक्रमणात्मक कार्यवाही के लिए उसी स्थान को चुना। निजाम मीर उस्मान अली कट्टर मजहबी व्यक्ति था। उसे अदूरदर्शी मतवादियों का औजार बनने में कुछ अनौचित्य भी अनुभव न हुआ।

प्रारम्भ आर्यसमाज के प्रचारक पं० चन्द्रभानु जी सिद्धान्त-भूषण के निर्वासन से हुआ। वे आर्यसमाज के उत्सवों पर व्याख्यान देने के लिए पंजाब से हैदराबाद गये थे। अभी वे दो-तीन व्याख्यान ही दे पाये थे कि रियासत का आसन डोल गया। उन्हें रियासत की सीमाओं से बाहर जाने की आज्ञा दे दी गयी। इस पर स्थानीय आर्य-समाज के प्रमुख सभासद् एक शिष्टमंडल के रूप में निजाम के पोलिटिकल मेम्बर की सेवा में उपस्थित हुए और यह जानना चाहा कि निर्वासन की आज्ञा किस आधार पर दी गयी है। पोलिटिकल मेम्बर ने जो उत्तर दिया, उसका यह अभिप्राय था कि रियासत की पुलिस को उनसे कोई शिकायत नहीं है। उनका निर्वासन भारत सरकार की इस रिपोर्ट के कारण किया गया है कि पं० चन्द्रभानु का एक अवाछनीय राजनीतिक संस्था से सम्बन्ध है। परन्तु जब भारत सरकार के राजनैतिक विभाग से पूछा गया तब वहां से यह उत्तर मिला कि निर्वासन की आज्ञा से ब्रिटिश सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं

यह उत्तर मिलने पर निजाम सरकार से स्पष्टीकरण मांगा गया तो उसने यह कहकर मामले को टाल दिया कि "हमारे यहां यह केस समाप्त किया जा चुका है अब इस पर पुनर्विचार नहीं हो सकता।"

इसके पश्चात् इस मामले को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ने अपने हाथ में ले लिया। उसने भारत सरकार के पोलिटिकल (राजनीतिक) विभाग से निजाम सरकार के इस कथन का स्पष्टीकरण मांगा कि क्या पं० चन्द्रभानु जी को भारत सरकार की रिपोर्ट पर निर्वासित किया गया है। वहां से भी यही उत्तर मिला कि पण्डित चन्द्रभानु जी के निर्वासन से भारत सरकार का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है।

आशा तो यह थी कि इस काण्ड से हैदराबाद सरकार कुछ सावधान होगी परन्तु हैदराबाद की सरकार ने आर्यसमाज के दमन के लिए एक पग और आगे बढ़ाया। १९३३ के मई मास में हल्लीखेड़ आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव होने वाला था। वहां के ताल्लुकेदार ने उत्सव बन्द करने का हुक्म दे दिया। कारण यह बतलाया कि उत्सव धार्मिक नहीं, राजनीतिक है। इस पर हैदराबाद के प्रधान मन्त्री का द्वार खटखटाया गया तो उसने उत्सव करने की आज्ञा तो दे दी परन्तु नगर-कीर्तन पर से प्रतिबन्ध नहीं उठाया। १९३४ में उत्सव भी बन्द कर दिया गया।

इन्हीं दिनों हैदराबाद में एक नया पैगम्बर आविर्भूत हुआ। सिद्दीक दीनदार नाम के मुसलमान ने यह मशहूर कर दिया कि, "मैं लिंगायत सन्त चिन विश्वेश्वर का अवतार हूं।" उस प्रदेश में लिंगायत सम्प्रदाय का बहुत प्रचार था। सिद्दीक ने सम्प्रदाय के लोगों को इस्लाम ग्रहण करने की प्रेरणा करते हुए हिन्दुओं के देवी-देवताओं को खूब गालियां दी। उसने 'सरवर-ए-आलम' नाम की एक पुस्तक लिखी, जो अशिक्षित हिन्दुओं को काफी भ्रम मे डालने वाली थी। हैदराबाद के हिन्दू निवासी यह देखकर आश्चर्यित थे कि जहां उनके उत्सव और नगर-कीर्तन तक बन्द किये जा रहे थे, वहां सिद्दीक जैसे शरारती व्यक्ति को विष फैलाने का खुला अवसर मिल रहा था।

इस विकट आक्रमण का प्रत्युत्तर देने के लिए हैदराबाद के आर्य लोगों ने पं० रामचन्द्र देहलवी को अपने समाज के वार्षिकोत्सव पर निमंत्रित किया। प० रामचन्द्र जी आर्यसमाज के उन प्रचारकों में से है, जिनकी युक्ति जितनी तीव्र होती है, भाषा उतनी ही संयत होती है। आपकी भाषण शैली में दिल्ली की शायस्तगी कूट-कूट कर भरी रहती है। आप कुरान के पंडित है। आयतों का उच्चारण मुसलमान मौलवियों से भी अधिक सही करते है। साथ ही आप भारतीय दर्शनो की भी पूरी अभिज्ञा रखते है। बढ़िया मुहावरेदार हिन्दुस्तानी भाषा के तो आप स्वामी ही है। पण्डित जी ने हैदराबाद आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर तीन व्याख्यान दिये। श्रोताओ का कहना था कि उन व्याख्यानो पर हिन्दू और मुसलमान दोनों के सिर झूम उठे। इस पर हैदराबाद की सरकार बौखला गई। इससे पहले वर्ष आपके दो व्याख्यान बीदर मे भी हुए थे। पण्डित जी जब हैदराबाद के वार्षिकोत्सव पर तीसरा व्याख्यान दे रहे थे तब रात के ९॥ बजे एक समन दिया गया जिस पर बीदर के सब-जज के हस्ताक्षर थे। समन गत वर्ष बीदर म दिये गये व्याख्यान के आधार पर जारी किया गया था। जब यह समाचार समाचार-

पत्रों में प्रकाशित हुआ तो देश भर के हिन्दुओं में विक्षोभ की एक लहर चल गयी। पण्डित जी लगभग तीस वर्षों से भारत के कोने-कोने में व्याख्यान दे रहे थे। कभी उनके व्याख्यान को आपत्तिजनक नहीं समझा गया। उन पर आपत्तिजनक भाषण देने का कारण बतला कर अभियोग लगाने के समाचार ने आर्य-जगत् में बिजली-सी दौड़ा दी। सार्वदेशिक सभा के प्रधान ने निजाम के नाम निम्नलिखित तार भेजा--

"इस समाचार से कि पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी पर बीदर की पुलिस ने इस्लाम का अपमान करने के आधार पर मामला चलाया है, अत्यन्त आश्चर्य हुआ। पं० रामचन्द्र जी आर्यसमाज के माननीय, अनुभवी और पुराने उपदेशक हैं और उन्होंने अपने श्रोताओं की धार्मिक भावनाओं को कभी ठेस नहीं पहुंचाई। इसके प्रतिकूल उनके व्याख्यान सदा मधुर, मौलिक एव तर्कपूर्ण रहते हैं और इस सम्बन्ध में उनके मुसलमान मित्रों ने भी उन्हें सदा सराहा है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा अत्यन्त सम्मानपूर्वक श्रीमन्त से प्रार्थना करती है कि आप पुलिस को विद्वान् पं० जी के विरुद्ध मामला चलाने से रोक दें। यदि ऐसा न हो सके तो सभा श्रीमन्त से अनुनय करती है कि आप एक ऐसे विशेष ट्रिब्युनल के सामने इस अभियोग को उपस्थित करने की व्यवस्था करें, जो पुलिस के स्वार्थ मिश्रित प्रभाव से सुरक्षित हो, ताकि न्याय और निष्पक्षतापूर्ण व्यवहार हो सके।"

इसी आशय का एक पत्र भारत सरकार के पोलिटिकल सेक्रेटरी को भी लिखा गया। सार्वदेशिक सभा के इन प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि २ अगस्त १९३४ को पं० रामचन्द्र जी पर से अभियोग तो उठा लिया गया परन्तु रियासत में प्रवेश के निषेध की आज्ञा लगा दी गयी। स्पष्ट है कि निजाम की सरकार का यह कार्य किसी प्रकार भी हेतु-संगत नहीं था। यदि अभियोग सच्चा था तो उसका उठाना उचित नहीं था और यदि झूठा था तो पण्डित जी के हैदराबाद प्रवेश पर रोक लगाना न्यायसंगत नहीं था। मामले की गम्भीरता का अनुभव करके सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के सुयोग्य मंत्री प्रोफेसर सुधाकर जी एम० ए० स्वयं हैदराबाद गए। वहां वे निजाम सरकार के मुख्य अधिकारियों से मिले। अधिकारी प्रो० सुधाकर जी से प्रेमपूर्वक मिले और यह सफाई देते हुए कि आर्यों और हिन्दुओ के प्रति किये गये दुर्व्यवहारों की जिम्मेदारी छोटे कर्मचारियों की है, यह आशा दिलाई कि भविष्य में ऐसा नहीं होने पायेगा।

अधिकारियों के आश्वासन से यह आशा बधी थी कि परिस्थिति मे कुछ सुधार हो जायेगा परन्तु हुआ उसके विपरीत ही। छोटे अधिकारी और भी उग्र हो गये और अपनी ज्यादतियों को बढ़ा दिया। इस बिगड़ती हुई परिस्थिति को सभालने और स्पष्ट करने के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से निजाम के पास ए मैमोरियल भेजा गया, जिसमें निम्नलिखित मागें पेश कीं :--

(१) पुलिस को निजाम की ओर से स्पष्ट और असंदिग्ध रूप में हिदायत दे दी जाय कि मुसलमान और ईसाइयों की तरह आर्यसमाजियो को भी अपने न्यायोचित धार्मिक कर्त्तव्यों के अनुष्ठान करने का पूरा अधिकार है, ताकि नीचे के पदाधिकारी किसी अशुद्ध धारणा अथवा किसी अन्य कारण से विरुद्ध आचरण न कर सकें।

(२) रियासत में आर्यसमाज के उपदेशकों के आवागमन पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाये ।

(३) आर्यसमाज के धार्मिक जलूसों को उसी स्वाधीनता से निकलने दिया जाये, जिस स्वाधीनता से अन्य मतावलम्बियों के जलूस निकलते हैं ।

(४) धार्मिक और भक्तिपरक साहित्य पर प्रतिबन्ध न लगाया जाये । यदि किसी ऐसे साहित्य को आपत्तिजनक समझा जाय तो उचित जांच के बिना कोई आज्ञा न दी जायेगी । यदि कोई प्रतिबन्ध हों तो उनके विरुद्ध अपील का अधिकार रहे ।

(५) सार्वजनिक सभाएं, शास्त्रार्थ, भाषण तथा प्रचार करने का अबाधित अधिकार सारी प्रजा को तथा आर्यसमाज को प्राप्त हो ।

(६) अन्य धर्म-मन्दिरों की तरह आर्यसमाज मन्दिरों का भी आदर किया जाये और उनमें सत्संग की आयोजना करने में कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाये ।

(७) रियासत से निर्वासित किए गए आर्य प्रचारकों के विरुद्ध लगे हुए प्रतिबन्धों को एक उच्चपदस्थ न्यायाधीश के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया जाये और भविष्य में भी ऐसे ही प्रतिबन्धों पर पुनर्विचार का अधिकार प्रमाणित माना जाये ।

सार्वदेशिक सभा का यह मेमोरियल भाषा में इतना संयत और युक्तिसंगत था कि न केवल देश के समाचार पत्रों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, भारत सरकार के राजनीतिज्ञों ने भी उसे आदर की दृष्टि से देखा । ऐसे युक्तिसंगत आवेदन पत्र की निजाम सरकार पर जो प्रतिक्रिया हुई, वह उसकी पेचदार नीति के अनुरूप ही थी । रियासत के पोलिटिकल मेम्बर ने सभा के मंत्री को निम्नलिखित पत्र भेजा :—

"मुझे आपको यह सूचना देने का आदेश हुआ है कि हैदराबाद रियासत में किसी धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायियो के मार्ग में किसी प्रकार के प्रतिबन्ध लगाने का कोई प्रश्न नहीं है । हजूर–निजाम की सरकार अपने प्रत्येक प्रजाजन के प्रति, चाहे वह किसी धर्म, वर्ग या सम्प्रदाय का हो, व्यवहार में सदा निष्पक्ष रहती आयी है और अब भी है । तथापि यदि कोई व्यक्ति ऐसी बात कहे या करे जो विभिन्न सम्प्रदायो के बीच में संघर्ष उत्पन्न करने वाली हो तो अनुशासन और कानून के नाते सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह अपराधी के धर्म विशेष का ध्यान न रखते हुए उचित और आवश्यक कार्रवाई करे । मैं यहां यह भी जोड़ देना चाहता हूं कि आर्यसमाजियों को विशेष रूप से किसी प्रकार का कष्ट पहुंचाने का रियासत की ओर से कभी विचार नहीं किया गया ।"

रियासत के इस उत्तर को सार्वदेशिक सभा ने निजाम की बदली हुई मनोवृत्ति का प्रमाण समझा और उसका स्वागत किया । स्वागत करने के लिए जो पत्र लिखा गया उसमें आशा प्रकट की गयी कि अब तक आर्यसमाज तथा उसके सदस्यों एवं प्रचारकों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, वे हटा लिये जायेंगे और भविष्य में वह न दोहराये जायेंगे । इसके साथ ही सभा की ओर से पं० रामचन्द्र जी पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटाने

की मांग को दोहराया गया। निजाम सरकार ने इस मांग का जो उत्तर दिया वह उसके योग्य ही था। उसमें कहा गया था कि "श्रीमान् निजाम महोदय की सरकार यह बता देना चाहती है कि यद्यपि वह किसी वर्ग की विशेष शिकायतों पर छानबीन करने के विरुद्ध नहीं है, तो भी वह समझती है कि पंडित रामचन्द्र जी के हैदराबाद से निर्वासित किए जाने के सम्बन्ध में आन्दोलन का जो मार्ग पकडा गया है और प्रचार द्वारा निजाम की प्रजा मे परस्पर फूट उत्पन्न करने के जो उपाय किए गए हैं, वे सर्वथा अनुचित और ईर्ष्यापूर्ण हैं।"

निजाम की सरकार के ऐसे गोलमोल और भ्रामक वक्तव्य के दो परिणाम हुए। एक परिणाम तो यह हुआ कि रियासत के छोटे अधिकारियों को प्रोत्साहन मिल गया। उन्होंने यह समझा कि सरकार आर्यसमाज की प्रवृत्तियों को कुचलना चाहती है। उस वक्तव्य का दूसरा परिणाम यह हुआ कि देश भर के आर्यसमाजियों में असतोष और विक्षोभ की जबरदस्त लहर चल गयी। सार्वदेशिक सभा और उसकी आर्य रक्षा समिति पर आर्य जगत् की ओर से दबाव पडने लगा कि रियासत के अत्याचारो का उत्तर सत्याग्रह द्वारा दिया जाय। रियासत के भिन्न-भिन्न स्थानों से सभा के कार्यालय में छोटे अधिकारियों द्वारा किये गये दमनकारी कार्यों और अत्याचारों के समाचार निरन्तर पहुंच रहे थे। सभा कार्यालय से उनकी सूचना तत्काल निजाम सरकार को दी जाती थी। निजाम सरकार बिल्कुल पत्थर बनी बैठी थी। वह न अपनी नीति को बदलती थी और न सभा के पत्रों का उत्तर देती थी।

अकस्मात् उन्हीं दिनों रियासत के तत्कालीन प्रधान मंत्री महाराज सर किशनप्रसाद बहादुर किसी सरकारी काम से दिल्ली आये। बातचीत द्वारा उलझन को सुलझाने के लिए, सभा की ओर से निम्नलिखित महानुभावो का एक शिष्टमंडल उनसे मिला।

श्रीयुत् एम० एस० अणे, एम० एल० ए०, श्री ए० सी० दत्त एम० एल० ए० (उपप्रधान केन्द्रीय असेम्बली), माननीय श्री वी० वी० कालिकर (सदस्य कौंसिल आफ स्टेट), डा० बी० एस० मुंजे (प्रसिद्ध हिन्दू नेता), पं० कृष्णकान्त मालवीय एम० एल० ए०, श्री जी० एस० गुप्त एम० एल० ए०, श्री लाला देशबन्धु गुप्त एम० एल० ए० (पंजाब), प्रो० सुधाकर एम० ए०, चौ० मुख्तारसिंह (भूतपूर्व एम० एल० ए०), लाला नारायणदत्त (कोषाध्यक्ष सार्वदेशिक सभा), तथा लाला ज्ञानचन्द जी। देर तक बातचीत हुई। सर किशनप्रसाद ने आर्य समाज के दृष्टिकोण से थोड़ी बहुत सहानुभूति भी प्रकट की परन्तु निश्चित परिणाम कुछ न निकला।

निजाम सरकार के अधिकारियों की ओर से आर्यसमाज की न्याययुक्त मागों के प्रति जो विरोध या उपेक्षा का भाव प्रयुक्त किया जा रहा था, उससे रियासत के छोटे मुसलमान अधिकारी और धर्मान्ध मुसलमान और भी अधिक उत्साहित होकर हिन्दू जनता पर खुले आक्रमण करने लगे। दिसम्बर १९३७ में, गंजोटी नाम के स्थान मे वेदप्रकाश की दिन दहाड़े हत्या उस प्रवृत्ति का अकाट्य प्रमाण थी। वहां आर्यसमाज की स्थापना होने वाली थी। उसे रोकने के लिए मुसलमानों की भीड़ ने हमला करके

वेदप्रकाश को मार दिया। जिला उदगीर के कुशनीर प्रदेश के छपला ग्राम में दोपहर के ३ बजे २०० मुसलमानों ने एक हिन्दू के मकान पर धावा बोल दिया। उसमें माणिकराव आर्य, भीमराव पटेल और उनकी चाची की हत्या कर दी गयी। तीनों लाशें भी उसी मकान के एक कोने में जला दी गईं। बीदर जिले के लाल गांव के युवक बाबूराव पर पुलिस के कर्मचारी सैयद अमीर ने तलवार से हमला करके उसे निकम्मा बना दिया। जिला उस्मानाबाद के एक लिम्बाजी नाम के नौजवान को आर्यसमाजी बनने के अपराध में पुलिस द्वारा इतना पीटा गया कि वह पागल हो गया।

यह तो देहातों की दशा थी। हैदराबाद और अन्य नगरों की दशा भी कुछ बेहतर नहीं थी। १९३८ में निजामाबाद में बकरीद पर किये गये गोवध के कारण निजामाबाद मे हड़ताल हुई। उसे अपराध समझा गया और चार आर्यसमाजी दोषी ठहराकर गिरफ्तार कर लिये गए। उनके साथ पुलिस ने अत्यन्त कठोरता का व्यवहार किया। गुलबर्गा मे होली पर हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा हो गया। उसका दोष भी आर्यसमाज के मत्थे मढ़ा गया और चार आर्यसमाजियो को दस-दस साल की जेल की सजायें दी गयीं। हैदराबाद के मुसलमानो का साहस इतना बढ़ गया कि वे रियासत की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान बैरिस्टर विनायकराव विद्यालंकार के मकान को घेर कर मारकाट करने की धमकी देने लगे। अकस्मात् उसी समय एक बड़े अंग्रेज अफसर के वहां आ जाने के कारण भीड़ तितर-बितर हो गयी।

स्थान-स्थान पर आर्यसमाजियों पर जो अभियोग चल रहे थे, उनकी पैरवी के लिए बम्बई के बैरिस्टर मिस्टर नरीमान को बुलाया गया तो रियासत की सरकार ने उनके वकालत करने का निषेध कर दिया। श्री भूलाभाई देसाई को भी सफाई के लिए बुलाया गया था। वे हैदराबाद में आ भी गये पर उनके साथ सरकार द्वारा ऐसा अभद्र व्यवहार किया गया कि वे हैदराबाद से वापिस जाने के लिए मजबूर हो गये। दिल्ली के मि० तवक्कली और मुलतान के श्री रामचन्द्र खन्ना को आर्यसमाजियों के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों में सफाई के लिए पेश होने की अनुमति मिल गयी थी। उन्होंने बड़ी योग्यता से अपने कार्य को पूरा किया।

चौथा अध्याय

सत्याग्रह की घोषणा

पण्डित चन्द्रभानु सिद्धान्त भूषण के निर्वासन के समय से ही हैदराबाद के मामले को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपने हाथ में ले लिया था। रियासत में होने वाली घटनाओ का ठीक-ठीक विवरण जानने के लिए १९३८ के मार्च में सभा की ओर से श्री शिवचन्द्र जी को वहा भेजा गया। श्री शिवचन्द्र जी ने निजाम आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री पं० वंशीलाल जी के साथ १६-१७ घटनास्थलों का दौरा किया। वे रियासत की पुलिस के डाइरेक्टर जनरल मिस्टर हौलिन्स से तथा अन्य अधिकारियों से भी मिले। लौटकर सभा कार्यालय में श्री शिवचन्द्र जी ने जो रिपोर्ट दी वह अत्यन्त चिन्ता-जनक थी। उससे प्रतीत होता था कि हैदराबाद की मुसलमान जनता सर्वथा निर्भय होकर विशेषतः आर्य समाजियों और सामान्य रूप से हिन्दुओं पर हर प्रकार के अत्याचार करने पर तुली हुई है। सभा ने अनुभव किया कि यदि शीघ्र ही उस भयानक प्रवृत्ति को रोकने का यत्न न किया गया तो रियासत में आर्यसमाजियों का रहना सर्वथा असम्भव हो जायेगा।

दशा बहुत चिन्ताजनक थी और लगभग असम्भव होती जा रही थी, तो भी सभा के उस समय के प्रधान श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त ने यह उचित समझा कि हम एक बार स्वयं यत्न करके मामले को सुलझाएं। आप २९ जून १९३८ को हैदराबाद पहुंचे। वहां पहुंच कर वे तब स्तब्ध हो गये, जब उन्हें मालूम हुआ कि दो दिन पूर्व २७ जून को आर्यसमाज कल्याणी के उत्साही कार्यकर्ता श्री धर्मप्रकाश को आर्यसमाज आते हुए मुसलमानों के एक गिरोह ने घेर लिया और तलवार से काट डाला, तो भी धैर्य करके गुप्त जी रियासत के प्रधान मंत्री सर अकबर हैदरी से मिले। आपने हैदरी तथा पुलिस के अन्य बडे अधिकारियों के सामने आर्यों पर किये गये सब अत्याचारों की कहानियां रखीं। परन्तु कोई विशेष लाभ न हुआ। वे लोग अत्याचारों को रोकने का आश्वासन देने के स्थान पर दुष्कर्मों की सफाई देने का निष्फल प्रयत्न करते रहे। ऐसी स्थिति देखकर सभा के प्रधान जी रियासत में अधिक ठहरना अनावश्यक समझ कर दिल्ली लौट आये। रियासत की आन्तरिक दशा दिनों दिन बिगड़ती गयी। जुलाई में समाचार प्राप्त हुआ कि गजोटी में श्री वेदप्रकाश को मेहरअली नाम के मुसलमान ने छुरा भोंक कर मार दिया। इसी प्रकार अन्य अनेक स्थानों से भी समाचार आते रहे।

हैदराबाद के समाचारों से आर्यजगत् में विक्षोभ की मात्रा प्रतिदिन बढ़ रही थी। सार्वदेशिक सभा ने स्थिति को शान्तिपूर्वक संभालने के जितने प्रयत्न किए वे

सब निष्फल हुए। ऐसी दशा में यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि आर्यसमाज की ओर से कोई ऐसा प्रयत्न किया जाय जो हैदराबाद की आक्रमणकारी प्रवृत्तियों पर रोक-थाम लगा सके। सम्पूर्ण परिस्थिति पर विचार करने के लिए ३० अप्रैल १९३८ को सार्वदेशिक सभा की एक विशेष बैठक हुई, जिसमें देर तक विचार-विमर्श के पश्चात् श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा प्रस्तुत निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किया गया :—

"यह सभा हैदराबाद रियासत में आर्यसमाज और समाजियों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उसकी घोर निन्दा करते हुए उस रियासत के आर्य निवासियों के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है। इस सभा को इस बात का विशेष दुःख है कि रियासत के उच्च अधिकारियो ने सभा के प्रतिनिधियों को बार-बार आश्वासन दिये है कि रियासत में आर्यसमाज के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया जायेगा, परन्तु उन आश्वासनो को सदा ही तोड़ा गया है और स्थिति को अधिक से अधिक भयंकर होने दिया है। यह सभा समझती है कि अब दशा बहुत ही बिगड़ गयी है और उसकी उपेक्षा करना असम्भव है।

"सभा की हैदराबाद से मांग है कि :—

१. गश्ती निशान ५४ को मन्सूख कर दिया जावे।
२. कवायद तकरीबन मजहबी मन्सूख कर दिये जाये।
३. कानून अखाडा मन्सूख कर दिये जायें।
४. खानगी मदरसे की गश्ती मन्सूख कर दी जाये।
५. फिरकेवारी दंगों के मुकदमे की तहकीकात निष्पक्ष कमीशन द्वारा कराई जाये।
६. बाहर के उपदेशकों पर इजाजत की पाबन्दी न लगाई जाय। कोई खिलाफ कानून काम करे तो मुकदमा चलाया जाय। जिसका दाखिला बन्द है, खोल दिया जाय।
७. पुस्तके बिना जाच जब्त न की जावें।
८ समाचार पत्रों के निकालने की आज्ञा दी जाय।
९. मुसलमान, हिन्दू और आर्य त्योहार मिलकर आने पर उनके मनाने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिए।
१०. आर्यसमाज तथा हवन कुण्ड के स्थापित करने के लिए इजाजत की जरूरत न रखी जाय।
११. जेलखानो में कैदियों को मुसलमान न बनाया जाय और हमको उनमें प्रचार की आज्ञा हो।
१२. सरकारी नौकर जो आर्य है, उन पर आर्य होने के कारण सख्ती न की जाय।
१३. आर्यों को अपने घरो पर और आर्यसमाज पर झंडा लगाने की स्वतन्त्रता दी जाय।
१४. गुलबर्गा, निजामाबाद, हैदराबाद के मुकदमों की तहकीकात निष्पक्ष कमीशन द्वारा की जाय।

"क्योंकि सभा को दिये गये आश्वासनों की रियासत के अधिकारियों ने कोई परवाह नहीं की और सभा यह भी आवश्यक समझती है कि सम्पूर्ण आर्य जनता को इस आवश्यक प्रश्न के सम्बन्ध मे साथ लिया जाय, इसलिए सभा निश्चय करती है कि पांच मास के अन्दर-अन्दर मध्य प्रदेश मे अथवा महाराष्ट्र में किसी ऐसे केन्द्र में, जो हैदराबाद रियासत के समीप हो, एक आर्य सम्मेलन किया जाय, जिसमे विशेषतया हैदराबाद की समस्या पर विचार हो।

"सभा की सम्मति है कि यदि रियासत के अधिकारी शीघ्र ही अपनी नीति में परिवर्तन करने को तैयार न हों, तो सम्पूर्ण आर्यसमाज को सब उचित उपायों से, जिनमें सत्याग्रह भी शामिल है, अपने अधिकारो के लिए लड़ने को तैयार हो जाना चाहिए।

"यह सभा आर्य रक्षा समिति को आदेश देती है कि वह इस प्रस्ताव के अनुसार आर्य महासम्मेलन के संगठन तथा अन्य सब आवश्यक उपायो को काम मे लाकर हैदराबाद में आर्यसमाज के अधिकारों की रक्षा करने का प्रयत्न करे।"

प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

इस प्रस्ताव में कुछ महीनो तक रियासत की गतिविधि में सुधार की प्रतीक्षा करने का निर्देश किया गया था। वह समय बिना किसी परिवर्तन के ही निकल गया। रियासत के छोटे कर्मचारी और धर्मान्ध मुसलमान आर्यो पर यथेच्छ अत्याचार करते रहे और रियासत के ऊंचे अधिकारी लाग-लपेट की बातो मे समय गुजारते रहे। परिस्थिति पर विचार करने के लिए ९ अक्तूबर १९३८ को सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा का विशेष अधिवेशन हुआ। उसमे सत्याग्रह सम्बन्धी निश्चय को अन्तिम रूप देने के लिए दो महत्वपूर्ण निश्चय किये गये। सभा के प्रधान पद पर श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त प्रतिष्ठापित किये गये और आर्य कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के स्थानादि सम्बन्धी निश्चय करने तथा सत्याग्रह का संचालन करने के लिए एक समिति बनाई, जिसके प्रधान श्री नारायण स्वामी जी महाराज और उनके सहायक श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज नियुक्त किये गये। श्री नारायण स्वामी जी ने हैदराबाद के आर्य सज्जनो और सत्याग्रह समिति के सदस्यों के परामर्श से निश्चय किया कि आर्य कांग्रेस का अधिवेशन शोलापुर में हो। शोलापुर हैदराबाद रियासत की सीमा के अत्यन्त समीप एक बड़ा नगर है। श्री नारायण स्वामी जी और श्री स्वतन्त्रानन्द जी, सभा के कार्यकर्ता श्री शिवचन्द्र जी को साथ लेकर ३० अक्तूबर १९३८ को शोलापुर पहुंच गये और वहां के प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्ता श्री विश्वनाथ कनाले तथा अन्य सज्जनो की सहायता से कांग्रेस की तैयारियां शुरू कर दी। श्रीयुत गणपति सिद्धरामय्या तथा श्रीयुत महावीर पातिल ने शिविर की स्थापना के लिए २५ एकड़ भूमि बिना किराये आर्य सम्मेलन के लिए दे दी। उस भूमि पर सार्वदेशिक सभा की दी हुई प्रारम्भिक आर्थिक सहायता से नगर का निर्माण आरम्भ हो गया। थोड़े ही समय मे १० हजार प्रतिनिधियों तथा दर्शकों के निवास के लिए निवास-स्थान सज्जित हो गये। प्रत्येक प्रान्त के उपनिवेश और भोजन

के प्रबन्ध की अलग व्यवस्था की गई थी। सम्मेलन के लिए जो विशाल पंडाल बनाया गया था, उसमें पच्चीस हजार व्यक्तियों के बैठने का स्थान था।

सम्मेलन खूब धूमधाम से हुआ। सम्मेलन के सभापति महाराष्ट्र के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता श्री माधव श्रीहरि अणे का सभापति पद से दिया गया भाषण अत्यन्त ओजस्वी और महत्वपूर्ण था। आपने अपने भाषण के प्रारम्भ मे कहा, "मै स्वयं आर्य-समाजी नहीं हू और इसी आधार पर मै स्वागत समिति के निमंत्रण को अस्वीकार कर सकता था। परन्तु वर्तमान स्थिति पर गहरी दृष्टि डालने से मुझे अनुभव हुआ है कि यह निमंत्रण केवल रिवाजी नहीं है, वरन् एक कर्त्तव्य का आह्वान है, जिसे स्वीकार करना मेरा कर्त्तव्य है।"

आर्य समाज ने हिन्दू जाति की जो सेवायें की है, उनकी चर्चा करते हुए सभा-पति जी ने कहा, "आर्यसमाज ने हिन्दू समाज की जो सेवायें की है, वे इतनी प्रसिद्ध है कि इस भाषण मे उनके विस्तृत उल्लेख की आवश्यकता नहीं.. .....आर्यसमाज का मिशन सब लोगों को आपस में मिलाना है। आर्य समाज बहिष्कार की उस नीति और भावना को नष्ट करना चाहता है, जो वर्तमान हिन्दू धर्म का कलंक बनी हुई है। आर्यसमाज ने हिन्दू धर्म में मिशनरी भावना का सचार किया है, जो सामूहिक और नियमित रूप में निर्धनों, असामियों और पिछड़े हुए लोगों की विविध प्रकार की सेवा-शुश्रूषा द्वारा व्यक्त है।"

इस प्रकार देश भर के हिन्दुओं की आर्य समाज के प्रति उस समय जो मनोभावना थी, उसे प्रकट करते हुए सभापति जी ने हैदराबाद रियासत की स्वेच्छाचारिता और पक्षपातपूर्ण नीति का विस्तृत वर्णन किया। अन्त मे आपने रियासत की ओर से आर्यसमाज और आर्य जनों पर किये गये अत्याचारों का विवरण देकर सार्वदेशिक सभा के सत्याग्रह सम्बन्धी निश्चय का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। आपने अपना भाषण इन शब्दों से समाप्त किया, "अन्त में मै उन लोगों को अपनी शुभ कामनायें अर्पण करता हूं, जो रियासती प्रजा की स्वतन्त्रता और धार्मिक अधिकारों के लिए लड़ रहे है अथवा शीघ्र ही लड़ने वाले है। वेद के शब्दों मे 'अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु, अस्मानु देवा अवतां हवेषु।'—हमारे वीर विजयी हों, देवता युद्ध मे हमारी रक्षा करें।

प्रस्ताव मुख्य रूप से हैदराबाद की स्थिति को लक्ष्य रख कर ही बनाये गये थे। एक प्रस्ताव में हैदराबाद के सर्वश्री वेदप्रकाश, पं० श्यामलाल, रामजी ताउसी, सत्य-नारायण और महादेव आदि आर्यवीरो पर धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा किये गये आक्रमणों की निन्दा की गयी थी और आर्यवीरों की बलिदान भावना का अभिनन्दन किया गया था। प्रस्ताव संख्या चार में उन सब धार्मिक अधिकारों की घोषणा की गई थी, जो सार्वदेशिक सभा द्वारा पहले घोषित हो चुके थे। पाचवा प्रस्ताव सबसे अधिक महत्व-पूर्ण था। उसमे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए किये जाने वाले सत्याग्रह की पूरी योजना निर्मित की गयी थी। प्रस्ताव निम्नलिखित है :—

(अ) यतः सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा निजाम

राज्य द्वारा गत ६ वर्षों में प्रथम प्रस्ताव में वर्णित विविध अधिकार-सम्बन्धी शिकायतों के निराकरण की सभी प्रार्थनाएं और प्रयत्न निष्फल हो चुके है, और क्योंकि निजाम राज्य के तथा समस्त भारत-वर्ष के आर्यो मे इस सम्बन्ध में घोर असंतोष फैल रहा है, इस सम्मेलन की सम्मति में अब अपनी शिकायतों के निराकरण के लिए आत्म-त्याग व सहिष्णुतापूर्ण अहिसात्मक सत्याग्रह के अतिरिक्त और कोई दूसरा चारा नही रह गया है।

(आ) अतः यह सम्मेलन अहिसात्मक सत्याग्रह के आन्दोलन के संचालन के लिए "सत्याग्रह समिति" नियत करता है, जिसके प्रथम डिक्टेटर श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज होंगे और समस्त भारत की आर्य व हिन्दू जनता को आदेश करता है कि वे इस आन्दोलन को पूर्ण सहायता दें।

(इ) यह सम्मेलन श्री महात्मा नारायण स्वामी जी को अधिकार देता है कि वे इस समिति के सदस्यों की संख्या व नामावली नियत कर लें।

सत्याग्रह के निश्चित और परिमित लक्ष्य दो रखे गये। पहला अन्य मताव-लम्बियों की भावनाओ का उचित सम्मान करते हुए वैदिक धर्म और आर्य सस्कृति के प्रचार तथा अनुष्ठान की पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना और दूसरा हैदराबाद में नये आर्यसमाजो की स्थापना, तथा हवन कुण्डों का निर्माण और पुराने मन्दिरो की मरम्मत को सीगए-अमूर-ए-मजहबी अथवा अन्य सरकारी विभाग से मुक्त करना। यह भी निश्चय किया गया कि सत्याग्रह को स्थगित करने का अधिकार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि-सभा को होगा। सत्याग्रह के संचालन के सम्बन्ध में अन्य जो निश्चय किये गये उनमें से निम्नलिखित विशेष महत्वपूर्ण थे——सत्याग्रहियो को मन, वचन और कर्म से सत्य और अहिंसा का पालन करना होगा। यह घोषणा की गयी कि आर्य समाज का सत्याग्रह सर्वथा धार्मिक है, राजनीतिक नहीं।

सम्मेलन ने अन्त में अपने शुभ कार्य में देश की अन्य सार्वजनिक संस्थाओ से सहयोग और भारत सरकार से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया।

इस आन्दोलन के गरम होने पर हैदराबाद की सरकार ने बिना कोई अभियोग चलाये उत्साही कार्यकर्ता पं० नरेन्द्र जी को कालेपानी भेज दिया था। सम्मेलन ने प्रस्ताव संख्या १४ मे रियासत के उस कार्य को घृणा के योग्य घोर अत्याचार बतलाते हुए पंडित नरेन्द्र जी को उनकी वीरता के लिए बधाई दी।

सभा ने आन्दोलन को देशव्यापी करने के लिए देश भर की आर्यसमाजो को आदेश दिया कि वे २२ जनवरी १९३९ को सब स्थानों पर हैदराबाद दिवस मनाएं।

सम्मेलन के समाचारो को समाप्त करने से पूर्व पण्डित श्यामलाल जी की दुःखद मृत्यु का वृत्तान्त देना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि उससे हैदराबाद रियासत के काले कारनामों का एक स्पष्ट चित्र आंखो के सामने आ जाता है। प० श्यामलाल जी आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद के प्रधान थे। वह बहुत ही उत्साही और अनथक कार्य-

कर्ता थे। रियासत के मुसलमान अधिकारी उन पर बहुत नाराज़ थे । जब बीदर के हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियां हुई, तब पं० श्यामलाल जी भी हत्या के अभियोग में गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारी से पूर्व वे रोगी थे। बबई के एक वैद्य उनकी चिकित्सा कर रहे थे। दूध और फलों के अतिरिक्त श्यामलाल जी कोई अन्य भोजन नही करते थे। जब वे जेल में पहुंच गये तो उनके मित्र तथा सम्बन्धी जेल अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त करके भोजन के लिए दूध और फल भेजते रहे। जेलर को शायद यह बात अनुचित प्रतीत हुई कि एक कैदी को इतना आराम दिया डाय। जेलर ने बाहर से दूध और फलो का आना बन्द कर दिया और पं० श्यामलाल जी को रोटियां खाने के लिए विवश किया। प्रतिकूल भोजन से उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा तो उन्होंने उस भोजन को लेने से इन्कार कर दिया। इस घोर अपराध से रुष्ट होकर जेल अधिकारियों ने पण्डित जी के पांव में भारी बेड़ियां डालकर उन्हें गंजी में पटक दिया और मित्रों तथा सम्बन्धियों से मुलाकातें भी बन्द कर दीं। इन चिन्ताजनक समाचारों से उद्विग्न होकर श्यामलाल जी के भाई वंशीलाल जी ने रियासत के ऊंचे अधिकारियो का ध्यान आकृष्ट करते हुए यह प्रार्थना की कि श्यामलाल जी को स्वास्थ्य के अनुकूल भोजन लेने की अनुमति दी जाय अन्यथा उनका जीवन संकट मे पड़ जायेगा। वंशीलाल जी की प्रार्थना मानो बहरे कानों पर पडी। उसका कोई उत्तर तक न मिला। अन्त में वही हुआ जिसकी आशंका थी। १७ दिसम्बर १९३८ को बीदर जेल के अधिकारियों ने सूचना दी कि श्यामलाल जी का देहान्त हो गया है। उनका शव मिलने पर आर्यसमाज ने चिकित्सक द्वारा उसकी जांच कराई । परीक्षा की रिपोर्ट निम्नलिखित है--"१८ दिसम्बर १९३८ के दिन शव की परीक्षा की गई। मृत शरीर खिचे हुए पेट के साथ संकुचित पाया गया। दायें हांथ की अंगलियों के नाखून काले पड़ गये थे। दायीं टांग के गिट्टे के पास आध इंच गहरा और उतने ही घेरे का एक व्रण पाया गया। पिंडली की हड्डी के दोनों ओर दो लम्बरूप जख्म भी विद्यमान थे। दायीं टांग पर भी सामने की ओर एक लम्बा व्रण था और दोनों ओर भी व्रण थे।"

इस रिपोर्ट से स्पष्ट है कि पं० श्यामलाल जी की मृत्यु उन आघातों से हुई, जो जेल अधिकारियों द्वारा उनके शरीर पर किए गये। इस प्रकार परिस्थितियो से बाधित होकर आर्यसमाज ने किनारे से लंगर उठा लिया और अपने जहाज को समुद्र की तूफानी लहरों में छोड़ दिया। सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी श्री नारायण स्वामी जी महाराज ने ३१ जनवरी १९३९ के दिन सत्याग्रह प्रारम्भ करने की सूचना रियासत के अधिकारियों को दे दी।

पाँचवाँ अध्याय

हैदराबाद-सत्याग्रह (१)

प्रथम सर्वाधिकारी श्री नारायण स्वामी जी महाराज

आर्य महासम्मेलन ने शोलापुर मे निश्चय किया था कि २२ जनवरी को देश भर में सत्याग्रह दिवस मनाया जाय। उस दिन अनेक नगरों और ग्रामों में विराट् सभायें हुई जिनमें सार्वदेशिक सभा की ओर से निजाम के सामने धार्मिक स्वाधीनता सम्बन्धी जो मांगें पेश की गयी थीं, उनका समर्थन किया गया और आर्य सत्याग्रह के समर्थन में घोषणा की गयी। दिल्ली, बरेली आदि कुछ स्थानों पर आर्यों के उस दिन के जलुस पर ईंट-पत्थर फेंके गये और बाधा डालने का यत्न किया गया। परन्तु सामान्य रूप से जलसे और जलूस निर्विघ्न हो गये। देश के मुख्य-मुख्य समाचार-पत्रों ने प्रारम्भ से ही आर्यसमाज के आन्दोलन के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी। सत्याग्रह की घोषणा होने पर कुछ एक मुसलमान पत्रों को छोड़कर शेष सबने यह स्वीकार किया कि परिस्थिति के अनुसार आर्यसमाज का निश्चय सर्वथा उचित है। कलकत्ते के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'माडर्न रिव्यु' के सम्पादक ने लिखा था, "गत मास भारतवर्ष के बहुत से स्थानों में आर्य हिन्दुओं के साथ सहानुभूति प्रकट करने के लिए हैदराबाद दिवस मनाया गया। यह दिवस किसी अंश में भी मुसलमानो के विरुद्ध न था। दिल्ली, बरेली आदि कुछ स्थानों पर जो साम्प्रदायिक दंगे हुए, वे या तो गलतफहमियों के कारण थे, अथवा उनकी जड़ में शरारत भरा प्रोपेगण्डा था। यह स्मरण रखने योग्य बात है कि कुछ राष्ट्रीय मुसलमान नेताओं ने आर्यसमाज-हैदराबाद संघर्ष में आर्यसमाज के पक्ष का समर्थन किया। काश्मीर के उस समय के राष्ट्रीय नेता शेख अब्दुल्ला ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि इस विवाद में आर्यसमाज का पक्ष उचित है। पंजाब के सोशलिस्ट कार्यकर्ता मुन्शी अहमददीन ने हैदराबाद सत्याग्रह को पूर्णरूप से न्याय पर आश्रित बतलाते हुए उन मुसलमानों की निन्दा की, जो काश्मीर आन्दोलन में सबसे आगे बढ़े हुए थे और अब हैदराबाद आन्दोलन की निन्दा कर रहे हैं। सतारा के मौलाना कमरुद्दीन ने एक लेख में लिखा था--"एक ईश्वर की पूजा करने के लिहाज से आर्यसमाजी हमारे नजदीक हैं और हमें और ज्यादा नजदीक करने की कोशिश करनी चाहिए.......... हैदराबाद सरकार के तौर-तरीके इस्लामी ख्यालात के खिलाफ हैं।"

कराची के वैदिक साहित्य सत्संग में भाषण करते हुए मियां मौसन अली नामक मुस्लिम सज्जन ने कहा था कि मै स्वयं हैदराबाद सत्याग्रह में जाने को तैयार हूं। शाहपुरा

निवासी श्री फैयाजअली तथा कुछ अन्य मुसलमानों ने सत्याग्रह में सम्मिलित होकर अपनी सक्रिय सहानुभूति का भी परिचय दिया।

हैदराबाद रियासत की दशा नागरिक अधिकारों की दृष्टि से बहुत बिगड़ चुकी थी और इस कारण आर्यसमाज का सत्याग्रह सर्वथा सामयिक था, इसका सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि आर्यसमाज के सत्याग्रह आरम्भ करने से पूर्व अन्य सार्वजनिक संस्थाएं निजाम के शासन के विरुद्ध सत्याग्रह की घोषणा कर चुकी थीं। ३० अक्तूबर १९३८ के दिन हिन्दू सभा की ओर से हिन्दू जनता के अधिकारों की रक्षा के निमित्त सत्याग्रह आरम्भ किया गया। उसी मास की ८ तारीख को रियासत की आर्यरक्षा समिति की ओर से सविनय कानून भंग जारी हो चुका था। निजाम सरकार की प्रवृत्तियां इतनी विषैली हो चुकी थीं कि २९ अक्तूबर को हैदराबाद स्टेट-कांग्रेस को भी सत्याग्रह आरम्भ करना पड़ा। आर्यसमाज का सत्याग्रह आरम्भ होने पर, इस भय से कि कही स्टेट कांग्रेस को भी साम्प्रदायिक न मान लिया जाए स्टेट कांग्रेस ने अपना सत्याग्रह स्थगित कर दिया था। शेष दोनों सत्याग्रह बड़े सत्याग्रह में शामिल हो गये।

इन दोनों सत्याग्रहों का विवरण भी मनोरंजकता से शून्य नही। आर्य रक्षा समिति की ओर से श्री देवीलाल जी प्रथम सर्वाधिकारी नियत किये गये थे। उन्होंने २६ अक्तूबर १९३८ के दिन सत्याग्रह किया। लगभग ९ हजार व्यक्ति उनके साथ थे। श्री मुन्नालाल जी भजनोपदेशक आदि ६ अन्य आर्य सज्जन भी उनके जत्थे में थे। उनके जेल जाने पर मुखेड़ समाज के मंत्री महाशय श्रीराम जी दूसरे सर्वाधिकारी चुने गये। उन्होंने सरकारी प्रतिबन्ध की अवहेलना करके सार्वजनिक रूप से हवन किया। उस अपराध में उन्हें जेल की सजा हुई। १९३८ के नवम्बर, दिसम्बर और १९३९ के जनवरी मास मे यह सत्याग्रह चलता रहा। इसमें सेफ्टी बिल तोड़ने के कारण १०४, जमानत और मुचलका न देने पर ३३४ और अन्य अपराधों पर ४७७, इस प्रकार सब मिलाकर ९१५ सत्याग्रही जेल मे बन्द किये गये।

इन सत्याग्रहों का दमन करने के लिए निजाम सरकार ने दस्तूरुल अमल तहफ्फुज अमानो अमन (शान्ति रक्षा कानून) प्रचारित किया, जिस द्वारा साम्प्रदायिक विद्वेष फैलने का आरोप लगाकर किसी भी नागरिक को कैद किया जा सकता था। इस काले कानून का सहारा लेकर रियासत के बहुत से प्रभावशाली आर्यसमाजियों को जेल में डाल दिया गया था। पं० नरेन्द्र जी की गिरफ्तारी जिस विधि से की गयी, उससे रियासत की शासन-व्यवस्था का भली प्रकार परिचय मिलता है। पुलिस बरसों से उनके पीछे थी। किन्तु वह न केवल आर्यसमाज के अपितु हैदराबाद के समस्त सार्वजनिक जीवन के जीवन-प्राण समझे जाते थे। १५ अक्तूबर १९३८ को सी० आई० डी० के एक अधिकारी ने उन्हें अपने घर पर दावत के लिए निमंत्रित किया और विश्वासघात करके वहीं गिरफ्तार कर लिया। अदालत में नाममात्र को मामला चलाया गया और उन्हें कालेपानी का दण्ड दिया गया।

इस प्रकार तब रियासत का वातावरण असंतोष से प्रकम्पित हो रहा था, जब आर्यसमाज की सत्याग्रह घोषणा उस पर भूकम्प की भांति अवतीर्ण हुई।

आर्य सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी श्री नारायण स्वामी जी महाराज ने ३१ जनवरी १९३९ के दिन सत्याग्रह आरम्भ करने की घोषणा न केवल समाचार-पत्रों मे कर दी थी, उसकी विधिवत् सूचना रियासत के अधिकारियों को भी दे दी थी। ३१ जनवरी का दिन उनके प्रस्थान के लिए नियत किया गया था। योजना यह थी कि बम्बई से उसी दिन हवाई जहाज से चलकर स्वामी जी हैदराबाद पहुंचेगे और एक बड़े जत्थे को साथ लेकर सत्याग्रह करेगे। ठीक समय पर हवाई जहाज की कम्पनी ने यह सूचना दी कि ९ फरवरी से पहले हवाई जहाज में हैदराबाद के लिए स्थान मिलना असम्भव है। उस समय समझा गया था कि कम्पनी की इस सूचना की तह में किसी राजकीय शक्ति का हाथ था। निजाम की सोने की मोहरों से भरी हुई थैलियों की कथा जगत् प्रसिद्ध थी। ऐसी दशा में लोगों की कल्पना सर्वथा निर्मूल भी नही कही जा सकती। हवाई जहाज के न मिलने से शुभ कार्य में थोड़ा सा विघ्न तो पड़ा परन्तु वह सत्याग्रही ही क्या, जो बाधाओं के कारण कर्त्तव्य पालन से रुक जाय। स्वामी जी ३० जनवरी को रात की गाड़ी से हैदराबाद के लिए चल दिये। निजाम सरकार बहुत सावधान थी। उसने चारो ओर नाकाबन्दी कर रखी थी। निजाम सरकार की सीमा के समीप शोलापुर का रेलवे स्टेशन है। उस पर रियासत के बीसों खुफिया सिपाही चक्कर काट रहे थे। ट्रेन के एक-एक डब्बे की तलाशी ली जाती थी। गुलबर्गा या बाड़ी के स्टेशन पर सबके नाम नोट किए जाते थे और जिस पर सन्देह होता था, उसे रोक लिया जाता था।

इतना बडा प्रबन्ध होते हुए भी स्वामी जी हैदराबाद पहुंच गये। यह देखकर रियासत के अधिकारी चकित और स्तब्ध रह गये। पुलिस स्वामी जी की प्रतीक्षा हवाई अड्डे पर करती रही और स्वामी जी रेल द्वारा हैदराबाद स्टेशन पर पहुंच कर चुपचाप वेटिंग रूम में चले गये। जब स्टेशन से भीड़ हट गयी तो स्वामी जी एक तांगे पर बैठकर समाज मन्दिर की ओर चल पडे। वहा पहुचने पर एक आकस्मिक बाधा आ गयी। आर्यजनो को भी यह आशा नहीं थी कि उनके सर्वा कारी पुलिस की दृष्टि से बच कर अकस्मात् समाज मन्दिर में आ पहुंचेंगे। उस समय आर्यसमाज सुल्तान बाजार का ताला बन्द था। फलतः स्वामी जी को लगभग आध घंटे तक सड़क पर ही टहलना पड़ा। वहां एक हिन्दू सी० आई० डी० की दृष्टि उन पर पड गयी। उसने स्वामी जी के पास आकर पूछा --

"आप कौन हैं ?"

स्वामी जी ने उत्तर में पूछा--"पहले तुम बताओ कि तुम कौन हो ?"

"मै पुलिस का आदमी हूं। क्या करूं, मेरी ड्यूटी बहुत बुरी है।"

सिपाही के यह कहने पर स्वामी जी ने उसे आश्वासन देते हुए उत्तर दिया--

"तुम घबराओ मत, अपने कर्त्तव्य का पालन करो।"

इस पर सिपाही ने प्रश्न किया कि क्या आप मेरे साथ पुलिस चौकी तक चल सकेंगे ? स्वामी जी ने उत्तर दिया, "मै क्यों चलूं, तुम मेरा विजिटिंग कार्ड ले जाओ और अपने अधिकारियो को मेरा परिचय दे दो।" सिपाही ने जाकर पुलिस के स्टेशन मे खबर दी। वहां से तुरन्त एक मोटर सुलतान बाजार पहुंची, जो स्वामी जी को पुलिस सुपरिन्टेंडेंट

के कार्यालय में ले गयी। वहां शिष्टाचार प्रदर्शन के अनन्तर अधिकारी स्वामी जी से सत्याग्रह के कारणों आदि के सम्बन्ध में बातचीत करते रहे। उसी अवसर में एक आज्ञा-पत्र तैयार होकर आ गया, जिसमें स्वामी जी को रियासत से बाहर चले जाने का आदेश दिया गया था। स्वामी जी ने आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर तो कर दिये परन्तु उसके मानने से इन्कार कर दिया। इस पर स्वामी जी को मोटर में बिठाकर पुलिस का एक अधिकारी शहर से ५१ मील दूर ले गया और वहां उन्हें कामकोल के डाक बंगले में पहुंचा दिया।

रात को स्वामी जी डाक बंगले में सोये। दूसरे दिन आपको खानापुर पहुंचा दिया गया। यह स्थान ब्रिटिश भारत की सीमा पर है। वहां एक लौरी पहले से तैयार थी। लारी ने स्वामी जी को १ फरवरी १९३९ के दिन के दो बजे शोलापुर के सत्याग्रह शिविर में पहुंचा दिया।

रियासत के इतने लम्बे-चौड़े आयोजन के होते हुए भी ३१ जनवरी की तारीख व्यर्थ न गयी। अजमेर के स्वामी भास्करानन्द जी नियत समय पर हैदराबाद में पहुंच गये और चौक में सत्याग्रह कर दिया। तबसे इस चौक का नाम सत्याग्रह चौक रख दिया गया है।

सत्याग्रह कैम्प में पहुंच कर स्वामी जी ने फिर रियासत में जाकर सत्याग्रह की तैयारी आरम्भ कर दी। इस बार गुलबर्गा में सत्याग्रह करने का निश्चय किया गया। सत्याग्रह संग्राम के सिद्धान्तों के अनुसार आपने गुलबर्गा के सूबेदार को तार द्वारा यह सूचना दे दी कि, "मैं गुलबर्गा में सत्याग्रह करूंगा।" शोलापुर की जनता ने बड़ी धूमधाम के साथ स्वामी जी को गुलबर्गा स्टेशन से विदा किया। जब रेलगाड़ी गुलबर्गा स्टेशन पर पहुंची तो प्रेस के अधिकारी सिपाहियों के दस्ते के साथ वहां पहले से ही विद्यमान थे। अधिकारी ने स्वामी जी को रियासत से बाहर चले जाने की आज्ञा दी। स्वामी जी ने तथा उनके अन्य साथियो ने इन्कार कर दिया। तब सब सत्याग्रहियों को लारी द्वारा हवालात मे पहुंचा दिया गया। ५ फरवरी को मजिस्ट्रेट की अदालत में अभियोग चलाया गया। स्वामी जी को तथा अन्य सत्याग्रहियों को एक-एक वर्ष के कड़े कारागार का दण्ड दिया गया।

जो सत्याग्रही ३१ तारीख को हैदराबाद में सत्याग्रह का बिगुल बजाने वाले थे, उनमें सबसे बड़ा जत्था गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों का था। योजना यह थी कि गुरुकुल के १५ ब्रह्मचारी उस दिन श्री महात्मा नारायण स्वामी जी के साथ सत्याग्रह प्रारम्भ करेंगे। गुरुकुल से विदा होने के समय इस जत्थे का सब कुलवासियों की ओर से हार्दिक अभिनन्दन किया गया। गुरुजनों ने उन्हें आशीर्वाद दिए। ब्रह्मचारी क्षितीश कुमार के नेतृत्व में १५ ब्रह्मचारी हरिद्वार से दिल्ली और दिल्ली से वर्धा होते हुए सिकन्दराबाद के लिए रवाना हुए। उनका लक्ष्य किसी प्रकार हैदराबाद पहुंच कर स्वामी जी से मिलने का था। उन्होने वर्धा में ही अपने वेश में परिवर्तन कर लिया था। काजीपेठ में गाड़ी बदलती थी। पुलिस वाले सावधान थे। उन्होंने ब्रह्मचारियों के नाम-धाम पूछे और टिकिट ले लिये। सिकन्दराबाद पहुंचने पर, न जाने क्या सोचकर, उन्हें

टिकिट वापस दे दिये गये । सिकन्दराबाद मे रेल से उतर कर वे एक धर्मशाला मे ठहरे । वहां से चलकर हैदराबाद पहुंचने का प्रश्न बड़ा टेडा था । सब ब्रह्मचारी दो-दो, तीन-तीन की टोलियों मे विभक्त होकर सैर के लिए निकल पड़े और अलग-अलग रास्तों से सुलतान बाजार मे पहुंच गये। स्वामी जी को पुलिस शोलापुर ले गयी थी, इस कारण ब्रह्मचारियों को स्वयं ही योजना कार्यान्वित करनी पड़ी । सत्याग्रह चोक मे पहुंच कर उन्होंने 'वैदिक धर्म की जय' के नारो के साथ ओ३म् का झण्डा फहरा दिया। एक बार तो पुलिस इस आकस्मिक जयघोष से आश्चर्यित और स्तब्ध रह गयी। उसकी समझ मे न आया कि ये नवयुवक पुलिस और सेना के घेरों को व्यर्थ बनाकर बाजार मे कहां से टपक पड़े। पहले दिन पांच ने सत्याग्रह किया । दूसरे दिन ९ ने। ८ फरवरी को उनकी अदालत में पेशी हुई, जहां ६-६ मास की कड़ी सजा दी गई। ब्र० चन्द्रगुप्त सबके साथ सत्याग्रह करने मे असमर्थ रहा था। उसने पीछे से अकेले ही सत्याग्रह किया। निजामी न्याय के अनुसार उसे २ साल कारावास का दंड मिला। देखने वालों का कहना है कि इन सत्याग्रहों ने नगर की जनता मे नई जागृति सी उत्पन्न कर दी थी।

इन्हीं प्रारम्भिक दिनों मे अन्य भी बहुत से आर्यवीरों ने सत्याग्रह किया। उनमें से पटना के श्री राजेन्द्रप्रसाद, अजमेर के स्वामी भास्करानन्द, ओम्प्रकाश और मोहन लाल, एटा के स्वामी भोलानन्द, कानपुर के श्री रामचन्द्र, ज्वालापुर के स्वामी जीवन-मुनि, बदायूं के स्वामी विज्ञानानन्द, पजाब के श्री हरिदत्त विमल तथा बम्बई के सर्वश्री शिवमूर्ति, रामदास, कन्हैयालाल, रामजी तथा रामलाल के नाम रिपोर्ट में अंकित है।

गुरुकुल कांगड़ी के जिन ब्रह्मचारियों ने पहले जत्थे में भाग लेकर सत्याग्रह का मंगलाचरण किया, उनके नाम निम्नलिखित है :—

१. धीरेन्द्र कुमार (चतुर्थ वर्ष)
२. विद्यासागर (तृतीय वर्ष)
३. देवराज (तृतीय वर्ष)
४. सत्येन्द्र (तृतीय वर्ष)
५. ओम्प्रकाश (तृतीय वर्ष)
६. इन्द्रसेन (तृतीय वर्ष)
७. विजय कुमार (द्वितीय वर्ष)
८. सतीशकुमार (द्वितीय वर्ष)
९ उदयवीर (द्वितीय वर्ष)
१०. मनोहर (द्वितीय वर्ष)
११ रामनाथ (द्वितीय वर्ष)
१२. विद्यारत्न (द्वितीय वर्ष)
१३ चन्द्रगुप्त (प्रथम वर्ष)
१४. विश्वमित्र (प्रथम वर्ष)

इनमें से निजाम सरकार के अत्याचारपूर्ण व्यवहार के कारण ब्र० रामनाथ रोगी हो गया। उसने जेल में ही प्राणो का त्याग कर दिया। शेष १३ ब्रह्मचारी ६ मास तक जेल में रहकर ८ अगस्त को समझौता हो जाने पर जेल से मुक्त हुए।

छठा अध्याय

हैदराबाद-सत्याग्रह (२)

दूसरे सर्वाधिकारी श्री कुंवर चांदकरण शारदा

सत्याग्रह के लिए प्रस्थान करने से पूर्व प्रथम सर्वाधिकारी श्री नारायण स्वामी जी ने घोषणा की थी कि उनके पश्चात् अजमेर के कुंवर चादकरण शारदा सत्याग्रह के सर्वाधिकारी बनाए जाएं। तदनुसार स्वामी जी के जेल पहुंच जाने पर चांदकरण जी सत्याग्रह सैन्य के दूसरे प्रधान सेनापति घोषित किये गये।

कुवर चादकरण शारदा

चांदकरण जी राजस्थान के यशस्वी शारदा परिवार के उज्ज्वल रत्न हैं। आपके पिता श्री रामविलास शारदा महर्षि दयानन्द के परम भक्त अनुयायियों मे से थे। आपके चचा श्री हरविलास शारदा विद्वान् लेखक, सार्वजनिक कार्यकर्ता और भारतीय विधान सभा के सदस्य की हैसियत से देश भर में विख्यात थे। कुवर चांदकरण शारदा युवावस्था से ही तन-मन-धन से राजस्थान और उसके बाहर के सार्वजनिक कामों में पड गये थे। १९१९-२० मे राजनीतिक आन्दोलन को राजस्थान मे जागृत करने का बहुत-सा श्रेय कुंवर चादकरण जी और पं० अर्जुनलाल जी सेठी को था। आप उस प्रसंग मे जेल भी गये। आर्यसमाज तो आपका जीवन ही था। आर्य कुमार सभा, आर्य स्वराज्य सभा, शुद्धि सभा आदि सब संस्थाओं में शारदा जी आगे बढ़कर सक्रिय सहयोग देते रहे। जब श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के नेतृत्व मे धौलपुर मे आर्य सत्याग्रह चला, तब आप तुरन्त उसमें सम्मिलित हो गये। अन्यत्र भी जहा कही कार्य का क्षेत्र गरम होता वहां आप अगली पंक्ति में दिखायी देते रहे। आपके इस सक्रिय जीवन का ही यह प्रभाव था कि आपको जनता ने राजस्थान-केसरी की उपाधि प्रदान कर दी थी।

अजमेर से विदा होकर शारदा जी दिल्ली पहुंचे। अजमेर मे जैसा उल्लासपूर्ण विदाई समारोह हुआ था, दिल्ली मे वैसा ही स्वागत समारोह हुआ। दिल्ली से चलकर ८ फरवरी को आप बम्बई पहुंचे। वहां चौपाटी के विशाल मैदान मे आपके स्वागत के उपलक्ष्य में एक विराट् सभा का आयोजन किया गया। सहस्रों नर-नारी उपस्थित थे। सभा में थैली तथा मानपत्र भेंट किये गये। बम्बई से विदा होकर आप ९ फरवरी को प्रातःकाल शोलापुर पहुंचे। शोलापुर निवासियों की एक बड़ी भीड़ ने स्टेशन पर आपका

स्वागत किया। उसी दिन आर्यसमाज के प्रसिद्ध व्याख्याता पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी भी शोलापुर पहुंच गये। कुंवर चांदकरण जी ने सत्याग्रह की व्यवस्था का कार्य संभाल लिया और श्री मीरपुरी जी प्रचार के कार्य में लग गये। देश के भिन्न-भिन्न केन्द्रो से आये हुए सत्याग्रहियो की टुकड़िया निरन्तर सत्याग्रह के लिए रियासत में भेजी जाती रहीं। मार्च की ५ तारीख को प्रधान सेनापति अपने जत्थे के साथ हैदराबाद के लिए प्रस्थान करने वाले थे। उस समय तक रियासत की जेल में पहुंचे हुए सत्याग्रहियो की संख्या १५०० तक पहुंच चुकी थी।

५ मार्च के दिन शारदा जी ७५ सत्याग्रहियों के साथ गुलबर्गा के लिए विदा हुए। अहमदाबाद, अजमेर और निजाम राज्य के सत्याग्रहियों के अतिरिक्त इनमें गुरुकुल वृन्दावन तथा महाविद्यालय ज्वालापुर के ब्रह्मचारी भी सम्मिलित थे। गुरुकुल वृन्दावन के जत्थे के नायक स्वामी विवेकानन्द जी थे। सब सत्याग्रही रियासत में पहुंचने पर गिरफ्तार कर लिये गये। उन सबको बिना आज्ञा जलूस निकालने और नारे लगाने के अपराध मे एक-एक मास की सादी कैद और पब्लिक-सेफ्टी एक्ट के अनुसार एक-एक साल कठोर कैद का दण्ड दिया गया। उन्हीं दिनों स्वामी परमानन्द जी ने भी ६२ सत्याग्रहियों के जत्थे के साथ सत्याग्रह किया। वे भी उसी प्रकार दण्डित हुए।

तीसरे सर्वाधिकारी श्री खुशहालचन्द 'खुरसन्द'

श्री शारदा जी के जेल जाने पर 'मिलाप' के संपादक श्री खुशहालचन्द जी 'खुरसन्द' (श्री आनन्द स्वामी जी) सत्याग्रह के सर्वाधिकारी नियत किये गये। खुरसन्द जी का सारा जीवन आर्यसमाज के अर्पण ही रहा था। आपने १९०७ से आर्यसमाज की सेवा प्रारम्भ की। वर्षों तक आर्य प्रादेशिक सभा के मुख पत्र 'आर्य गजट' के सम्पादक रहे और फिर प्रादेशिक सभा के मंत्री पद पर निर्वाचित होते रहे। मलाबार में हिन्दुओं पर संकट आने पर और क्वेटा में भूकम्प के अवसर पर आपने प्रशंसनीय सेवा कार्य किया। गढवाल के अकाल, कोहाट तथा डेरा इस्माइल खां के दंगों के अवसर पर भी घटनास्थल पर पहुंच कर आपने पीड़ितों को बहुत सहारा दिया।

श्री खुशहालचन्द 'खुरसन्द'

२० फरवरी १९३९ को श्री खुशहालचन्द जी सत्याग्रह का नेतृत्व करने के लिए लाहौर से रवाना हुए। प्रान्त के हजारों नर-नारी विदाई देने के लिए स्टेशन पर उपस्थित थे। अगले दिन दिल्ली पहुंचने पर भी आपका भव्य स्वागत किया गया। जब आप दिल्ली से शोलापुर के लिए यात्रा कर रहे थे तो शायद ही कोई ऐसा बड़ा स्टेशन हो, जहां जनता ने आपका अभिनन्दन न किया हो। बम्बई पहुंचने पर आपको एक विराट् सभा में बधाई दी गयी। २५ फरवरी को आप शोलापुर पहुंच गये। वहां

ब्राह्म महाविद्यालय लाहौर तथा महाविद्यालय ज्वालापुर आदि के अनेक सत्याग्रही सत्याग्रह करने के लिए आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। स्टेशन पर हजारों की सख्या में नर-नारी उपस्थित थे। स्टेशन से मंगलवार पेठ सत्याग्रह शिविर तक आपका और अन्य सत्याग्रहियों का जलूस निकाला गया। जलूस को शिविर तक पहुंचने में ढाई घंटे लगे। रात के नो बजे चावीगली में विराट् सभा हुई। उसके सभापति उस समय के सर्वाधिकारी श्री शारदा जी थे। सभा मे खुरसन्द जी का बहुत प्रभावशाली व्याख्यान हुआ।

आप २० दिवस तक शिविर मे ठहरे। वहां आप सत्याग्रह की प्रगति को प्रबल बनाने में लगे रहे। उसके पश्चात् १६ मार्च को आप महाराष्ट्र के दौरे पर निकल गये। जाने से पूर्व सत्याग्रह के संचालन के लिए आपने एक युद्ध-समिति नियुक्त कर दी थी। उसके अध्यक्ष श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी और सदस्य प्रो० शिवदयालु जी एम० ए०, लाला देवीचन्द जी एम० ए०, पं० ज्ञानचन्द जी बी० ए० और लाला बृजलाल जी नियत हुए।

१५ मार्च को द्वितीय सर्वाधिकारी कुंवर चांदकरण शारदा दण्डित होकर जेल चले गये। १६ मार्च को सर्वाधिकारी का पद ग्रहण करके खुरसन्द जी महाराष्ट्र के दौरे पर चल दिये। पहले अहमदनगर जाकर सत्याग्रह का सन्देश सुनाया, फिर येवला आदि स्थानो पर प्रचार और धन-संग्रह का कार्य करते हुए २२ मार्च को १५४ सत्याग्रहियों के साथ गुलबर्गा के स्टेशन पर जा उतरे। पुलिस पहले से तैयार थी, उसने आगे बढकर सिकन्दराबाद जिले के मजिस्ट्रेट का आज्ञा पत्र दिखाया, जिसमें रियासत से बाहर चले जाने का आदेश था। जत्थे के सब सत्याग्रहियों ने आदेश मानने से इन्कार कर दिया। तब पुलिस उन सबको स्टेट की लारियों में बिठाकर जेल ले गयी। इस जत्थे के पहुचने पर गुलबर्गा की जेल पूर्ण रूप से भर गयी थी। कोठरियां खाली न रहने के कारण सत्याग्रहियों को बरामदो और अस्थायी कैम्पों में ठहरना पड़ा। २७ मार्च को इन सब सत्याग्रहियों पर अदालत में अभियोग चलाया गया और उसी दिन सजा भी सुना दी गयी।

चौथे सर्वाधिकारी राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री

चौथे सर्वाधिकारी पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री (स्वामी ध्रुवानन्द जी) के निर्वाचन ने सत्याग्रह में मानों नये प्राण डाल दिये। शास्त्री जी ने आर्यसमाज के प्रसिद्ध तपस्वी स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के चरणों में बैठकर धर्म की दीक्षा प्राप्त की थी। आपका सम्पूर्ण जीवन अध्ययन और प्रचार में ही व्यतीत हुआ था। शुद्धि का आन्दोलन प्रारम्भ होने पर आप पूरे जोर से उसमे पड़ गये। आर्यसमाज के प्रचार में ही आपका जीवन व्यतीत हुआ। बिहार और राजस्थान आपके प्रमुख कार्यक्षेत्र थे। राजस्थान के कई अधिकार-सम्पन्न व्यक्तियों पर प्रभाव होने के कारण जनता आपको राजगुरु की उपाधि से विशेषित करती थी।

सर्वाधिकारी नियुक्त होने पर आप संयुक्त प्रान्त में प्रचार और आन्दोलन के कार्य के लिए निकल पड़े। आठ-दस दिनो में ही पान्त में उत्साह का वातावरण

श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री

उत्पन्न कर दिया। अभी आपका देश के अन्य भागों में व्याख्यानो द्वारा जागृति उत्पन्न करने का विचार था कि तीसरे सर्वाधिकारी श्री खुरसन्द जी के गिरफ्तार होने का समाचार मिल गया। ३० मार्च को आपका शोलापुर पहुंचना आवश्यक था। उससे पूर्व ही आप १०० के लगभग सैनिकों के साथ शोलापुर के लिए रवाना हो गये। जाने से पहले आप सत्याग्रह निधि के लिए २० हजार रुपये एकत्र करके शोलापुर भेज चुके थे। मेरठ से दिल्ली होते हुए और मार्ग में प्रमुख स्टेशनों पर अभिनन्दन और मानपत्र लेते हुए आप ३० मार्च को शोलापुर पहुंचे। वहां आपके जत्थे का शानदार स्वागत और अभिनन्दन किया गया। कुछ दिन शोलापुर ठहर कर आपने पुनः अपनी प्रचार-यात्रा आरम्भ कर दी और अहमदाबाद, आनन्द, सूरत, पूना आदि अनेक स्थानों पर कई-कई व्याख्यान देते हुए सत्याग्रह के आन्दोलन को प्रगति दी। २० अप्रैल को आप शोलापुर लौट आये और २२ अप्रैल के निश्चित दिन ५३१ सत्याग्रही सैनिकों के साथ राजगुरु स्पेशल द्वारा सत्याग्रह करने के लिए गुलबर्गा की ओर चल दिये। जाने से पूर्व आपने बिजनौर के श्री शूरवीर सिंह जी को सत्याग्रह-युद्ध-समिति का सदस्य नियुक्त कर दिया। उसी दिन लगभग ५०० अन्य सत्याग्रही सैनिकों ने भी बैजवाड़ा, अहमदनगर आदि केन्द्रों से सत्याग्रह के निमित्त हैदराबाद राज्य में प्रवेश किया। यह पहला ही अवसर था कि एक ही सेनानायक की अध्यक्षता में एक ही दिन में इतने अधिक सैनिकों ने सत्याग्रह किया। इस सम्पूर्ण आयोजन में और विशेषत: राजगुरु-स्पेशल की व्यवस्था करने में अजमेर के श्रीमान् पं० जियालाल जी ने विशेष उद्योग किया था। यह स्पेशल अजमेर से चलकर ब्यावर, अहमदाबाद, बड़ौदा, और बम्बई होती हुई लगभग ३०० सत्याग्रहियों को लेकर शोलापुर पहुंची थी। शास्त्री जी के साथ. उनके आदेशानुसार श्री पं० हरिशंकर शास्त्री भी बम्बई होकर शोलापुर पहुंचे। बम्बई की आर्य-हिन्दू जनता ने शास्त्री जी का बड़े उत्साह से स्टेशन पर स्वागत किया। उन्हें एक बड़े जलूस में समाज-मन्दिर ले गये। शाम को लगभग १ लाख की भीड़ में शास्त्री जी का बड़ा प्रभावशाली भाषण हुआ और श्री हरिशंकर जी ने विशेष रूप से लिखी अपनी ओजस्विनी कविता पढ़कर सुनायी जो बहुत पसन्द की गयी। दूसरे दिन शास्त्री जी और शर्मा जी साथ-साथ पूना होते हुए शोलापुर पहुंचे। हरिशंकर जी की इच्छा सत्याग्रह करने की थी परन्तु उन्हें श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज और राजगुरु के आदेश से "दैनिक दिग्विजय" के सम्पादन मे जुटना पड़ा। यह दैनिक सत्याग्रह के लिए ही प्रकाशित किया गया था। दस सहस्र से अधिक नित्य छपता था। शर्मा जी उसका सम्पादन बड़ी योग्यता और तन्मयता से निरन्तर करते रहे।

२२ अप्रैल के दिन यह सत्याग्रह-स्पेशल दिन के दो बजे शोलापुर पहुंची।

स्टेशन के बाहर जनता ने गगनभेदी जय-जयकारों के साथ सेनापति और सैनिकों का स्वागत किया।

स्टेशन पर उस समय नगर के बहुत से प्रतिष्ठित नागरिकों का एक शिष्टमंडल उपस्थित था। वह बहुत आदरपूर्वक शास्त्री जी से मिला और उन्हें अकेले वेटिंग रूम में ले गया। वहां मंडल ने शास्त्री जी से निवेदन किया कि वे सत्याग्रह आन्दोलन को बन्द कर दें। शास्त्री जी ने उन्हें अत्यन्त दृढ़ता से उत्तर दिया कि सत्याग्रह को जारी रखना अथवा बन्द करना सार्वदेशिक सभा के हाथ में है, मैं तो इस समय सत्याग्रही सेना का सेनापति हूं। मेरा काम सत्याग्रह करना है, उसे मैं पूरा करूंगा। यह उत्तर पाकर शिष्ट-मंडल वापिस चला गया।

स्टेशन के बाहर पुलिस तैयार खड़ी थी। सत्याग्रहियों के हाथ में ओ३म् की झंडियां थीं। पुलिस के अधिकारियों ने उन्हें झंडियां पुलिस को सौंप कर रियासत से चले जाने की आज्ञा दी। आज्ञा के अस्वीकृत होने पर सब सत्याग्रही पकड़ कर जेल में डाल दिये गये। २४ अप्रैल को अभियोग आरम्भ हुआ और दो-तीन दिन के नाटक के पश्चात् सब सत्याग्रहियों को दो-दो साल के कठोर कारावास का दण्ड दे दिया गया।

पांचवें सर्वाधिकारी पं. वेदव्रत जी वानप्रस्थी

सत्याग्रह के पांचवें प्रधान सेनापति पं० वेदव्रत जी बिहार प्रान्तीय आर्य प्रति-निधि सभा के प्रधान थे। आयु के पूर्व भाग में आप कट्टर सनातनधर्मी थे। धर्मों के सापेक्षक अनुशीलन ने आपको वैदिकधर्मी बनाया। आपका जन्म संयुक्त प्रान्त में हुआ था। १९१५ में आर्य-समाज में अविचल श्रद्धा लेकर आप बिहार में प्रचार का कार्य करने लगे। १९१९ के कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण आप दो वर्ष तक जेल में रहे। कई वर्षों तक कांग्रेस कमेटी के अधिकारी रहकर आपने राष्ट्रीय कार्य-क्षेत्र में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की। बिहार के भयानक भूकम्प के अवसर पर आर्यसमाज की ओर से सेवा का जो कार्य हुआ उसमें आपने प्रमुख भाग लिया। ऐसे कर्मयोगी और प्रभाव-शाली सेनापति के चुने जाने पर विशेषतः बिहार में और सामान्य रूप से सारे देश में उत्साह की लहर का चल जाना स्वाभाविक ही था। २५ अप्रैल को सत्याग्रह की बागडोर संभालकर वानप्रस्थी जी ने पहला कार्य यह किया कि बम्बई तथा मध्य प्रदेश के अनेक नगरों में व्याख्यान देकर धन-संग्रह और स्वयं-सेवकों की भर्ती के कार्य को प्रगतिशील बनाया।

प० वेदव्रत जी वानप्रस्थी

सत्याग्रह के केन्द्र से घोषणा की गई थी कि पांचवें सर्वाधिकारी ५ मई को हैदराबाद रियासत में प्रवेश करके सत्याग्रह करेंगे। उन्हीं दिनों शोलापुर में मुस्लिम लीग

का अधिवेशन हो रहा था। यह अधिवेशन आर्य सत्याग्रह के उत्तर के रूप में किया गया। भारत के मुसलमानों को डर हो गया था कि कहीं निजाम का दिल आर्यों के सत्याग्रह के सामने प्रकम्पित न हो जाए। उस अधिवेशन में आर्यसमाज और हिन्दू जाति के विरुद्ध खूब विष-वमन किया जा रहा था। गुलबर्गा में सत्याग्रह करने से मुसलमानों से सीधा संघर्ष हो जाने की आशंका थी, इस कारण सत्याग्रह का स्थान बदल दिया गया। निश्चय किया गया कि पुसद केन्द्र से सत्याग्रह किया जाय। वानप्रस्थी जी के जत्थे में ५३४ सत्याग्रही थे। जब यह जत्था पैदल यात्रा करता हुआ पाइन गंगा के तट पर पहुंचा तब वहां हजारों ग्रामवासी एकत्र होकर ऋषि दयानन्द और वैदिक धर्म का जय-जयकार करने लगे।

जहां से सत्याग्रही नदी को पार करने वाले थे वह स्थान मध्यप्रदेश में था। नदी के दूसरे पार हैदराबाद की रियासत आरम्भ होती थी। इस पार रियासत की खुफिया पुलिस के अनेक अधिकारी देखभाल कर रहे थे और उस पार पुलिस के सैकड़ों सिपाही अफसरों के साथ सत्याग्रहियों को दबोचने के लिए तैयार खड़े थे। सत्याग्रही वीर अपने नित्य नियम के अनुसार नदी तट पर स्नान, सन्ध्या आदि के कार्य में लग गये। वहीं नाश्ता हुआ और उसके पश्चात् भजन, उपदेशादि का क्रम जारी हो गया। रियासत की पुलिस के अधिकारियों के लिए अब सिवाय मुंह देखने के कोई काम न रहा। वे भूखे-प्यासे थे, घबराकर सोचने लगे कि क्या करें? उन्हें सन्देह होने लगा कि कहीं ये आर्यसमाजी लोग हमारे साथ क्रियात्मक उपहास तो नहीं कर रहे। यहां इशारा दें और सत्याग्रह कहीं और कर डालें। जब सायंकाल तक सत्याग्रहियों ने अपनी दिनचर्या नित्य की तरह जारी रखी तब पुलिस वाले जरा ढीले पड़ गये। सन्ध्या की हलकी-हलकी अंधियारी नदी पर छा रही थी। उस समय पुलिस वाले एक दम स्तब्ध रह गये जब उन्होंने देखा कि सत्याग्रहियों का जत्था नदी में घुस गया है और उस पार पहुंचने वाला है। जब तक पुलिस भाग-दौड़ करके उनका रास्ता रोकने का यत्न करती तब तक सत्याग्रहियों ने हैदराबाद की सीमा में प्रवेश करके वैदिक धर्म का जयकारा आकाश में गुँजा दिया। तब तक पुलिस भी सावधान हो चुकी थी, सब सत्याग्रही घेरे में ले लिये गये। घेरे में आये हुए सैनिकों में वानप्रस्थी जी के अतिरिक्त जालन्धर के प्रो० ज्ञानचन्द जी एम० ए०, लायलपुर के पं० सोमदेव जी, जड़ावाला के श्री शिवनाथ जी, रोहतक के श्री सी० एच० नौनिद सिंह जी, हिसार के श्री विद्याचन्द्र जी तथा डा० इलाराम जी आदि महानुभाव भी उपस्थित थे।

इस जत्थे की एक यह विशेषता थी कि शाहपुरा रियासत के एक मुसलमान सज्जन श्री सय्यद फैज अली और पांच सिख सज्जनों ने भी सत्याग्रह में भाग लिया।

नदी तट से पुलिस सत्याग्रहियों को हरगांव ले गई। वहां मकान का कोई प्रबन्ध नहीं था। इस कारण पुलिस के अधिकारी यह आज्ञा देकर कर्त्तव्य से मुक्त हो गये कि सब लोग पेड़ों के नीचे आराम करें। भोजन के लिए कुछ भुने हुए चने और पानी पर्याप्त समझा गया।

दूसरे दिन जिला मजिस्ट्रेट की अदालत ने हरगांव में ही अभियोग सुनाकर

पं० वेदव्रत जी को दो वर्ष और शेष सब सत्याग्रहियों को डेढ़-डेढ़ वर्ष के कठोर कारागार का दण्ड सुना दिया ।

छठे सर्वाधिकारी—महाशय कृष्ण जी

पांचवें सर्वाधिकारी पं० वेदव्रत जी के जेल जाने से पूर्व ही छठे सर्वाधिकारी चुने जा चुके थे । महाशय जी उन आर्य नेताओं में से हैं, जो छात्रावस्था से ही आर्यसमाज के लिए काम करते रहे हैं । आपने शिक्षा समाप्त करके जब बाह्य जीवन में पहला कदम रखा तबसे आज तक आपको एक आर्य-समाज की ही धुन रही है। देश में अन्य भी अनेक आन्दोलन खड़े हुए, एक पत्रकार और सार्वजनिक कार्यकर्ता की हैसियत से आपका उनसे भी सम्पर्क रहा । आप १९१९ की राजनीतिक आंधी की चपेट में भी आये थे । मार्शल-ला के दिनों में कुछ समय तक लाहौर के किले में बन्द रहना पड़ा था। हिन्दू महासभा और जनसंघ आदि के आन्दोलनों से भी आपका थोड़ा बहुत सम्बन्ध रहा । परन्तु वह आंशिक था । उसने आपके दिमाग को छुआ, हृदय को नही । हृदय आपका आर्यसमाज में ही रहा । १९०७–८ मे कुछ मित्रों के साथ मिलकर आपने साप्ताहिक 'प्रकाश' का प्रकाशन आरम्भ किया था । इसका एकमात्र उद्देश्य आर्यसमाज की सेवा करना था । १९१९ से आप दैनिक 'प्रताप' निकाल रहे हैं । यद्यपि वह मुख्य रूप से राजनीतिक पत्र है तो भी आर्यसमाज का रंग उसकी एक-एक पंक्ति पर चढ़ा रहता है । गत ४० वर्षो से पंजाब के आर्यसामाजिक जीवन में महाशय जी का प्रभूत भाग रहा है । ऐसे प्रभावशाली नेता के प्रधान सेनापति चुने जाने का तत्काल प्रभाव यह हुआ कि उत्तरीय भारत में सत्याग्रह का आन्दोलन बहुत तीव्र हो गया । आपके 'प्रताप' में प्रकाशित अग्रलेखों ने उत्साह की जो अग्नि प्रज्वलित की, उसे आपके आवेशपूर्ण प्रभावशाली व्याख्यानो ने वायु बन कर प्रचण्ड कर दिया । शोलापुर पहुंचने से पहले महाशय जी ने पंजाब से १५००० रुपये की राशि एकत्र कर दी थी । आपने यह संकल्प भी प्रकट किया था कि "मैं अपने साथ कम से कम एक हजार सत्याग्रहियों के जत्थे को लेकर जेल मे जाऊंगा ।"
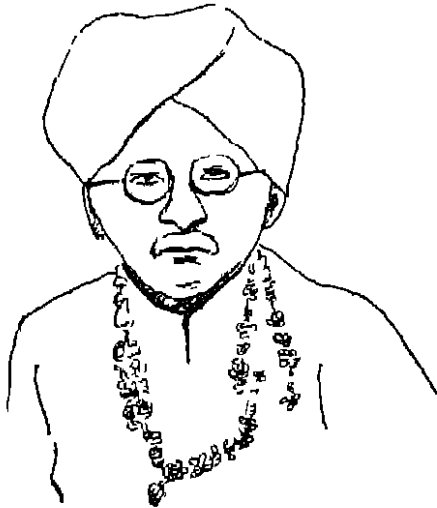
महाशय कृष्ण जी

उत्तर भारत का दौरा समाप्त करके आप २७ मई १९३९ के दिन लाहौर से दक्षिण के लिए प्रस्थित हुए । मार्ग मे दिल्ली, मथुरा, झासी, ग्वालियर आदि स्टेशनों पर अभिनन्दन के लिए एकत्र हुई जनता से मानपत्र और थैलियो की भेट लेते हुए आप दो जून को बम्बई पहुंचे । रास्ते में मनमाड के स्टेशन पर आपका आर्यसमाज, हिन्दू महासभा, सिखो तथा जैनियों की ओर से विराट् स्वागत किया गया । उस समय ४०० सत्याग्रही आपके साथ थे । बम्बई में स्वागत, सम्मान और भाषण आदि की प्रक्रिया

पूरी करके आप जत्थे के साथ ४ जून को फिर मनमाड लौट आये। वहां से आपका जत्था सत्याग्रह करने के लिए औरंगाबाद की ओर जाने वाला था। मनमाड के हजारों नर-नारियो ने एक विशाल सभा मे जत्थे को बधाई और विदाई दी और पुष्पांजलियों से अलंकृत किया।

५ जून को एक स्पेशल ट्रेन, जिसका नाम कृष्ण-स्पेशल रखा गया, ७८२ सत्याग्रही आर्यवीरों को लेकर दिन के ३ बजे औरंगाबाद के लिए प्रस्थित हुई। इन सैनिकों के अतिरिक्त पुसद सत्याग्रह शिविर से १५०, अहमदनगर केन्द्र से ६०, बेजवाड़े से ५०, चान्दा से ६१, हैदराबाद से २५ और शोलापुर मार्ग से २५ अन्य सैनिकों ने भी इसी दिन सत्याग्रह के लिए प्रयाण किया। ज्योंही स्पेशल औरंगाबाद पहुंची, वहां के सूबेदार, ताल्लुकेदार, पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा नाजिम आदि उच्च सरकारी अधिकारियों ने महाशय जी से रिवाजी तौर पर सत्याग्रह बन्द करने के लिए कहा। उत्तर में महाशय जी ने आर्यसमाज की मागें उपस्थित करते हुए अधिकारियो को सार्वदेशिक सभा से समझौता करने की सम्मति दी। महाशय जी ने यह भी घोषणा की कि हमारा सत्याग्रह निजाम या इस्लाम के विरुद्ध नहीं है। हमारा उद्देश्य केवल धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना है। महाशय जी की इस घोषणा को "बिना आज्ञा सभा न की जाये" इस हुक्म का भंग करार दिया गया और आदेश दिया गया कि सभा एकदम विसर्जित कर दी जाय। सत्याग्रहियो ने उस आदेश का पालन करने से इन्कार किया। इस प्रकार सत्याग्रह की प्रक्रिया पूरी हो गई और उन सबको लारी में बिठाकर पुलिस की चौकियो में पहुंचा दिया गया। वहा से न्याय का नाटक पूरा करके महाशय जी और उनके सब साथी जेलो मे डाल दिये गये।

सातवें सर्वाधिकारो श्री ज्ञानेन्द्र जी सिद्धान्त-भूषण

पं० ज्ञानेन्द्र जी का जन्म गुजरात प्रान्त मे हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण आप को बड़ौदा के फतहसिह राव अनाथालय में प्रविष्ट कराया गया। उस अनाथालय मे एक ईसाई शिक्षक थे। वह बालकों को ईसाई धर्म की शिक्षा दिया करते थे। आपका उनसे मतभेद हो गया, इस कारण अनाथालय को छोड़कर ज्ञानेन्द्र जी लाहौर चले गये और दयानन्द उपदेशक विद्यालय मे प्रविष्ट हो गये। वहा की पाठविधि समाप्त करके आपने सिद्धान्त-भूषण की उपाधि प्राप्त की। उसके पश्चात् आप प्रचार कार्य में लग गये। गुजरात-काठियावाड़ के भरौली नामक स्थान मे ज्ञान-मन्दिर की स्थापना करके आप गुजरात में तथा अन्य प्रान्तों में लेखों तथा व्याख्यानो द्वारा प्रचार करने लगे।

श्री ज्ञानेन्द्र जी

महाशय कृष्ण जी के पश्चात् गुजरात प्रान्त के प्रतिनिधि के तौर पर आप सातवें सर्वाधिकारी निर्वाचित हुए।

प्रधान सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित होने पर सिद्धान्तभूषण जी ने सत्याग्रह की तैयारी आरम्भ कर दी। आप २१ जून की रात को १७० सत्याग्रहियों के साथ मद्रास मेल द्वारा बम्बई से गुलबर्गा के लिए प्रस्थित हुए। रास्ते मे शोलापुर का स्टेशन पड़ता था, वहा जत्थे का धूमधाम से स्वागत हुआ। आपके जत्थे मे ज्वालापुर महाविद्यालय, बड़ौदा, कोटा, आनन्द, गंगानगर, मिर्जापुर, हिसार आदि स्थानों के सत्याग्रही थे। गुलबर्गा पहुंचने पर पं० ज्ञानेन्द्र जी जत्थे के साथ गिरफ्तार कर लिये गये। २४ जून को अदालत का नाटक करके सबको पब्लिक सेफ्टी बिल की धारा २६ के अनुसार ९-९ मास की और आसफिया ताजीरात (निजाम विशेष राजनियम) के अनुसार ९-९ मास के सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया गया।

आठवे सर्वाधिकारी हैदराबाद के पं० विनायकराव विद्यालंकार चुने गये। वह वस्तुतः हैदराबाद के सम्पूर्ण आर्य सत्याग्रह के केन्द्र स्वरूप थे। उनके सेनापतित्व के समय मे जो कुछ हुआ, उसका वृत्तान्त सुनाने से पूर्व कुछ ऐसी घटनाओं का विवरण देना आवश्यक है, जिन्हें हम आर्य सत्याग्रह की प्रतिक्रिया कह सकते है। उस विवरण के बिना सत्याग्रह के अन्तिम पर्व को समझना कठिन है। अगले अध्याय मे हम पर्दे के पीछे होने वाली उन महत्वपूर्ण घटनाओ की कहानी सुनायेंगे।

सातवां अध्याय

निजाम सरकार की कलाबाजियां

निजाम सरकार की नीति प्रारम्भ से ही छल से पूर्ण रही। उसकी नीति यह थी कि बाहर के संसार को रियासत की पक्षपातहीन साम्प्रदायिक नीति का विश्वास दिलाया जाय और रियासत के अन्दर हिन्दुओं को दबाकर मुसलमानों के प्रभाव को बढ़ाया जाय। रियासत के ८५ प्रतिशत निवासी हिन्दू थे। कहीं अंग्रेजी सरकार या देश के अन्य हिन्दू यह न समझें कि निजाम का शासन पक्षपात से पूर्ण है, उसकी सरकार दम्भ भरे वक्तव्यों द्वारा यह प्रचार करती रहती थी कि निजाम हिन्दू और मुसलमानों दोनों को एक दृष्टि से देखते हैं और कि उन्होंने अपने राज्य मे सब धर्मों को प्रचार की एक-सी स्वतन्त्रता दे रखी है। रियासत के अन्दर जो दशा थी वह हम देख ही चुके हैं।

आर्यसमाज की भारत को सबसे बड़ी देन यह है कि उसने देशवासियों के हृदयों में जागृति उत्पन्न कर दी है। जागृत और सुप्त में यही भेद होता है कि जहां जागृत अपने साथ होने वाले अच्छे या बुरे व्यवहार को समझ सकता है, वहा सुप्त मनुष्य को अपने साथ होने वाले व्यवहार का कुछ पता नही लगता। आर्यसमाज के प्रचार ने हैदराबाद के हिन्दुओं में भी जागृति उत्पन्न कर दी, जिससे वे निजाम सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति से असंतुष्ट हो गये। उस असंतोष से रियासती प्रजा में राजनीतिक जागृति पैदा होने मे भी बहुत सहायता मिली। तब निजाम की सरकार ने आर्यसमाज की प्रगति को रोकने का प्रयत्न जारी किया। सत्याग्रह का आन्दोलन उसी की प्रतिक्रिया थी।

सत्याग्रह आरम्भ करने की सूचना मिलते ही रियासत की सरकार ने यह समझा कि वह कोरी धमकी है, उसका परिणाम कुछ नहीं होगा। अधिकारियों ने यह भी सोचा कि यदि सत्याग्रह जारी हुआ भी तो उसे शीघ्र ही कुचल दिया जायगा। परन्तु उसकी दोनों आशाएं पूरी न हुईं, सत्याग्रह न केवल प्रारम्भ हुआ, वह खूब जोर से चला और उसे जितना दबाने का यत्न किया गया वह उतना ही तीव्र होता गया। निजाम सरकार को· आर्यसमाज से इतनी आशा न थी। जैसा हम पीछे लिख आये है, उसे अपनी शक्ति और आर्यसमाज की पराजय पर पूर्ण विश्वास था। आन्दोलन को दबाने के लिए उसने प्राचीन, अर्वाचीन, सभी तरह के नीति-साधनों का उपयोग किया था। शोलापुर कान्फ्रेंस को असफल बनाने में यद्यपि उसे असफलता उठानी पड़ी थी, तो भी उसका नीति-चक्र जारी था। हैदराबाद-सत्याग्रह निजाम महोदय के व्यक्तित्व और

उनके परम्परागत सिंहासन को अपमानित करने के उद्देश्य से किया जा रहा है, वह इस्लाम के विरुद्ध विद्रोह है, साम्प्रदायिक है, इत्यादि निराधार समाचारों द्वारा जनता की सहानुभूति को सत्याग्रह से विमुख कर देने की चेष्टा लगातार की जा रही थी।

धीरे-धीरे रियासत के सामने यह प्रतिक्षण स्पष्ट होता जा रहा था कि दबने के बजाय आन्दोलन दिन प्रतिदिन तीव्रतर होता जा रहा है। डेढ़ मास पूर्व उसने जिसे एक अत्यन्त साधारण धब्बे के रूप में देखा था, उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ वह आज एक विशाल, गम्भीर मेघ के रूप में उसके सामने खड़ा हुआ था। उसे यह स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ रहा था कि इसका सामना करने के लिए उसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति, सम्पूर्ण धन-बल और सम्पूर्ण चेष्टा व नीति व्यय कर देनी पड़ेगी, रात-दिन के राज्य-सुख, अधिकार और भोगों को तिलांजलि देकर प्रतिक्षण जागरूक रहना पड़ेगा।

अभी जब सत्याग्रह जोरो पर नहीं आया था, न जाने कैसे, यह प्रतीत होने लगा था कि निजाम सरकार अपने आसन से नीचे उतर कर सन्धि-चर्चा के लिए उद्यत है।

फरवरी के अन्तिम सप्ताह में गुलबर्गा के डिविजनल कमिश्नर और कलेक्टर ने गुलबर्गा जेल मे महात्मा नारायण स्वामी जी से भेंट की।

२७ मार्च १९३९ को पुलिस और जेलों के डायरेक्टर जनरल मि० एस० टी० हालिन्स, गुलबर्गा डिवीजन के कमिश्नर नवाब होश्यार जंगबहादुर, कलेक्टर मि० रिजवी तथा गुलबर्गा जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट महोदय महात्मा नारायण स्वामी जी, श्री चादकरण जी शारदा, श्री खुशहालचन्द जी 'खुरसन्द' तथा स्वामी विवेकानन्द जी से जेल में मिले।

चूंकि यह भेंट अत्यन्त आकस्मिक थी अतः निजाम सरकार के इन चार गण्य-मान्य प्रतिनिधियों को स्वयं ही सन्धि का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए और आर्य सत्या-ग्रह के सम्मुख अपनी शीघ्र पराजय स्वीकार करने के लिए उद्यत होते देख यद्यपि आर्य प्रतिनिधियों को आश्चर्य तो अवश्य हुआ परन्तु उन्होंने धैर्यपूर्वक निजाम सरकार के प्रस्तावों को सुना। प्रस्तावों का सार यह था कि ओ३म् का झंडा लगाने, हवन-कुण्डों और यज्ञशालाओं का निर्माण करने से न तो निजाम सरकार को किसी प्रकार की आपत्ति होगी, ना ही आगे से इनके लिए किसी तरह की आज्ञा की आवश्यकता होगी। साथ ही इस समय रियासत में जितने आर्यसमाज मन्दिर हैं और जो बिना स्वीकृति प्राप्त किये भी स्थापित किये गये है, वे सब भी स्वीकार कर लिये जायेंगे। नये मन्दिरों के निर्माण के लिये भी प्रार्थना पत्र देने पर १५ दिन के भीतर ही भीतर स्वीकृति की व्यवस्था कर दी जाया करेगी और सिवाय इस कारण के कि मन्दिर के स्थान से गड़बड़ फैलने की आशंका हो, अन्य किसी आधार पर स्वीकृति रोकी नहीं जायेगी और अन्य धर्म वालों के भावों का उचित ध्यान रखते हुए प्रचार की भी पूरी स्वतन्त्रता रहेगी। सत्याग्रह प्रारम्भ करते समय सभा ने स्पष्ट शब्दों मे घोषणा की थी कि जिस दिन निजाम सरकार उसकी शर्तें स्वीकार कर लेगी, सत्याग्रह बन्द कर लिया जाएगा। अतः संधि के इन प्रस्तावों को विचार-विनिमय और चर्चा का आधार मानने में इन सर्वाधि-कारियो को कोई हानि प्रतीत न हुई। तथापि सरकारी प्रतिनिधियों को यह स्पष्ट कह

दिया गया कि सत्याग्रह को बन्द करने का अधिकार एकमात्र सार्वदेशिक सभा को है। अतः सभा के सामने उपस्थित किये बिना कोई अन्तिम उत्तर उन्हें नहीं दिया जा सकता। इस पर मि० हालिन्स ने सार्वदेशिक सभा के प्रतिनिधियो और सरकारी अधिकारियो की सम्मिलित सभा हैदराबाद मे बुलाने का भार अपने ऊपर लिया और यह वचन दिया कि तीनो सर्वाधिकारियों को इस वार्तालाप मे सम्मिलित करने के लिए वे जेल से हैदराबाद ले जायेगे।

परस्पर परामर्श के लिए नारायण स्वामी जी ने सत्याग्रह समिति के मुख्य अधिकारी श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को जेल में बुलाकर उनसे बातचीत की। बातचीत के साराश की सूचना सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त को तथा अन्य सब सदस्यों को भेजी गयी। ७ अप्रैल को श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त प्रधान, प्रो० सुधाकर जी मन्त्री तथा श्री ईशबन्धु जी गुप्त हैदराबाद जाकर श्री नारायण स्वामी जी से जेल में मिले। निश्चय हुआ कि सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा का अधिवेशन प्रस्तुत विषय पर विचार करने के लिए हैदराबाद में किया जाय। अन्तरंग सभा के सदस्य अपने-अपने स्थानों से हैदराबाद के लिए चल चुके थे कि गुलबर्गा जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट का एक पत्र मिला, जिसमे लिखा था कि "आप अपने सब प्रतिनिधियों को हैदराबाद की बजाय शोलापुर भेज दें ताकि वे लोग पहले श्री महात्मा नारायण स्वामी, श्री खुशहाल चन्द जी और अन्यों के साथ यहां मिल लें। यहां से मिलकर वे ८–४–३९ को हैदराबाद रियासत के अधिकारियों से बातचीत करने के लिए तैयार हो। कृपया तार द्वारा गुलबर्गा पहुंचने की तिथि और समय की सूचना दें, जिससे यहां जरूरी प्रबन्ध कर लिया जाय।"

इस आज्ञा ने रियासत के अधिकारियों का मनोभाव प्रकट कर दिया। सुलह की बातचीत जारी करने से अधिकारियों का अभिप्राय केवल इतना था कि आर्यों का सत्याग्रह करने का उत्साह मन्द पड़ जाय। रियासत की सरकार चाहती थी कि कोई विशेष मांग पूरी किये बिना सत्याग्रह बन्द कराया जा सके। जब उसे यह मालूम हो गया कि ऐसी संभावना नहीं है तो उसने समाचार पत्रों में निम्नलिखित सूचना छपवाई :—

"कुछ समाचार-पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ है कि निजाम सरकार सार्वदेशिक सभा से समझौते की बातचीत कर रही है, यह समाचार सर्वथा निराधार है।"

इस सूचना पर श्रीयुत एम० एस० अणे ने समाचार-पत्रों में एक वक्तव्य दिया जो उस समय की परिस्थिति पर प्रकाश डालता है। वक्तव्य यह है :—

"४ अप्रैल के हिज हाइनेस निजाम बहादुर की सरकार के इस वक्तव्य को पढ़कर कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ समझौते के वार्तालाप का समाचार निराधार है, ६ अप्रैल को शोलापुर मे की जाने वाली सार्वदेशिक सभा के सामने अब कोई काम नहीं रहा। मेरी सम्मति है कि यदि सरकार को सभा और हिन्दू सिविल लिबर्टीज यूनियन के सदस्यों के साथ सहयोग का अवसर प्राप्त कर लेने की सलाह दी गयी होती तो अच्छा होता। ताकि रियासत के आर्यसमाजियों और हिन्दुओं को पूर्ण धार्मिक स्वाधीनता और

नागरिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के न्यूनतम सुधारों की योजना बनाने और वर्तमान सत्याग्रह को बन्द कर देने का अवसर प्राप्त होता ।"

"३ अप्रैल तक प्राप्त होने वाली विश्वसनीय सूचनाओं से यह विदित होता है कि निजाम सरकार के कतिपय उच्च अधिकारी इस प्रशंसनीय उद्योग में पूर्ण रूप से लगे हुए थे कि हैदराबाद की जेलों में सजा काटते हुए कुछ सत्याग्रही कैदियों से आर्यसमाज की मांगो का ज्ञान प्राप्त किया जाय और यह भी समझते थे कि सार्वदेशिक सभा के प्रमुख सदस्यो और हिन्दू सिविल लिबर्टीज यूनियन की युद्ध समिति तथा सरकारी सदस्यों के बीच में, सब वर्गो के स्वीकार करने योग्य किसी समझौते तक पहुंचने के उद्देश्य से खुले और अप्रत्याहत वार्तालाप के लिए जल्दी ही निकाले हुए अवसर को सरकार पसन्द करेगी ।

"ऐसे समझौते का यह परिणाम होता कि रियासत की जेलों में बन्द समस्त सत्याग्रही कैदियो के मुक्त हो जाने से, उन सुधारों पर, जिनकी शीघ्र घोषणा करने की शपथ सर अकबर हैदरी खा रहे है, शान्त विचार करने का अत्यन्त अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो जाता ।

"वर्तमान सरकारी वक्तव्य के सरकारी तौर पर उद्घोषित होने से निश्चय ही जनता की सम्मति पर एक अत्यन्त विरोधी और हानिकारक प्रभाव उत्पन्न होगा ।

"मै समझता हूं कि यह अत्यन्त शोक और असीम दुर्भाग्य की बात है कि सरकार को ऐसा वक्तव्य प्रकाशित करने की मंत्रणा दी गई, जिससे हिज एग्जाल्टेड हाइनेस की सरकार और उनकी हिन्दू प्रजा में, सम्मानपूर्ण समझौते के अवसर की आशा, असम्भव नहीं तो अत्यन्त दूर जा पड़ी है ।

"मै वक्तव्य समाप्त करते हुए आशा करता हू कि अधिकारी जन जल्दी ही अपनी भूल को अनुभव कर उसे दूर करने का प्रयत्न करेंगे। वक्तव्य का यह अर्थ हुआ कि रियासत उचित और न्याययुक्त बात की अपेक्षा अपने प्रभाव का अधिक ध्यान रखती है । मै आशा करता हूं कि हैदराबाद सरकार की इस अविवेकपूर्ण हरकत से महाराष्ट्र और पंजाब में सत्याग्रह आन्दोलन और भी तीव्र हो उठेगा । मेरे सरीखा शान्तिप्रिय व्यक्ति इस पर शोक ही प्रकट कर सकता है ।"

निजाम सरकार के वक्तव्य पर विचार करने के लिए ६ अप्रैल १९३९ को शोलापुर में अंतरंग सभा की बैठक हुई । श्रीयुत विनायक दामोदर सावरकर भी उपस्थित थे । परिस्थिति का ठीक ज्ञान करने के लिए सभा की अनुमति से स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने गुलबर्गा के जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट को निम्नलखित तार दिया––

"आपके पत्र संख्या २६९७ के लिए धन्यवाद । हमारे प्रतिनिधि बातचीत करने के लिए प्रातःकाल डाकगाड़ी से गुलबर्गा पहुच रहे हैं ।"

इसका उत्तर मिला :––

"आपका तार आज मिला, केवल दो प्रतिनिधियों––श्री घनश्यामसिंह गुप्त और प्रो० सुधाकर को मिलने की स्वीकृति दी जा सकती है ।"

यद्यपि यह स्पष्ट हो गया था कि निजाम सरकार आर्यसमाज की किसी मांग को स्वीकार करके समझौते के लिए तैयार नही है तो भी शिष्टाचार के तौर पर श्रीयुत घनश्यामसिह गुप्त, प्रो० सुधाकर जी तथा लाला देशबन्धु गुप्त ७ अप्रैल को गुलबर्गा गये और मि० हालिन्स से मिले। वार्तालाप से यह स्पष्ट हो गया कि निजाम सरकार के हृदय मे कोई परिवर्तन नही हुआ। सुलह की यह चर्चा चौथे सर्वाधिकारी श्री धुरेन्द्र शास्त्री के समय में प्रारम्भ हुई थी। उनकी ओर से निम्नलिखित घोषणा समाचार-पत्रों मे प्रकाशित की गई --

"कुछ लोगों में न जाने यह कैसे फैल गया है कि हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह स्थगित होता जा रहा है। यह बात बिलकुल गलत है। जनता को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सत्याग्रह उसी समय स्थगित होगा जब निजाम सरकार द्वारा आर्यसमाज की समस्त मागें स्वीकार कर ली जायेगी।.....

"प्रत्येक आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि वह सन्देह त्याग कर कर्मण्यता के मैदान मे कूद पड़े। आजकल हमारे सत्याग्रह के सम्बन्ध में विरोधियों की ओर से निराधार प्रचार किया जा रहा है। उससे सावधान रहना चाहिए............धुरेन्द्र शास्त्री।"

अन्तरग सभा ने सारी परिस्थिति का विवेचन करते हुए सत्याग्रही सैनिकों को उनकी वीरता और नियंत्रण में चलने की प्रवृत्ति की सराहना की और अन्त में यह आशा प्रकट की कि आर्यवीर और अधिक साहस और धैर्य से धर्मयुद्ध में भाग लेंगे।

असफल सन्धि-चर्चा ने सत्याग्रह को एक विशाल रूप दे दिया। जहां एक ओर देश के सब हिन्दू और राष्ट्रीय सार्वजनिक नेताओं, संस्थाओं और समाचार पत्रो की सहानुभूति आर्यसमाज की ओर झुक गई, वहां दूसरी ओर मुस्लिम लीग और मुसलमानो की अन्य साम्प्रदायिक सस्थाएं और समाचार पत्र निजाम सरकार की पुष्टि में और आर्यसमाज को कोसने में लग गये। संग्राम एक राज्य और एक संस्था का न रहकर दो जातियों का बन गया। इस बढ़े हुए रूप में सत्याग्रह की गूँज भारत के असेम्बली भवन में और इंगलैण्ड के पार्लियामेंट हाउस में सुनाई देने लगी। श्रीयुत अणे और श्रीयुत सावरकर के सहयोग ने प्रारम्भ से ही आर्य सत्याग्रह के प्रति सम्पूर्ण हिन्दुओं के हृदयो में सहानुभूति उत्पन्न कर दी थी। राष्ट्रीय कार्यकर्ता निजाम की दमन-नीति से असंतुष्ट होने के कारण आर्यसत्याग्रह का स्वागत कर रहे थे। इस प्रकार आर्य सत्याग्रह को देश से विस्तृत समर्थन मिल रहा था।

हैदराबाद सरकार ने इस समर्थन को निर्बल करने के कई प्रयत्न किये। उन्हे हम शतरंज के दांव ही कह सकते है। उन्हीं दिनों निजाम की दानवृत्ति एकदम जाग उठी और उसने हिन्दू विश्व विद्यालय को एक लाख रुपये का चैक भेज दिया। रियासत की ओर से दूसरा प्रयत्न यह किया गया कि ऋषिकेश के श्री नित्यानन्द गिरि को जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित करके रियासत में निमंत्रित किया। अभिप्राय यह था कि वे रियासत निवासी हिन्दुओं को आर्यसमाज से विमुख होने की प्रेरणा करें।

निजाम सरकार ने तीसरा हथकण्डा यह बरता कि अपने पुराने फर्माबरदार सेवक--महाराज सर किशनप्रसाद से एक वक्तव्य निकलवाया जिसमें रियासत के हिन्दुओं

को आर्यसमाज के विरुद्ध बरगलाने का प्रयत्न किया गया था। किशनप्रसाद जी ने अपने वक्तव्य में कहा था--

"ये लोग (आर्यसमाजी) हिन्दू धर्म के महान् अवतारों की निन्दा करने में भी नहीं चूकते। मैं तुमसे पूछता हूं कि एक सनातनधर्मी हिन्दू आर्यसमाज द्वारा किये गये भगवान् कृष्ण के अपमान को कैसे सह सकता है? जरा ठंढे मस्तिष्क से सोचो कि यदि एक मुसलमान के मुंह से यह शब्द निकले होते तो उनका तुम पर क्या असर होता? चूँकि मैं स्वर्गीय महाराज चन्दूलाल का उत्तराधिकारी हूं और एक सनातनधर्मी हूं, मुझे अत्यन्त लज्जा आती है, जब मैं देखता हूं कि इन धर्मान्ध व्यक्तियो (आर्यसमाजियों) के बहकावे में आकर कुछ सनातनधर्मी भाई तक इस झूठे प्रोपेगेण्डे मे आर्यसमाजियों के गुप्त सहायक बने हुए है।"

इन कूटनीतिक साधनो के साथ-साथ निजाम सरकार ने एक श्वेत-पत्र द्वारा आर्यसमाज पर सीधा आक्रमण भी किया। उसमें आर्यसमाज के प्रचारकों के नाम से बहुत से कल्पित निन्दात्मक वाक्य कहलाकर सनातनधर्मी हिन्दुओं को भडकाने का यत्न किया गया। उन दिनों यह एक खुला रहस्य था कि निजाम की थैलियां देश के एंग्लो-इंडियन, मुस्लिम और कुछ हिन्दू अखबारों की आत्मा को खरीदने के लिए भी खुल गई थीं। जो पत्र उस जाल में फंस गये वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से निजाम सरकार का समर्थन और आर्यसमाज का विरोध करते रहे।

यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि निजाम सरकार के सीधे या टेढ़े सब राजनीतिक वार खाली गये। हिन्दू विश्वविद्यालय को एक लाख का दान मिल जाने का भला श्रद्धेय मालवीय जी पर क्या असर हो सकता था? वे आदि से अन्त तक आर्य सत्याग्रह के हितचिन्तक और समर्थक रहे। नवनिर्मित शंकराचार्य जी को सफलता प्राप्त होना तो एक ओर रहा, वे जहां गये, वहा हिन्दुओं से उन्हें अपमानित ही होना पड़ा। महाराज सर किशनप्रसाद के वक्तव्य के उत्तर में पं० विनायकराव विद्यालंकार तथा पं० वंशीलाल जी आदि आर्य नेताओं ने जो युक्तियुक्त जोरदार वक्तव्य निकाले उनसे आर्यसमाज का पक्ष इतना स्पष्ट हो गया कि यदि रियासत के किसी हिन्दू के मन में अणुमात्र सन्देह उत्पन्न होने की आशंका थी तो वह भी जाती रही। पंजाब के निर्भय नेता पं० नेकीराम शर्मा ने रियासत के सब कुटिल प्रयत्नों का भंडाफोड़ करने के लिए समाचार-पत्रों में जो वक्तव्य निकाला, उसने तो रियासत के पांव ही हिला दिये। शर्मा जी के लम्बे वक्तव्य का कुछ अंश यहां दिया जाता है :--

"आज मैंने "रहबरे दकन" में रियासत हैदराबाद के भूतपूर्व प्रधान मंत्री महाराज सर किशन प्रसाद का एक वक्तव्य पढ़ा। मुझे शोक है कि उन्होंने सचाई को अपने बूढे आंचल में छिपाने का प्रयत्न किया है और नौकरशाही की नीति का आश्रय लेते हुए आर्यसमाजियों और सनातनधर्मियों को आपस में लड़ाने का प्रयत्न किया है। किन्तु मेरा विचार है कि यह प्रयत्न सफल नही होगा। शायद सर किशनप्रसाद को इस बात का पता नहीं कि दिल्ली के शिव मन्दिर सत्याग्रह में कितने ही प्रसिद्ध आर्यसमाजी कार्य-

कर्ताओं ने सनातनधर्मियों से भी बढ़कर भाग लिया है और महाराज किशनप्रसाद उसी आर्यसमाज को सनातनधर्मियों का शत्रु बता रहे हैं।

"मुझे शोक है कि इस समय जबकि भारत भर में साम्प्रदायिक झगड़े समाप्त किये जा रहे हैं, एक बड़ी रियासत के भूतपूर्व प्रधान मंत्री ने हिन्दुओं में फूट डालने का यत्न किया है। सबसे बड़ी लज्जा की बात यह है कि फूट डालने का यह यत्न सनातन धर्म के नाम पर किया जा रहा है।"

निजाम सरकार के श्वेत पत्र का उत्तर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक 'निजाम सरकार की सफाई की जांच तथा उसका प्रत्युत्तर' नाम की पुस्तिका में दिया। उत्तर इतना संयत और सप्रमाण था कि उसने रियासती सरकार के श्वेतपत्र द्वारा फेंके हुए कीचड़ को बिलकुल धो दिया।

रियासत के कुछ पिट्ठुओं ने हरिजनों को आर्यसमाज के विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न किया था। हैदराबाद निवासी श्री स्वामी सिद्धराज जी महाराज रियासत के सर्वमान्य हरिजन नेता थे। उन्होंने 'दिग्विजय' नामक पत्र में हरिजनों के नाम एक खुला पत्र प्रकाशित कराया, जिसमें कहा गया था कि "निजाम राज्य में आजकल हिन्दू धर्म पर महान संकट आया हुआ है। इस संकट को दूर करने के लिए आर्यसमाज ने सत्याग्रह आरम्भ किया है। कई स्वार्थी पेटू लोग अस्पृश्यों को आर्यसमाज के विरुद्ध उभारते हैं और भ्रम फैलाते हैं। निजाम रियासत में दो लाख हरिजन मेरे शिष्य हैं और मैं उनकी ओर से घोषणा करता हूं कि निजाम राज्य में आर्यसमाज हमारा शुभचिन्तक है और वह हमारे साथ समानता का व्यवहार करता है। वह हर समय हमारे कष्टों को दूर करने में आगे रहता है। अतः हम सब उसके साथ हैं और आर्यसमाज का आदेश पाते ही अपना सर्वस्व अर्पण करके उसकी सहायता करने को तैयार हैं।"

इसी प्रसंग में हैदराबाद के कुछेक मुसलमानों के उस डेपुटेशन की चर्चा कर देना भी उचित है, जिसने उत्तरीय भारत में दौरा करके आर्यसमाज के विरुद्ध विष फैलाने का यत्न किया। उसके नेता कोई जनाब एम० एस० एहसान साहब थे। उस डेपुटेशन ने यह सिद्ध करने के लिए कि हैदराबाद में वस्तुतः रामराज्य है और यह शरारत केवल कुछ एक आर्यसमाजियों की खड़ी की हुई है, खूब दूर-दूर की दौड़ लगाई। जहा वे लोग अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए लुधियाना पहुंचे, वहां कांग्रेस नेताओं की ज्ञान-वृद्धि करने के लिए त्रिपुरी के अधिवेशन में भी उपस्थित हुए। उनके सारे भगीरथ-प्रयत्न का जो फल हुआ, उसका अनुमान अगले अध्याय में दिये हुए लोकमत से प्रकट होगा।

आठवाँ अध्याय

राष्ट्रीय भारत की सहानुभूति

१५ फरवरी १९३९ को लुधियाना में अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् के अधिवेशन के सभापति ने हैदराबाद की परिस्थिति पर निम्नलिखित सम्मति दी थी--

१ "हैदराबाद सरीखी प्रमुख रियासत में नागरिक स्वाधीनता का चिरकाल से अभाव है और वर्तमान में शान्त सत्याग्रहियो के साथ किया जाता पाशविक व्यवहार सब पर विदित हो चुका है। वन्देमातरम् का वैयक्तिक गान करने के अपराध पर उस्मानिया यूनिवर्सिटी से निकाले गये सैकड़ों विद्यार्थियों का उदाहरण वहां की विरोधिनी नीति का स्पष्ट परिचय देता है। हैदराबाद के अधिकार-क्षेत्रों मे यही नीति प्रचलित है.... ।

२ सम्भवतः भारत भर मे नागरिक स्वाधीनता का भूमितल हैदराबाद मे ही सबसे नीचा है और अब तो कतिपय धार्मिक कृत्यों पर प्रतिबन्ध लगाने की ओर भी वहां ध्यान दिया जाने लगा है। यह नीची स्थिति वहां के किसी आघातकारी आन्दोलन की प्रतिक्रिया नहीं, प्रत्युत वहां देर से ऐसी ही अवस्थाएं जारी हैं।

३. धार्मिक संस्थाओ के सम्बन्ध में यह बात थी कि रियासत के अधिकारियों ने उन कतिपय धार्मिक कृत्यों और प्रार्थना-उपासना के तरीकों पर प्रतिबन्ध लगा दिये हैं, समग्र भारत में जिनका चलन विद्यमान है। यह आश्चर्य है कि अधिकारियों ने भारत के धार्मिक विश्वास की जड़ मे इस तरह कुठाराघात करना उचित समझा और हर एक के सर्वविदित सिद्धान्तों का विरोध किया। यह स्वाभाविक था कि इससे विरोध उत्पन्न होता।"

अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् ने इस अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकार किया--

"१. यह परिषद् जनता के नागरिक अधिकारो और सर्व-सामान्य स्वाधीनताओं के सम्बन्ध मे निर्धारित की हुई हैदराबाद रियासत की उस विशेषरूप से पिछड़ी हुई और विरोधिनी नीति को अत्यन्त शोक के साथ देखती है, जिसमे सभा और संगठन के अधिकार क्रियात्मक रूप मे विलुप्त कर दिये गये हैं, और स्वतन्त्रतापूर्वक जन-सेवा का कार्य करना भी असम्भव बना दिया गया है। ....

"२. इस परिषद् की सम्मति मे रियासत के अधिकारियो ने धार्मिक स्वाधीनता और धार्मिक उपासना के सर्वसम्मत सिद्धान्त का सम्मान नहीं किया है और उसे कानूनों और विशेषतया रियासत की प्रथा के अनुसार रोक दिया है। इन बाधाओं को दूर करने की इच्छा किसी तरह साम्प्रदायिक नही मानी जा सकती और हर तरह उचित

है। परिषद् विश्वास करती है कि ये सब प्रतिबन्ध हटा दिये जायेंगे और प्रत्येक धर्म संस्था की धार्मिक स्वतन्त्रता को पूरी तरह अक्षुण्ण रहने दिया जायगा।

"तथापि परिषद् की सम्मति मे धार्मिक कठिनाइयों को हटाने के उद्देश्य से चलाया हुआ हैदराबाद सत्याग्रह असामयिक है, क्योंकि इसमें साम्प्रदायिकता की ओर लौटने का झुकाव बताया जा सकता है और रियासत को इसकी आड़ में उत्तरदायित्व शासन के आन्दोलन को साम्प्रदायिक बताकर उसे दबाने का बहाना मिल सकता है।"

प्रस्ताव के अन्तिम भाग में प्रगट की गयी आशंका सर्वथा निर्मूल थी, यह आगामी घटनाओ से सिद्ध हो गया था। आर्यसमाज का सत्याग्रह इतना नियम और संयम से चलाया गया था कि विरोधियों द्वारा भड़काने के अनेक प्रयत्न करने पर भी उनकी ओर से कोई ऐसा व्यतिक्रम नहीं किया गया, जिसे साम्प्रदायिक रंग दिया जा सकता। यह भी सर्वसम्मत बात है कि आगे चलकर रियासत में जो जबर्दस्त राजनीतिक अभ्युत्थान हुआ, आर्यसमाज के सत्याग्रह की सफलता भी उसका एक मुख्य कारण थी।

त्रिपुरी के कांग्रेस अधिवेशन में रियासतों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव स्वीकार किया गया, उसमें यद्यपि आर्य सत्याग्रह का नाम निर्देश नही किया गया था तो भी विशेष रूप से धार्मिक स्वतन्त्रता की माग पेश की गयी थी, जिसका प्रभाव आर्य सत्याग्रह पर भी पड़ता था। आर्य सत्याग्रह के प्रति कांग्रेस के रुख को भली प्रकार समझने के लिए लाला देशबन्धु गुप्त ने कांग्रेस के प्रधान मन्त्री आचार्य श्री जे० बी० कृपलानी को एक पत्र लिखा था। उसके उत्तर में आचार्य जी ने यह सम्मति प्रगट की--

"इस विषय मे आर्यसमाजियों तथा कांग्रेस में केवल पद्धति का भेद है। प्रत्येक कांग्रेसी का विश्वास है कि हैदराबाद रियासत द्वारा आर्यसमाज पर लगाए गए प्रतिबन्ध अवांछनीय हैं, उनका विरोध भी किया जाना चाहिए। परन्तु इस प्रश्न को हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का साम्प्रदायिक रग नहीं देना चाहिए। आर्यसमाज की शिकायतें रियासत के अधिकारियों के विरुद्ध हैं, न कि मुस्लिम सम्प्रदाय के.... ....मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि अपने धार्मिक अधिकारों को प्राप्त करने के उद्देश्य से कांग्रेस में कार्य करने वाले आर्यसमाजियों को आन्दोलन में भाग लेने का पूर्ण अधिकार है। कांग्रेस किसी धर्म का पक्षपात नही करती परन्तु यह हमारा विश्वास है कि धार्मिक मामलों में जनता के आचार की अनुगामिनी पूर्ण स्वाधीनता प्रत्येक वर्ग को प्राप्त होनी चाहिए। यदि वह स्वाधीनता किसी वर्ग को नहीं दी जा रही तो उसे पूर्ण अधिकार है कि वह न्याय प्राप्त करने के उपायों को काम में लाये।

"संस्था रूप में कांग्रेस प्रत्येक समस्या के लिए युद्ध में नही पड़ सकती क्योंकि हम अनुभव करते है कि हमारा उन समस्याओं में जो राजनीतिक नही हैं, हस्तक्षेप करना उन्हें सुलझाने की जगह और उलझा देगा। राजनीतिक मामलों मे हिस्सा न लेना सिद्धान्त का प्रश्न नहीं, नीति का प्रश्न है। हम समझते है कि हमारे दखल देने से आर्यों को, जो कि अपने युद्ध को वीरता से लड रहे है, लाभ की अपेक्षा हमारे राजनीतिक आन्दोलन को हानि अधिक होगी।"

देश के अन्य नेताओं ने आर्यसमाज के सत्याग्रह के सम्बन्ध में जो सम्मतियां प्रकट कीं, वे नीचे दी जाती हैं :—

महात्मा गान्धी :

"हैदराबाद में आर्यसमाज का आन्दोलन विशुद्ध धार्मिक है और उसका लक्ष्य धार्मिक असुविधाओं को दूर कराना है।"

पं० जवाहरलाल नेहरू :

"मुझे यह प्रतीत होता है कि हैदराबाद रियासत में, धार्मिक स्वाधीनता को अस्वीकार करते हुए आर्यसमाज के धार्मिक कृत्यो पर कतिपय अनुचित प्रतिबन्ध लगा दिये गये है, हमने स्थिर किया है कि प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वाधीनता अवश्य प्राप्त होनी चाहिए।"

मौलाना अबुलकलाम आजाद :

"यद्यपि हैदराबाद में सत्याग्रह आन्दोलन एक वर्ग की ओर से प्रारम्भ किया गया है, पर यह धार्मिक प्रकृति का है। अपने मन्तव्य के लिए कष्ट झेलने वालों के साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है।"

मास्टर तारासिंह अकाली नेता :

"अपने धार्मिक स्वाधीनता के युद्ध के लिए मैं आर्यसमाज को बधाइयां भेजता हूं।"

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय :

"यदि १९३२ में मुसलमानो द्वारा किया गया काश्मीर मे नागरिक स्वाधीनता और धार्मिक अधिकार प्राप्ति का आन्दोलन उचित था तो हमारे पास नागरिक स्वाधीनता और धार्मिक अधिकारों के लिए चलाये गये किसी भी धार्मिक आन्दोलन का विरोध करने के लिए क्या युक्ति हो सकती है, जबकि यह हैदराबाद सरकार के विरुद्ध प्रारम्भ किया गया है।"

एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह थी कि प्रायः सभी राष्ट्रीय तथा हिन्दू-पत्रों ने आर्य सत्याग्रह का प्रारम्भ से अन्त तक समर्थन किया। इनमें अंग्रेजी और सभी देशी भाषाओं के पत्र सम्मिलित थे। मुसलमान पत्रों का रुख प्रारम्भ से ही विरोधी था। जो मुसलमान पत्र कांग्रेस के समर्थन में कभी-कभी लिख दिया करते थे, वे भी आर्य सत्याग्रह को मुस्लिम विरोधी, साम्प्रदायिक और गुप्त राजनीतिक आन्दोलन कहकर कोसने में लगे रहे। यह कहा जा सकता है कि देश का तीन-चौथाई लोकमत सिद्धान्त रूप में आर्य सत्याग्रह का पोषक था।

नवाँ अध्याय

मुसलमानों के विरोध का रहस्य

यह जानने के लिए कि देश के मुसलमानों की ओर से आर्य सत्याग्रह का जो आमूल-चूल विरोध किया गया उसका रहस्य क्या था, मुसलमान नेताओं तथा समाचार पत्रों के वक्तव्यो तथा लेखों पर एक दृष्टि डालना अत्यन्त आवश्यक है। आर्य सत्याग्रह के सम्बन्ध में मुसलमानों की मनोवृत्ति को सूचित करने वाली सबसे अधिक महत्वपूर्ण वक्तृता पजाब के प्रधान मंत्री सर सिकन्दर हयात खां की थी। सर सिकन्दर ने बम्बई की मुस्लिम लीग के शोलापुर अधिवेशन में सभापति के आसन से भाषण देते हुए कहा था--

"राजनीतिक अथवा धार्मिक अधिकारों के अपहरण के नाम पर हिन्दुस्तानी रियासतो मे घुसने के तथाकथित अहिंसात्मक एवं शान्त उपायों को काम में लाते हुए भी देश के भीतर या बाहर की जनता को धोखा नहीं दिया जा सकता। मुसलमान को अपना मजहब, अपनी तहजीब और अपना सम्मान अपने जीवन से भी अधिक प्यारा है। खुदा बचाये, यदि इनमें से एक भी खतरे मे पड़ गया तो हम उसकी जरूर रक्षा करेंगे, भले ही उसके लिए हमें दीवार के साथ पीठ लगाकर ही क्यों न लड़ना पड़े। मुसलमानो की सबसे बड़ी रियासत के विरुद्ध जारी किये गये इस आक्रमणकारी आन्दोलन से सारे देश को, खास कर मेरे प्रान्त के मुसलमानों को बेचैन कर रखा है। यदि इसे न रोका गया तो आपसी झगडो के चारों ओर फैल जाने का भारी अदेशा है। मेरी आदत कोरी धमकी देने की नही है। एक हिन्दुस्तानी और मुसलमान होने के नाते यह मै अपना फर्ज समझता हूं कि मै उनको, जिनका इससे सम्बन्ध है, पुकार कर यह कह दूं कि वे स्थिति की गम्भीरता को समझें और इसे जल्दी से जल्दी रोकने की कोशिश करें। ऐसा न हो कि यह सब उनके हाथ के बाहर की बात हो जाय।"

इस भाषण के सावधानतापूर्वक अनुशीलन से यह चीज सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि सर सिकन्दर को हैदराबाद की चिन्ता इसलिए नही थी कि वह आर्यसमाज की शिकायतों को निर्मूल समझते थे या निजाम की सरकार को निर्दोष मानते थे, उन्हें चिन्ता इस बात की थी कि मुसलमानों की सबसे बड़ी रियासत में विधर्मी लोग न घुस जायें। उन्हें डर था कि यदि हैदराबाद में आर्यसमाजियों का जोर हो गया तो मुसलमानों का मजहब, उनकी तहजीब और आत्म-सम्मान खतरे मे पड़ जायेंगे। भारत के उन सब मुसलमानो की, जो आर्य-सत्याग्रह पर विषवमन कर रहे थे, यही मनोवृत्ति थी। वे उसे धार्मिक अधिकारो के निमित्त आन्दोलन न मानकर राजनीतिक रंग से रंगने का प्रयत्न करते थे, ताकि आम मुसलमानों को भड़काया जा सके।

को आर्यसमाज के विरुद्ध बरगलाने का प्रयत्न किया गया था। किशनप्रसाद जी ने अपने वक्तव्य में कहा था--

"ये लोग (आर्यसमाजी) हिन्दू धर्म के महान् अवतारों की निन्दा करने में भी नहीं चूकते। मैं तुमसे पूछता हूं कि एक सनातनधर्मी हिन्दू आर्यसमाज द्वारा किये गये भगवान् कृष्ण के अपमान को कैसे सह सकता है? जरा ठंढे मस्तिष्क से सोचो कि यदि एक मुसलमान के मुँह से यह शब्द निकले होते तो उनका तुम पर क्या असर होता? चूँकि मैं स्वर्गीय महाराज चन्दूलाल का उत्तराधिकारी हूं और एक सनातनधर्मी हूं, मुझे अत्यन्त लज्जा आती है, जब मै देखता हूं कि इन धर्मान्ध व्यक्तियों (आर्यसमाजियों) के बहकावे में आकर कुछ सनातनधर्मी भाई तक इस झूठे प्रोपेगेण्डे मे आर्यसमाजियों के गुप्त सहायक बने हुए हैं।"

इन कूटनीतिक साधनो के साथ-साथ निजाम सरकार ने एक श्वेत-पत्र द्वारा आर्यसमाज पर सीधा आक्रमण भी किया। उसमें आर्यसमाज के प्रचारकों के नाम से बहुत से कल्पित निन्दात्मक वाक्य कहलाकर सनातनधर्मी हिन्दुओं को भड़काने का यत्न किया गया। उन दिनों यह एक खुला रहस्य था कि निजाम की थैलियां देश के एंग्लो-इंडियन, मुस्लिम और कुछ हिन्दू अखबारों की आत्मा को खरीदने के लिए भी खुल गई थीं। जो पत्र उस जाल में फंस गये वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से निजाम सरकार का समर्थन और आर्यसमाज का विरोध करते रहे।

यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि निजाम सरकार के सीधे या टेढ़े सब राजनीतिक वार खाली गये। हिन्दू विश्वविद्यालय को एक लाख का दान मिल जाने का भला श्रद्धेय मालवीय जी पर क्या असर हो सकता था? वे आदि से अन्त तक आर्य सत्याग्रह के हितचिन्तक और समर्थक रहे। नवनिर्मित शकराचार्य जी को सफलता प्राप्त होना तो एक ओर रहा, वे जहां गये, वहां हिन्दुओं से उन्हें अपमानित ही होना पड़ा। महाराज सर किशनप्रसाद के वक्तव्य के उत्तर में पं० विनायकराव विद्यालंकार तथा पं० वंशीलाल जी आदि आर्य नेताओं ने जो युक्तियुक्त जोरदार वक्तव्य निकाले उनसे आर्यसमाज का पक्ष इतना स्पष्ट हो गया कि यदि रियासत के किसी हिन्दू के मन में अणुमात्र सन्देह उत्पन्न होने की आशंका थी तो वह भी जाती रही। पंजाब के निर्भय नेता पं० नेकीराम शर्मा ने रियासत के सब कुटिल प्रयत्नों का भंडाफोड़ करने के लिए समाचार-पत्रों में जो वक्तव्य निकाला, उसने तो रियासत के पांव ही हिला दिये। शर्मा जी के लम्बे वक्तव्य का कुछ अंश यहां दिया जाता है :--

"आज मैंने "रहबरे दकन" में रियासत हैदराबाद के भूतपूर्व प्रधान मंत्री महाराज सर किशन प्रसाद का एक वक्तव्य पढा। मुझे शोक है कि उन्होंने सचाई को अपने बूढे आंचल में छिपाने का प्रयत्न किया है और नौकरशाही की नीति का आश्रय लेते हुए आर्यसमाजियों और सनातनधर्मियो को आपस में लड़ाने का प्रयत्न किया है। किन्तु मेरा विचार है कि यह प्रयत्न सफल नहीं होगा। शायद सर किशनप्रसाद को इस बात का पता नहीं कि दिल्ली के शिव मन्दिर सत्याग्रह में कितने ही प्रसिद्ध आर्यसमाजी कार्य-

कर्ताओं ने सनातनधर्मियों से भी बढ़कर भाग लिया है और महाराज किशनप्रसाद उसी आर्यसमाज को सनातनधर्मियों का शत्रु बता रहे हैं।

"मुझे शोक है कि इस समय जबकि भारत भर में साम्प्रदायिक झगड़े समाप्त किये जा रहे हैं, एक बड़ी रियासत के भूतपूर्व प्रधान मंत्री ने हिन्दुओं में फूट डालने का यत्न किया है। सबसे बड़ी लज्जा की बात यह है कि फूट डालने का यह यत्न सनातन धर्म के नाम पर किया जा रहा है।"

निजाम सरकार के श्वेत पत्र का उत्तर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक 'निजाम सरकार की सफाई की जांच तथा उसका प्रत्युत्तर' नाम की पुस्तिका में दिया। उत्तर इतना संयत और सप्रमाण था कि उसने रियासती सरकार के श्वेतपत्र द्वारा फेंके हुए कीचड़ को बिलकुल धो दिया।

रियासत के कुछ पिट्ठुओं ने हरिजनों को आर्यसमाज के विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न किया था। हैदराबाद निवासी श्री स्वामी सिद्धराज जी महाराज रियासत के सर्वमान्य हरिजन नेता थे। उन्होंने 'दिग्विजय' नामक पत्र में हरिजनों के नाम एक खुला पत्र प्रकाशित कराया, जिसमें कहा गया था कि "निजाम राज्य में आजकल हिन्दू धर्म पर महान संकट आया हुआ है। इस संकट को दूर करने के लिए आर्यसमाज ने सत्याग्रह आरम्भ किया है। कई स्वार्थी पेटू लोग अस्पृश्यों को आर्यसमाज के विरुद्ध उभारते हैं और भ्रम फैलाते हैं। निजाम रियासत में दो लाख हरिजन मेरे शिष्य हैं और मै उनकी ओर से घोषणा करता हूं कि निजाम राज्य में आर्यसमाज हमारा शुभचिन्तक है और वह हमारे साथ समानता का व्यवहार करता है। वह हर समय हमारे कष्टों को दूर करने मे आगे रहता है। अतः हम सब उसके साथ हैं और आर्यसमाज का आदेश पाते ही अपना सर्वस्व अर्पण करके उसकी सहायता करने को तैयार हैं।"

इसी प्रसंग में हैदराबाद के कुछेक मुसलमानों के उस डेपुटेशन की चर्चा कर देना भी उचित है, जिसने उत्तरीय भारत में दौरा करके आर्यसमाज के विरुद्ध विष फैलाने का यत्न किया। उसके नेता कोई जनाब एम० एस० एहसान साहब थे। उस डेपुटेशन ने यह सिद्ध करने के लिए कि हैदराबाद में वस्तुतः रामराज्य है और यह शरारत केवल कुछ एक आर्यसमाजियों की खड़ी की हुई है, खूब दूर-दूर की दौड़ लगाई। जहां वे लोग अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए लुधियाना पहुंचे, वहां कांग्रेस नेताओं की ज्ञान-वृद्धि करने के लिए त्रिपुरी के अधिवेशन में भी उपस्थित हुए। उनके सारे भगीरथ-प्रयत्न का जो फल हुआ, उसका अनुमान अगले अध्याय में दिये हुए लोकमत से प्रकट होगा।

आठवाँ अध्याय

राष्ट्रीय भारत की सहानुभूति

१५ फरवरी १९३९ को लुधियाना में अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् के अधिवेशन के सभापति ने हैदराबाद की परिस्थिति पर निम्नलिखित सम्मति दी थी--

१. "हैदराबाद सरीखी प्रमुख रियासत में नागरिक स्वाधीनता का चिरकाल से अभाव है और वर्तमान में शान्त सत्याग्रहियो के साथ किया जाता पाशविक व्यवहार सब पर विदित हो चुका है। वन्देमातरम् का वैयक्तिक गान करने के अपराध पर उस्मानिया यूनिवर्सिटी से निकाले गये सैकड़ों विद्यार्थियों का उदाहरण वहां की विरोधिनी नीति का स्पष्ट परिचय देता है। हैदराबाद के अधिकार-क्षेत्रों मे यही नीति प्रचलित है.... ।

२. सम्भवतः भारत भर में नागरिक स्वाधीनता का भूमितल हैदराबाद में ही सबसे नीचा है और अब तो कतिपय धार्मिक कृत्यो पर प्रतिबन्ध लगाने की ओर भी वहां ध्यान दिया जाने लगा है। यह नीची स्थिति वहां के किसी आघातकारी आन्दोलन की प्रतिक्रिया नहीं, प्रत्युत वहां देर से ऐसी ही अवस्थाएं जारी है।

३. धार्मिक संस्थाओं के सम्बन्ध मे यह बात थी कि रियासत के अधिकारियों ने उन कतिपय धार्मिक कृत्यो और प्रार्थना-उपासना के तरीको पर प्रतिबन्ध लगा दिये है, समग्र भारत में जिनका चलन विद्यमान है। यह आश्चर्य है कि अधिकारियो ने भारत के धार्मिक विश्वास की जड मे इस तरह कुठाराघात करना उचित समझा और हर एक के सर्वविदित सिद्धान्तों का विरोध किया। यह स्वाभाविक था कि इससे विरोध उत्पन्न होता।"

अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् ने इस अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकार किया--

"१. यह परिषद् जनता के नागरिक अधिकारो और सर्व-सामान्य स्वाधीनताओं के सम्बन्ध में निर्धारित की हुई हैदराबाद रियासत की उस विशेषरूप से पिछडी हुई और विरोधिनी नीति को अत्यन्त शोक के साथ देखती है, जिसमे सभा और संगठन के अधिकार क्रियात्मक रूप में विलुप्त कर दिये गये है, और स्वतन्त्रतापूर्वक जन-सेवा का कार्य करना भी असम्भव बना दिया गया है।....... ....

"२. इस परिषद् की सम्मति मे रियासत के अधिकारियों ने धार्मिक स्वाधीनता और धार्मिक उपासना के सर्वसम्मत सिद्धान्त का सम्मान नहीं किया है और उसे कानूनों और विशेषतया रियासत की प्रथा के अनुसार रोक दिया है। इन बाधाओं को दूर करने की इच्छा किसी तरह साम्प्रदायिक नही मानी जा सकती और हर तरह उचित

है। परिषद् विश्वास करती है कि ये सब प्रतिबन्ध हटा दिये जायेंगे और प्रत्येक धर्म संस्था की धार्मिक स्वतन्त्रता को पूरी तरह अक्षुण्ण रहने दिया जायगा।

"तथापि परिषद् की सम्मति में धार्मिक कठिनाइयों को हटाने के उद्देश्य से चलाया हुआ हैदराबाद सत्याग्रह असामयिक है, क्योंकि इसमें साम्प्रदायिकता की ओर लौटने का झुकाव बताया जा सकता है और रियासत को इसकी आड़ में उत्तरदायित्व शासन के आन्दोलन को साम्प्रदायिक बताकर उसे दबाने का बहाना मिल सकता है।"

प्रस्ताव के अन्तिम भाग में प्रगट की गयी आशंका सर्वथा निर्मूल थी, यह आगामी घटनाओं से सिद्ध हो गया था। आर्यसमाज का सत्याग्रह इतना नियम और संयम से चलाया गया था कि विरोधियों द्वारा भड़काने के अनेक प्रयत्न करने पर भी उनकी ओर से कोई ऐसा व्यतिक्रम नहीं किया गया, जिसे साम्प्रदायिक रंग दिया जा सकता। यह भी सर्वसम्मत बात है कि आगे चलकर रियासत में जो जबर्दस्त राजनीतिक अभ्युत्थान हुआ, आर्यसमाज के सत्याग्रह की सफलता भी उसका एक मुख्य कारण थी।

त्रिपुरी के कांग्रेस अधिवेशन में रियासतों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव स्वीकार किया गया, उसमें यद्यपि आर्य सत्याग्रह का नाम निर्देश नही किया गया था तो भी विशेष रूप से धार्मिक स्वतन्त्रता की माग पेश की गयी थी, जिसका प्रभाव आर्य सत्याग्रह पर भी पड़ता था। आर्य सत्याग्रह के प्रति काग्रेस के रुख को भली प्रकार समझने के लिए लाला देशबन्धु गुप्त ने कांग्रेस के प्रधान मन्त्री आचार्य श्री जे० बी० कृपलानी को एक पत्र लिखा था। उसके उत्तर में आचार्य जी ने यह सम्मति प्रगट की--

"इस विषय मे आर्यसमाजियों तथा काग्रेस में केवल पद्धति का भेद है। प्रत्येक कांग्रेसी का विश्वास है कि हैदराबाद रियासत द्वारा आर्यसमाज पर लगाए गए प्रतिबन्ध अवांछनीय हैं, उनका विरोध भी किया जाना चाहिए। परन्तु इस प्रश्न को हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का साम्प्रदायिक रंग नहीं देना चाहिए। आर्यसमाज की शिकायतें रियासत के अधिकारियों के विरुद्ध है, न कि मुस्लिम सम्प्रदाय के ....मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि अपने धार्मिक अधिकारों को प्राप्त करने के उद्देश्य से कांग्रेस में कार्य करने वाले आर्यसमाजियों को आन्दोलन में भाग लेने का पूर्ण अधिकार है। काग्रेस किसी धर्म का पक्षपात नहीं करती परन्तु यह हमारा विश्वास है कि धार्मिक मामलों में जनता के आचार की अनुगामिनी पूर्ण स्वाधीनता प्रत्येक वर्ग को प्राप्त होनी चाहिए। यदि वह स्वाधीनता किसी वर्ग को नहीं दी जा रही तो उसे पूर्ण अधिकार है कि वह न्याय प्राप्त करने के उपायों को काम में लाये।

"संस्था रूप मे कांग्रेस प्रत्येक समस्या के लिए युद्ध मे नही पड़ सकती क्योंकि हम अनुभव करते है कि हमारा उन समस्याओ में जो राजनीतिक नहीं है, हस्तक्षेप करना उन्हे सुलझाने की जगह और उलझा देगा। राजनीतिक मामलों मे हिस्सा न लेना सिद्धान्त का प्रश्न नही, नीति का प्रश्न है। हम समझते है कि हमारे दखल देने से आर्यों को, जो कि अपने युद्ध को वीरता से लड़ रहे है, लाभ की अपेक्षा हमारे राजनीतिक आन्दोलन को हानि अधिक होगी।"

देश के अन्य नेताओं ने आर्यसमाज के सत्याग्रह के सम्बन्ध में जो सम्मतियां प्रकट कीं, वे नीचे दी जाती हैं :—

महात्मा गान्धी :

"हैदराबाद में आर्यसमाज का आन्दोलन विशुद्ध धार्मिक है और उसका लक्ष्य धार्मिक असुविधाओं को दूर कराना है।"

पं० जवाहरलाल नेहरू :

"मुझे यह प्रतीत होता है कि हैदराबाद रियासत में, धार्मिक स्वाधीनता को अस्वीकार करते हुए आर्यसमाज के धार्मिक कृत्यों पर कतिपय अनुचित प्रतिबन्ध लगा दिये गये है, हमने स्थिर किया है कि प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वाधीनता अवश्य प्राप्त होनी चाहिए।"

मौलाना अबुलकलाम आजाद :

"यद्यपि हैदराबाद मे सत्याग्रह आन्दोलन एक वर्ग की ओर से प्रारम्भ किया गया है, पर यह धार्मिक प्रकृति का है। अपने मन्तव्य के लिए कष्ट झेलने वालो के साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है।"

मास्टर तारासिंह अकाली नेता :

"अपने धार्मिक स्वाधीनता के युद्ध के लिए मै आर्यसमाज को बधाइयां भेजता हूं।"

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय :

"यदि १९३२ में मुसलमानो द्वारा किया गया काश्मीर मे नागरिक स्वाधीनता और धार्मिक अधिकार प्राप्ति का आन्दोलन उचित था तो हमारे पास नागरिक स्वाधीनता और धार्मिक अधिकारों के लिए चलाये गये किसी भी धार्मिक आन्दोलन का विरोध करने के लिए क्या युक्ति हो सकती है, जबकि यह हैदराबाद सरकार के विरुद्ध प्रारम्भ किया गया है।"

एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह थी कि प्रायः सभी राष्ट्रीय तथा हिन्दू-पत्रों ने आर्य सत्याग्रह का प्रारम्भ से अन्त तक समर्थन किया। इनमें अंग्रेजी और सभी देशी भाषाओं के पत्र सम्मिलित थे। मुसलमान पत्रों का रुख प्रारम्भ से ही विरोधी था। जो मुसलमान पत्र कांग्रेस के समर्थन में कभी-कभी लिख दिया करते थे, वे भी आर्य सत्याग्रह को मुस्लिम विरोधी, साम्प्रदायिक और गुप्त राजनीतिक आन्दोलन कहकर कोसने में लगे रहे। यह कहा जा सकता है कि देश का तीन-चौथाई लोकमत सिद्धान्त रूप में आर्य सत्याग्रह का पोषक था।

नवाँ अध्याय

मुसलमानों के विरोध का रहस्य

यह जानने के लिए कि देश के मुसलमानों की ओर से आर्य सत्याग्रह का जो आमूल-चूल विरोध किया गया उसका रहस्य क्या था, मुसलमान नेताओ तथा समाचार पत्रों के वक्तव्यो तथा लेखो पर एक दृष्टि डालना अत्यन्त आवश्यक है। आर्य सत्याग्रह के सम्बन्ध में मुसलमानो की मनोवृत्ति को सूचित करने वाली सबसे अधिक महत्वपूर्ण वक्तृता पंजाब के प्रधान मत्री सर सिकन्दर हयात खां की थी। सर सिकन्दर ने बम्बई की मुस्लिम लीग के शोलापुर अधिवेशन में सभापति के आसन से भाषण देते हुए कहा था--

"राजनीतिक अथवा धार्मिक अधिकारों के अपहरण के नाम पर हिन्दुस्तानी रियासतों में घुसने के तथाकथित अहिंसात्मक एवं शान्त उपायों को काम में लाते हुए भी देश के भीतर या बाहर की जनता को धोखा नहीं दिया जा सकता। मुसलमान को अपना मजहब, अपनी तहजीब और अपना सम्मान अपने जीवन से भी अधिक प्यारा है। खुदा बचाये, यदि इनमे से एक भी खतरे मे पड गया तो हम उसकी जरूर रक्षा करेंगे, भले ही उसके लिए हमें दीवार के साथ पीठ लगाकर ही क्यों न लड़ना पड़े। मुसलमानो की सबसे बड़ी रियासत के विरुद्ध जारी किये गये इस आक्रमणकारी आन्दोलन से सारे देश को, खास कर मेरे प्रान्त के मुसलमानों को बेचैन कर रखा है। यदि इसे न रोका गया तो आपसी झगड़ो के चारो ओर फैल जाने का भारी अंदेशा है। मेरी आदत कोरी धमकी देने की नहीं है। एक हिन्दुस्तानी और मुसलमान होने के नाते यह मैं अपना फर्ज समझता हू कि मैं उनको, जिनका इससे सम्बन्ध है, पुकार कर यह कह दूं कि वे स्थिति की गम्भीरता को समझें और इसे जल्दी से जल्दी रोकने की कोशिश करें। ऐसा न हो कि यह सब उनके हाथ के बाहर की बात हो जाय।"

इस भाषण के सावधानतापूर्वक अनुशीलन से यह चीज सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि सर सिकन्दर को हैदराबाद की चिन्ता इसलिए नहीं थी कि वह आर्यसमाज की शिकायतों को निर्मूल समझते थे या निजाम की सरकार को निर्दोष मानते थे, उन्हें चिन्ता इस बात की थी कि मुसलमानों की सबसे बड़ी रियासत मे विधर्मी लोग न घुस जायें। उन्हें डर था कि यदि हैदराबाद में आर्यसमाजियो का जोर हो गया तो मुसलमानो का मजहब, उनकी तहजीब और आत्म-सम्मान खतरे में पड़ जायेंगे। भारत के उन सब मुसलमानों की, जो आर्य-सत्याग्रह पर विषवमन कर रहे थे, यही मनोवृत्ति थी। वे उसे धार्मिक अधिकारों के निमित्त आन्दोलन न मानकर राजनीतिक रंग से रंगने का प्रयत्न करते थे, ताकि आम मुसलमानों को भड़काया जा सके।

सर सिकन्दर शोलापुर में भाषण रूपी बम का गोला फेंकने पर ही संतुष्ट नहीं हुए। शोलापुर से लाहौर लौटकर उन्होंने निजाम की सक्रिय सहायता का प्रयत्न जारी कर दिया। सबसे पहले सर सिकन्दर ने पंजाब के समाचार पत्रों को चेतावनी दी। सम्पादकों और पत्र-प्रतिनिधियों को बुलाकर साम्प्रदायिकता के विरुद्ध एक लम्बा व्याख्यान सुनाया। साथ ही यह भी सूचना दे दी कि जो समाचार पत्र लोगों को निजाम सरकार के विरुद्ध भड़कायेंगे, वे दंड के भागी होंगे। आपने दूसरा काम यह किया कि सारे प्रान्त में नरेन्द्र रक्षा कानून (Princes Protection Act) लागू कर दिया। इस कानून का उद्देश्य केवल इतना ही नहीं था कि निजाम सरकार के विरुद्ध किये जा रहे आन्दोलन को बन्द किया जाय अपितु देशी राज्य प्रजा-परिषद् के कार्य पर प्रतिबन्ध लगाना भी अभीष्ट था। सर सिकन्दर के इस तानाशाही हुक्म की प्रायः सभी ओर से निन्दा हुई। ऐंग्लो इण्डियनअखबार 'सिविल एंड मिलिटरी गजट' ने लिखा था, "नरेन्द्र रक्षा कानून का ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों से कोई सम्बन्ध नहीं है। आर्यसमाज के आन्दोलन का राजनीतिक पहलू चाहे कुछ भी हो, परन्तु उनका कहना है कि वह हैदराबाद में धार्मिक स्वाधीनता चाहते हैं। पंजाब सरकार से यह कदापि आशा नहीं की जा सकती कि वह आर्यसमाज की इस मांग के मार्ग में बाधा पैदा करेगी। विशुद्ध धार्मिक उद्देश्य को लेकर इस आन्दोलन को बल प्रयोग द्वारा दबाने के पक्ष में कोई युक्ति नहीं दी जा सकती।"

पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष डा० सैफ़ुद्दीन किचलू ने इस विषय में जो वक्तव्य दिया था, उसमें कहा था—

"नरेन्द्र रक्षा कानून को इस प्रान्त में जारी करके यूनियनिस्ट सरकार ने एक बार फिर अपनी अनुदार प्रकृति का परिचय दिया है।.......यदि मैं भूल नही करता तो भारत की समस्त प्रान्तीय सरकारों में से सिर्फ पंजाब सरकार ही ऐसी है, जिसने इस एक्ट को जारी किया है और इस तरह उसने सिद्ध कर दिया है कि उसे प्रजा की अपेक्षा नरेशों से अधिक प्रेम है........। मैं प्रसन्न हूं कि इस प्रकार सर सिकन्दर की सरकार ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया है।"

पंजाब धारा सभा के सदस्य सरदार सम्पूरण सिंह ने एक वक्तव्य में कहा था कि "प्रान्त में नरेन्द्र रक्षा कानून उद्घोषित करके पंजाब सरकार ने फिर एक बार प्रमाणित कर दिया है कि वह देश में सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी सरकार है।"

सर सिकन्दर ने मुस्लिम लीग के जिस अधिवेशन में अध्यक्ष का कार्य किया था, उसका प्रभाव यह हुआ कि शोलापुर और उसके आसपास के मुसलमानों में हिन्दुओं के विरुद्ध विषैले भाव फैल गये। लीग के अधिवेशन के पश्चात् आर्य सत्याग्रहियों पर और उनके साथ ही अन्य हिन्दुओं पर भी मुसलमानों की ओर से हमले होने लगे। कई जगह तो बड़े भयानक दंगे हो गये। २१ मई को शोलापुर में एक उपद्रव हुआ जो लगभग आधे घंटे तक जारी रहा। उस उपद्रव का जो विवरण आर्य सत्याग्रह समिति की ओर से प्रकाशित हुआ था, उससे विदित होता है कि २० मई को साढ़े छः बजे

लगभग सौ सत्याग्रही रेल से उतरे। उन्हें जलूस के साथ शोलापुर शिविर में ले जाया गया। इससे स्पष्ट हो गया था कि उस मार्ग से और उस समय सत्याग्रहियों के जलूस को ले जाने पर मुसलमानों को कोई आपत्ति नहीं थी। २१ मई को उन सत्याग्रहियों की स्मृति में जो हैदराबाद रियासत के अत्याचारों से शहीद हो चुके थे, शहीद दिवस मनाया जाने वाला था। उस दिन जब केवल पांच सत्याग्रहियों के एक छोटे से जत्थे को लेकर नगरवासी शिविर की ओर जा रहे थे, उन्हें मुसलमानों ने जयकारे लगाने से रोका और गालियां दीं। आगे एक मस्जिद थी, जब जत्था वहां पहुंचा तो पहले से एकत्रित मुसलमानों ने उन पर आक्रमण कर दिया। सत्याग्रही लोग किसी तरह वहां से बचकर शिविर में पहुंच गये। इस आक्रमण की सूचना पुलिस को दे दी गयी। पुलिस में सूचना पहुंचने का परिणाम तो यह होना चाहिये था कि उपद्रव की रोकथाम की जाती परन्तु परिणाम उलटा ही निकला। शहर भर में मारकाट आरम्भ हो गयी। २२ मई के प्रातः काल तक मृतकों की संख्या २ और घायलों की संख्या २७ तक पहुंच चुकी थी। २२ मई को लगभग ३ बजे जिला मजिस्ट्रेट ने पुलिस के साथ आर्य सत्याग्रह कार्यालय में जाकर यह आदेश दिया कि १२ घण्टे के अन्दर-अन्दर यह शिविर खाली कर दिया जाय। कारण पूछने पर मजिस्ट्रेट ने बतलाया कि यह हुक्म अन्तिम है। रात को २ बजे की ट्रेन से शिविर से सम्बन्ध रखने वाले सब लोगों को रेल द्वारा शोलापुर से चले जाना चाहिए। साढ़े छः बजे इसी आशय की लिखित आज्ञा भी आ गयी। तब तक बैंक बन्द हो चुके थे। उपद्रवों के कारण शहर का कारोबार बन्द सा ही था। आर्य नेताओं ने अपनी कठिनाइयां सामने रखकर मजिस्ट्रेट से कुछ मोहलत मांगी परन्तु वह टस से मस न हुआ। लाचार होकर रात के समय शिविर खाली कर दिया गया।

इस घटना से देश भर में बहुत विक्षोभ पैदा हो गया। बाहर के लोगों को यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत हुई कि शोलापुर में मुस्लिम लीग का अधिवेशन तो हो जाने दिया गया परन्तु आर्यसमाज के शिविर को खाली करा दिया गया। इस सारे काण्ड की तहकीक़ात करने के लिए महाराष्ट्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने एक जाच कमेटी नियुक्त की, जिसके सदस्यों में श्री शंकरराव देव और राव साहब पटवर्धन जैसे सम्भ्रान्त जन-नेता भी शामिल थे। उस कमेटी ने शोलापुर में छानबीन करके जो रिपोर्ट प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी को दी, उसमे उत्तेजना उत्पन्न करने अथवा साम्प्रदायिक विरोध फैलाने के दोष से आर्यसमाज को सर्वथा मुक्त करते हुए जिला मजिस्ट्रेट के नादिरशाही व्यवहार को आपत्तिजनक बतलाया गया था। शोलापुर बम्बई में है। अन्त मे बम्बई प्रान्त की सरकार ने हस्तक्षेप किया और जिला मजिस्ट्रेट को शिविर बन्द करने की आज्ञा वापिस लेनी पड़ी। इधर आर्यसमाज अपने शिविर को शोलापुर से उठाकर मनमाड ले गयी। उसके पश्चात् सत्याग्रह वहीं से चलता रहा।

सर सिकन्दर हयात खां के सब प्रयत्न व्यर्थ हुए। पंजाब में सत्याग्रह के आन्दोलन की प्रगति शिथिल होने के स्थान पर और अधिक तीव्र हो गई। रोहतक, कैथल आदि कई स्थानों पर मुसलमानो ने हैदराबाद जाने वाले सत्याग्रहियों पर छुटपुट हमले भी

किए। परन्तु उनका परिणाम विपरीत ही हुआ। सत्याग्रह के लिए स्वयंसेवकों की भर्ती का वेग प्रतिदिन बढ़ता गया और आर्यसमाज से बाहर के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की सहानुभूति आर्य सत्याग्रह के साथ गहरी होती गई। कुछ अन्य रियासतों में भी निजाम की मानरक्षा के लिए आन्दोलन-विरोधी आज्ञाएं जारी की गई। उनकी भी वही गति हुई जो सर सिकन्दर हयात खां की आज्ञाओं की हुई थी। उन्होंने धर्म-यज्ञ की अग्नि में आहुति बनकर उसे प्रचण्ड करने का ही काम किया।

दसवाँ अध्याय

जेलों में अत्याचार

आर्य सत्याग्रह के आरम्भ होने के समय से ही निजाम के सलाहकारो ने यह घोषणा कर दी थी कि यदि ऐसा कोई कदम उठाया गया तो रियासत की सरकार उसे सारी शक्ति लगा कर कुचल देगी। संसार के सभी तानाशाहो का यह विचार रहता है कि प्रजा के असतोष का एकमात्र इलाज यह है कि लाठी से असंतोष का सिर फोड़ दिया जाय। यदि उनके सामने ऐसे ऐतिहासिक दृष्टान्त उपस्थित किये जायें जिनमें लाठी के प्रहार से असतोष मरने की जगह अधिक उग्र हो गया था तो उनका उत्तर होगा कि वे लोग जिनके प्रयत्न निष्फल होते रहे, मूर्ख थे। मैं ऐसी चतुराई से लाठी का प्रहार करूगा कि असंतोष सदा के लिए शान्त हो जाएगा। न जाने कितने युगों से अभिमानी शासक ऐसे भाव प्रकट करते आये है और सदा समय की मार खाते रहे हैं। निजाम ने भी यदि ऐसा सोचा तो कोई आश्चर्य की बात नही। निजाम की जेलों मे सत्याग्रहियो के साथ जो दुर्व्यवहार किये गये उनका विवरण हम सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के संगृहीत विवरणो से उद्धृत करते है।

आर्य सत्याग्रहियो के जेल मे पहुचने पर अधिकारी सबसे पहला काम तो यह करते थे कि उन्हे अपने नेताओं से अलग कर देते थे। प्रायः नेता और स्वयंसेवक अलग-अलग जेलो में और यदि यह सम्भव न हो तो अलग-अलग वार्डों में रखे जाते थे, ताकि वे परस्पर मिलकर परामर्श न कर सकें और एक दूसरे की दशा से परिचित न हो सकें।

अधिकारियो का दूसरा प्रयत्न यह होता था कि सीधे-सादे स्वयंसेवकों से क्षमा-पत्रो पर हस्ताक्षर कराये जायें। इस कार्य के लिए कई हथकण्डे बरते जाते थे। सबसे पहले सत्याग्रही को अलग ले जाकर यह कहा जाता था कि अन्य बहुत से सत्याग्रहियो ने माफी माग ली है, तुम भी मांग लो। माफी माग लोगे तो तुम्हें भी छोड़ दिया जायेगा। यदि इतने से काम न चला तो उसे धमका कर हस्ताक्षर लेने का यत्न किया जाता था। इन हथकण्डों के कुछ दृष्टान्त बहुत मनोरजक है :--

श्री रामलाल वल्द मोहनलाल (आर्य सत्याग्रही) के बारे मे रियासत के आदमियो ने यह अपवाद फैला दिया कि उसने गुलबर्गा जेल मे क्षमा मांग ली है और कहा है कि आर्यसमाजी मुझे धोखा देकर जेल मे ले आये। जब श्री रामलाल को यह पता चला तो उसने २७-४-३९ के 'दिग्विजय' में इस झूठी अफवाह का खडन प्रकाशित करा दिया।

निजामाबाद जेल में सत्याग्रहियों को बहकाने का एक यह भी ढंग निकाला गया था कि पुलिस वालों को सत्याग्रहियो का वेश पहनाकर जेल मे छोड़ देते थे। ये लोग सत्याग्रहियों को क्षमा मांगने की प्रेरणा करते थे और उन्हें दिखाने के लिए क्षमा मांग कर जेल से बाहर चले जाते थे।

श्री मदनलाल जी बुरहानपुर निवासी को जेल के मोहतमिम ने अपने बंगले पर बुलाकर कहा कि तुम बीमार हो, अपने घर चले जाओ। श्री मदनलाल ने बंगले से लौटकर मोहतमिम को एक चिट्ठी भेजी, जिसमें लिखा--"जनाबआली, निवेदन है कि मै पहले से किसी हद तक अब अच्छा हूं और जेल से छूटना अपने धर्म का अपमान समझता हूं। मुझे जेल से मुक्त न किया जाय। यदि आपने मुझे जबरदस्ती छोड़ दिया तो मैं दुबारा सत्याग्रह करूंगा।"

जब बहकावट और धमकी निष्फल हो जाती थी तब जबर्दस्ती अंगूठे लगवाने का उपाय बर्ता जाता था। श्री गुरलिंगप्पा और श्री राघोबा ने, जो १७ अप्रैल १९३९ को ३८ अन्य सत्याग्रहियों के साथ लातूर जेल में रखे गये थे, अपने वक्तव्य में कहा था, हमें हाली (आधा आना) गरम करके दागने की तैयारी की गई और अन्य घोर कष्ट देकर बलपूर्वक माफीनामे पर अंगूठे लगवाये गये। उसके पश्चात् हमें पुलिस ने वारसी का टिकट दिलवाकर रेल में बिठा दिया।

कहीं-कहीं साम्प्रदायिक भेद भावना से लाभ उठाने का यत्न किया जाता था। श्री विद्याप्रकाश सत्याग्रही उस्मानाबाद जेल मे कैद थे। उन्होंने हस्तलिखित बयान मे बतलाया कि क्योंकि मैं जैनी हूं, इसलिए जेल में एक जैनी भाई को लाकर उस द्वारा मुझे क्षमा मागने के लिए प्रेरित किया गया परन्तु मैने क्षमा न मांगी। तब मुझे मोटर में बिठाकर उदगीर ले जाया गया और वहां के जैनियों से, मुझे क्षमा मांगकर जेल से छूट जाने की प्रेरणा कराई गई। जब मैंने इस पर भी क्षमा न मांगी तो मुझे यह कहा गया कि कम से कम इतना तो लिख दो कि यहां पर जैन धर्म पर कोई अत्याचार नहीं। मैंने ऐसा लिखने से भी मना कर दिया। इस पर पीटा गया और २५ मई की रात को शोलापुर के जंगल में छोड़ दिया गया।

जब इन हथकण्डों से सफलता प्राप्त होती दिखाई न दी और सत्याग्रह का वेग बढता ही गया तब रियासत ने यमदण्ड हाथ में लिया। १० अप्रैल को जेल व पुलिस विभाग के इन्सपैक्टर जनरल मि० हालिन्स ने जेलों का दौरा किया। अनुमान लगाया गया है कि हैदराबाद की जेलों में सत्याग्रहियों के साथ जो कठोरता और नृशंसता का व्यवहार हुआ वह उस दौरे का ही परिणाम था। सत्याग्रह के आगे बढ जाने पर जेलों मे स्थान कम हो गया। उस कमी को पूरा करने के लिए जो कठोरता दिखाई गई, उसे तो जेल वालो की नरम से नरम कठोरता कहा जा सकता है। राजगुरु पं० धुरेन्द्र शास्त्री के जत्थे को यह कहकर कड़ी धूप में और खुले स्थान पर ठहराया गया कि जेल में स्थान की कमी है। बाद में उन्हें टीन के छोटे-छोटे झोपड़ों में स्थान दिया गया, जो गरमी में जला करते थे। महाशय कृष्ण जी के जत्थे को एक टूटे-फूटे गन्दे अस्तबल में ठहराया

गया, जहां भोजन-पानी की भी कोई व्यवस्था न थी। औरंगाबाद की जेल में सत्याग्रहियों को २४ घंटे तक भोजन न दिया गया। पीने के पानी की कमी असह्य थी। स्नान और कपड़े धोने की व्यवस्था का तो कोई प्रश्न ही नही था। इन असह्य कठोरताओं से तंग आकर औरंगाबाद के सत्याग्रहियों ने जब आवाज उठाई तो उसका उत्तर लाठी चार्ज से दिया गया। कई सत्याग्रही भयानक रूप से घायल हो गये। जिनमें से श्री एल० बी० भोपटकर की अवस्था बहुत चिन्ताजनक हो गई। जब ये सब समाचार जेल से निकल कर समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए तब देश भर में हाहाकार मच गया। औरंगाबाद के लाठी काण्ड की तहकीकात करने के लिए श्रीयुत एम० एस० अणे स्वयं औरंगाबाद गये। हैदराबाद की जेलो की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए यहां हम उस वक्तव्य का मुख्य भाग उद्धृत करते है, जो उन्होने छानबीन करने के पश्चात् समाचार-पत्रों में दिया था---

"यह जानकर कि श्री एल० बी० भोपटकर की अवस्था जेल में चिन्ताजनक है, मै उनसे मिलने के लिए औरंगाबाद आया। मेरी इच्छा अन्य सत्याग्रहियों से भी मिलने की थी। केसरी के श्री बी० डी० गोखले, अनाथ विद्यार्थी गृह के श्री केलकर और श्री भोपटकर के पुत्र भी मेरे साथ थे। १२ जून की प्रातः ६।। बजे हम लोग औरंगाबाद पहुंचे। वहा मै औरंगाबाद के कुछ वकीलों तथा प्रतिष्ठित नागरिको से मिला। वहां मै यह जानकर निश्चिन्त हुआ कि श्री भोपटकर की हालत चिन्ताजनक नहीं है। वहीं पर मुझे यह समाचार मिला कि ७ व ८ जून को अनेक सत्याग्रही बन्दियो पर लाठी प्रहार किया गया था, जिसके फलस्वरूप बहुत से सत्याग्रहियों के चोटें आयी थीं। यह आक्रमण जेल के अधिकारियों के हुक्म से हुआ था। घायलों में श्री धोंधू माया साठे का नाम विशेष रूप से लिया जा रहा था। उन्हें इतनी सख्त चोटें आई थीं कि वे बिना दूसरे की मदद के उठ भी नहीं सकते थे। यह भी बताया गया कि उन्हें जेल की कोठरी से हस्पताल पहुंचाया गया है।

"१२ जून को अदालत में कुछ सत्याग्रहियों के मामलो की सुनवाई मजिस्ट्रेट के सामने थी। हम सब भी वहां गये। अदालत के बरामदे में लगभग २० सत्याग्रहियों को बैठे देखा। हमें यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उनमें से कितने ही हथकड़ी-बेड़ी पहने थे। इनमें से श्री शंकरराव दाते बी० ए० तथा श्री बायल एल एल० बी० को मैंने तथा श्री गोखले ने चटपट पहचान लिया। दोनों ही अभियुक्त अत्यन्त सभ्य, सुशिक्षित और सज्जन है। मै सपने में भी नहीं सोच सकता था कि उन्होंने कोई ऐसा दुर्व्यवहार किया होगा जिससे उन्हें हथकड़ी-बेड़ी डालने की आवश्यकता हुई होती। यह सजा उन २५ सत्याग्रहियो को ही दी गई थी, जिनका स्वास्थ्य अन्य सत्याग्रहियों से अच्छा था। यहा पर मैंने लाठी प्रहार की कुछ अधिक खबरें प्राप्त की।

"५ जून को महाशय कृष्ण के साथ ७०० सत्याग्रही गिरफ्तार किये गये थे। इतने व्यक्तियों के एकाएक आ पहुंचने से जेल के अधिकारी घबरा गये और उनके लिए रहन-सहन और भोजन की व्यवस्था करना कठिन हो गया। इनको पहले तो एक सराय

में ठहराने का प्रबन्ध किया गया । सराय को जेल बनाकर जैसे-तैसे ठहराने का प्रबन्ध तो कर दिया, मगर इतने कैदियों के भोजन की व्यवस्था वे न कर सके । कहा जाता है कि गिरफ्तार हो जाने के ३० घंटे बाद उनको ज्वार की सिर्फ आधी-आधी रोटी दी गई । इसके विरुद्ध असंतोष होना स्वाभाविक था । असंतोष फैला तो जेलर ने मुंह बन्द करना चाहा । उसे सफलता नहीं मिली । इस पर वह झल्ला उठा । उसने पुलिस को लाठी चलाने की आज्ञा दी । पुलिस ने हाथ खोलकर लाठियां चलाईं और बाद में घायलों को घसीट-घसीट कर कोठरियों में बन्द कर दिया गया । यहां यह कह देना आवश्यक है कि नया जेलर अनुभवहीन है और व्यवहारकुशल नही है । यह कुछ दिन पहले ही यहां बदल कर भेजा गया है । यह घटना ८ जून की है । ७ जून को श्री धोंधू माया साठे आदि कई बन्दियों ने जेल अधिकारियों से यह शिकायत की कि उन्हें पानी यथेष्ट नही मिलता और पाखाने कई दिन से साफ नहीं किये गये । जेल अधिकारी पहले ही घबराए हुए थे । यह नई शिकायत सुनकर और बौखला उठे । उनका मुंह लाठी से बन्द करने का हुक्म उन्होंने सिपाहियों को दिया । खूब लाठियां बरसाई गई । श्री साठे बुरी तरह घायल हुए । अगले दिन उन्हें हस्पताल पहुंचाया गया । यह भी पता चला कि सत्याग्रहियों को दी गई रियायतें भी वापिस ले ली गई ।

"ताल्लुकेदार से आज्ञा प्राप्त करके मैं महाशय कृष्ण तथा श्री भोपटकर से जेल में मिलने के लिए गया । ताल्लुकेदार सभ्य व्यक्ति है । जब हमने उसे यह बताया कि कितने ही अभियुक्तों को भी हथकड़ी-बेड़ी डाल दी गई हैं, तो वह अचम्भे में पड़ गया । उसने कहा कि मैं फौरन हथकड़ी-बेड़ी उतारने का हुक्म भेजता हूं । जब हम श्री भोपटकर व महाशय कृष्ण से मिले, तब महाशय जी ने हमें यह बताना शुरू किया ही था कि उन्हे दिन भर भोजन नहीं मिला है कि पास खड़े हुए जेल कर्मचारी एकाएक घबरा उठे और उन्होंने हमारी मुलाकात वही रोक दी । इसलिए हम लोग उनसे सिर्फ ५ मिनट मिल सके ।

"हमे यह भी पता चला कि अभियुक्तों के मामले देर से निबटाये जाते हैं । जान-बूझकर देर लगाई जाती है । इन सब हालात को देखते हुए मैं हैदराबाद सरकार को कुछ सलाहें देना आवश्यक समझता हूं । मैंने देखा कि :—

"१. सत्याग्रही कैदियों को रहने की व्यवस्था सर्वथा असंतोषजनक है ।

२ जेलों में कर्मचारियों की सख्या बहुत कम है । इसलिए लाठी प्रहार आदि की दुर्घटना हो जाती है ।

३. औरंगाबाद जेल का नया जेलर उस पद के अयोग्य है । यदि वह कुछ भी समझदारी से काम लेता तो ७–८ जून का लाठी प्रहार न हुआ होता ।

४. जेल के अधिकारी लाठी-काण्ड से कतई इन्कार करते है, लेकिन सवाल यह है कि श्री साठे को इतनी चोटें कैसे लगी ?

५. एक जेल अधिकारी इस मामले का कारण कुछ दूसरा ही बतलाता है ।

उसका कहना है कि इस लाठी प्रहार का मूल कारण भोजन आदि की शिकायत नहीं, बल्कि सत्याग्रही कैदियों की जानबूझकर की हुई शरारत है।

६ मेरी राय में सिविल सर्जन द्वारा उन सत्याग्रहियों की जांच कराई जावे, जिन्हे लाठी प्रहार से जख्मी हुआ बताया जाता है।

७. श्री सुनहरा की मृत्यु बड़ी संदिग्ध अवस्था में हुई है। कहा जाता है कि उनके शव पर चोटो के चिह्न थे। अब तक जो दस मौतें जेलों मे हो चुकी है, वे सब रहस्यपूर्ण है। कहा जाता है कि सभी के जिस्म पर चोटों के घाव व निशान थे।

८. ब्रिटिश सरकार का कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रजा की रक्षा का प्रबन्ध करे। चाहे कैदी ही क्यों न हों, मगर उन्हें एक आधीनस्थ रियासत मे इस तरह जलील न होने दे। मै वायसराय महोदय से निवेदन करता हूं कि वे इस मामले मे हस्तक्षेप करें और हैदराबाद पर जोर दे कि वह इस मामले की एक निष्पक्ष कमेटी से जांच कराये।

वक्तव्य समाप्त करने से पूर्व मै जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट आदि अधिकारियों का धन्यवाद करता हू कि उन्होंने मुझे कैदियो से मिलकर बातचीत करने की अनुमति प्रदान की।"

प्रायः सभी सत्याग्रही सुशिक्षित और मध्यम सामाजिक श्रेणी के थे। जेल के कर्मचारी उन्हे बात-बात में मां-बहन की गालियां देते थे और यदि इस पर आपत्ति उठाई जाती तो उन्हे डबल गंजी और कोड़ों से पीटा जाता था। सत्याग्रहियों को कभी-कभी दण्ड के रूप में शौचालय साफ करने का काम भी दिया जाता था।

जेल के गन्दे वातावरण और यन्त्रणाओ का यह प्रभाव हुआ कि अधिकांश सत्याग्रही बीमार पड गये। बीमारों की चिकित्सा का प्रबन्ध अत्यन्त निराशाजनक था। जिस जेल मे रोटी-पानी तक का कष्ट हो, वहां उचित परिचर्या क्या हो सकती थी। हैदराबाद की जेलो में सैकड़ों सत्याग्रही आन्त्र-ज्वर, विषम ज्वर, पेचिश आदि रोगों से रोगी हो गये। परन्तु उनकी चिकित्सा और परिचर्या का कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं किया गया। परिणाम यह हुआ कि अनेक सत्याग्रही रोगी होकर समाप्त हो गये। हैदराबाद सत्याग्रह में जिन वीरों ने अपने शरीरों का बलिदान किया उनकी सूची इस भाग के अन्त में परिशिष्ट के रूप में दी गयी है। मारपीट से जिन आर्यवीरों की मृत्यु हुई, वे उन वीरों से अलग थे, जिनकी रोग के कारण मृत्यु हुई। हैदराबाद सरकार इन सभी मृत्युओं के लूले-लंगडे स्पष्टीकरण देती रही परन्तु उसके वे स्पष्टीकरण किसी को धोखा न दे सके। आर्य सत्याग्रह की घटनाओं ने सारे संसार के सामने प्रकट कर दिया कि निजाम का निष्पक्षपातता का दावा केवल एक ढोंग है।

जहां एक ओर निजाम सरकार के स्पष्टीकरण बाह्य संसार को धोखे में न डाल सके, वहां वे आर्यसमाज को भी न डरा सके। ज्यों-ज्यों अत्याचार बढ़ते गये, सत्याग्रह की ज्वालाएं प्रचण्ड होती गईं।

निजाम की जेलों के अत्याचारों और उनके कारण होने वाली आर्यवीरों की मृत्युओं के समाचारों ने केवल देश की जनता में ही विक्षोभ उत्पन्न नहीं किया, भारत और इंगलैण्ड की धारा-सभाओं के भवनों में भी प्रतिध्वनि उत्पन्न की। कुछ भारतीय सदस्यों ने केन्द्रीय असेम्बली में हैदराबाद की स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न किए तो सरकार ने यह कहकर टाल दिया कि यह विषय रियासतों से सम्बन्ध रखता है, इस कारण भारत सरकार इसमें दखल नहीं दे सकती, क्योंकि आन्तरिक प्रबन्ध में रियासतें स्वतन्त्र हैं। इंगलैण्ड की पार्लियामेंट में, इस विषय में जो प्रश्न किये गये, उनसे विदेशों के लोकमत का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। विलायत के 'मानचेस्टर गार्जियन', नामक पत्र में हैदराबाद की नागरिक अधिकार समिति के मन्त्री श्री वामनकर और प्रधान श्री सुब्बाराव की ओर से हैदराबाद की शासन नीति की कड़ी आलोचना से पूर्ण एक लेख प्रकाशित हुआ था। उससे विलायत में आर्य सत्याग्रह के विषय में विशेष दिलचस्पी उत्पन्न हो गई थी।

कर्नल वेजवुड ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में कर्नल म्यूरहैड से पूछा कि क्या वे बता सकते हैं कि हैदराबाद रियासत में धार्मिक और नागरिक स्वाधीनता के लिए जारी किए गये आन्दोलन के सिलसिले में गत ६ महीनों में कैद किये गये कैदियों की संख्या कितनी है? क्या सरकार उन कैदियों की अवस्था और उनके साथ किये गये व्यवहार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेगी?

कर्नल म्यूरहैड—सम्भवतः यह प्रश्न सत्याग्रह आन्दोलन के बारे में है। अब तक की रिपोर्ट के अनुसार, मई मास के अन्त तक गिरफ्तारियों की संख्या पांच हजार है। कैदियों के साथ किये जाने वाले व्यवहार की आलोचना करना हमारी अधिकार-सीमा के अन्दर नहीं है।

कर्नल वेजवुड—ये कैदी हमारे सीधे अनुशासन से सम्बन्ध रखते हैं। क्या यह सम्भव नहीं कि इस समय इन जेलों में जो अवस्थाएं हैं, उनकी विशेष रूप से जांच की जा सके?

कर्नल म्यूरहैड—लार्ड जटलैण्ड का विचार है कि अब तक ऐसी कोई अवस्था उत्पन्न नहीं हुई, जिससे इस मामले को विशेष जाच का विषय बनाया जासके। फिर भी सरकार हैदराबाद के रेजीडेण्ट के साथ इस विषय में पत्र-व्यवहार कर रही है।

कर्नल वेजवुड—क्या इसका यह अर्थ माना जाय कि गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट के पास होने के पश्चात् हम रियासतों की सरकारों को अत्याचार करने से रोकने का कोई अधिकार नहीं रखते?

कर्नल म्यूरहैड—मैं ऐसा नहीं समझता कि गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट का ऐसा अभिप्राय हो सकता है।

कर्नल म्यूरहैड के उत्तरों से कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न होने की आशंका थी। इस कारण सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री की ओर से भारत मन्त्री लार्ड

जैटलैण्ड के नाम एक लम्बा तार भेजकर गम्भीर परिस्थिति से परिचित कराया गया। परन्तु उसका कोई विशेष परिणाम न हुआ। इंगलैण्ड की सरकार ने अपनी उदासीन वृत्ति को छोड़ना उचित न समझा। सार्वदेशिक सभा की ओर से पार्लियामेंट के अनेक भारत-हितैषी सदस्यों के नाम भी सभा के मन्त्री की ओर से हैदराबाद की परिस्थिति के बारे मे विस्तृत समाचार भेजे गये। उन तारों का इंगलैण्ड में जो प्रभाव हुआ, उसका अनुमान मिस्टर डी० आर० ग्रेनफेल, एम० पी० के 'मैन्चेस्टर गार्जियन' मे प्रकाशित निम्नलिखित पत्र से लगाया जा सकता है।

महाशय,

"१० जुलाई को भारत सरकार के सहायक मन्त्री लेफ्टिनेंट कर्नल म्यूरहैड ने हैदराबाद रियासत की औरंगाबाद जेल में हिन्दू कैदियों के साथ किए गये दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में उठाये गये मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था कि लार्ड जटलैण्ड क्राउन के प्रतिनिधि के साथ इस इस विषय में गहरा विमर्श कर रहे है। उस समय तक वे इस बात के मानने को सहमत न थे कि विशेष जांच के लिए आधार बन चुका है।

"उनके उक्त उत्तर से मुझे सन्तोष न हुआ था। मेरे पास निम्नलिखित तार आया है, जो यह सिद्ध करता है कि रियासत के अधिकारी अपने अधिकारों का कहा तक दुरुपयोग कर रहे हैं। तार निम्नलिखित है--

"मेरी जांच ने मुझे इस विश्वास पर पहुंचाया है कि आर्य सार्वदेशिक सभा एक यथार्थ प्रतिनिधि और प्रभावशाली संस्था है। इस तार के साथ-साथ हैदराबाद में 'आर्य-समाज का वक्तव्य' नामक एक पुस्तिका भी मैंने देखी है। मैंने प्रसिद्ध हिन्दू नेता और भारतीय गोलमेज परिषद् के प्रतिनिधि श्री एन० सी० केलकर का वह वक्तव्य भी देखा है, जो उन्होंने एक समाचार-पत्र के प्रतिनिधि को दिया है।

"इन प्रकाशनों के अनुसार निजाम के प्रबन्ध में हैदराबाद रियासत के एक करोड़ बीस लाख हिन्दू विधिपूर्वक सताये जा रहे हैं। यह स्पष्ट है कि हैदराबाद के हिन्दुओं को नागरिक स्वाधीनता के अत्यन्त साधारण उपहारों तथा भाषण की स्वाधीनता, प्रेस, सभा और धर्म आदि से वंचित किया जा रहा है।

यदि निश्चित किया हुआ विवाह का दिन मुसलमानी उत्सव के दिन आ पड़े तो एक हिन्दू को अपना विवाह करने का भी अधिकार नही है। मानक नगर के मन्त्री के नाम पुलिस इन्सपैक्टर का एक पत्र यहां उद्धृत करता हू :--

"मुझे खबर लगी है कि इशराशरीफ (मुसलमानी उत्सव) के महीने मे तुम्हारे क्षेत्र में एक विवाह हुआ है, जो सरकारी आज्ञाओं के विरुद्ध है। यदि यह सच है तो तुमने इसे क्यों नहीं रोका ? उस आदमी का नाम और पता मालूम करो ताकि उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सके।"

"सरकारी आज्ञाओं के विरुद्ध"--यह वाक्य इस बात को स्पष्ट करता है कि उक्त सब-इन्सपैक्टर पुलिस अपनी सरकार की प्रचलित नीति का ही अनुसरण कर रहा था। ऐसी अवस्थाओं के होते हुए हैदराबाद रियासत के प्रबन्ध के बारे मे तत्काल जांच किये जाने के लिए किसी अन्य प्रमाण की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।"

भवदीय

१८ जुलाई। डी० आर० ग्रेनफेल

आठवें सर्वाधिकारी—श्री विनायक राव विद्यालंकार

२३ जून १९३९ के दिन सत्याग्रह के सातवें सर्वाधिकारी पं० ज्ञानेन्द्र भूषण गिरफ्तार हो गये। पूर्व निश्चय के अनुसार उनके पश्चात् बैरिस्टर विनायकराव विद्यालंकार आठवें सर्वाधिकारी घोषित किये गये।

इससे पूर्व हैदराबाद मे आर्यसमाज की प्रगति के प्रकरण में पं० विनायकराव जी की चर्चा आ चुकी है। आप रियासत में आर्यसमाज के संस्थापक पं० केशवराव जी के सुपुत्र हैं। पण्डित केशवराव जी हाईकोर्ट के जज होने के अतिरिक्त निजाम के विश्वासपात्र सलाहकारों मे से थे। यह उनके विश्वास की दृढता का प्रमाण था कि वे निजाम के विश्वासपात्र अधिकारी होते हुए भी आर्यसमाज के कार्य में अग्रसर होते न घबराते थे। जब महात्मा मुन्शीराम जी ने पहले-पहल गुरुकुल की स्थापना का प्रस्ताव लेकर प्रतिज्ञानुसार तीस हजार की राशि पूरी करने के लिए देश का दौरा लगाया, तब उन्हें हैदराबाद मे निमंत्रित करके धन-संग्रह कराने की हिम्मत आप ही ने की थी। अपने जीवन काल मे आप नरेश और प्रजा दोनो के हितकर्ता और प्रेमपात्र बने रहे। आपके नेतृत्व में आर्यसमाज का काम दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता रहा। यह हैदराबाद के सौभाग्य की बात थी कि पं० केशवराव जी अपने पीछे जो उत्तराधिकारी छोड़ गये वह भी अपने पिता का सुयोग्य पुत्र था।

श्री विनायक राव विद्यालकार

पं० विनायकराव जी गुरुकुल विश्वविद्यालय कागड़ी के विद्यालंकार हैं। गुरुकुल की शिक्षा समाप्त करके आप इगलैण्ड गये और बैरिस्टर बनकर वापिस आये। देश में आकर आपने जहा एक ओर वकालत का काम शुरू किया वहां साथ ही आर्यसमाज और रियासत के अन्य सार्वजनिक कार्यों में अपने पिता की प्रवृत्तियों मे सहयोग देने लगे। हैदराबाद के कार्यकर्ता प्रारम्भ से ही यह अनुभव करने लगे थे कि विनायकराव जी में वे सब गुण प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं, जिनकी एक सार्वजनिक नेता में आवश्यकता होती है। विचारों में दृढता, व्यवहार में कुशलता और स्वभाव में शान्ति—ये गुण तो आपमें हैं ही। इन सबके अतिरिक्त जो बहुत दुर्लभ गुण आप मे है, वह है आपकी सचाई। आपसे सम्बन्ध रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह विश्वास रखता है कि राव जी की वाणी या कार्य मे छल नहीं है। एक सार्वजनिक कार्यकर्ता की यह सबसे बडी सम्पत्ति है।

कुछ ही वर्षो में हैदराबाद मे पं० विनायकराव जी की वही स्थिति बन गयी जो पं० केशवराव जी की थी। वे राजा और प्रजा दोनो के सम्मान-पात्र बन गये। रियासत की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान के नाते से आर्यसमाज के सर्वमान्य नेता तो आप थे ही, रियासत की अन्य नैतिक, सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तियो मे भी आप प्रमुख कार्य करने वाले नेता माने जाते थे। यह परिस्थिति थी, जब निजाम की सरकार ने आर्यसमाज का दमन प्रारम्भ किया। उसके आरम्भ से सातवें सर्वाधिकारी की गिरफ्तारी तक का वृत्तान्त हम सुना चुके हैं। उस वृत्तान्त मे इतना जोड़ना बाकी है कि सत्याग्रह के संगठन का जो चक्र घूम रहा था, उसका केन्द्र बिन्दु पं० विनायकराव जी का निवास स्थान था। सब युद्ध-मंत्रणायें वही होती थीं, आपत्तिग्रस्त स्वयंसेवक वही रक्षा पाते थे और जब सुलह की बातचीत आरम्भ हुई तब भी वही स्थान था जहां महत्व-पूर्ण निश्चय किये गये। यह सब कुछ था और रियासत के अधिकारी भी उसे जानते थे। परन्तु विनायकराव जी की व्यक्तिगत और सार्वजनिक प्रतिष्ठा के कारण अधि-कारियों को उन पर हाथ डालने का साहस नही हुआ। सत्याग्रह आरम्भ होने से पूर्व एक बार शहर के मुसलमान गुण्डों ने यह घोषणा करके कि सारे फिसाद की जड़ राव जी ही हैं, उनके मकान पर धावा बोल दिया था। अकस्मात् वे घर मे नही थे। उपद्रवी लोग घर को लूटने और परिवार के लोगों को कष्ट देने के मनसूबे बना ही रहे थे कि पुलिस का अंग्रेज कप्तान अकस्मात् वहां जा पहुंचा और परिस्थिति को संभाल लिया। उपद्रवकारियों का यह प्रयत्न भी व्यर्थ हुआ। पं० विनायकराव जी यथापूर्व सत्याग्रह के संचालन मे मुख्य भाग लेते रहे।

जून के अन्तिम सप्ताह में विनायकराव जी ने सर्वाधिकारी के रूप में आर्य-सत्याग्रह की बागडोर अधिकृत रूप में अपने हाथों में ली। उस समय सत्याग्रह पर्याप्त वेग से चल रहा था। उसे और भी अधिक वेगवान् बनाने के लिए राव जी (पं० विनायक राव जी---हैदराबाद में वे राव जी के नाम से प्रसिद्ध हैं) ने भारत भर का दौरा करने का निश्चय किया। पहली जुलाई को आप हैदराबाद से चलकर दिल्ली पहुंचे। दिल्ली में आपका शानदार स्वागत हुआ। सायंकाल के समय सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें आपने हैदराबाद की समस्या का वास्तविक रूप बड़ी स्पष्टता से समझाया। आपके उस भाषण की दिल्ली के उन समाचार पत्रों पर भी बहुत अच्छी प्रतिक्रिया हुई, जो तब तक उदासीन थे। दिल्ली से आप उत्तर प्रदेश का दौरा प्रारम्भ करने के लिए सबसे प्रथम अपनी कुलमाता गुरुकुल में गये। वहां आपने गुरुजनों से आशीर्वाद प्राप्त किया और छात्रों को पहले जत्थे की सफलता पर बधाई देते हुए प्रोत्साहित किया। वहां से आप मुजफ्फरनगर आदि अनेक नगरों में गये और सत्याग्रह के लिए उत्साह जागृत करने के साथ धन-संग्रह भी करते रहे। इस दौरे में आपके संग प्रिंसिपल देवीचन्द्र एम० ए०, पं० कालीचरण जी, पं० शिवदयालु जी और 'दिग्विजय' के सम्पादक श्रीकृष्ण विद्यार्थी भी रहे।

इस दौरे में राव जी ने संयुक्त प्रान्त के सभी बड़े-बड़े नगरो में व्याख्यान दिये। २१ स्थानों पर आपका स्टेशनों पर स्वागत किया गया। सार्वजनिक सभाओं में दिये

गये भाषणों की सख्या ३० थी। सत्याग्रह के लिये दिल्ली और उत्तर प्रदेश से आपको १६,५०० रुपया प्राप्त हुआ। कई स्थानों पर आपका जलूस हाथियों पर निकाला गया। हिन्दू जनता हैदराबाद के नेता के दर्शनों के लिए बहुत ही उत्सुक थी।

पं० विनायकराव जी के सफल दौरे के दो परिणाम हुए। एक ओर आर्य जनता का यह विश्वास और अधिक दृढ़ हो गया कि हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह को सफलता अवश्य मिलेगी और दूसरी ओर निजाम सरकार के पांव लड़खड़ा गये। जिन दिनों राव जी उत्तरीय भारत में घूमकर सत्याग्रह का सन्देश सुना रहे थे, उन दिनों अहमदनगर के केन्द्रीय शिविर में १२०० नये सत्याग्रही आगे बढ़ने के लिए तैयार खड़े थे और चारो ओर से सत्याग्रहियो के नये जत्थों के आगमन के समाचार पहुच रहे थे। इसी समय अजमेर से श्री पं० जियालाल जी ने दूसरी 'सत्याग्रही स्पेशल ट्रेन" भेजने की योजना बनाई जिसका नाम "देवेन्द्र स्पेशल" रखा गया। उसके लिए सिकन्दराबाद गुरुकुल के आचार्य श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री, तथा अजमेर के श्री डा० सूर्यदेव शर्मा एम०ए०, डी०लिट० और कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्र जी का एक डेपूटेशन एक मास तक राजस्थान और संयुक्त प्रान्त में घूमता रहा, जिसने ३०० से अधिक सत्याग्रही तथा धन स्पेशल ट्रेन के लिये तैयार किये। स्पेशल ट्रेन जुलाई के आरम्भ में अजमेर से रवाना हुई। उस समय बाहर की दुनिया ने आश्चर्य से देखा कि शत्रु के किले में से सुलह की सफेद झंडी दिखायी दे रही है।

'महकम-ए-उमूर-ए-मजहबी' के निज पत्र 'वक्त' ने अपने ७ जुलाई १९३९ के अंक में लिखा था कि प० विनायकराव जी बैरिस्टर सत्याग्रह नहीं करेंगे। चूँकि २२ जुलाई से पहले ही निजाम सरकार आर्य समाज की मांगें स्वीकार कर लेगी।"

रियासत के एक कट्टर इस्लामी अखबार मे इस भविष्यवाणी का निकलना इस बात का चिह्न था कि हैदराबाद के कर्णधार अपने पक्ष की निर्बलता को अनुभव करने लग गये हैं। उन्होंने सब उपाय बरत लिये, झूठे आश्वासनों की लोरियो से सुलाकर देख लिया, हिन्दू संस्थाओं और हिन्दू महन्तों के सामने सोने के ढेर लगाकर दान-उपाय का प्रयोग कर लिया, आर्यो से सनातनधर्मियों को फोड़ने की भी बहुत चेष्टा की। जनता में अफवाहें तो यहां तक फैल गयी थीं कि सत्याग्रह के कई कट्टर समर्थक समाचार-पत्रों को हिस्सों तथा विज्ञापनों के बहाने से पुष्कल धनराशि देकर फोड़ने की चेष्टा की गई और अन्तिम उपाय--दण्ड--का प्रयोग तो खुले-बन्दो किया गया। दमन का कोई साधन बाकी न छोड़ा गया। रोकने के उपाय समाप्त हो रहे थे और उधर हैदराबाद के ही एक प्रमुख नागरिक द्वारा देश में यह घोषणा की जा रही थी कि निजाम रियासत की नीति धार्मिक पक्षपात से पूर्ण होने के कारण आर्य-हिन्दू धर्म के लिए अत्यन्त हानिकारक है। अंग्रेजी सरकार ऊपर से यह घोषणा करती हुई भी कि हम रियासतो में हस्तक्षेप नहीं कर सकते, हैदराबाद रियासत की जेलो के सम्बन्ध मे किये आरोपों की गुप्त रूप से तहकीकात करा रही थी। यही सब कारण थे जिन्होंने निजाम की अभिमानी सरकार को झुकने के लिए बाधित कर दिया। सर अकबर हैदरी, जो कल तक सत्याग्रह को दबाने का दृढ संकल्प कर रहे थे, एकाएक सुलहपसन्द राजनीतिज्ञ के रूप में रंगमंच पर प्रगट हुए।

सत्याग्रह की सफल समाप्ति

जुलाई मास के मध्य से ही देश में यह चर्चा छिड़ गयी थी कि निजाम सरकार आर्यसमाज से सुलह करने के लिए कोई कदम उठाने वाली है। यह बात भी प्रसिद्ध हो गई थी कि देश के कई प्रमुख नेता, जिनमें महात्मा गांधी और श्रीमती सरोजिनी नायडू के नाम भी लिये जाते थे, निजाम पर और सर अकबर हैदरी पर समझौता करने के लिए जोर डाल रहे हैं। नेताओं की प्रेरणा का सहारा लेकर निजाम सरकार ने अपनी स्थिति की निर्बलता पर पर्दा डालते हुए १७ जुलाई को एक घोषणा प्रकाशित की। उस घोषणा के कुछ भाग निम्नांकित हैं :—

"निजाम सरकार मजहबी मामलों में ब्रिटिश सरकार की इस नीति को स्वीकार करती है कि शान्ति और नियंत्रण की साधना के लिये यह आवश्यक है कि बिना किसी भेदभाव के सबको धार्मिक विचार रखने और उसके अनुसार कार्य करने की पूर्ण स्वाधीनता हो। रियासत में इस सम्बन्ध में जो कानून प्रचलित हैं, उनका उद्देश्य धार्मिक अधिकारों के मूलभूत सिद्धान्त पर प्रतिबन्ध लगाना नहीं है प्रत्युत जनता में शान्ति को सुरक्षित करना है। सरकार के सामने ऐसा एक भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया जा सकता, जिसमें भेदभाव की नीति के कारण किसी स्कूल की स्वीकृति रोक ली गई हो या अस्वीकृत स्कूल बनाने के कारण मामला चलाया गया हो।"

आगे चलकर इस घोषणा में बतलाया गया था कि निजाम सरकार ने जो सुधार-कमेटी स्थापित की थी, उसकी रिपोर्ट आ गई है। उस कमेटी ने सिफारिश की थी कि नागरिक स्वतन्त्रता उचित सीमा तक देनी चाहिए। विरोधी भावनाओं में सन्तुलन रखने और जनता के जीवन की प्रगति को अविच्छिन्न रखने के लिए यह आवश्यक है कि बोलने और लिखने की स्वतन्त्रता पर कुछ नियन्त्रण लगाया जाय। यह नियन्त्रण दो प्रकार के होंगे—सामान्य अवस्था में उनका रूप दंड का होगा और असाधारण अवस्था में प्रतिबन्धात्मक होगा।

अन्त में यह घोषणा की गई थी कि उक्त सिफारिशों को स्वीकार करके निजाम सरकार ने तत्सम्बन्धी विद्यमान कानून को रद्द कर दिया है, भविष्य में जो कानून बनेगा, उसमें प्रत्येक राजनीतिक अथवा सार्वजनिक सभा के लिए पहले आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक न होगा। उनकी केवल अधिकारियों को सूचना दे देनी होगी। यदि स्थानीय अधिकारियों के मतानुसार उन्हें किसी सभा से राजद्रोह अथवा साम्प्रदायिक विद्वेष द्वारा सार्वजनिक शान्ति के भंग होने की आशंका हो तो उन्हें उसी सभा पर प्रतिबन्ध

लगा देने का अधिकार होगा। यदि स्थानीय अधिकारियों द्वारा किसी सभा पर लगाई गई रोक की सूचना समय पर न पहुंचे तो कोई भी सार्वजनिक सभा की जा सकती है। लगाये गये प्रतिबन्ध के विरुद्ध सभा के संयोजक को सरकार से अपील करने का अधिकार है। सभा की सूचना देने से सम्बन्ध रखने वाले नियम ऐसे होंगे जो सुगम हों और आसानी से पालन किये जा सकें। सरकार को आशा है कि दोनों सम्प्रदाय ऐसा यत्न करेंगे कि नये कानून का दुरुपयोग न किया जाय।

नये बनने वाले कानून का समुचित रूप से पालन हो और उससे उत्पन्न होने वाले नये-नये प्रश्नों का संतोषजनक ढंग पर निबटारा हो सके, इस उद्देश्य से एक ऐसी कमेटी बनाने का विचार प्रकट किया गया था जिसमें दोनों सम्प्रदायों के ऐसे सदस्य हों, जो दोनों के विश्वासपात्र हों। दोनों सम्प्रदायों का उस कमेटी में समान प्रतिनिधित्व होगा।

इस घोषणा की आर्यसमाज और सम्पूर्ण हिन्दू समाज पर वैसी प्रतिक्रिया हुई जैसी प्रतिक्रिया की रियासत के अधिकारियों को आशा थी। सामान्य रूप से यह समझा गया कि निजाम सरकार अपने तानाशाही रवैये को छोड़कर समझौता करने को तैयार हो गई है। यों घोषणा पत्र में बहुत सी अस्पष्ट बातें थीं। शब्दों के जाल में अपनी पराजय को छिपाने का काफी प्रयत्न किया गया था। भविष्य के बारे में जो कुछ कहा गया था उसमें निकल भागने की काफी गुंजाइश रखी गयी थी। तो भी अभिप्राय स्पष्ट था कि हैदराबाद की सरकार झुकने को तैयार है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त ने तत्काल अपने केन्द्रों को निम्नलिखित आदेश भेज दिये——

१. सत्याग्रहियों के जो जत्थे जहां हैं, वे वहीं ठहर जावें। न आगे बढ़ें और न विच्छिन्न हों।
२. जब तक दूसरा आदेश प्रकाशित न हो, तब तक तैयारी में कोई न्यूनता न आने पावे।

परिस्थिति पर विचार करने के लिए सार्वदेशिक अन्तरंग सभा का अधिवेशन बुलाया गया। घोषणा पत्र के जो अंश संदिग्ध या असंतोषजनक थे, उनके स्पष्टीकरण के लिए सभा प्रधान की ओर से निजाम सरकार के प्रधान मंत्री सर अकबर हैदरी के पास पत्र-तारादि भेजे गये। इससे पहले निजाम सरकार की यह नीति थी कि वह ऐसे व्यक्तियों को जो रियासत की प्रजा न हों, इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार करने का अधिकारी नहीं मानती थी, अब उसने अपनी नीति में परिवर्तन कर दिया। सभा-प्रधान के तार और पत्रों के उत्तर तुरन्त मिलने लगे।

२४ जुलाई १९३९ को सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा का विशेष अधिवेशन हुआ। सभा-प्रधान तथा सर हैदरी में जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसकी रोशनी में रियासत के घोषणा-पत्र पर दो दिन तक गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया। अन्त में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ——

"इस सभा ने हैदराबाद रियासत के १७ जुलाई के वक्तव्य तथा उस सुधार-योजना को पढ़ा है, जो उनके १३४८ फसली के असाधारण गजट में प्रकाशित हुई है और जिसमें निजाम महोदय का १७-७-३९ का फर्मान भी शामिल है।

"सभा, भाषण और लिखने की स्वतन्त्रता से सम्बन्ध रखने वाले पैरा में, जिसका आर्यसमाज से सीधा सम्बन्ध है, यह उद्घोषित हुआ है कि अन्य कतिपय रियासतों के सदृश सभा-संस्थाओं के निर्माण पर प्रतिबन्ध डालने वाला कोई कानून इस रियासत में नहीं है. ... .इत्यादि-इत्यादि। (यहां कमेटी की सिफारिशें उद्धृत की गयी है।)

"निजाम महोदय ने अपने फर्मान में सूचना दी है कि कौंसिल की सिफारिश को स्वीकार कर लिया गया है। यह फर्मान लोगों को यह विश्वास दिलाने के लिए निकाला गया है कि रियासत के आर्यसमाजी तथा अन्य प्रजाजनों को सभा करने, संस्था स्थापित करने--यथा आर्यसमाज स्थापित करने तथा चलाने--का अबाधित अधिकार होगा। आर्यसमाज तथा दूसरी संस्थाओं को सार्वजनिक उत्सव करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी साथ ही इस सम्बन्ध मे प्रतिबन्ध लगाने वाले सब नियम रद्द कर दिये जायेंगे।

"यह होते हुए भी सन्देह प्रगट किये गये है कि क्या इस घोषणा के अनुसार वे नियम भी रद्द हो जावेंगे, जो राज्य में धार्मिक अनुष्ठानों पर पाबन्दियां लगाते है। अतः धार्मिक अनुष्ठानों से सम्बन्धित वर्तमान नियमों से, जिनका स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया है, इन सन्देहों की कुछ पुष्टि होती है--अतः इस सभा की सम्मति मे स्थिति का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

"सलाह-समिति (एडवाइजरी कमेटी) के सम्बन्ध में सभा की यह दृढ़ सम्मति है कि जिस प्रकार के धार्मिक, सांस्कृतिक और मौलिक अधिकारों के लिए आर्यसमाज आन्दोलन (सत्याग्रह युद्ध) कर रहा है, वे जांच का विषय नही बनाये जाने चाहिएं। ऐसी सलाह-समिति के द्वारा तो उनकी जाच होनी ही नही चाहिए, जो रियासत के एक विभाग (प्रत्यक्षतः महकमा-ए-उमूर-ए-मजहबी) के साथ जुडी हो और जिसे विभाग को केवल गुप्त सूचना (रिपोट) देने का अधिकार हो।

"अतः यह सभा अपने माननीय प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त से प्रार्थना करती है, जिन्हें पहले से ही पूर्ण अधिकार दिये गये है, कि वे स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए तात्कालिक कार्यवाही करें और समय-समय पर स्थिति जैसी माग करें, वैसा ही करें।

"यह सभा सत्याग्रह समिति को आदेश देती है कि वर्तमान समय मे जत्थे जहां पड़े हुए है, वहां ही ठहरे रहें और आज्ञाओं की प्रतीक्षा करें।"

इस प्रस्ताव के प्रकाशित होने पर सभा की आज्ञानुसार अहमदनगर, खंडवा, मनमाड, येवला, वासीम, चान्दा, बेजवाड़ा, झासी, दिल्ली, लाहौर, मुलतान, बरेली, कलकत्ता आदि केन्द्रों मे ठहरे हुए सत्याग्रही सैनिको के जत्थे जहां थे, वही रुक गये। सत्याग्रही वीरों में यह विचार आम तौर पर फैला हुआ था कि निजाम की घोषणा अधूरी है और अस्पष्ट है, इस कारण वे लोग सत्याग्रह को स्थगित करने के पक्ष में नही

थे। तथापि उन्होंने जिस तत्परता से सभा की आज्ञा का पालन किया, वह उनके संयम और नियन्त्रण की भावना का प्रमाण था। उन्होंने सच्चे सैनिकों के कर्त्तव्य का पालन किया।

स्पष्टीकरण के लिए सर्वप्रथम सभा के कार्यकर्ता प्रधान लाला देशबन्धु गुप्त, एम० एल० ए० (पंजाब) हैदराबाद भेजे गये। उन्होंने पहले जेल में बन्द आर्य नेताओं से बातचीत की और फिर सर अकबर हैदरी से विचार-विनिमय किया। उस बातचीत का परिणाम यह हुआ कि निजाम की ओर से एक दूसरा वक्तव्य प्रकाशित किया गया। वक्तव्य यह था :—

"निजाम सरकार ने अपने १७–७–३९ के वक्तव्य में कुछ मामलों की बाबत अपनी आम स्थिति स्पष्ट की थी, जिसके सम्बन्ध में भ्रम फैला हुआ था। इसके बाद १९ जुलाई को असाधारण गजट निकाला गया, जिसमें सुधार-योजना प्रकाशित की गई थी। इन वक्तव्यों के कुछ अंशो का कई जगहों से स्पष्टीकरण चाहा गया है। इसलिए सर्वसाधारण की सूचना के लिए यह स्पष्टीकरण प्रकाशित किया जाता है कि सभाओं और सोसाइटियों के निर्माण के सम्बन्ध मे वक्तव्य मे कहा गया है कि सुधार-योजना का यह अंश कि इसकी व्यवस्था के लिए कोई कानून नही है, समस्त सभाओ, सोसाइ-इटियो और सम्प्रदायों पर भी लागू होता है; भले ही वे धार्मिक हों या किसी अन्य प्रकार की भी क्यो न हों।"

धार्मिक मामलों के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया था कि "वक्तव्य में मौलिक धार्मिक अधिकारों की पहले ही पुनर्घोषणा की जा चुकी है। इस बारे में बनाई जाने वाली सलाह समिति का सम्बन्ध, जैसा कि असाधारण गजट से जाना जा सकता है, उस रीति-नीति से होगा, जिसके अनुसार कानून और व्यवस्था के हित मे धार्मिक अधिकारों से सम्बन्धित कोई कायदा-कानून बनाया तथा प्रचलित किया जायगा। रिफार्म कमेटी की सिफारिशों पर सरकार ने कोई सुनिश्चित आर्डर नहीं दिया है। सलाहकार समिति की कार्यवाही गुप्त होनी चाहिए कि नही, यह बात इसके लिए बनाये जाने वाले नियमों के लिए छोड दी गई है। ऐसे खास मामले हो सकते है, जिनको गुप्त रखने की जरूरत होगी। साधारणतया सरकारी कार्यवाहियो में सलाहकार समिति की सिफारिशे भी सम्मिलित हुआ करेंगी। यह समिति कानून और व्यवस्था को दृष्टि में रखते हुए उन उपायो की योजना करेगी, जिनसे धार्मिक अधिकार सम्बन्धी किसी कानून और धार्मिक अधिकारो के उचित उपभोग मे समय-समय पर परस्पर समन्वय होता रहे। यद्यपि कोई भी अधिकार कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता, तो भी सरकार की नीति जैसा कि पिछले वक्तव्य में स्पष्ट किया जा चुका है, यह है कि सार्वजनिक शान्ति की रक्षा करते हुए अधिक से अधिक स्वतन्त्रता दी जाय और कायदे-कानूनों को ऐसा बनाया जाय, जिससे जनता को यथासम्भव अधिक से अधिक सुविधा रहे।"

सार्वजनिक और धार्मिक सभाओं के सम्बन्ध मे कहा गया था कि, "उनसे सम्बन्ध रखने वाले नियम अधिक उदार होंगे, यहा तक कि जो धार्मिक सभाये या कृत्य

निजी या सार्वजनिक मकानों के भीतर होंगे, उनके लिए अन्य सार्वजनिक जलसों की तरह सूचना देने की जरूरत न होगी। किसी मकान के साथ घिरी हुई जगह भी इस परिभाषा में आती है। यद्यपि व्यवहार में ऐसी कोई कठिनाई आने की संभावना नहीं है, फिर भी गावो मे इस प्रकार की कठिनाइयां पैदा हो सकती है। इसके लिए मुनासिब नियम बनाये जा सकेंगे।"

धार्मिक जलूसों के बारे में कहा गया था कि, "किसी जाति के धार्मिक जलूसों के सम्बन्ध मे पहले अवसर पर ही आज्ञा लेने की जरूरत होगी और सबका हित इसी में है कि इस बारे में कोई निश्चित व्यवस्था हो, जिससे जलूसों के मार्ग आदि का निर्णय होकर भविष्य में वैसा ही किया जा सके। इस सम्बन्ध मे जारी किये जाने वाले नियमों का उद्देश्य किसी जाति के जलूसों पर केवल इसलिए पाबन्दी लगाना नही कि वे नये है।"

धर्ममन्दिरो या सार्वजनिक उपासना-गृहों के सम्बन्ध में लिखा गया था कि "वर्तमान नियम प्रधानतः उन स्थिर मकानो के बारे मे थे, जो पूजा के लिए प्रयुक्त होते है। यह ठीक है कि जातियो के रिवाज भिन्न-भिन्न होते है। आर्यसमाज का रिवाज इस बात में भिन्न है कि उसके धार्मिक कृत्य, हवन, यज्ञ और सम्मिलित प्रार्थना आदि किराये के निजी मकानों मे भी हो सकती है। इन मकानों की कोई स्थिर पवित्रता नही है। इनमे किसी समय भी साप्ताहिक सत्सगों का होना बन्द हो सकता है। साथ ही ये मकान कालान्तर मे सार्वजनिक उपासना-मन्दिरो का रूप ले सकते है। इस प्रकार के मामलों को हल करने के लिए सरकार यथावसर उचित नियम बनायेगी और इन नियमो से सार्वजनिक शांति के हित मे समाजो की जगह के प्रश्न हल हो जायेंगे। यह बात वर्तमान मन्दिरो पर भी लागू होती है। जब तक कोई जाति किन्हीं मकानों को अस्थायी रूप से धार्मिक सत्संगों के लिए प्रयुक्त करेगी तब तक इन सत्सगो व सभाओं पर धार्मिक सभाओ और अनुष्ठानो का कोई भी नियम लागू न होगा और इनके लिए आज्ञा लेने की जरूरत न होगी परन्तु जो इमारते केवल उपासना के लिए नई बनी होंगी, खरीदी गई होगी अथवा इस कार्य मे प्रयुक्त की जाने लगेंगी, उन पर सार्वजनिक उपासना मन्दिरो पर लागू होने वाले साधारण नियम लागू होंगे। इन नियमों को सहल बनाने के लिए उन पर पहले से ही विचार किया जा रहा है। इस विचार में देरी न हो, इसलिए छः सप्ताह की अवधि भी नियत कर दी गयी है। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, इस सम्बन्ध मे खास बात यह है कि समाज की जगह नियत करते हुए सार्वजनिक शान्ति का ध्यान जरूर रखना होगा। इस पर विचार किया जा रहा है कि होम सेक्रेटेरिएट से इस सम्बन्ध में किस प्रकार अपील की जाय।"

प्राइवेट स्कूलों के खोलने के सम्बन्ध में कहा गया था कि "प्राइवेट स्कूल खोलने के लिए विविध क्षेत्रों से यह सुझाव मिला है कि 'आज्ञा' लेने के स्थान मे 'सूचना' देने से महकमे की आवश्यकता पूरी हो जाएगी। सरकार शीघ्र ही नियमों की आम जांच-पड़ताल करेगी। तब इस पर भी पूरा विचार किया जायेगा।"

बाहर के प्रचारको के बारे में अपनाई जाने वाली नीति को इन शब्दों में स्पष्ट

किया गया था कि "यह फिर दुहराया जाता है कि ऐसी आज्ञायें केवल तब तक जारी रहेंगी, जब तक कि वातावरण साफ नहीं हो जाता। सरकार को पूर्ण विश्वास है कि यह संतोष-जनक स्थिति निकट भविष्य में ही उत्पन्न हो जायेगी।"

निजाम का यह फर्मान उस समय पहुंचा जब सत्याग्रह के सम्बन्ध मे विचार करने के लिए सार्वदेशिक अन्तरंग सभा का अधिवेशन नागपुर मे हो रहा था। अधिवेशन के बीच में सभा-प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी के हाथ मे एसोसियेटेड प्रेस का वह तार पकड़ाया गया, जिसमें निजाम के फर्मान का समाचार था। थोडी देर में लाला देश-बन्धु गुप्त ने भी सभा में पहुंच कर उस सारी बातचीत का विवरण सुनाया जो उनमें और रियासत के अधिकारियों में हुई थी। देर तक विचार होता रहा। कुछ सदस्यों को निजाम के घोषणापत्र के शब्दों और उसके असली अभिप्राय के सम्बन्ध मे शंकाएं थीं। उन्हें लाला देशबन्धु गुप्त के दिये हुए विवरण ने शान्त कर दिया। अन्त मे अन्तरंग सभा ने निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया---

"निजाम सरकार की, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा उठाये गये मुद्दों का खुलासा करते हुए प्रकाशित की गई विज्ञप्ति को और खास कर उस खुलासे मे निहित समझौते की भावना को देखते और उन सम्माननीय मित्रों और शुभेच्छुकों की राय का सम्मान करते हुए, जिनकी राय और जिनके सहयोग को सभा बहुत मूल्यवान् समझती है, सभा सत्याग्रह को जारी रखना उचित नही समझती और उसको बन्द करने की घोषणा करती है। सभा सत्याग्रह-समिति को आदेश देती है कि वह विभिन्न स्थानो पर उपस्थित जत्थों को भग कर दे।

"सभा की राय में उक्त खुलासे में निजाम सरकार द्वारा उन मांगों को जिनके लिए सत्याग्रह शुरू किया गया था, पूरा करने का ईमानदारी से प्रयत्न किया गया है। सभा ने निजाम के इरादे पर पूर्ण रूप से विश्वास करते हुए और उन घोषणाओ की उदार व्याख्या के आधार पर सत्याग्रह को जारी न रखने का आदेश देने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है। निजाम सरकार को चुनौती देने, उसका विरोध करने अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाने के इरादे से आर्य सत्याग्रह शुरू नहीं किया गया था। आन्दोलन का एकमात्र उद्देश्य धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना था।

"आर्य जनता के मूल्यवान् त्याग का सर्वोत्तम परिणाम हो, इसलिए सभा की राय में आर्यो और इतर हिन्दुओ के लिए, विशेषकर उनके लिए, जो निजाम राज्य में रहते है, अब और अधिक आवश्यक है कि वे आत्म-संयम से काम ले और सच्ची धार्मिक भावना के साथ-साथ सत्य और अहिंसा का धार्मिक कठोरता के साथ पालन करें।

"सत्याग्रह युद्ध के समय भारत के समाचार पत्रो द्वारा स्वेच्छापूर्वक जो सहायता दी गई है, उसको सभा कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करती है। सभा को पूर्ण विश्वास है कि भविष्य मे भी धार्मिक स्वतन्त्रता के पक्ष को उनका मूल्यवान् समर्थन सदा ही प्राप्त होता रहेगा।

"सभा उन लोगों के प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करती है, जिन्होने आन्दोलन की धन व अन्य प्रकार से सहायता की है। सभा भारत व विदेशों के सब आर्यो की ओर से उन शहीदों के प्रति अपनी सम्मानपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पण करती है, जिन्होंने वैदिक धर्म के लिए अपने प्राण उत्सर्ग किये हैं।

"सभी सर्वाधिकारियों और अन्य सत्याग्रहियो को, जिन्होने कि वैदिक धर्म के लिए सब प्रकार के कष्ट सहे और हैदराबाद की जेलों मे कठोर जेल-जीवन बिताया, बधाई देती है। इस धर्मयुद्ध को सफल बनाने के लिए आर्यसमाजियो, हिन्दुओं, सिक्खो, तथा अन्यों ने जो सहायता प्रदान की है, उस पर सभा पूर्ण सन्तोष प्रकट करती है। आन्दोलन का मूल्यवान् नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन करने के लिए सभा लोकनायक श्री बापू जी अणे के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

"यहा आये हुए आर्य प्रतिनिधिगण सत्याग्रह आन्दोलन को सफलतापूर्वक समाप्ति तक पहुंचाने के लिए श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त और लाला देशबन्धु जी गुप्त द्वारा की गई मूल्यवान सेवाओं की सराहना करते हुए उनके प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।"

तेरहवा अध्याय

बधाइयां और स्वागत

सत्याग्रह की सफल समाप्ति पर सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा को और आर्य समाज को चारों ओर से बधाई-सन्देश पहुंचने लगे। महात्मा गांधी ने हरिजन में लिखा—

"आर्य सत्याग्रह का अन्त मीठा हुआ। इस युद्ध के सम्बन्ध में मैंने एक अक्षर भी नहीं लिखा। मुझे यह प्रश्न ऐसा नाजुक प्रतीत हुआ कि मैंने सार्वजनिक रीति से उसकी चर्चा करना ठीक नही समझा।..........परन्तु इसका यह अर्थ नहीं था कि इस सत्याग्रह के सम्बन्ध में मेरी कोई ममता ही न थी। आर्यसमाज के नेताओं तथा हैदराबाद से थोड़ा बहुत सम्बन्ध रखने वाले मुसलमान मित्रो से मेरा बराबर विचार-विनिमय होता रहा। इस सम्बन्ध में मौलाना अबुल कलाम आजाद के मशवरे पर चलता रहा हूं। आर्यसमाज की मांगों के लिए मुझे सहानुभूति थी। वे मांगें साधारण और जन्मसिद्ध अधिकारों से सम्बद्ध थी। मैं अपने दृष्टिकोण से आर्य सत्याग्रह के पक्ष में नहीं था। अपने इस दृष्टिकोण के हेतु मैंने उन्हे बता दिये थे। परन्तु उनका सत्याग्रह मेरे सत्याग्रह की अपेक्षा यदि अधिक अच्छा नही तो अधिक बुरा भी नहीं हुआ। इस प्रकार मैं निरुत्तर हो गया.............आर्य सत्याग्रह स्नेहभाव से स्थगित किया गया, इसके लिए मुझे व्यक्तिगत रूप से बड़ा संतोष है। स्नेहभाव से ही इस समस्या के हल हो जाने पर मैं निजाम सरकार और आर्यसमाज दोनों का अभिनन्दन करता हूं।"

पं० जवाहरलाल नेहरू ने निम्नलिखित शब्दो मे अपना भाव प्रगट किया था —

"मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि हैदराबाद मे आर्य सत्याग्रह की यह लम्बी और दुःखद दास्तान समाप्त हो गई है। इसमें आर्यसमाज को अपनी धार्मिक मागों की पूर्ति के लिए बहुत भारी त्याग और कष्ट झेलना पड़ा है। वे मागे अपने आप इतनी स्पष्ट थीं कि इनके विरोध में कही गई किसी बात में भी सहज विश्वास नही किया जा सकता। ये मागे धार्मिक स्वतन्त्रता से सम्बन्ध रखती है और यहा तक कि मेरे जैसे आदमी भी, जिन्हें धार्मिक मामलो में इतनी दिलचस्पी नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति के अपने धार्मिक विचारों के अनुसार जीवन व्यतीत करने की पूरी स्वाधीनता में विश्वास रखते हैं।.......बहुत से लोगो ने राजनीतिक कारणों को लेकर हैदराबाद सत्याग्रह का विरोध किया था। परन्तु हमने ठीक समझकर ही कहा था कि धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जा रहा सत्याग्रह ठीक है। ऐसे दुःखद काण्ड के संतोषपूर्ण हल पर आर्यसमाज और हैदराबाद सरकार दोनों ही धन्यवाद के पात्र है।"

डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने सभा-प्रधान श्री घनश्यामसिंह गुप्त को लिखा था--

"हैदराबाद में आर्यसमाज को धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए सत्याग्रह करना पड़ा, यही आश्चर्य की बात थी। परन्तु जिस खूबी और संयम के साथ आपने उस सत्याग्रह का संचालन किया, वह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है। लोगों को कष्ट हुए और कुछ लोगों की जेल में मृत्यु भी हुई, परन्तु त्याग के बिना कोई काम सिद्ध नहीं होता। सत्याग्रह की सफलता तभी समझी जाती है जब दोनों पक्षों को बधाई का मौका मिले। आज मुझे दोनों पक्षो को बधाई देने में हिचकिचाहट नहीं है। आर्यसमाज अपने त्याग, कार्यदक्षता एवं संयम के लिए और हैदराबाद राज्य उन मांगों की न्यायानुकूलता को मानकर स्वीकार करने के लिए बधाई के हकदार हो जाते हैं।"

सेठ जमनालाल बजाज ने सभा-प्रधान को एक पत्र में लिखा था--

"जयपुर में बन्दी रहते हुए भी हैददाबाद के आर्य-सत्याग्रह की खबरों को ध्यान-पूर्वक पढ़ता रहा। मुझे तो ताज्जुब और हैरानी रहती थी कि आर्यसमाज को धार्मिक और सास्कृतिक आजादी के लिए भी इतनी बड़ी कुर्बानी करनी पड़ी। इसकी मुझे खुशी है कि आखिर आर्यसमाज की बाते स्वीकार हुईं। इस युद्ध को इतने त्याग, कुशलता और संयम के साथ चलाने के लिए आपके जरिये मैं आर्यसमाज को हार्दिक बधाई देता हू। यदि निजाम सरकार आर्यसमाज की इन मांगों को पहले ही स्वीकार कर लेती तो बहुत अच्छा होता। इतनी कुर्बानी न होती और इसके कारण कहीं-कहीं जो हिन्दू-मुसलमानों के बीच वैमनस्य पैदा हुआ वह भी न होता।"

लोकमान्य अणे आर्य सत्याग्रह के साथ प्रारम्भ से ही सम्बद्ध थे। शोलापुर के जिस आर्य सम्मेलन में सत्याग्रह की घोषणा की गयी थी, उसके अध्यक्ष आप ही थे। सत्याग्रह के दिनो में भी आप निरन्तर रियासत की गतिविधि पर नजर रखते रहे। आपने सत्याग्रह स्थगित होने पर जो वक्तव्य दिया था, उसके अन्त में आपने कहा था:--

"मै अन्त मे उन सब हिन्दू और सिखों को बधाई देता हूं, जिन्होंने धार्मिक अधिकारों के लिए इतने कष्ट झेले है, और इस संघर्ष को ऐसी शानदार सफलता और सम्मान-पूर्ण समझौते मे समाप्त करने का प्रयत्न किया है।"

सेठ जुगलकिशोर बिड़ला ने श्री घनश्यामसिह जी गुप्त के तार के उत्तर में निम्नलिखित आशय का तार दिया --

"तार मिला। धन्यवाद। हार्दिक बधाई। मुझे आशा है, आपके सारे मुद्दे प्राप्त हो गये और आप पूरी तरह सन्तुष्ट हो गये है। राजनीतिक अधिकारो की दृष्टि से काश्मीर के मुसलमानो की तुलना मे हिन्दुओं को कुछ भी नहीं मिला है।"

भैनी साहब लुध्याना के सद्‌गुरु प्रताप सिह जी महाराज ने सत्याग्रह की समाप्ति का समाचार सुनकर कहा था--

"आर्यसमाज की यह ऐसी शानदार जीत है, जिस पर समस्त धार्मिक जगत् सदैव गर्व करता रहेगा।"

देश भर से सार्वदेशिक सभा के कार्यालय मे पहुचने वाले सैकड़ों बधाई-सन्देशों में से चुने हुए ये कुछ सन्देश है। इनके अतिरिक्त प्रायः सभी राष्ट्रीय और हिन्दू समाचार-

पत्रों ने सत्याग्रह की सफल समाप्ति पर संतोष प्रकट किया और आर्यसमाज को बधाई दी। इसके साथ ही अधिकतर समाचारपत्रो ने आर्यसमाज की मागो को स्वीकार कर लेने के कारण निजाम सरकार को भी बधाई दी।

सत्याग्रह के स्थगित होने पर जेलों से आर्यवीरो की रिहाई आरम्भ हो गई। एक-एक करके सर्वाधिकारी भी छोड़े जाने लगे। उस हर्ष के समय विजय के उन्माद मे आकर आर्य जनता कोई भूल न कर बैठे इस सम्भावना से सभा के प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी ने आर्यजनों के नाम एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमे कहा गया था कि "हैदराबाद का सत्याग्रह अपने धार्मिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति का सविनय विरोध था। आर्यो की मुसलमानों से कोई लड़ाई नही है, वह ऐसा कोई अधिकार नही चाहते जो अन्यो को प्राप्त न हो। अब सत्याग्रह समाप्त हो चुका है। आशा है कि निजाम रियासत में दोनों सम्प्रदायों मे परस्पर मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जायेंगे। यह आनन्द का विषय है कि लगभग आठ मास के पश्चात् परमेश्वर के अनुग्रह से आर्य सत्याग्रह के बन्द करने का अवसर प्राप्त हुआ है। फिर भी यह किसी तरह के प्रदर्शन करने अथवा आनन्द मनाने का अवसर नहीं है। हमें तो इस समय अत्यन्त नम्रतापूर्वक भगवान के अदृश्य चरणों में झुककर यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हम महर्षि दयानन्द सरस्वती के महान् कार्य को चलाने के योग्य बन सके। इस कारण मै समस्त आर्यों से कहना चाहता हू कि वे प्रसन्नता मनाने के लिए कोई जलूस आदि न निकालें......सत्याग्रहियों के लौटने पर स्थानीय आर्यसमाजें उनका सम्मान करने के लिए सार्वजनिक सभाये तो करें परन्तु जलूस न निकाले और भाषण भी कम से कम हों। भाषण मे हैदराबाद के कष्टो के वर्णन का प्रसंग न आना चाहिए। भाषणों मे आपत्तिजनक बातें बिलकुल न कही जाये। सच तो यह है कि यदि संभव हो तो भाषण सर्वथा बन्द कर देने चाहिएं।"

सभा-प्रधान के इस आदर्श सन्देश का शब्दशः पालन तो कठिन ही था, क्योकि भाषणों के बिना सभा होना सम्भव नही था और स्टेशनों पर स्वागत करने के लिए जो भीड़ इकट्ठी होती थी वह अनायास ही जलूस का रूप ले लेती थी। तो भी इसमे सन्देह नहीं कि आर्य जनों ने प्रधान के आदेश के आशय का पूर्ण रूप से पालन किया। निजाम सरकार तथा मुसलमानों के विरुद्ध नारे लगाने या आक्षेपजनक भाषण देने के सम्बन्ध में कोई भी शिकायत प्राप्त नहीं हुई। स्वागतसम्बन्धी समारोह में सभी स्थानों पर जो जोश दिखाया गया वह स्वाभाविक था।

८ अगस्त को नागपुर में सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा ने सत्याग्रह स्थगित करने का निश्चय किया था। अगले दिन वह निश्चय समाचारपत्रों में प्रकाशित हो गया। हैदराबाद सरकार को उसकी विधिपूर्वक सूचना भी दे दी गई। स्वाभाविक तो यह था कि सत्याग्रह के स्थगित हो जाने के आधार पर ही सब सत्याग्रही मुक्त कर दिये जाते। परन्तु हैदराबाद की सरकार ने इसमें शायद अपनी कुछ कानूनी हैठी समझी और १७ अगस्त को यह निमित्त बनाकर कैदियों को मुक्त किया कि वह हजूर निजाम का जन्म दिन है, इस प्रसन्नता मे कैदी रिहा किये जाते हैं। सामान्य नियम यह है कि जब किसी कैदी को जेल से छोड़ा जाय तो उसे घर तक पहुंचने का किराया और खुराक का खर्च

दिया जाय । निजाम के बारे में यह प्रसिद्ध था कि वह जितना अधिक धनी है, उतना ही अधिक कंजूस भी है । निजाम सरकार ने भी अपने स्वामी की पद्धति का अनुसरण करते हुए मुक्त हुए आर्यवीरों को घर तक का किराया देने से इन्कार कर दिया । इस पर बहुत से आर्यवीर बड़े सकट में पड़ गये । सार्वदेशिक सभा की ओर से तत्काल सर अकबर हैदरी को तार दिया गया और श्रीमती सरोजिनी नायडू से भी तार द्वारा प्रार्थना की गई कि निजाम सरकार को समझाये । चारों ओर से जोर पड़ने पर रियासत की सरकार को झुकना पड़ा । आर्यवीरो को किराये दिये गये और वे घरों की ओर चल दिये ।

यों तो देश के सभी प्रान्तो में प्रसन्नता प्रगट करने और स्वागत करने के लिए अनेक आयोजन हुए, परन्तु इनमें से शोलापुर, मनमाड, हैदराबाद, बम्बई तथा दिल्ली के स्वागत समारोह बहुत ही शानदार और महत्वपूर्ण हुए । जेल से छूटकर महात्मा नारायण स्वामी, कुंवर चांदकरण शारदा, लाला खुशहालचन्द 'खुरसन्द' तथा अन्य सर्वाधिकारी ट्रेन से शोलापुर पहुंचे । ट्रेन के शोलापुर पहुचने के पहले ही स्टेशन पर विशाल भीड़ एकत्रित थी । गाड़ी के पहुचने पर हजारों जनकंठों ने 'वैदिक धर्म की जय', 'महर्षि दयानन्द की जय', 'आर्य समाज चिरंजीवी हो', आदि जयघोषों से सबका स्वागत किया । शोभा-यात्रा का शहर के मुख्य-मुख्य बाजारों में सजे हुए तोरणो और पुष्पमालाओं से अभिनन्दन किया गया । सायकाल के समय सार्वजनिक सभा हुई जिसमें श्री नारायण स्वामी जी तथा अन्य सर्वाधिकारियो के भाषणों के पश्चात् उन सत्याग्रही शहीदों के लिए स्मृतिरूपी श्रद्धांजलि समर्पित की गई, जिन्होंने हैदराबाद की जेलों में प्राण समर्पित किये थे ।

उसी दिन महाशय कृष्ण जी और पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार हैदराबाद से मनमाड पहुंचे । वहां उन दोनों नेताओं का भव्य स्वागत किया गया ।

उसी दिन हैदराबाद की हिन्दू जनता बैरिस्टर विनायक राव जी विद्यालंकार तथा स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का हार्दिक अभिनन्दन कर रही थी । सायंकाल जो सभा हुई, उसमें २५ हजार की उपस्थिति का अनुमान लगाया गया था । हैदराबाद के निवासी यह अनुभव कर रहे थे कि मानों उनकी छाती पर से कोई बहुत भारी पत्थर उठ गया हो । सभा मे उपस्थित लोगो का उत्साह उस विशाल उत्साह का प्रतीक मात्र था, जो सारी रियासत में अनुभव किया जा रहा था ।

१९ अगस्त को सब सर्वाधिकारी मिलकर बम्बई पहुंचे । यहां भी स्टेशन पर बहुत उत्साहपूर्ण स्वागत हुआ । नगर के अनेक सम्भ्रान्त व्यक्ति पुष्पमालाओं के साथ उपस्थित थे । सायंकाल के समय चौपाटी के मैदान में विराट् सभा हुई, जिसमें श्री नारायण स्वामी जी ने तथा अन्य सर्वाधिकारियों ने सत्याग्रह की सफलता के लिए परमात्मा का धन्यवाद किया और आर्य जनता को बधाई दी ।

बम्बई से यह दल २२ अगस्त को दिल्ली पहुंचा । नयी दिल्ली और दिल्ली दोनों स्टेशनों पर हजारों की भीड़ ने स्वागत में भाग लिया । स्टेशन के बाहर बैण्ड बज रहा था । सर्वाधिकारी दो मोटरों में बैठकर नगर की ओर रवाना हुए तो उनके आगे और पीछे

लगभग बीस हजार व्यक्तियों का समूह था। यद्यपि सभा-प्रधान ने घोषणा-पत्र द्वारा जलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था तो भी अनायास जलूस बन गया. जिसमें सार्वदेशिक सभा के प्रधान तथा .अन्य अधिकारियों को भी सम्मिलित होना पड़ा । जलूस हार्डिंग लायब्रेरी के पास से होता हुआ आजाद मैदान में पहुंचा, जहां विराट् सभा की गई। प्रारम्भ मे सभा-प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी ने नेताओं का अभिनन्दन करते हुए कहा--
"सम्माननीय स्वामी जी, अन्य सर्वाधिकारीगण तथा सत्याग्रही भाइयो, आप लोगो का अपने बीच मे स्वागत करते हुए मैं उस आनन्द को शब्दों से पूरी तरह प्रकाशित नहीं कर सकता, जिसका मै अनुभव कर रहा हूं। आपके दृष्टांत उन सहस्रो आर्यों तथा हिन्दुओं को, जिन्होने इस धर्म युद्ध मे बलिदान किया और अपने आन्दोलन को उच्च वातावरण तक पहुंचाया, उत्साह मिला। हममे से जो लोग जेल से बाहर रहे आपके बलिदानो के लिए यथोचित रूप से धन्यवाद देने के अधिकारी नही है। एक बड़ी बात, जो समस्त भारत के लिए लागू होती है, यह है कि इस पवित्र युद्ध में जिन साधनों का प्रयोग किया गया वे सत्य और पवित्र थे। इस दिशा में आपके दृष्टान्त ने अन्य सब सत्याग्रही भाइयों का मार्ग प्रदर्शन किया। राजनीतिक नेताओं में से बहुत से लोगो को यह विश्वास नही होता था कि हम सत्याग्रह के उच्च आदर्शों के अनुसार चल सकेंगे। परन्तु आपके नेतृत्व में हमारे सैनिको ने अन्तिम क्षण तक सत्य और पवित्रता की जो उच्च भूमि बनाये रखी, उससे आर्यसमाज का गौरव बहुत बढ़ गया है।"

अन्त में श्री गुप्त जी ने कहा कि "मै बड़े चाव से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था जब मै आप लोगो के साथ जेल मे सम्मिलित हो सकूं परन्तु भगवान् की कृपा और ऋषि दयानन्द द्वारा प्राप्त उत्साह के कारण आप लोगो के प्रयत्न इतने थोड़े समय में ही सफल हो गये।"

श्री महात्मा नारायणस्वामी जी ने स्वागत का उत्तर देते हुए कहा--"वे लोग जिन्होंने कभी सत्याग्रह आन्दोलन मे भाग लिया है, अच्छी तरह जानते हैं कि जेलों से बाहर रहकर सत्याग्रह आन्दोलन को चलाने वाले लोगो को जेल में बन्द हो जाने वालों की अपेक्षा अधिक काम करना पड़ता है। हमारे सत्याग्रह में भी यही सत्य दीख रहा है। यदि जेल से बाहर रहकर भी अपने कर्त्तव्यो का पालन इतने उत्साह और लगन के साथ न किया होता तो हमारा सत्याग्रह इतनी जल्दी समाप्त न हो सकता। मुझे यह कहते अभिमान का अनुभव होता है कि उन सब भाइयों ने, जो प्रायः अनिच्छा-पूर्वक अपने निश्चय के विरुद्ध जेलो से बाहर रहे, अपने कर्त्तव्यों का अत्यन्त प्रशंसनीय रूप में पालन किया।"

उसी दिन सायंकाल गांधी मैदान में एक सार्वजनिक सभा हुई। उपस्थिति पचास हजार से कम न थी। सारे मैदान में मनुष्यों के सिर ही सिर दिखाई देते थे। श्री घनश्याम सिह गुप्त सभापति निर्वाचित हुए। सार्वदेशिक सभा के मन्त्री प्रो० सुधाकर जी ने सार्वदेशिक सभा की ओर से सर्वाधिकारी महानुभावों की सेवा में भक्ति और प्रेम के भावो से पूर्ण निम्नलिखित अभिनन्दन-पत्र पेश किया--

योग्य नेतृगण,

अपने उद्देश्य में सफल होकर जेल से घर को लौटने समय, सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा तथा समस्त हिन्दू (आर्य) समाज की ओर से, इस सांस्कृतिक प्रथाओ से परिपूर्ण ऐतिहासिक नगरी मे, 'जो श्री गुरु तेगबहादुर और श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के पवित्र बलिदानों से पावन हो चुकी है, आपका हार्दिक अभिनन्दन करती है। कृतज्ञता और असीम आनन्द से परिपूर्ण हृदयों से हम आपको सत्याग्रह आन्दोलन के प्रारम्भ होने के पश्चात् इतनी जल्दी अपने अन्दर बैठा हुआ देख, श्रद्धापूर्वक आपके सामने अपने सिर झुकाते है। हमारी सफलता आपके तथा उन हजारो आर्य सत्याग्रहियों के, जो आपके नेतृत्व मे जेलों में गये और उन वीर तथा निर्भय वीरो के, जिन्होंने हैदराबाद में शहीद बनकर अपने अमूल्य जीवनो का विसर्जन किया, महान् बलिदान का फल है।

सम्माननीय सर्वाधिकारी गण,

आपके नेतृत्व मे आर्यसमाज ने इस सत्याग्रह मे सत्य और अहिंसा की जिस अजेय शक्ति का प्रदर्शन किया है, उसने हमारे धर्मयुद्ध को विजय प्रदान की है। आपके नेतृत्व ने हमारे देश के सार्वजनिक जीवन मे आर्यसमाज को एक बार फिर जीवित शक्ति बना दिया है। आपकी तथा अन्य सत्याग्रहियों की इस कष्ट-सहिष्णुता का इतिहास स्वर्णाक्षरों मे लिखा जायेगा।

पूज्य स्वामी जी,

इस वृद्धावस्था में आपका धर्मयुद्ध के लिए प्रस्थान करना हमें उन अतीत दिवसों का स्मरण कराता है जब ऋषि लोग अपने जीवन-शक्ति-रक्त से वैदिक सभ्यता को सिंचित किया करते थे। इस धार्मिक आन्दोलन मे आपके नेतृत्व ने, आर्यसामाजिक क्षेत्रों में जागृति का नवीन संचार कर आश्चर्य उत्पन्न किया है। वे व्यक्ति भी, जो हमारे आन्दोलन की प्रारम्भिक अवस्था में हमसे उदासीन थे, बाद में चौक उठे। उन्होंने हमारे उद्देश्य की उचितता को अनुभव किया और इसे सफल बनाने में सहायता दी। इस सत्याग्रह आन्दोलन ने आर्यसमाज के पहले से ही उद्दीप्त इतिहास में एक और नये देदीप्यमान अध्याय को जोड़ दिया है।

माननीय सर्वाधिकारीगण,

अन्य सत्याग्रहियों के साथ आपके महान् बलिदान ने आर्यसमाज के संसार-व्यापी कार्य को अत्यन्त प्रिय बना दिया है। इसने इसके यश को और भी प्रवृद्ध किया है और इसकी उपयोगिता को कई गुणा बढ़ाया है।

आपकी सेवाओं को स्वीकार करते हुए, इस अवसर पर हम आपके प्रति अपने सौहार्द और सम्मान की यह क्षुद्र भेंट समर्पित करते है।

दिल्ली—२२ अगस्त, १९३९.

हम है आपके,
सार्वदेशिक सभा के सदस्य

अभिनन्दन पत्र के उत्तर में महात्मा नारायण स्वामी जी, महाशय कृष्ण, महाशय खुशहालचन्द 'खुरसन्द', कुंवर चांदकरण शारदा, पं० धुरेन्द्र शास्त्री तथा पं० ज्ञानेन्द्र जी

के भाषण हुए। सभी वक्ताओं ने आर्यवीरों के धर्म-भाव और साहस की प्रशंसा की और आर्यजनों के उत्साहपूर्ण सहयोग का धन्यवाद किया।

दूसरे दिन कम्पनी बाग के विशाल मैदान मे एक बड़ा सहभोज किया गया, जिसमें लगभग तीन हजार व्यक्तियो ने भोजन किया। इस सहभोज के संयोजक पं० सत्यदेव विद्यालंकार और प्रबन्धक बाबा मिलखासिह जी थे। आयोजन बहुत सफल हुआ। सफलता के लिए आयोजनकर्ताओं को सब आर्यजनों की ओर से बहुत-बहुत धन्यवाद दिये गये।

दिल्ली से सर्वाधिकारियों का दल मेरठ में ठहरता हुआ लाहौर पहुंचा। दोनों ही स्थानो पर भव्य स्वागत और अभिनन्दन की योजना की गई थी। अपने-अपने प्रान्तों और स्थानों पर तो प्रायः सभी लौटे हुए आर्यवीरों का उत्साहपूर्ण स्वागत हुआ।

गुरुकुल कांगड़ी के सत्याग्रही ब्रह्मचारियों का जत्था बम्बई और दिल्ली होता हुआ गुरुकुल पहुंचा। यह जत्था बहुत बड़ी परीक्षा मे से निकला था। इस जत्थे के सत्याग्रहियों को रियासत के अधिकारियों ने कई टुकड़ों में बांटकर कठोर जेलों में बन्द कर दिया था। १८ वर्ष का ब्र० रामनाथ जेल के अत्याचारों के कारण अपने प्राण की बलि दे चुका था। इस जत्थे का बम्बई, दिल्ली और गुरुकुल तीनों स्थानो पर हार्दिक अभिनन्दन किया गया। गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन, महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरुकुल भैसवाल, गुरुकुल चित्तौड़गढ़, गुरुकुल विरालसी आदि गुरुकुलों और दयानन्द उपदेशक विद्यालय तथा ब्राह्म महाविद्यालय आदि आर्य संस्थाओ के ब्रह्मचारियो और छात्रों का स्वागत समारोह भी स्थान-स्थान पर सम्पन्न हुआ। इस प्रकार आर्य जनता का साधुवाद लेते हुए आर्य सत्याग्रह के सेनापति तथा सैनिक आठ मास के संघर्ष के पश्चात् अपने-अपने स्थानों पर पहुंच गये।

आर्यसत्याग्रह का सिंहावलोकन

जब सार्वदेशिक सभा की ओर से सत्याग्रह के स्थगित करने की घोषणा की गयी थी तब आर्यसमाज के बहुत से उत्साही सदस्यों का यह विचार था कि सत्याग्रह को स्थगित करने का निश्चय जल्दी में, समय से पूर्व कर दिया गया है। उनके मन में यह आशंका थी कि शायद निजाम सरकार धोखा देकर आर्यसमाज के उत्साह को मन्द करना चाहती है। जिन लोगों ने आर्यसमाज के प्रतिनिधि के तौर पर सुलह की चर्चा में विशेष भाग लिया था वे अनुभव कर रहे थे कि निजाम सरकार सचमुच उस दलदल में से निकलना चाहती है, जिसमें उसने अदूरदर्शिता से अपने आपको फंसा लिया है। एक ओर से अंग्रेजी सरकार मामले को जल्दी समाप्त करने के लिए रियासत की सरकार को दबा रही थी, दूसरी ओर मौलाना आजाद और उनके से विचार रखने वाले राष्ट्रीय मुसलमान नेता सर अकबर हैदरी के पास इस आशय के सन्देश भेज रहे थे कि कोई न कोई सुलह का रास्ता निकालना चाहिए। क्योंकि वे अनुभव करते थे कि कांग्रेस के प्रायः सभी हिन्दू नेताओं की सहानुभूति आर्य सत्याग्रह के साथ थी। इधर रियासत

के अधिकारी देख रहे थे कि आर्यों के सत्याग्रह को दबाने या कुचलने की जितनी चेष्टायें की जाती है, वे सब उसे भड़काने और तीव्र करने का साधन बन जाती है। ये सब कारण थे जिनसे बाधित होकर अगस्त के प्रारम्भ मे रियासत की ओर से फर्मान के रूप मे सुलह की सफेद झंडी खड़ी की गयी थी। उसमे न तो सर अकबर हैदरी की तथा-कथित उदार नीति का कोई हिस्सा था और न निजाम की कल्पित निष्पक्षपात नीति का। निजाम की सरकार परिस्थितियो से बाधित होकर सुलह के लिए तैयार हुई, किसी धार्मिक स्वाधीनता की ऊंची भावना से नही।

उन दिनो हैदराबाद के आम मुसलमान निवासियों की मनोवृत्ति का अनुमान एक आर्य महिला के उस बयान से लगाया जा सकता है, जो उसने सत्याग्रह के दिनो में हैदराबाद से लौटकर दिया था। वह महिला अपने एक नवयुवक वयस्य को वारंगल जेल में देखने गयी थी। उस महिला ने अपने अनुभवों का वर्णन करते हुए बतलाया कि "रियासत के प्रत्येक भाग म, सामान्य रूप से बाहर के हिन्दुओ को, विशेष रूप से खद्दर-धारियों को, द्वेष और अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता था। मुसलमान स्त्री-पुरुष यह समझते हैं कि हैदराबाद वस्तुतः मुसलमानो का है, हिन्दू उसमें परदेशी बनकर आ गये हैं। एक बार रेल के जिस डिब्बे में वह सफर कर रही थीं उसमें कुछ मुसलमान औरतें भी सवार हो गईं। हिन्दू स्त्रियों को उस डिब्बे में देखकर वे कहने लगीं कि "निजाम की सरकार की कमजोरी के कारण हिन्दुओं की हिम्मत इतनी बढ़ गयी है कि वे उन्हीं डिब्बो में सफर करने लगे है, जिनमें हम लोगों को चढ़ना पड़ता है। ये हिन्दू हाथ मे लोटा-डोरी लेकर और गाय की पूछ पकड़कर हैदराबाद में आये थे और अब बराबरी का दावा करने लगे है। हम लोगों नें तलवार के जोर से उसे जीता है और तलवार के जोर से ही इसे रक्खेंगे।" उस मुसलमान महिला ने यह भी ऐलान किया कि "मै हैदराबाद जाकर अकबर हैदरी से जवाबतलबी करूंगी।"

हैदराबाद के सर्वसाधारण मुसलमानों के दिमाग की उस समय जो हालत थी, वह इस एक दृष्टान्त से स्पष्ट हो जाती है। रियासत के मुसलमान निवासियों की ऐसी अशुद्ध और विषैली मनोवृत्ति के होते हुए भी रियासत की सरकार को सुलह की चर्चा छेड़नी पड़ी। इससे दो बातें सर्वथा असंदिग्ध रूप में प्रगट होती है। एक तो यह कि निजाम को आर्यसमाज की दृढता पर पूरा विश्वास हो गया था और दूसरी यह कि उसे बाहर के दबाव और अपनी निर्बलता के अनुभव ने झुकने के लिए बाधित कर दिया था। इन सब बातों पर विचार करें तो हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं अनुभव होता कि उस समय आर्य-सत्याग्रह को जो सफलता प्राप्त हुई वह पूर्ण और निष्कलंक थी और जिन आर्य महानुभावों ने निजाम सरकार से सुलह की बातचीत करके आर्य समाज को सत्याग्रह के स्थगित करने का परामर्श दिया उन्होने बहुत बुद्धिमत्ता का काम किया। वे सचमुच आर्यसमाज के धन्यवाद के पात्र हैं।

सत्याग्रह के सिद्धान्तो की दृष्टि से आर्य सत्याग्रह निर्दोष और बहुत ऊंचा था। इसके लिये तो सत्याग्रह शास्त्र के आचार्य महात्मा गांधी का प्रमाण पत्र ही पर्याप्त

है। आपने सत्याग्रह की समाप्ति पर लिखा था कि "वह सत्याग्रह यदि कांग्रेस के सत्याग्रह से अच्छा नही था तो बुरा भी नही था।" हमें दोनों सत्याग्रह की तुलना करके ऊंच-नीच का निश्चय करना उचित नहीं प्रतीत होता। इतना ही कह देना पर्याप्त कि है आर्य सत्याग्रह के दिनो मे न तो आर्यसमाज की ओर से कोई हिंसात्मक कार्य हुआ और न ही बीच-बीच में सत्याग्रह को रोकना पड़ा। सत्याग्रह की अहिंसात्मक विशाल धारा तब तक अनवरत चलती गयी, जब तक कि वह अपने लक्ष्य तक न पहुंच गयी। इसका श्रेय आर्य जनता की शान्तिप्रियता और उसके नेताओं की सतर्कता को है जिन्होंने हर एक रोष-दायक घटना पर अपने को नियंत्रण मे रखने का भरसक प्रयत्न किया।

चौदहवाँ अध्याय

हैदराबाद के आर्य शहीद

यों तो आर्य सत्याग्रह मे भाग लेने वाले सभी सेनापतियो और सैनिकों ने अनुकरणीय बलिदान की भावना का परिचय दिया, परन्तु जिन वीरों ने अपना शरीर अर्पित कर दिया, उनका संक्षिप्त परिचय देना अत्यन्त आवश्यक है। धर्म पर आत्म-बलिदान करना आर्यसमाज की पुरानी प्रथा है। महर्षि दयानन्द से लेकर आज तक आर्य वीर आत्म समर्पण करते आये हैं। कभी किसी पर आक्रमण नही किया। हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह मे भी वही परम्परा जारी रही। यहां आत्म-बलिदान करने वाले धर्मवीरों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है :—

१—पं० श्यामलाल जी

प० श्यामलाल जी का जन्म हैदराबाद राज्य के बीदर जिले के आलकी नामक गांव मे हुआ था। आपके पिता प० भोलानाथ जी कट्टर सनातनी एवं पौराणिक थे। पैतृक परम्परा के अनुसार श्यामलाल जी का विश्वास और श्रद्धा श्री मारुति और माणिक प्रभु के मन्दिरों मे विशेष रूप से थी। पिता की मृत्यु के बाद श्री गोकुलप्रसाद तथा पं० वंशीलाल जी के प्रभाव में आकर आप शीघ्र ही आर्यसमाजी बन गये। प्रसिद्ध आर्य नेता पं० वंशीलाल जी आपके बड़े भाई थे। न केवल हैदराबाद राज्य में अपितु बम्बई तक में आप अपने धर्म-प्रेम और उत्साह के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे। हैदराबाद हाईकोर्ट के जज अशगर यार जंगबहादुर ने लिखा था कि इसे धार्मिक पागलपन है। १९३१ मे हैदराबाद राज्य मे प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई। आप तीन वर्ष बाद ही उसके मंत्री चुने गये।

कई बार सरकार की ओर से जाली अभियोग लगाकर प० श्यामलाल जी को फंसाने की चेष्टा की गयी थी। १९३८ मे उदगीर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। इसमें अन्य १५ हिन्दुओं के साथ पण्डित जी को भी पकड लिया गया। जेल में आपका स्वास्थ्य गिरने लगा। आप बचपन से ही निर्बल प्रकृति के थे। आख के आपरेशन तथा अन्य व्याधियों के कारण डाक्टर ने आपको सिर्फ केला और दूध लेने की सलाह दी थी। जेल के अधिकारियो से अनेक बार प्रार्थना करने पर भी यह पथ्य उन्हें न दिया गया। परिणामतः आपको कई बार अनशन करना पडा। अन्त मे जेल की यातनाओं के असह्य हो जाने के कारण १६ दिसम्बर १९३८ को आपका जेल मे स्वर्गवास हो गया। शव बड़ी कठिनाई से शोलापुर लाया गया। उस समय शोलापुर के प्रसिद्ध डाक्टर श्री नीलकण्ठ राव एल० एम० एस०, के० एल० ओ० (बियाना) ने शव की परीक्षा करने के बाद

लिखा था—"पेट सिकुड़ कर पीठ से जा लगा था। हाथ के नाखून काले पड़ गये थे। दाईं टांग के गिट्टे के पास आध इंच घेरे का एक घाव पाया गया। दाईं टाग पर भी एक लम्बा घाव था। इन चिह्नों से यह संशय प्रकट किया गया कि उन्हें कोड़े मारे गये थे तथा अन्य प्रकार की यातनाएं दी गयी थी।" इन्हीं दिनों शोलापुर में आर्य कांग्रेस की तैयारियों के बीच बड़ी शान से आपका दाह-संस्कार किया गया।

२—स्वामी सत्यानन्द जी

स्वामी सत्यानन्द जी का जन्म संयुक्तप्रान्त में हुआ था। संन्यास लेने के बाद लगभग २० वर्ष से वे दक्षिण में कार्य कर रहे थे। बंगलौर में अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से आश्रम स्थापित कर आप वहीं रहते थे। अपने १८ वानप्रस्थी साथियों के साथ आपने गुलबर्गा में सत्याग्रह किया। वहां से उन्हें चंचलगुडा भेज दिया गया। २७-४-३९ को आपका देहान्त हो गया। सरकार ने अपने वक्तव्य में स्वामी जी के बारे में लिखा था कि "२३ अप्रैल को जब आप जेल में आये तो आपको तेज बुखार था। २६ अप्रैल को आपको उस्मानिया हस्पताल भेज दिया गया। यहां अगले दिन हार्ट फेल हो जाने से आपकी मृत्यु हो गई। सरकारी डाक्टर ने शव की जांच के बाद प्रमाणित किया कि शरीर पर घाव का कोई चिह्न नहीं है।" अगले दिन मन्त्री आर्य समाज के एक प्रतिनिधि को उनका शव सौंपा गया तथा उससे इस आशय की रसीद ले ली गयी कि शव अच्छी अवस्था में पाया। सरकार से किसी अन्य प्रकार की शिकायत किये बिना ही शव का दाह-संस्कार कर दिया गया। डा० अंचोलिकर एम० बी० बी० एस० ने भी आपके शव की परीक्षा की। उन्होंने जो रिपोर्ट दी वह सरकारी रिपोर्ट के बिलकुल विरुद्ध थी। डा० अंचोलिकर ने बताया था कि स्वामी जी के बायें कान के पीछे घाव और आसपास खून जमा हुआ था। उन्होंने आंख के पास और पीठ तथा भुजाओं पर कुछ काट के निशानों के चिह्न भी बताये थे। आर्यसमाज सुल्तान बाजार के मन्त्री पं० श्रीराम शर्मा ने अपने २९ अप्रैल के पत्र में लिखा था कि "स्वामी जी ने हवन न करने देने पर २३ सत्याग्रहियों के साथ भूख हड़ताल की हुई थी।" इसी बात का द्योतक एक और गुमनाम पत्र भी जेल से मिला था। जेल से शव को लाने वाले चन्द्रपाल के वक्तव्य के अनुसार भी स्वामी जी के कान व आंख के पास घाव थे। पं० धर्मदत्त, श्री मोहनलाल वर्मा, श्री पुमानराव, श्री जिन्दाबाद तथा श्री मानिकचन्द के भी वक्तव्यों से चन्द्रपाल के वक्तव्य की पुष्टि होती है।

३—श्री परमानन्द जी

परमानन्द जी हरिद्वार निवासी श्री गोकुलप्रसाद के सुपुत्र थे। आपकी अवस्था २० वर्ष की थी। २० सत्याग्रहियों के साथ लातूर में सत्याग्रह करके आप जेल चले गये। गुलबर्गा से उन्हें चंचलगुडा भेज दिया गया, जहां १ अप्रैल को आपका देहान्त हो गया। सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया था कि "मैण्टल अस्पताल मे साधारण अवस्था मे उसकी मृत्यु हो गई। उसकी देह पर घाव के कोई निशान न थे।" परमानन्द जी की मानसिक दशा खराब होने की सूचना इससे पहले नहीं दी गई थी। अन्य साथियों से भी सरकार

के इस वक्तव्य का खंडन होता है। डा० फड़के एम० बी० बी० एस० ने नाक के पास चोट होने और नाक से खून निकलने की बात कही थी। डा० फड़के के कथनानुसार परमानन्द जी की दाईं भुजा पर तीन इंच लम्बा एक तिरछा घाव था। दाईं कोहनी और छाती पर भी घाव थे। नाक और मुँह से परीक्षा के समय भी खून निकल रहा था। पं० धर्मदत्त जी और श्री चन्द्रपाल जी को जेल से शव प्राप्त करने के लिए बहुत भाग-दौड़ करनी पड़ी। उन्हें मि० हालिन्स तक के पास जाना पड़ा। डा० फड़के की सम्मति में शव का विस्तृत पोस्टमार्टम होना आवश्यक था।

४—श्री विष्णु भगवन्त तन्दुरकर

विष्णुभगवन्त तन्दुरकर हैदराबाद राज्य के तन्दुर स्थान के निवासी थे। आपकी आयु ३० वर्ष की थी। गुलबर्गा में गिरफ्तार होने के बाद आपको हैदराबाद जेल में भेज दिया गया। १ मई को आपका स्वर्गवास हो गया। सरकारी विज्ञप्ति में बताया गया था कि आपको उदर रोग से पीड़ित होने के कारण ३० अप्रैल को उसमानिया अस्पताल भेज दिया गया था। वहां हार्ट फेल हो जाने से १ मई को आपकी मृत्यु हो गयी। सरकार ने तन्दुरकर के सम्बन्ध में भी एक विज्ञप्ति निकालकर अपने को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास किया था। किन्तु डा० अंचोलिकर तथा डा० फड़के की सम्मतियां इसके विपरीत थी। श्री विनायकराव विद्यालंकार, श्री नरसिंहराव, और हनुमन्त राव जी ने अजहर हुसैन (सेक्रेटरी होम डिपार्टमेंट) से शव की परीक्षा करने की प्रार्थना की। किन्तु इस प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया गया। इन महानुभावों के वक्तव्यो के अनुसार तन्दुरकर के शव पर चोटो के अनेक निशान थे। श्री रामकृष्णराव बी० ए०, एलएल० बी० वकील हाईकोर्ट के वक्तव्य से भी यह प्रमाणित होता है कि तन्दुरकर को जेल मे यातनायें दी गई थीं। उन्होने कहा था—"मैंने सिर के वाम भाग में, कान के पास एक घाव देखा, जिसमें से अब भी रक्त बह रहा था। मैंने दो काले चिह्न भी देखे। एक बाईं भुजा पर दूसरा दक्षिण स्कन्ध के पास। गर्दन के पीछे की चमड़ी बहुत लाल थी और नथनों से काले रंग का रक्त प्रवाहित हो रहा था।"

५—श्री छोटेलाल जी

राजगुरु जी के साथ सत्याग्रह करने वाले ५३१ सत्याग्रहियों में से आप एक थे। युक्तप्रान्त के अलालपुर स्थान के आप निवासी थे। आप अपने पिता के इकलौते बेटे थे। बीमार अवस्था में धूप में काम करने के कारण आपको लू लग गई तथा आप बेहोश हो गये। बेहोशी की अवस्था में एक छत के नीचे लिटाया गया, जहां उन्हें उल्टी और दस्त हुए। आधी रात तक दशा सुधरती न देख आपको हस्पताल भेज दिया गया। २ मई को वे बीमार पड़े थे तथा ३ मई को प्रातः देहान्त हो गया। २० सत्याग्रहियों को साथ में जाने की आज्ञा देकर जेल वालों ने स्वयं ही आपका दाह-संस्कार कर दिया। शव का कोई फोटो भी न लेने दिया गया। कुछ दिन पश्चात् सरकार ने जो विज्ञप्ति निकाली उसमें वह इस बात से इन्कार न कर सकी कि 'छोटेलाल जी से बीमारी में और धूप में

काम लिया गया।' जेल से मुक्त होने के बाद श्री राजगुरु जी छोटेलाल जी के गांव गये तथा उनकी माता को बधाई दी।

६–श्री नानूमल जी

श्री नानूमल जी मध्य प्रदेश के अमरावती शहर के निवासी थे। आपकी आयु ५२ वर्ष की थी। २६ मई को चंचलगुडा जेल में बीमार हुए। २९ मई को उस्मानिया हस्पताल में निमोनिया से आपका देहान्त हुआ। आपकी मृत्यु और शव का किसी को पता तक न दिया गया। श्री हरिश्चन्द्र विद्यार्थी ने शव की प्राप्ति के लिए काफी भागदौड़ की। उन दिनों श्रीमती सरोजिनी नायडू हैदराबाद में ही थीं। उनके द्वारा भी यत्न किया गया। किन्तु सब असफल रहा। दिल्ली से सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से आये तार पर भी कुछ ध्यान न दिया गया। शव को इस प्रकार छिपाकर दाह के लिए ले जाया जाना पहली अजीब घटना थी। अन्त में उस स्थान का पता लगा लिया गया, जहां शव का दाह किया गया था।

७–श्री माधवराव जी

माधवराव जी लातूर (हैदराबाद रियासत) के निवासी थे। आपकी आयु ३० वर्ष की थी। तीव्र ज्वर और लू के कारण २१ मई को आप गुलबर्गा जेल मे बीमार हो गये और २६ मई को देहान्त हो गया। कुछ सत्याग्रहियो के साथ जेल वालो ने आपका दाह-संस्कार कर दिया। सत्याग्रह समिति की ओर से मृत व्यक्ति के विषय में जांच करने के लिए नियुक्त प्रतिनिधि को दाह-संस्कार मे सम्मिलित सत्याग्रहियो से भी मिलने की आज्ञा न दी गई। शव का फोटो भी नही लेने दिया गया था। गुलबर्गा शहर की जनता ने श्मशान तक साथ जाने की अनुमति मांगी, किन्तु उसे अस्वीकृत कर दिया गया।

८–श्री पाण्डुरग जी

आप उस्मानाबाद (हैदराबाद रियासत) के निवासी थे। आयु २२ वर्ष की थी। गुलबर्गा जेल में आपको इन्फ्लुएन्जा हो गया। जेल हस्पताल मे उपचार ठीक प्रकार से न हुआ। परिणामतः २५ मई को आपकी अवस्था अत्यन्त नाजुक हो गई। अतः आपको जेल के बाहर हस्पताल भेजा गया, जहां २७ मई को मृत्यु हो गई। शहर में मृत्यु का समाचार पहुंचते ही अपार भीड़ हस्पताल पर जमा हो गई। लेकिन उन्हें शव न दिया गया और न ही फोटो लेने का अवसर प्रदान किया गया। शव को वापिस जेल भेजकर कुछ सत्याग्रहियों एवं एक पुलिस के दस्ते को साथ लेकर उसकी श्मशान भूमि में अन्त्येष्टि कर दी गई। श्री पांडुरंग का देहान्त होना सरकार ने ५ जुलाई को स्वीकार किया।

९–श्री सुनहरासिह जी

सुनहरासिह बुटाना (जिला रोहतक) के रहने वाले थे। आपके पिता का नाम श्री जगतराम था। आपका शरीर सुडौल एवं स्वास्थ्य उत्तम था। महाशय कृष्ण जी के साथ ५ जून को आपको गिरफ्तार किया गया था। जेल में जाकर आप अस्वस्थ हो गये।

बगल में फोडा भी निकल आया था। उपचार मे लापरवाही होने के कारण मर्ज बढ़ता गया। फोडे एव तेज बुखार के कारण उन्हे सन्निपात भी हो गया था। ८ जून प्रातः ७॥ बजे आपका देहावसान हो गया। सरकारी डाक्टर का बयान था कि मृत्यु बीमारी से हुई थी, अतः स्वाभाविक थी। लेकिन सुनहरासिंह के साथ हस्पताल मे जो सलूक किया जाता था, उससे स्पष्ट था कि उपचार मे लापरवाही की गयी थी। महाशय कृष्ण जी तथा अन्य साथियो को मृत्यु की सूचना भी कई घटों बाद दी गयी थी। खुशहालचन्द जी 'खुरसन्द' बाद मे बुटाना गये, वहा श्री सुनहरासिंह के पिता को बधाई देते हुए आपने उनके स्मारक रूप में गांव में आर्य मन्दिर की आधारशिला रखी।

१०—महाशय फकीरचन्द जी

आप शारधा गांव (जिला करनाल) तहसील कैथल के रहने वाले थे। आयु ३५ वर्ष की थी। आपने भी महाशय कृष्ण जी के साथ औरंगाबाद में सत्याग्रह किया था। उदर-विकार होने के कारण जेल हस्पताल में भर्ती किये गये। इस पीड़ा के अपेण्डी-साइटीज का रूप धारण कर लेने पर आपको सिविल अस्पताल भेज दिया गया। ३० जून को आपरेशन हुआ। लेकिन आपरेशन के बाद समुचित देखभाल न होने के कारण १ जुलाई की सुबह ७ बजे आपका देहान्त हो गया।

११—श्री गलखानसिंह जी

आप रुड़की के निवासी थे। आयु ३५ वर्ष की थी। सहारनपुर जिले से इतने अधिक सत्याग्रहियों का जाना आपके ही परिश्रम का फल था। कांग्रेस के आन्दोलनों मे भी आप कई बार जेल हो आये थे। रुडकी के जत्थे के साथ पुसद में सत्याग्रह करने पर आपको चंचलगुड़ा जेल भेज दिया गया। १ जुलाई को आपका देहावसान हुआ। आपकी बीमारी और मृत्यु के समाचार को अत्यन्त गुप्त रखा गया और जेल के श्मशान में ही आपका दाह-संस्कार कर दिया गया।

१२—श्री स्वामी कल्याणानन्द जी

स्वामी जी मुजफ्फरनगर के निवासी थे। उनकी आयु ७५ वर्ष की थी परन्तु उत्साह युवकों का सा था। ८ जुलाई को आपकी मृत्यु हुई। मृत्यु का कुछ भी कारण बताये बिना १० जुलाई को आपकी मृत्यु की सूचना दी गयी थी।

१३—श्री शान्तिप्रकाश जी

श्री शान्तिप्रकाश जी की आयु केवल १८ वर्ष की थी। जिला गुरुदासपुर के कलानौर अकबरी मे आपका जन्म हुआ था। पिता श्री रामरत्न जी शर्मा नयी दिल्ली स्टेशन पर टिकिट कलेक्टर थे। शांतिप्रकाश जी घर से चुपचाप भाग कर बम्बई में सत्याग्रही जत्थे मे शामिल हो गये थे। ९ मई को गुंजोटी में आपने सत्याग्रह किया। आपको उस्मानाबाद जेल मे रखा गया। बीमार हो जाने के कारण शान्तिप्रकाश जी को सिविल हस्पताल में भेज दिया गया। हस्पताल से जेल भेजे जाने पर पुरानी बीमारी ने उग्र रूप धारण कर लिया। बीमारी के असाध्य होने पर पुनः सिविल अस्पताल भेज दिया गया और इनके पिता को तार दिया गया। शातिप्रकाश जी पर क्षमा मांगने के लिए

काफी जोर डाला गया परन्तु आपने अपने पिता के सामने भी वीर हकीकतराय का दृष्टांत रखा और माफी मांगने से इन्कार कर दिया। बालक का साहस देखकर पिता ने भी माफी मांगने का आग्रह नहीं किया। २७ जुलाई को आपकी मृत्यु हो गई। मृत्यु का समाचार शहर में फैलते ही वहां हड़ताल हो गयी। सरकार ने शव देने से इन्कार कर दिया तथा अर्थी के साथ जाने की भी आज्ञा न दी गयी। २८ जुलाई को कुछ सत्याग्रहियों को साथ लेकर शव का वैदिक विधि से दाह-संस्कार कर दिया गया।

१४—श्री बदनसिंह जी

बदनसिंह जी की आयु १८ वर्ष की थी। मुजफ्फराबाद (जिला सहारनपुर) मे आपका जन्म हुआ था। राजगुरु जी के अनुरोध को ठुकराकर ठा० टीकासिंह जी ने अपने इकलौते पुत्र को अपनी सख्त बीमारी में भी सत्याग्रह में जाने से नहीं रोका। १७ जून को बदनसिंह जी ने बेजवाड़ा मे सत्याग्रह किया। बारंगल की जेल में आन्त्र ज्वर से पीड़ित होने के कारण आपको जेल-हस्पताल मे रखा गया, जहां २४ अगस्त को आपका देहान्त हो गया। डेढ मास बाद पिता की भी मृत्यु हो गयी।

१५—श्री ताराचन्द्र जी

१९ वर्षीय युवक ताराचन्द्र जी का जन्म लुम्ब ग्राम (जिला मेरठ) में हुआ था। आपके पिता चौधरी केहरसिंह जी तथा अन्य घर वालो ने बडे उत्साह के साथ आपको विदाई दी थी। २० अप्रेल को वे अपने जत्थे के साथ तुलजापुर पहुंचे। इसी जत्थे पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया था। २१ अप्रैल को नलदुर्ग में रखकर इस जत्थे के सत्याग्रहियो को विभिन्न जेलों में भेज दिया गया था। ताराचन्द्र जी ८ अगस्त को जेल से मुक्त होकर चादा शिविर में पहुंचे, जहां वह बीमार हो गये। नागपुर मे डा० लक्ष्मणराव परांजपे के उपचार तथा सिविल हस्पताल मे भर्ती कराने पर भी आपकी बीमारी ठीक न हुई। ३० अगस्त को आपके चाचा चौ० रामचन्द्र जी भी नागपुर पहुंच गये थे। २ सितम्बर प्रातः ५ बजे आपका देहान्त हो गया। दाह-संस्कार आर्यसमाज तथा हिन्दू महासभा ने मिलकर किया।

१६—श्री अशरफीप्रसाद जी

श्री फिरंगीशाह के पुत्र अशरफीप्रसाद जी नरकटियागंज (जिला चम्पारन) के निवासी थे। आयु २२ वर्ष की थी। २२ मार्च को वे गिरफ्तार हुए। भोजन अनुकूल न होने के कारण जेल मे प्रायः बीमार रहते थे। क्षमा मागने के लिए तैयार न देख सरकार ने इन्हे २३ अगस्त को मुक्त कर दिया। घर आकर भी आप बीमार ही रहे। अन्ततः २९ अगस्त को आपका देहान्त हो गया।

१७—ब्रह्मचारी रामनाथ जी

इनका जन्म अहमदाबाद मे हुआ था। गुरुकुल कांगडी के जिन ब्रह्मचारियों ने सत्याग्रह मे भाग लिया था, उनमे सबसे पहले सत्याग्रह करने का सौभाग्य आप ही को प्राप्त हुआ था। ये जेल की नृशस कहानियां कई बार अपने साथियो को सुनाया करते थे। आपकी टांगें और पीठ पर कई घाव बने हुए थे। जेल से रुग्ण होकर आये। बाहर

आने पर भी बीमारी ने पीछा न छोड़ा। इसी बीमारी के कारण आपका देहावसान हुआ।

१८—श्री सदाशिव राव पाठक

श्री विश्वनाथराव जी के इकलौते पुत्र सदाशिवराव जी का जन्म लड़वाल (शोलापुर) ग्राम मे हुआ था। जेल में आपसे पत्थर ढोने का कठोर परिश्रम कराया गया। बीमारी की अवस्था मे भी इस परिश्रम से अवकाश न मिला। यही कठोर परिश्रम आपकी मृत्यु का कारण बना।

१९—श्री गोविन्दराव

श्री गोविन्दराव नलगीर (जिला बीदर) ग्राम के निवासी थे। हैदराबाद सेन्ट्रल जेल में रोगग्रस्त होने के कारण आपकी मृत्यु जिन रहस्यपूर्ण अवस्थाओं में हुई, उसका भेद आज तक नही खुला।

२०—श्री मातूराम जी

श्री मातूराम जी मिलिन्दपुर (जिला हिसार) ग्राम के निवासी थे। आपकी आयु ४५ वर्ष की थी। औरंगाबाद जेल में बीमार होकर आप श्वास ज्वर से पीड़ित रहे। २७ जुलाई को बीमारी की हालत मे ही आपको जेल से मुक्त कर दिया गया। पुलिस आपको मनमाड स्टेशन पर लाकर छोड गई। उसने शिविर में कोई सूचना भी न दी। आपकी सत्याग्रह शिविर मे सूचना पहुंचने पर आपको स्टेशन से शिविर लाया गया, जहां एक दिन बाद ही २८ जुलाई को आपका देहान्त हो गया।

२१—व्यकट राव जी कधार

आपने स्टेट कांग्रेस की ओर से सत्याग्रह किया था। जेल अधिकारियों की मार-पीट के कारण निजामाबाद जेल में आपकी मृत्यु हुई।

२२—महादेव जी

आप निजाम प्रान्त के रहने वाले थे। गुलबर्गा में सत्याग्रह करके जेल गए। वहीं आपकी मृत्यु हो गयी।

२३—रतीराम जी

रतीराम जी जिला रोहतक के ग्राम सांपला के निवासी थे। आपको भी भीषण बीमारी में जेल से छोड़ा गया तथा घर आने पर आपका स्वर्गवास हो गया।

२४—श्री अरोड़ामल जी

सरगोधा निवासी श्री अरोड़ामल जी को भी बीमारी की हालत में ही जेल से रिहा किया गया। घर आते हुए लाहौर में ही आपका देहान्त हो गया।

२५—श्री पुरुषोत्तम ज्ञानी

ज्ञानी जी बुरहानपुर के निवासी थे। आपको भी उसी प्रकार रुग्ण अवस्था में जेल से मुक्त किया गया था और घर आने पर आपका स्वर्गवास हो गया।

ये तो उन वीरों के नाम हैं, जिन्होंने हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह के प्रसंग में अपने प्राणों की आहुति दी। ऐसे वीरो की संख्या तो हजारो तक पहुंचती है, जिनके

पिता जी का नाम जीतमल जी था। आप वैष्णव सम्प्रदाय के मानने वाले थे। आप सन् १९३४ ई० में आर्यसमाजी बने और उसी समय से आर्यसमाज के प्रचार की धुन में लग गए। निजामाबाद में आर्यसिद्धान्तो का मौखिक प्रचार आरम्भ कर दिया। आर्य समाज के अनुकूल कुछ लोगों को होते देख पं० नरेन्द्र जी मंत्री आर्यप्रतिनिधि सभा, हैदराबाद स्टेट द्वारा सन् १९३५ ई० में निजामाबाद आर्यसमाज की स्थापना करके नियमित प्रचार की व्यवस्था की। आर्यसमाज का प्रचार स्थानीय पुलिस अधिकारियों को खटकने लगा। मुहर्रम के अवसर पर एक अभियोग नियमाधार १०४ के अन्तर्गत चलाया गया और एक वर्ष के लिए दो हज़ार का मुचलका लेकर छोड़ दिया। परन्तु आप प्रचार कार्य पूर्ववत् करते रहे। और प्रत्यक्ष रूप में आर्य सत्याग्रह में धन-संग्रह आदि का कार्य करने लगे। यह देख वरिष्ठ अधिकारियों के द्वेष की सीमा न रही। ता० २-८-३९ ई० को पुलिस स्टेशन के सामने एक धर्मान्ध अरब द्वारा श्री राधाकृष्ण जी को क़त्ल करवा दिया गया। इस प्रकार इन्होंने वैदिक धर्म पर अपने आप को बलिदान कर दिया।

१०—शिवचन्द्र जी

श्री शिवचन्द्रजी का जन्म ३ मार्च, सन् १९१६ ई० को दुबलगुण्डी पायगा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम अण बसप्पा था। आप १९३५ ई० में मैट्रिक परीक्षा मे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए जिसके कारण गवर्नमेंट ने १६५) पुरस्कार दिया। आप इस्लामिया स्कूल हुमनाबाद में अध्यापकी का कार्य करते रहे और इसी काल में उन्होंने आर्य साहित्य का पठन-पाठन भी आरम्भ किया। आर्यसाहित्य का उन पर प्रभाव पड़ा और उन्होंने आर्यसमाज में प्रविष्ट होकर यज्ञोपवीत धारण कर लिया। आपकी कार्यकुशलता तथा सदाचार से मुग्ध होकर पं० नरेन्द्र जी मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद ने उन्हें आर्योपदेशक बनने के निमित्त प्रेरित किया। आपने सहर्ष स्वीकार करके प्रचार-कार्य आरम्भ कर दिया। हुमनाबाद, सदाशिव पेठ आदि स्थानो में जहाँ मुसलमानों का बहुत प्राबल्य है, समाजे तथा पाठशालाएँ स्थापित कीं। जिसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमान द्वेष करने लगे। ता० ३-३-४२ ई० को होली के अवसर पर जब कि आर्यसमाज हुमनाबाद का जुलूस निकल रहा था, मुस्लिम गुण्डों ने पुलिस की सहायता से बन्दूकों से आक्रमण कर श्री शिवचन्द्र जी के साथ-साथ श्री लक्ष्मण राव जी, श्री रावजी राव इंगडे और श्री नरसिंह राव जी को गोली का निशाना बनाया। ये तीनों व्यक्ति भी आर्यसमाज के विशेष भक्त थे।

छठा खण्ड

(सत्यार्थप्रकाश पर विफल आक्रमण)

सत्यार्थप्रकाश पर सिन्ध सरकार का आक्रमण

समय-समय पर सत्यार्थप्रकाश पर मतवादियों की ओर से जो आक्रमण होते रहे हैं उनकी चर्चा इस इतिहास में हो चुकी है। सबसे पहला आक्रमण १९०२ में आलाराम संन्यासी की ओर से किया गया। आलाराम ने एक पुस्तिका में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि महर्षि दयानन्द ब्रिटिश सरकार के प्रति विद्रोही थे और आर्यसमाज की सस्था भी उन्हीं के चरण-चिह्नों पर चल रही है। आर्यसमाज की ओर से इस पुस्तिका के विरुद्ध आन्दोलन किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि आलाराम पर आर्यसमाजियो के दिल दुखाने का अभियोग चलाया गया। अभियोग इलाहाबाद के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि० पी० हैरिसन की अदालत में पेश हुआ। दोनों ओर से बहुत-से साक्षी और उद्धरण उपस्थित किये गये। मजिस्ट्रेट ने जो फैसला दिया वह इस बात को सूचित करता था कि तब तक सरकार के अंग्रेज अफसरों के मन मे विरोध का कोई भाव उत्पन्न नही हुआ था। मि० हैरिसन ने अपने फैसले मे लिखा था कि :—

"The general tenor of Dayananda's teachings seems to me to be rather an exhortation to reform, with perhaps a view to the ultimate restoration of the Government to native hands... . His exhortations and prayers are not for the immediate over-throw of the foreign rule, but for such reformation as may perhaps enable the Hindus in the future to govern themselves... ...... There is no call to arms and no war cry."

"मुझे दयानन्द के उपदेशों का मुख्य लक्ष्य यह प्रतीत होता है कि ऐसा सुधार किया जाय जिसका अन्तिम लक्ष्य यह हो कि देश का शासन देशवासियों के हाथ में आ जाय। उसके व्याख्यानो और प्रार्थनाओं का यह आशय नहीं था कि विदेशी सरकार को तत्काल उखाड़ कर फेंक दिया जाय, अपितु यह था कि हिन्दुओं में ऐसे सुधार किये जाँय जिनसे वे अपने शासन के योग्य बन सके। दयानन्द के लेखों में न हथियार पकड़ने की प्रेरणा है और न युद्ध की घोषणा।"

मि० हैरिसन ने अपने फैसले मे आलाराम के आरोपों को सर्वथा निर्मूल बतलाते हुए आज्ञा दी कि एक वर्ष के लिये उससे नेकचलनी की जमानत ली जाय। यह बात सब लोगों में प्रसिद्ध हो चुकी थी आलाराम की पुस्तक के पीछे पौराणिक हिन्दुओं का उतना हाथ नहीं था जितना कुछ ईसाई पादरियों का। प्रतीत होता है कि

आलाराम आर्यसमाज के प्रचार से घबराये हुए कतिपय ईसाई पादरियों का औजार बन गया था।

इसके पश्चात् कुछ वर्षों तक आर्यसमाज अथवा सत्यार्थप्रकाश पर कोई ऐसा आक्रमण नहीं हुआ जिसका कानूनी महत्व हो। १९०७ में जब लाला लाजपतराय जी को भारत सरकार ने निर्वासित करके माण्डले में नजरबन्द कर दिया तब फिर एक बार विरोधियों को तीर चलाने का अवसर मिल गया। उन दिनों "भारतीय" इस काल्पनिक नाम से संभवतः किसी अभारतीय व्यक्ति ने लाहौर के 'सिविल एंड मिलिटरी गजट' में एक लेखमाला लिखी जिसमें यह सिद्ध करने का यत्न किया कि स्वामी दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज अंग्रेजी सरकार के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न करने वाले हैं। लेखक ने इशारा किया था कि उस समय के उग्र राजनीतिक आन्दोलन का उत्तरदायित्व स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज पर है।

१९०९ में पटियाला रियासत में बहुत-से आर्यजनों पर राजद्रोह का अभियोग चलाया गया था। इस अभियोग का मुख्य आधार यह था कि सत्यार्थप्रकाश और स्वामी दयानन्द के अन्य ग्रन्थ राजद्रोह से पूर्ण हैं, इस कारण प्रत्येक आर्यसमाजी को स्वभावसिद्ध राजद्रोही माना जा सकता है। रियासत के वकील सर एडवर्ड ग्रे ने जो प्रारम्भिक भाषण दिया था उसमें सबसे अधिक जोर इसी बात पर दिया गया था। विरोधियों का वह वार भी खाली गया। न केवल इतना ही हुआ कि रियासत ने अभियोग वापिस ले लिया, पंजाब सरकार के एक उच्च अधिकारी ने एक पत्र में यह सम्मति भी प्रकट कर दी कि सरकार आम तौर पर आर्यसमाजियों को राजद्रोही नहीं समझती।

पटियाला अभियोग के पश्चात् लगभग १६ वर्षों तक वातावरण शान्त रहा। सत्यार्थप्रकाश अथवा आर्यसमाज पर उग्र आक्रमणों का सिलसिला बन्द-सा हो गया। १९२४-२५ में शुद्धि आन्दोलन के विरुद्ध कुछ धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा विषवमन आरम्भ होने पर सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज पर साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने का आरोप जोर-शोर से लगाया जाने लगा। कुछ मुसलमान पत्रों ने यह आवाज उठायी कि सत्यार्थप्रकाश के अनेक अंशों से अन्य मतावलम्बियों के हृदयों को कठोर आघात पहुँचता है, इस कारण सरकार उसका प्रचार रोक दे। उस आन्दोलन के विषय में मुसलमानों के प्रसिद्ध नेता मौ० मुहम्मद अली ने अपने दैनिक उर्दू पत्र 'हमदर्द' में लेख लिखा था जिसका भावार्थ निम्नलिखित था :—

"सत्यार्थप्रकाश आर्यों के गुरु स्वामी दयानन्द की मुख्य रचना है। आर्य लोग स्वामी दयानन्द में जितनी भक्ति रखते हैं उतनी और किसी में नहीं रखते। इसी तरह उनकी स्वामी दयानन्द के मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश पर भी असाधारण भक्ति है। कोई सरकार भी सत्यार्थप्रकाश के प्रचार को रोक कर उससे उत्पन्न होने वाले भयंकर परिणामों को निमन्त्रण नहीं दे सकती। सरकार बिना किसी न्याययुक्त कारण के आर्यसमाज जैसी प्रबल संस्था को अपना विरोधी क्यों बनायेगी? मुसलमान पत्रों के सत्यार्थप्रकाश विरोधी आन्दोलन से एक यह भी बड़ी भारी हानि हो रही है कि हिन्दू

समाचार-पत्र कुरान पर यह आक्षेप कर रहे हैं कि झगड़े की जड़ वस्तुतः कुरान है अतः उसके प्रचार पर भी प्रतिबन्ध लगना चाहिए।"

सरकार ने मुसलमान समाचार-पत्रों के उस आन्दोलन पर कोई विशेष ध्यान नही दिया। सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाने के सबध में मुसलमानो में स्वयं मतभेद था। फलतः कुछ समय पीछे इस विषय में मुसलमान पत्र और साम्प्रदायिक नेता चुप हो गये।

हैदराबाद सत्याग्रह के समय बहुत-से मुसलमान पत्रों ने उचित अवसर समझ कर सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाने की बात उठायी थी। परन्तु सत्याग्रह में आर्य-समाज की सफलता हो जाने के कारण उसका कोई परिणाम न निकला। १९४३ में सिन्ध की मुसलमान सरकार के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस्लाम की भलाई के जिस कार्य को अब तक कोई न कर सका क्यों न उसे कर डाला जाय? उन दिनों सिन्ध में मुस्लिम लीगी मंत्रिमण्डल का दौरदौरा था। २३ जून १९४३ के अंग्रेजी समाचारपत्रों में निम्नलिखित समाचार छपा :—

कराची, जून २३

"कई मिनिस्टरों के पास इस आशय के अनेक प्रतिवाद-पत्र पहुँचे हैं कि सत्यार्थ-प्रकाश नाम की किताब के विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाय। सरकार इस विषय पर गहरा विचार कर रही है। शीघ्र ही किसी निश्चय की घोषणा की जायगी।"

स्वाभाविक ही था कि इस समाचार से आर्यजगत् में बेचैनी उत्पन्न होती। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से २९ जून को सिन्ध के प्रधानमन्त्री के नाम निम्नलिखित तार भेजा गया :

"यह जान कर बहुत आश्चर्य और दु:ख हुआ कि आपका मंत्रिमण्डल आर्यो की सर्वमान्य धार्मिक पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के प्रचार पर प्रतिबन्ध लगाना चाहता है। यदि ऐसा कोई निश्चय किया गया तो सब आर्य हैदराबाद रियासत की भाँति धार्मिक स्वाधीनता के लिए हर प्रकार की कुर्बानी करने को तैयार होंगे। कृपा करके ऐसे अदूर-दर्शितापूर्ण कदम को न उठाइये। अन्यथा कठोर संघर्ष का सामना करना पड़ेगा।"

सिन्ध सरकार को इसी आशय के चेतावनी-भरे सन्देश प्रान्तीय प्रतिनिधि-सभाओ और आर्यसमाजो की ओर से भी भेजे गये। उस समय उन सन्देशो का यह परिणाम हुआ कि ८ जुलाई, १९४३ के दिन सिन्ध सरकार ने एक विज्ञप्ति द्वारा यह घोषणा की कि उसका सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही करने का विचार नहीं है। इस घोषणा से सन्तुष्ट होकर सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा ने यह तार भेजा :—

"Many thanks for your wise decision of taking no action against Satyarthaprakash."

"सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करने के आपके निश्चय के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।" सार्वदेशिक सभा का यह तार सन्तोष की उस भावना को प्रकाशित कर [illegible] था जो न केवल आर्यसमाज अपितु सारे हिन्दू समाज के मन में उत्पन्न हुई थी। यह भावना भला मुस्लिम लीग के धर्मान्ध नेताओं को कहाँ रुच सकती थी। १९४३ के दिसम्बर

में कराची में "आल इण्डिया मुस्लिम लीग" का जो अधिवेशन हुआ उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया गया :--

"आल इण्डिया मुस्लिम लीग का यह अधिवेशन केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करता है कि स्वामी दयानन्द की 'सत्यार्थप्रकाश' नाम की किताब के कुछ अध्याय हजरत मुहम्मद और धर्मो के अन्य सस्थापको के विरुद्ध आपत्तिपूर्ण, अपमानजनक और भड़काने वाले आक्षेपो से पूर्ण है। यह अधिवेशन उक्त सरकारों से यह माँग करता है कि वह सत्यार्थप्रकाश के उन अध्यायो को गैरकानूनी घोषित करे। साथ ही उसकी यह भी माँग है कि उन अध्यायों को प्रकाशित करने वालो पर इण्डियन पीनल कोड की संबद्ध धाराओ के अनुसार अभियोग चलाये जाँय ताकि इस प्रकार के साहित्य का प्रकाशन भविष्य के लिए बन्द हो जाय।"

'आल इण्डिया मुस्लिम लीग' का प्रस्ताव आर्यसमाज के लिए स्पष्ट युद्ध का आह्वान था। आर्यसमाज मे स्वभावतः वैसी ही प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। इस प्रतिक्रिया का स्थूलरूप अखिल भारतीय आर्य महासम्मेलन के पचम अधिवेशन के रूप में प्रकट हुआ। यह विदित होने पर कि मुस्लिम लीग के कराची अधिवेशन का प्रस्ताव सिंध की लीगी सरकार को भेजा गया है और वह सरकार प्रस्ताव पर अनुकूलता से विचार कर रही है, सिन्ध की आर्य-प्रतिनिधि सभा ने 'सिन्ध सत्यार्थप्रकाश कमेटी' नाम की समिति नियुक्त की। उस कमेटी ने मुस्लिम लीग का करारा और क्रियात्मक उत्तर देने के लिए यह निश्चय किया कि सिन्धी भाषा मे सत्यार्थप्रकाश का नया संस्करण प्रकाशित किया जाय ताकि सिन्ध के प्रत्येक हिन्दू के पास उसकी एक-एक प्रति रहे। इस कार्य के लिए देश ने सिन्ध की प्रतिनिधि सभा को खुली आर्थिक सहायता देने का आश्वासन दिया। संस्करण का मुद्रण आरंभ हो गया। सिंध के हिन्दुओं में और विशेषतः आर्यसमाज के सदस्यो मे मुस्लिम लीग के अन्यायपूर्ण निश्चय के विरुद्ध इतना जोश उत्पन्न हो गया था कि वे सत्यार्थप्रकाश को दिन के २४ घण्टे अपने पास रखने लगे थे। जब घर से बाहर जाते तब भी थैले मे डाल कर साथ ले जाते थे।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपनी ओर से सारी स्थिति का अध्ययन करने और यदि सभव हो तो सिंध की सरकार को सचेत करने के लिए प० शिवचन्द्र जी को सिंध भेजा। पडित जी ने वहाँ अनेक वक्तव्य दिये और व्यक्तियो से भी बातचीत की।

मुस्लिम लीग की युद्ध घोषणा के उत्तर मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया .--

"(१) सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा (इण्टर नेशनल आर्यन लीग) देहली की अन्तरंग सभा को आश्चर्य है कि मुस्लिम लीग ने जिसमे मुसलमानो का केवल एक भाग सम्मिलित है और जो एक राजनीतिक संस्था होने का दावा करती है, अपने कार्य-क्षेत्र से बाहर जाकर यह प्रस्ताव पास करना उचित समझा कि भारत सरकार सत्यार्थप्रकाश के कुछ भागों को जप्त कर दे क्योंकि उनमें अन्य

धर्म-संस्थापकों विशेषतः इस्लाम के संस्थापक के विरुद्ध आक्षेपयोग्य और अपमानजनक बातें लिखी हुई हैं।

"सत्यार्थप्रकाश लाखों आर्यों की धर्मपुस्तक है और इसने करोड़ों हिन्दुओं के लिए ही नहीं, वरन् भारत तथा विदेशों के निवासियों के लिए भी प्रकाश के स्रोत का कार्य किया है। लगभग ७० वर्ष से सत्यार्थप्रकाश संसार के सामने है और भारत की समस्त भाषाओं और योरोप की कई मुख्य-मुख्य भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है और कहीं से भी कभी इसके किसी भाग की जब्ती का प्रश्न गंभीरतापूर्वक उपस्थित नहीं किया गया।

"जिन आर्यों और अन्य व्यक्तियों ने सत्यार्थप्रकाश से प्रकाश ग्रहण किया है वे सब मतान्ध मुसलमानों द्वारा उत्तेजित होने पर भी इस लम्बे समय में अहिंसात्मक रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ के मान्य लेखक जिस उदात्त भावना से प्रेरित थे और जो उनके अनुयायियों को प्रेरित करती रहती है वह यह है कि संसार में शान्तिपूर्वक धार्मिक और सामाजिक सुधार का कार्य किया जाय।

"सत्यार्थप्रकाश के मान्य लेखक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ग्रन्थ की भूमिका में और अन्य मतों की आलोचना विषयक समुल्लासों की अनुभूमिकाओं में स्पष्ट रूप से लिख दिया है कि उनका उद्देश्य न उन मतों के संस्थापकों का अपमान करना है और न उनके अनुयायियों की भावनाओं को ठेस पहुँचाना है अपितु उनका उद्देश्य सत्य की खोज करना-कराना है जो मानव-जीवन का उच्चतम उद्देश्य है।

"सभा का यह भी विश्वास है कि इस्लाम और अन्य मतों के सम्बन्ध में सत्यार्थ-प्रकाश में प्रकट की हुई सम्मति उचित आलोचना की सीमा का अतिक्रमण नहीं करती। इसके विपरीत कुरान और हदीसों में कई ऐसे वाक्य हैं जो काफिरों अथवा गैर-मुस्लिमों के विरुद्ध हिंसा का स्पष्ट रूप से प्रचार करते हैं जिसके परिणामस्वरूप आर्यसमाज के कई प्रसिद्ध नेता मुसलमानों की मतान्धता की बलि चढ़ चुके हैं। इस पर भी आर्य-समाज ने कुरान और हदीसों के ऊपर-वर्णित वाक्यों के निकाले जाने की माँग करने का कभी विचार तक नहीं किया।

"सभा का पूर्ण विश्वास है कि मुस्लिम लीग कौंसिल के प्रस्ताव में जिस अनुचित और सर्वथा अनावश्यक कार्यवाही का निर्देश किया गया है, भारत सरकार उस कार्यवाही के करने की भूल नहीं करेगी।

"अन्त में यह सभा अपनी पूर्व घोषणा को बलपूर्वक पुनः दोहराना चाहती है कि यदि दुर्भाग्यवश भारत सरकार ने सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध कोई निश्चय किया तो, आर्य और करोड़ों हिन्दू, जिनमें सेना की सेवा में लगे हुए जाट और अन्य भी सम्मिलित हैं, अपने इस पवित्र धर्मग्रन्थ के प्रत्येक शब्द की रक्षा के लिए सब प्रकार के त्याग और बलिदान-पूर्वक उसका विरोध करने में विवश होंगे।

"(२) यह भी निश्चय हुआ कि इस प्रसंग में "सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन' का एक विशेष अधिवेशन देहली में किया जाये।"

दूसरा अध्याय

आर्य महासम्मेलन

सन् १९२६ के अन्त में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान की प्रतिक्रिया के रूप में आर्य-जगत् में जो परिस्थिति उत्पन्न हुई थी, प्रथम आर्य महासम्मेलन उसका परिणाम था। उसके पश्चात् यह नियम-सा बन गया था कि जब कोई विषम परिस्थिति उत्पन्न हो तब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा उसके समाधान के लिए आर्य-महासम्मेलन का अधिवेशन करे। मुस्लिम लीग के सत्यार्थप्रकाश संबंधी निर्णय ने राख के नीचे दबी हुई आग को फिर से भड़का दिया। मुसलमान वक्ता और समाचारपत्र जिहाद का नारा लगा कर अंग्रेजी सरकार को और प्रान्तों की लीगी सरकारों को तरह-तरह की धमकियाँ देने लगे। लीग के प्रस्ताव के उत्तर में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने जो दृढतापूर्ण प्रस्ताव प्रकाशित किया था वह प्रथम अध्याय के अन्त में दिया गया है। प्रस्ताव के अन्तिम भाग में यह घोषणा की गई थी कि "इस प्रसंग में सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन का एक विशेष अधिवेशन देहली में किया जाय।" सभा के अधिकारियों को स्वागतकारिणी के संगठन तथा शेष व्यवस्था का अधिकार दे दिया गया था।

सम्मेलन संबंधी प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए दिल्ली के समस्त आर्यसमाजो के प्रतिनिधियो की एक सभा बुलाई गयी। उसमें निश्चय हुआ कि आर्य-महासम्मेलन का अधिवेशन शिवरात्रि के अवसर पर २०, २१, २२ फरवरी (१९४४) के दिनो में किया जाय।

विधिपूर्वक स्वागत समिति की प्रथम बैठक २१ दिसम्बर को हुई। लाला नारायणदत्त जी स्वागताध्यक्ष चुने गये। प्रधानमंत्री का कार्य सभामन्त्री श्री प्रो० सुधाकर जी के सुपुर्द किया गया। कार्यकारिणी के सदस्यों मे दिल्ली के प्रायः सभी प्रमुख आर्यसमाजी थे। प्रबन्ध के लिए कार्यालय, स्वयंसेवक, अतिथि सेवा, स्वागत, जलूस, आर्यनगर तथा पंडाल आदि विविध विभागो के लिए दस उप-समितियाँ बनायी गई। पण्डाल उप-समिति के संयोजक तथा मंत्री बाबा मिलखासिंह जी बनाये गये और प्रकाशन विभाग पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार के सुपुर्द किया गया। कार्यालय का संचालन पं० शिवचन्द जी के सुपुर्द था। अभी स्वागत के आयोजन का प्रारंभ ही हुआ था कि स्वागत समिति के मंत्री प्रो० सुधाकर जी पर रक्तचाप का जोरदार आक्रमण हो गया। कई वर्षों से प्रोफेसर जी इस रोग से पीड़ित थे। बीच-बीच में दौरे आते रहते थे। जब हैदराबाद सत्याग्रह का कार्य बहुत बढ़ गया तब भी उन पर इस रोग का आक्रमण हुआ था। आप बहुत ही संयम का जीवन व्यतीत करते थे जिससे रोग के दौरे मे से शीघ्र ही निकल जाते थे। परन्तु १९४४ मे जो आक्रमण हुआ वह बहुत जोरदार था। उसने उन्हे बहुत समय

डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी

पं० रामचन्द्र देहलवी

श्री नरेन्द्र जी

पं० केशवराव जी
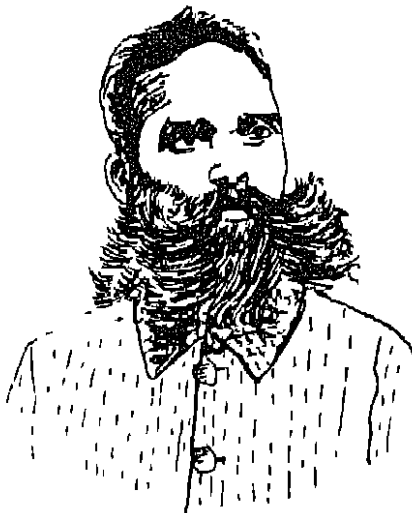
श्री बंसीलाल जी

शहीद शामलाल जी

के लिए सक्रिय कार्यक्षेत्र से अलग रहने पर बाधित किया और अन्त में उसी से उनकी जीवनलीला समाप्त हो गयी। सम्मेलन के कार्य को चलाने के लिए उस समय प्रो० सुधाकर जी के स्थान पर श्री देशराज चौधरी को स्थानापन्न मंत्री नियुक्त किया गया। दिल्ली मे और सारे देश में सम्मेलन के लिए जो उत्साह उत्पन्न हो रहा था उसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि बिना किसी विशेष प्रयत्न के स्वागत सदस्यों की संख्या १,४०० तक और प्रतिनिधियो की संख्या ३,२४२ तक पहुँच गयी थी।

अतिथियों के निवास-स्थान और सभामण्डप के लिए म्युनिसिपल कमेटी से गांधी मैदान तथा उसके आस-पास के बहुत-से खाली स्थान ले लिये गये और निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया। स्वागत समिति ने निश्चय किया था कि निर्माण का सब कार्य १९ फरवरी तक पूरा हो जाय। परन्तु उसमे बहुत जबरदस्त दैवी बाधा उपस्थित हो गयी। १७ फरवरी को सायकाल इस जोर की आंधी और वर्षा आयी कि जो शामियाने आदि खड़े किये गये थे वे प्रायः सब गिर गये और मैदान पानी से भर गया। दूसरे दिन म्युनिसिपैलिटी के इंजनों की सहायता से उस समय तो पानी निकाल दिया गया परन्तु १८ और १९ के सायंकाल भी पानी और ओलों के तूफान जारी रहे जिससे जो काम दिन में किया जाता था वह शाम को व्यर्थ हो जाता था। ऐसे संकटकाल मे स्वर्गीय बाबा मिलखासिह जी जैसे लाइलाज आशावादी और साहसी व्यक्ति का ही काम था कि वे रात और दिन सम्मेलन आरम्भ होने से पूर्व निवास-स्थान और सभामण्डप के कार्य को पूरा करने मे लगे रहे। अन्त मे विश्वास को सफलता प्राप्त हुई। २० के प्रात.काल जब बाहर के प्रतिनिधियों का आगमन शुरू हुआ तो उन्हे ठहराने की व्यवस्था हो चुकी थी और सभामण्डप पूर्णरूप से खड़ा हो चुका था। सभामण्डप बीस हजार मनुष्यो के बैठने योग्य बनाया गया था। मंच पर एक हजार व्यक्तियों के बैठने का स्थान था।

२० फरवरी को दोपहर के समय सम्मेलन के अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी का जलूस हाथी पर निकाला गया। जलूस के साथ लगभग देड़ लाख की भीड का अनुमान लगाया गया था। एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि स्वागत-समारोह में तथा जलूस में आर्य-समाज के अतिरिक्त अन्य भी सब हिन्दू संस्थाओं ने भाग लिया। जलूस की समाप्ति आर्यनगर "गाधी मैदान" मे हुई। उस समय डा० मुकर्जी ने "ओ३म्" की ध्वजा का आरोपण करते हुए कहा, "यह पताका निरा कपड़े का टुकड़ा नहीं है, अपितु देश, जाति और धर्म का प्रतीक है। हमारा जलूस निकालना और यहाँ इतनी भारी संख्या में इकट्ठा होना तभी सार्थक होगा यदि सब हिन्दू इस एक पताका के नीचे सब भेदों को भुला कर कार्य करने को उद्यत हो। इस अधिवेशन मे हमें अपनी सब समस्याओं पर विचार करके यह सिद्ध करना है कि हम सब एक है।"

आर्य महासम्मेलन का अधिवेशन सायंकाल ५ बजे आरम्भ हुआ। प्रारम्भ में स्वागताध्यक्ष लाला नारायणदत्त जी ने अपने प्रारम्भिक भाषण में सामयिक परि-स्थिति का प्रदर्शन करते हुए विशेष रूप से मुस्लिम लीग द्वारा सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध उठाये हुए आन्दोलन की चर्चा की और अन्त मे यह विश्वास प्रकट किया कि यदि परीक्षा का अवसर ही आ गया तो आर्यजाति उसमें पूर्णरूप से उत्तीर्ण होगी।

जिन महानुभावो ने सम्मेलन के साथ सहानुभूति प्रकट की थी उनमें से श्री वी० डी० सावरकर, श्री एम० आर० जयकर, श्री सेठ जुगलकिशोर बिड़ला, श्री मेहरचन्द खन्ना, श्री एन० सी० चटर्जी, श्री एम० एस० अणे आदि महानुभावो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सम्मेलन के अध्यक्ष डा० मुकर्जी का भाषण बहुत जोरदार और महत्वपूर्ण था। सत्यार्थप्रकाश के उदार और पक्षपातहीन दृष्टिकोण का वर्णन करते हुए अध्यक्ष महोदय ने घोषणा की:—

"आर्यसमाज के अनुयायियों के दृढ़ संगठन को जानते हुए मै यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि हमारे धार्मिक अधिकारो में हस्तक्षेप करने का कोई भी दुष्प्रयत्न किया गया तो उसे परिणाम की चिन्ता किये बिना साहस और संगठन के बल से छिन्न-भिन्न कर दिया जायगा। मै तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि संपूर्ण हिन्दू जाति और उसके सम्प्रदाय, कुछ छोटे-मोटे अवान्तर भेदों के होते हुए भी, सत्यार्थप्रकाश पर किये गये आक्रमण को-अपने लिए चुनौती समझेंगे और उसका मुंहतोड उत्तर देने के लिए उद्यत हो जायेगे।"

अन्त में आपने हिन्दू जाति का इन शब्दों से आह्वान किया, "हमें जनता के सामने यह बात स्पष्टता से रख देनी चाहिये कि स्वाधीन शासन भारत का नैसर्गिक अधिकार है। इस कारण यदि हमे स्वाधीनता प्राप्त नही होती तो हमारा जीवन मृत्यु के समान है। हम जनता से केवल मर्मस्पर्शी अपीलें करके या विरोधियो को भला-बुरा कह कर अपने लक्ष्य पर नही पहुँच सकते। उसके लिए तो हमे सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान का कार्यक्रम अमल में लाते हुए धर्म को मनुष्य की सच्ची उन्नति का साधन बनाना होगा। ऐसे सच्चे धर्म की दृढ नींव पर ही स्वाधीनता के भवन का निर्माण हो सकेगा।"

सम्मेलन में अनेक प्रस्ताव स्वीकृत हुए। मुख्य प्रस्ताव सत्यार्थप्रकाश के संबंध मे था। प्रस्ताव निम्नलिखित था—

"अखिल भारतीय आर्य महासम्मेलन का यह अधिवेशन बड़ी गंभीरता से अनुभव करता है कि मुस्लिम लीग की ओर से (जो कि अपने को राजनीतिक संस्था कहती है), हिन्दुओं की धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने का संगठित प्रयत्न किया जा रहा है और सत्यार्थप्रकाश का विरोध इस आन्दोलन का आरम्भमात्र है।

"सत्यार्थ प्रकाश मे लाखो मनुष्य वैसी ही श्रद्धा और भक्तिभाव रखते है जैसी किसी अन्य धर्मग्रन्थ के प्रति उसके अनुयायियो की होती है। यह ग्रन्थ ७० वर्ष से जनता के समक्ष है। इसका भारतवर्ष की भिन्न-भिन्न भाषाओं मे अनुवाद और प्रकाशन हो चुका है और डंके की चोट इसका देशभर मे प्रचार होता रहा है। बहुसंख्यक आर्यसमाजों के मंच से यह व्याख्यानों का विषय रहा है और सत्संगों मे इसका नित्य पाठ होता रहा है परन्तु देशवासियों के किसी भी भाग की ओर से उस पर कभी आपत्ति नही उठायी गयी।

"यह सम्मेलन घोषणा करता है कि सत्यार्थप्रकाश में दूसरे मतों की या सम्प्रदायों की समालोचना के रूप मे कोई ऐसी बात नहीं कही गई, जो अन्य मतावलम्बियों के धर्मग्रन्थों मे विद्यमान न हो।

"कहा जाता है कि सत्यार्थप्रकाश का यह विरोध इसलिए है कि इससे मुसलमानों की धार्मिक भावना को आघात पहुँचता है। परन्तु यह बात ठीक नही है। इसके पीछे तो राजनीतिक चाल स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर हो रही है।

"आर्यसमाज सत्यासत्य का निर्णय शास्त्रार्थ द्वारा करने के लिए सर्वदा उद्यत रहा है, परन्तु आर्यसमाज किसी प्रकार भी यह सहन नही कर सकता कि किसी को भी बलात् काँट-छाँट करने के प्रयोजन से सत्यार्थप्रकाश की जाँच करने का अधिकार हो। ऐसी जाँच का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि अत्यन्त भीषण आन्तरिक झगड़े उत्पन्न हो जायेंगे और अन्य मतावलम्बियो के धर्मग्रन्थों की इस प्रकार की समीक्षा के लिए भी द्वार खुल जायगा।

"इस सम्मेलन को आशा है कि न केवल सभी हिन्दू अपितु अन्य मतावलम्बी भी मुस्लिम लीग के इस आन्दोलन के गंभीर तथा भयावह परिणाम पर पूर्णरूपेण विचार करेंगे। सत्यार्थप्रकाश का वर्तमान विरोध केवल आरम्भमात्र है और हिन्दुओ के तथा अन्य मतावलम्बियो के धर्मग्रन्थों मे हस्तक्षेप करने की ओर पहला पग है। सभी पुरुषों का, चाहे वे किसी भी मत, धर्म, सम्प्रदाय या जाति के क्यो न हों, कर्तव्य है कि इस आन्दोलन का दृढ़तापूर्वक एवं संगठित रूपेण तत्काल विरोध किया जाय।

"यह सम्मेलन स्पष्ट घोषणा करता है कि सामान्यतः समस्त हिन्दू-जगत् और विशेषतः आर्यसमाज अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए कोई कसर उठा न रखेगा और अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए उद्यत रहेगा।

"इस सम्मेलन की धारणा है कि मुस्लिम लीग की माँग का मुख्य उद्देश्य यह है कि सरकार और आर्यसमाज तथा हिन्दुओ और मुसलमानो के मध्य मे गहरा विरोध उत्पन्न हो जाय। इस सम्मेलन का विचार है कि मुस्लिम लीग अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में अवश्य विफल होगी।

"इस सम्मेलन को पूर्ण आशा है कि ब्रिटिश सरकार, जिसकी आरम्भ से ही धार्मिक तटस्थता की निश्चित नीति रही है मुस्लिम लीग के जाल में फँसकर आर्यसमाज के धार्मिक अधिकारो मे पक्षपातपूर्ण हस्तक्षेप करना कदापि स्वीकार न करेगी।"

इस प्रस्ताव के प्रस्तावक श्री प० गंगाप्रसाद जी एम० ए० प्रधान सार्वदेशिक सभा तथा अनुमोदक श्री प० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति मंत्री सार्वदेशिक सभा थे। प्रस्ताव के समर्थन मे श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी प्रधानमंत्री सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, लाहौर, सरदार विचित्तरसिंह जी, बाबा मिलखासिंह जी, पं० विजयशंकर जी, कविराज हरनाम-दास जी, श्री स्वामी दयानन्द जी, पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, कुंवर चांदकरण जी शारदा, राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री, श्रीमती अक्षयकुमारी देवी जी, श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी, पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा आदि महानुभावो के भाषण हुए।

इस प्रस्ताव से संबद्ध एक और प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव को महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने उपस्थित किया। इस प्रस्ताव द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से "सत्यार्थप्रकाश रक्षानिधि" के निमित्त दो लाख रुपए की अपील की गई थी। उस प्रस्ताव का उपस्थित जनता की ओर से बहुत उत्साहपूर्वक

स्वागत किया गया। प्रान्तों की आर्यप्रतिनिधि सभाओं तथा आर्यसमाजों के अधिकारियों ने उसी समय निम्नलिखित राशियाँ भेजने की प्रतिज्ञा की,

आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब	--५०,००० रु०
आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त	--५०,००० रु०
आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान	--१५,००० रु०
आर्य प्रतिनिधि सभा, बंगाल तथा आसाम	--१५,००० रु०
आर्यकुमार सभा, बड़ौदा	--१०,००० रु०
आर्यसमाज, अजमेर	-- ५,००० रु०

इन दो मुख्य प्रस्तावों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए जिनमें से त्रैवार्षिक कार्यक्रम विषयक प्रस्ताव विशेषरूप से महत्व पूर्ण है। वह प्रस्ताव आर्यसमाज की सामान्य नीति का निर्देशक है। इस कारण वह सम्पूर्ण रूप में नीचे दिया जाता है।

"यह सम्मेलन भावी तीन वर्षों के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा उद्घोषित कार्यक्रम का निम्नलिखित रूप में समर्थन करता है।

(१) स्वाध्याय, वैदिक पंचमहायज्ञ तथा वैदिक संस्कारादि और सत्संग द्वारा आर्य नरनारियों के व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवनों को उच्च और दृढ बनाया जाय।

(२) आर्यवीर दल का दृढ़ और व्यापी सगठन बनाया जावे। तीन वर्षों में आर्यवीरो की संख्या कम-से-कम १ लाख की जावे। आर्यवीर और आर्यवीरांगनाओ के सगठन पर समान रूप से बल दिया जावे।

(३) आर्यसमाज के संगठन को अधिक व्यापक करने के लिए इस समय कम-से-कम ३ हजार नई समाजों की स्थापना की जावे और ५० हजार नये आर्य सभासद् बनाये जावें।

(४) ग्रामो मे वैदिक धर्म प्रचार पर अधिक बल दिया जावे। प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभायें तथा स्थानीय आर्यसमाजें निम्नलिखित तथा ऐसे ही अन्य उपायों से ग्राम प्रचार के कार्य को आगे बढ़ावें :--

(क) ग्रामप्रचार-मण्डलियो द्वारा।

(ख) औषधि-वितरण तथा अन्य सेवा-कार्यों द्वारा।

(ग) ग्रामो मे प्रारंभिक शिक्षणालय की स्थापना द्वारा।

(५) दलित और आदिवासी कहे जाने वाली जातियों मे उच्च जीवन और समानता के वैदिक सिद्धान्तों का क्रियात्मक प्रचार करके उन्हें आर्यजाति का दृढ़ अंग बनाने का यत्न किया जावे। सब आर्य सामाजिक सगठनों को विशेष यत्न करके आस-पास के हल्कों में बसी हुई उन पिछड़ी हुई जातियो को आर्यसमाज के दायरे में लाने का भरसक यत्न करना चाहिए।

(६) यह सम्मेलन आर्य जनता से अनुरोध करता है कि वह गोरक्षा के कार्य को संगठित रूप में आगे बढ़ावे।

(७) यह सम्मेलन आर्यजनता, आर्यप्रतिनिधि सभाओं, आर्य संस्थाओं तथा आर्य विद्वानों से अनुरोध करता है कि वे अपने सब कार्यों को आर्यभाषा हिन्दी में ही करें।

(८) यह सम्मेलन सार्वदेशिक सभा से अनुरोध करता है कि वह वैदिक धर्म के प्रचारार्थ भिन्न-भिन्न भाषाओं में व्यापक, विस्तृत, और आकर्षक वैदिक साहित्य का निर्माण करे।

(९) ऐसे प्रान्तों में जहाँ आर्य प्रतिनिधि सभायें नहीं है अथवा शिथिल अवस्था में हैं, प्रचार कार्य को बढ़ाया जाय और जिन भील तथा थिया आदि जातियों मे आर्यधर्म का सुगमता से प्रचार किया जा सकता है, उनमें विशेष रूप से कार्य किया जावे।

"आगामी तीन वर्षों का यह स्थायी कार्यक्रम होगा। समय-समय पर नई परिस्थितियों के अनुसार जिन कार्यों की आवश्यकता होगी उनके संबंध में सार्वदेशिक सभा उसी समय उचित आदेश देती रहेगी। कार्यक्रम की प्रगति की देख-रेख के लिए सभा प्रान्तीय सभाओं से त्रैमासिक विवरण मँगाती रहेगी।"

तीसरा अध्याय

आर्यसमाज की जीत

सिन्ध की सरकार ने ८ जुलाई १९४३ को इस आशय की जो सूचना प्रकाशित की थी कि सरकार की सत्यार्थप्रकाश पर किसी प्रकार का प्रतिबंध लगाने की इच्छा नहीं है उसकी चर्चा इस खण्ड के प्रथम अध्याय मे आ चुकी है। अपनी उस स्पष्ट घोषणा पर पूरी तरह हड़ताल फेरते हुए सिन्ध सरकार ने २६ अक्तूबर १९४४ के दिन निम्नलिखित आदेश जारी किया :

Government of Sindh,
Home Department (Special)
Sindh Secretariat, Karachi, 26th October, 1944.
Order No. S. D. 321

Whereas the Government of Sindh considers it necessary for the purpose of securing the public safety and the maintenance of public order to make the following order—

Now, therefore, in exercise of the powers conferred by sub-rule (1) of rule 41 of the Defence of India rules, the Government of Sindh is pleased to direct that no copies of the book entitled "Satyarthaprakash" written by Swami Dayanand Saraswati shall be printed or published unless chapter XIV (chapter fourteen) thereof is omitted.

"क्योंकि सिन्ध सरकार समझती है कि सार्वजनिक सुरक्षा के हित मे और शान्ति की स्थापना के लिए यह आवश्यक है, इस कारण निम्नलिखित आज्ञा देती है,

"भारत रक्षा कानून की धारा ४१ की उपधारा १ से प्राप्त हुए अधिकार के अनुसार स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित "सत्यार्थ प्रकाश" नाम की पुस्तक का मुद्रण और प्रकाशन नहीं किया जा सकेगा, यदि उसमें से १४वां समुल्लास न निकाल दिया जाय।"

समाचारपत्रो मे सिन्ध सरकार की आज्ञा के प्रकाशित होने पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से सिन्ध के गवर्नर के नाम पर तार भेजा गया,

"Shocked learning Associated Press news announcing your Government's order banning fourteenth chapter of Satyartha Prakash, Arya's most popular sacred book. Please intervene and direct

withdrawal of order ; otherwise your Government will be responsible for bitter struggle by all Aryas for religious freedom as in Hyderabad State Matter very serious requiring your immediate intervention."

"असोसियेटेड प्रेस के समाचारों से यह जानकर कि आपकी सरकार ने आर्यों की अत्यधिक सर्वप्रिय पवित्र पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के १४वें समुल्लास पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, इस सभा को बहुत क्षोभ हुआ। आप कृपया हस्तक्षेप कीजिये और प्रतिबन्ध की आज्ञा को वापिस करवा दीजिए। अन्यथा आर्यों को हैदराबाद रियासत की भाँति सिन्ध मे जो भयानक संघर्ष करना पड़ेगा, उसके लिए आपकी सरकार जुम्मेवार होगी। मामला बहुत संगीन है, आपका हस्तक्षेप अत्यन्त आवश्यक है।"

सार्वदेशिक सभा का यह तार उस विस्तृत और उग्र आन्दोलन का प्रारंभिक चिह्न था जो शीघ्र ही सारे देश के आर्यों में व्याप्त हो गया। स्थान स्थान से इसी आशय के तार और प्रस्ताव सिन्ध के गवर्नर और प्रधानमन्त्री को मिलने लगे। लाहौर में नवम्बर १९४४ के अन्तिम सप्ताह में पंजाब के आर्यजनों का एक विशाल सम्मेलन हुआ। सम्मेलन के अध्यक्ष श्री घनश्यामसिंह गुप्त ने अपने प्रारंभिक भाषण में बताया .

"आप सबको विदित है कि यह सम्मेलन सिन्ध सरकार द्वारा ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश नामक पवित्र ग्रन्थ पर लगाये गये प्रतिबन्ध पर विचार करने के लिए बुलाया गया है। सिन्ध सरकार के इस कार्य का इतिहास निर्विवादरूप से यह सिद्ध करता है कि इस चाल का असली कारण राजनीतिक है। सत्यार्थप्रकाश लगभग ७५ साल से संसार के सामने है। देश और विदेश की भाषाओं मे इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके है। अब तक कही भी उसके कारण किसी प्रकार का उत्पात या उपद्रव नहीं हुआ। मुस्लिम लीग, जो कि एक राजनीतिक संस्था है, ने अभी हाल मे यह आन्दोलन खड़ा किया है। उसके आदेश के अनुसार ही सिन्ध की लीगी सरकार ने सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाया है। इस प्रतिबन्ध के विशुद्ध राजनीतिक होने में इससे अधिक किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं।"

आगे चलकर श्री गुप्त जी ने प्रतिबन्ध को वैधानिक और कानूनी दृष्टि से आपत्तिजनक बतलाते हुए अन्त में कहा कि मै यह स्पष्ट घोषणा कर देना चाहता हूँ कि "जब तक उनके धर्म पर किया गया यह आक्रमण वापिस न ले लिया जायगा, तब तक वे आराम से न बैठेंगे।"

सिन्ध में परिस्थिति को देखने के लिए सार्वदेशिक सभा की ओर से पं० शिवचन्द्र आर्य को भेजा गया था। जिन्होंने वहाँ कई विशिष्ट व्यक्तियों से भेंट की और कई वक्तव्य निकाले। सभा के मंत्री प्रो० सुधाकर जी ने लीग के अध्यक्ष मि० मोहम्मदअली जिन्ना को एक लम्बा पत्र लिखा जिसमे उनसे यह आशा की गयी थी कि वे सिन्ध सरकार को ऐसा अन्यायपूर्ण कार्य करने से रोकेंगे।

जब आर्यसमाज ने देखा कि न सम्मेलन के प्रस्ताव का कोई असर हुआ और न मि० जिन्ना आदि से की गयी अपीलों का, तब ८ फरवरी १९४५ को देहली में अखिल भारतीय सत्यार्थप्रकाश रक्षा समिति की बैठक की गई। समिति के प्रस्तावों का सारांश

यह था कि सिन्ध सरकार द्वारा सत्यार्थप्रकाश पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटाने के सब वैधानिक उपाय करने पर भी यदि सफलता न मिले तो उसे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार रहना चाहिए। समिति ने आर्यसमाज की प्रान्तीय सभाओं और आर्यसमाजों को यह आदेश भेज दिया कि वे अन्तिम कदम उठाने की तैयारी पूरे जोर से आरम्भ कर दें।

उस समय के सिन्ध सरकार के प्रधानमन्त्री सर गुलाम हुसैन हिदायतुल्ला के मन्त्रिमण्डल के हिन्दू सदस्य मि० निचलदास वजीरानी ने सरकार की सत्यार्थप्रकाश संबंधी नीति से असन्तोष प्रकट करते हुए यह धमकी दी थी कि यदि सरकार ने अपनी नीति को न बदला तो मंत्रिमण्डल के हिन्दू सदस्य त्यागपत्र दे देंगे। आर्यसमाज की ओर से सिन्ध के गवर्नर और प्रधानमन्त्री पर प्रतिबन्ध-आदेश को वापिस ले लेने के बारे में जोर डाला ही जा रहा था। विरोधी आन्दोलन को ठंडा करने के लिए ११ अगस्त को सिन्ध सरकार ने एक घोषणा प्रकाशित की जिसमें यह सूचना दी कि सत्यार्थप्रकाश के चौदहवे समुल्लास का अरबी, सिन्धी, उर्दू, अंग्रेजी और फारसी मे अनुवाद मुद्रित और प्रकाशित करना अथवा अन्यत्र मुद्रित अनुवाद को सिन्ध में प्रकाशित या वितीर्ण करना अपराध माना जायगा। इस आज्ञा से आर्यजगत् को सन्तोष कैसे हो सकता था। उनका विश्वास था कि सत्यार्थप्रकाश के किसी भी भाग मे किसी अन्य सम्प्रदाय के प्रति घृणा का भाव नहीं फैलाया गया, न किसी पर आक्रमण करने को प्रेरणा की गयी है। ऐसी दशा में यह आरोप लगाना कि सत्यार्थप्रकाश का चौदहवाँ समुल्लास सुरक्षा की दृष्टि से आपत्तिजनक है, सर्वथा अमान्य है। इस कारण आर्यजगत् ने सिन्ध सरकार की परिवर्तित आज्ञा को अंगीकार नही किया। सभा के प्रधान श्री घनश्यामसिंह गुप्त ने एक वक्तव्य द्वारा अपनी असहमति प्रकट कर दी और अपना प्रतिनिधि बना कर ला० देशबन्धु गुप्त को सिन्ध के गवर्नर तथा अन्य अधिकारियों से मिल कर बातचीत करने के लिए कराची भेजा। आर्यसमाज की ओर से मतभेद को शान्तिपूर्वक निपटाने के जितने प्रयत्न किये गये सब व्यर्थ गये। शायद सिन्ध के अधिकारियों ने यह समझा कि आर्य लोग केवल खोखली धमकी दे रहे है। उनमें कोई सार नही है। इस परिस्थिति पर विचार करने के लिए "अखिल भारतीय सत्यार्थप्रकाश रक्षा-समिति" का एक अधिवेशन ९ दिसम्बर को दिल्ली मे किया गया, जिसमे अन्तिम रूप से यह निश्चय किया गया कि यदि परिस्थिति में कोई सुधार न हुआ तो सत्याग्रह की मुहिम आरम्भ कर दी जायगी।

३० सितम्बर १९४६ के दिन "डिफेन्स आफ इण्डिया रूल्स" के समाप्त हो जाने के कारण सिन्ध सरकार की प्रतिबन्ध संबंधी आज्ञा स्वयं ही समाप्त हो गयी। इससे कुछ लोगों को यह आशा हो गयी थी कि संभव है अब सिन्ध सरकार उत्पात जो फिर से न उठाये। परन्तु वह तो शरारत पर तुली हुई थी। १० अक्तूबर १९४६ को सिन्ध सरकार की ओर से यह आज्ञा प्रचारित हुई :—

N.S D 321—Whereas it appears to the Government of Sindh that Chapter XIV of the book in Sindhi entitled "Satyarthaprakash" contains matter which promotes feeling of enmity or hatred between different classes of His Majesty's subjects,

Now, therefore, in exercise of the powers conferred by Section 99A of the Code of Criminal Procedure 1898, the Government of Sindh hereby declares to be forfeited to His Majesty every copy wherever found of the book in Sindhi entitled "Satyartha Prakash" written by Swami Dayanand Saraswati and published by Prof, Tarachand D, Gajra, M A, on behalf of the Arya Pratinidhi Sabha, Sindh, Karachi, and all other documents containing copies, reprints or translations of, or extracts from chapter XIV of the said book on the ground that in the said chapter the author :

(a) Ridicules some of the religious beliefs of the Muslims ;
(b) Misrepresents and reviles the teachings of the Quran ;
(c) Attacks and ridicules the authoritative value and character of the Quran ,
(d) Attacks and belittles the authority of Prophet Mohammed ; and
(e) Generally contains matter calculated to hurt, and which hurts the religious susceptibilities of Muslims.

"क्योंकि सिन्ध की सरकार ने यह अनुभव किया है कि सिन्धी सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास से प्रजा के भिन्न-भिन्न वर्गों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न होता है इस कारण अब क्रिमिनल प्रोसीजर कोड १८९८ की धारा ९९ए० के अनुसार सिन्ध सरकार आज्ञा देती है कि प्रो० ताराचन्द गाजरा द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध, कराची की ओर से प्रकाशित स्वामी दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास की कापियाँ, प्रतिलिपियाँ, अनुवाद या उद्धरण जहाँ भी प्राप्त हों, जब्त कर लिए जाएं, क्योंकि उसमें ग्रन्थकार ने

(क) मुसलमानों के कुछ धार्मिक विचारों का मजाक उड़ाया है,
(ख) कुरान की शिक्षाओं को गलत तरीके पर पेश किया है और उनकी निन्दा की है,
(ग) कुरान की प्रामाणिकता और महत्ता पर आक्रमण किये हैं और मजाक उड़ाया है,
(घ) हजरत मोहम्मद की शान पर आक्षेप किये हैं और उसे तुच्छ बतलाया है, और
(ङ) सामान्य रूप से मुसलमानों के धार्मिक भावों पर आघात पहुँचाने वाला है, और पहुँचाता है।"

स्वाभाविक ही था कि इस आज्ञा को आर्यजगत् अपने लिए गभीर चुनौती समझता। सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशित होने के इतने समय के पश्चात् ऐसी तानाशाही आज्ञा का प्रकाशित होना साधारण बात नही थी। वह भविष्य में आने वाले तूफान की सूचना देती थी। यह विशेष महत्वपूर्ण बात थी कि आज्ञा अंग्रेज गवर्नर की अनुमति से दी गयी थी। मुस्लिम लीगी प्रेस ने आज्ञा का हार्दिक अभिनन्दन किया। इसका

यह अभिप्राय नहीं कि सब मुसलमान सार्वजनिक नेता सिन्ध सरकार के नादिरशाही हुक्म से सहमत थे। मौ० अबुल कलाम आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खाँ और डा० खान साहब आदि अनेक राष्ट्रीय विचारों के मुसलमानों ने सिन्ध सरकार की आज्ञा के विरोध में वक्तव्य दिये। महात्मा गाधी ने उसे विवेकहीन और शरारतभरी आज्ञा बतलाया।

सिन्ध के आर्य पुरुषों ने मुस्लिम लीग की धमकी का उचित उत्तर देने मे देर न लगायी। डी०ए०वी० हाई स्कूल के प्रिंसिपल श्री रामसहाय जी ने २१ अक्तूबर को कराची के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के नाम एक पत्र लिखा जिसमें सूचना दी गयी थी कि "क्योंकि मै अपने धर्मग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश पर लगाये गये प्रतिबन्ध को अन्यायपूर्ण मानता हूँ, इसलिए मैने सिन्ध सरकार के प्रतिबन्ध संबंधी हुक्म को तोड़ने का निश्चय किया है। आप मुझे जो सजा चाहें, दे सकते है।" डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की तरफ से न तो श्री रामसहाय जी के पत्र का कोई उत्तर दिया गया और न ही उनके विरुद्ध कोई कारवाही की गयी। बहुत समय इसी तरह बीत गया। इस बीच में सिन्ध के सैकड़ो आर्यसमाजी गले में सत्यार्थप्रकाश की पुस्तक लटकाकर बाजारों में घूमते रहे।

तीन नवम्बर १९४६ को बलिदान भवन दिल्ली मे श्री महात्मा नारायण स्वामी जी की प्रधानता मे सत्यार्थप्रकाश-रक्षा समिति की विशेष बैठक हुई। जिसमे सिन्ध सरकार के अन्यायपूर्ण हुक्म की आलोचना करते हुए अन्त में घोषणा की गयी थी कि "इस समिति की सम्मति मे ऐसी परिस्थिति आ गयी है कि अपनी धार्मिक स्वाधीनता की रक्षा के लिए ऐसे प्रभावयुक्त कदम उठाये जाँय जिनसे अन्यायपूर्ण आज्ञा वापिस लेनी पड़े। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समिति निश्चय करती है कि व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी किया जाय और आर्यजनों को आदेश देती है कि वे सत्याग्रहियों मे अपने नाम भर्ती करायें। यह समिति यह भी निश्चय करती है कि महात्मा नारायण स्वामी जी सत्याग्रह के सर्वाधिकारी होंगे। वही इस सम्बन्ध मे आवश्यक निर्णय करते रहेंगे।"

जब स्वामी जी महाराज सिन्ध सत्याग्रह के सर्वाधिकारी चुने गये तब उनकी आयु ८० वर्ष से ऊपर थी। उनकी उस समय की शारीरिक दशा के संबंध मे श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने अपने "जीवनचक्र" में लिखा है, "उनकी आयु ८० वर्ष से ऊपर थी। उनका स्वास्थ्य अच्छा न था। हैदराबाद की जेल यात्राओं ने उनके स्वास्थ्य को बड़ा विकृत कर दिया था। उनके रक्त मे उष्णता बढ़ गयी थी।" यह थी स्वामी जी के स्वास्थ्य की दशा! जब समिति ने शत्रु के अधिकार क्षेत्र में जाकर युद्ध का नेतृत्व करने का काम उनके सुपुर्द किया तब जनवरी १९४७ के पहले दिन एक वक्तव्य निकाल कर स्वामी जी सिन्ध के लिए रवाना हो गये। हैदराबाद सत्याग्रह के कष्ट और बडी आयु के संकटों की परवाह न करके उनके नेता ने अपने आपको युद्ध में झोंक दिया, इस बात का आर्यजगत् पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय नेताओं ने भी मुस्लिम लीग की अन्यायपूर्ण नीति की निन्दा की। महात्मा गांधी ने उसे शरारतभरा बतलाया,

पं० जवाहरलाल जी ने उसे विचार और लेख की स्वाधीनता पर आघात बतलाते हुए उसकी निन्दा की। बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने एक पत्र में लिखा था, "मुझे आश्चर्य है कि सत्तर साल से प्रचलित एक धर्म पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगाने वाली यह आज्ञा कहीं उस व्यवहार का पूर्वरूप तो नहीं जो लीग के शासन में मुसलमानों से भिन्न लोगों के साथ किया जायगा।"

सत्याग्रह का आरम्भ करने के लिए महात्मा नारायण स्वामी जी के साथ पं० धुरेन्द्र शास्त्री (श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी), ला० खुशालचन्द 'आनन्द' (श्री आनन्द स्वामी जी), आदि महानुभाव भी कराची पहुँच गये। १४ जनवरी के दिन सत्याग्रह का बिगुल बज गया। यज्ञ तथा ईश्वर प्रार्थना के पश्चात् जिन आर्य नेताओं ने शांतिमय संग्राम आरम्भ करने की घोषणा की उनके नाम निम्न लिखित हैं :

(१) श्री पं० धुरेन्द्र शास्त्री, (२) श्री ला० खुशालचन्द जी, (२) श्री कुंवर चांदकरण शारदा।

स्वामी जी महाराज ने सिन्ध के मुख्यमंत्री के नाम निम्नलिखित पत्र भेजकर सत्याग्रह का प्रारम्भ किया :—

"यह सब को विदित है कि सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाज का धर्मग्रन्थ है। ईसाइयों के लिए जैसे बाइबिल और मुसलमानो के लिए कुरान पवित्र है, वैसे ही सत्यार्थप्रकाश हमारे लिए पवित्र है। सिन्ध सरकार द्वारा सत्यार्थप्रकाश की जब्ती का हुक्म हमारे धार्मिक अधिकार और स्वाधीनता पर भयंकर आक्रमण है। हम यह सूचना देना चाहते हैं कि हमारे पास सिन्धी भाषा में सत्यार्थप्रकाश है। हम किसी का अधिकार नहीं समझते कि वह इसे हमसे छीने। हम एक सप्ताह भर कराची मे रहेंगे।"

यह सूचना देने के पश्चात् सातों सत्याग्रही सत्यार्थप्रकाश की प्रति लेकर शहर में खुले घूमते रहे। उस समय बिहार से श्री स्वामी अभेदानन्द जी और दिल्ली से पं० लक्ष्मी-दत्त दीक्षित भी कराची पहुँच गये थे। सत्याग्रह आरभ होने के समाचार ने देशभर की हिन्दू जनता मे जोश और उत्साह का एक तूफान सा उत्पन्न कर दिया। सब लोग धर्मयुद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे।

सिन्ध सरकार, जो अब तक बड़ी वीरता से जिहाद के रास्ते पर आगे बढ रही थी, सत्याग्रह आरम्भ होते ही डगमगा गयी। सत्याग्रह आरम्भ होने के पाँचवे दिन के प्रातःकाल देशभर के समाचारपत्रो मे यह समाचार छपा कि सिन्ध सरकार की कैबिनट ने अपनी पुलिस के नाम यह आज्ञा जारी कर दी है कि जब्तशुदा सत्यार्थप्रकाश की तलाशी, उसकी जप्ती अथवा जिसके पास वह सत्यार्थप्रकाश हो उसकी गिरफ्तारी न की जाय। इस आज्ञा का अभिप्राय स्पष्ट था कि सिन्ध सरकार ने अपनी आज्ञा वापिस ले ली। इस प्रकार आर्यसमाज ने इस दूसरे धर्मयुद्ध में भी पूर्ण विजय प्राप्त की। देशभर के हिन्दुओ तथा अन्य राष्ट्र भक्तों में आर्यसमाज की सफलता पर अत्यन्त हर्ष मनाया गया। उधर सिन्ध तथा पंजाब के मुस्लिम समाचारपत्रो ने सिन्ध सरकार को बहुत लताड़ा।

उन्होंने लिखा कि सिन्ध की लीगी सरकार ने मुसलमानों में लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए सत्यार्थप्रकाश पर जो प्रतिबन्ध लगाया था, आर्यों के सत्याग्रह से घबराकर उसे वापिस ले लिया और इस तरह इस्लाम का सर नीचा कर दिया।

एक वर्ष पीछे १९४८ में सीहोर (भोपाल रियासत) के नाजिम ने भी सत्यार्थ-प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाने का दुस्साहस किया था। जब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने उस मामले को अपने हाथ में लिया तो भोपाल सरकार ने सीहोर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को बाधित किया कि वह अपनी आज्ञा वापिस ले ले।

चौथा अध्याय

आर्यसमाज की विविध प्रवृत्तियां

दक्षिण भारत में प्रचार

सार्वदेशिक सभा की ओर से दक्षिण भारत में प्रचार के क्रम-विकास का विवरण इससे पूर्व के खण्डों में आ चुका है। पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति के मद्रास से आकर सार्वदेशिक सभा के उपमंत्री का कार्य संभालने पर पं० मदनमोहन विद्यासागर स्नातक गुरुकुल कांगड़ी, दक्षिण में प्रचार के लिए भेजे गये। वहाँ उन्होंने तिनावली में केन्द्र बना कर तीन वर्ष तक लेख तथा वाणी द्वारा प्रचार किया।

सन् १९४० के दिसम्बर मास में मदुरा में एक बड़ा सम्मेलन होने वाला था। उसकी ओर से विशेष निमन्त्रण आने पर सभा के मन्त्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने पं० शिवचन्द आर्य को प्रेषित किया। पं० शिवचन्द जी के उद्योग से मद्रास में दक्षिण भारत आर्यन कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया गया। प्रारंभ में यह निश्चय हुआ था कि मद्रास कॉर्पोरेशन के मेयर और प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता श्री सत्यमूर्ति जी कॉन्फ्रेंस के प्रधान होंगे। परन्तु वे सत्याग्रह-आन्दोलन में जेल चले गये। तब सर्वदेशिक सभा के प्रधान श्री नारायण स्वामी जी महाराज के सभापतित्व में सम्मेलन का अधिवेशन सम्पन्न हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री ए० रंगास्वामी अय्यर एडवोकेट थे। यद्यपि मुख्य सम्मेलन २६ और २७ दिसम्बर को हुआ, उस अवसर से लाभ उठाकर व्याख्यानो का क्रम लगभग सप्ताह तक जारी रहा। सम्मेलन में दक्षिण भारत की १२ आर्यसमाजों के तोस प्रतिनिधिओं ने भाग लिया। व्याख्याताओं मे स्वागताध्यक्ष तथा सभापति जी के अतिरिक्त सर्वश्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति, पं० केशवदेव ज्ञानी, पं० शिवचन्द आर्य, पं० मदनमोहन विद्याधर, श्री के० सी० भल्ला, पं० सुधाकर जी के नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं। सम्मेलन में ला० नारायणदत्त जी, महाशय कृष्ण जी तथा डॉ० गोकुलचन्द नारंग भी सम्मिलित हुए। इस अवसर पर सम्मेलन में उपस्थित होकर श्री विनायक दामोदर सावरकर, डॉ० मुंजे तथा श्री एन० सी० चटर्जी ने महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के सम्बन्ध में शोभन विचार प्रकट किये। सम्मेलन की समाप्ति पर दक्षिण भारत आर्यप्रतिनिधि सभा भी स्थापित हुई थी, परन्तु स्थानीय कार्यकर्ताओं की शिथिलता के कारण वह दूर तक न चल सकी। प० शिवचन्द जी के उद्योग से मदुरा तथा अन्य स्थानो मे भी आर्यसमाजों की स्थापना हुई।

सन् १९४१ के दिसम्बर मास मे मद्रास में श्री सत्यमूर्ति जी के सभापतित्व में द्वितीय दक्षिण-भारत-आर्यन-कॉन्फ्रेस का अधिवेशन हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री बी० एन०

कुमारस्वामी थे और मंत्री पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति तथा श्री शिवचन्द जी थे। सम्मेलन के अध्यक्षीय आसन से श्री सत्यमूर्ति जी ने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया। पूरा भाषण परिशिष्ट सं० १ के रूप में दिया गया है। उससे उनका आर्यधर्म तथा आर्यसमाज से दृढ प्रेम प्रकट होता है। यह आशा हो गयी थी कि श्री सत्यमूर्ति जी की प्रभावयुक्त सहायता से दक्षिण में आर्यसमाज का विस्तार तीव्रता से हो सकेगा। परन्तु दुर्भाग्यवश श्री सत्यमूर्ति जी रोगी हो गये और उसी रोग मे उनका शरीरान्त हो गया। उनका विचार था कि दक्षिण में ब्राह्मण, नॉन-ब्राह्मण तथा आर्य-द्रविड के भेद को यदि कोई मिटा सकता है तो आर्य-समाज ही। उनकी अकाल मृत्यु से देश को तो क्षति पहुँची ही, आर्यसमाज की योजनायें भी पीछे जा पड़ीं।

दक्षिण भारत के आर्य-सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन सन् १९४२ के दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में हुआ। मैसूर राज्य के अर्थमंत्री श्री के० वी० अनन्तरामन सम्मेलन के सभापति थे। सम्मेलन की व्यवस्था स्वागत-समिति के प्रधानमन्त्री श्री हरनामदास कपूर और संयोजक मंत्री श्री शिवचन्द जी के उद्योग से हुई। सार्वदेशिक सभा के तत्कालीन प्रधान श्री पं० गंगाप्रसाद एम० ए० और उपप्रधान श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय के प्रभावशाली व्याख्यान हुए। इन सम्मेलनो के फलस्वरूप दक्षिण भारत में कई स्थानों पर आर्यसमाज स्थापित हुए और अनेक कार्यकर्ता भी मैदान में आये। प० इन्द्रदेव जी, श्री माधवार्य आर्य, स्नातक पं० सत्यपाल एम० ए० आदि व्याख्याताओं और कार्यकर्ताओं ने धर्म के दीपक को जलता रखा। दक्षिण के कार्यकर्ताओं मे विशेष उल्लेखयोग्य नाम श्री गोपदेव जी का है। श्री गोपदेव जी आन्ध्र प्रान्त के निवासी हैं। श्री गोपदेव जी का कार्यक्षेत्र तिनाली मे है। आपने वहाँ आर्यसमाज की स्थापना करके प्रचार का एक स्थायी केन्द्र बना लिया है। इसकी विशेषता यह है कि चिरकाल तक सारे आन्ध्र प्रदेश में यही एक आर्यसमाज चलता रहा।

कोल्हापुर में हाईस्कूल तथा कालेज

कोल्हापुर के महाराज श्री छत्रपति साहू जी के विचार आर्यसामाजिक थे। उनकी महर्षि दयानन्द में विशेष भक्ति थी। पं० आत्माराम जी अमृतसरी, जो उन दिनों बड़ौदा में शिक्षा विभाग के निरीक्षक थे, बम्बई प्रान्त में धर्मप्रचार के कार्य में निरन्तर लगे रहते थे। पण्डित जी की प्रेरणा से १९१८ मे कोल्हापुर नरेश ने अपनी राजधानी में आर्य-समाज और गुरुकुल की स्थापना की। प्रारंभ मे कोल्हापुर आर्यसमाज का सम्बन्ध युक्तप्रान्त की आर्यप्रतिनिधि सभा से हुआ। कुछ समय पीछे कोल्हापुर मे स्थापित राजाराम हाईस्कूल तथा राजाराम कॉलेज भी युक्तप्रान्त की प्रतिनिधि सभा के अधीन हो गये। राजाराम कॉलेज धीरे-धीरे उन्नति करता गया। डॉ० बालकृष्ण एम० ए०, पी-एच० डी० ने गुरुकुल की सेवा से त्यागपत्र देकर राजाराम कॉलेज का अध्यक्षपद संभाल लिया। तब शिक्षा के क्षेत्र में कॉलेज की काफी ख्याति हो गई। यह दुःख की बात है कि छत्रपति साहू जी के निधन के पश्चात् स्कूल और कॉलेज दोनो की स्थिति बहुत डॉवाडोल हो गयी।

केशवराव-स्मारक आर्य विद्यालय

हैदराबाद के सफल सत्याग्रह के पश्चात् हैदराबाद नगर में केशवराव स्मारक आर्य विद्यालय की जो स्थापना हुई, उसका आर्यसमाज के इतिहास में विशेष महत्व है। पं० केशवराव जी आर्यसमाज के उन पुराने महारथियों में से थे जिन्होंने प्रारंभ की अत्यन्त प्रतिकूल अवस्थाओं में एक इस्लामी रियासत में धर्म के दीपक को प्रज्वलित किया था। १९३२ में उनके निधन के पश्चात् उनके तीनों सुपुत्र पं० विनायक राव जी, श्री विट्ठलराव जी तथा श्री रामराव जी ने यशस्वी पिता का कोई उचित स्मारक तैयार करने का निश्चय किया और उसके लिए अपनी भूमि का एक विशाल टुकडा सुरक्षित कर दिया। राव भाइयों का यह संकल्प अभी योजना के रूप में ही था कि हैदराबाद का सत्याग्रह आरंभ हो गया। सत्याग्रह की समाप्ति पर हैदराबाद राज्य की आर्य प्रतिनिधि सभा ने स्वर्गीय पं० केशवराव जी की स्मृति में एक स्मारक-विद्यालय खोलने का निश्चय किया। इस प्रकार राज्य की प्रतिनिधि सभा ने तीनों भाइयों के संकल्प को क्रियात्मक रूप देने में सहायता दी। सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा ने हैदराबाद में आर्यसमाज के कार्य को पुष्टि देने का साधन स्वीकार करके आर्यविद्यालय को २५ हजार रुपये की सहायता प्रदान की। इस प्रकार उद्योगपर्व के पूरा हो जाने पर २० जुलाई १९४० को विद्यालय का उद्‌घाटन समारोह मनाया गया।

प्रारंभ से ही इस विद्यालय की कुछ विशेषतायें रहीं। प्रबन्ध-समिति ने घोषणा कर दी कि हरिजन विद्यार्थियों का प्रवेश सर्वथा निःशुल्क होगा। प्रारंभ में इस शुभ निश्चय को निभाने में कुछ कठिनाई हुई, परन्तु पुलिस-कार्यवाही के पश्चात् रियासत का शासन राष्ट्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा होने पर सब हरिजन छात्रों के शुल्क की उत्तरदायिता राज्य सरकार ने अपने ऊपर ले ली। इससे विद्यालय-समिति का बोझ बहुत हल्का हो गया।

इस विद्यालय के सम्बन्ध में जो दूसरी प्रशंसनीय बात हुई, वह विद्यालय के अध्यापकों द्वारा एक सहकारी संस्था का संचालन था। १९५१ में विद्यालय समिति के प्रधान पं० विनायकराव जी के परामर्श से यह संस्था एक सहकारी बैंक के रूप में परिणत कर दी गयी। उसका नाम 'आर्य सहकारी बैंक लिमिटेड' रखा गया।

यह विद्यालय निरन्तर उन्नति कर रहा है। आर्यसमाज के पुराने कार्यकर्ता श्री खाण्डेराव जी विद्यालय के मुख्याध्यापक हैं। अध्यापकों की संख्या ६० के लगभग है। छात्रों की संख्या १,३०० से ऊपर है। १९५० में इस विद्यालय के साथ एक कन्या विद्यालय की स्थापना भी कर दी गयी थी। वह भी भली प्रकार चल रहा है।

हैदराबाद रियासत में उदगीर का श्यामलाल स्मारक विद्यालय और नान्देड़ जिले के अन्तर्गत उमरी ग्राम का नूतन विद्यालय भी सत्याग्रह द्वारा हैदराबाद में उत्पन्न हुए नवीन जीवन के परिणाम हैं।

सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड

चिरकाल से यह अनुभव किया जा रहा था कि आर्यसमाज के पास अपने विचारों की पुष्टि करने के लिए और अपने समाचारों को पूर्ण रूप से प्रकाशित करने के लिए समाचार-पत्रों की बहुत न्यूनता है। वर्तमान युग दैनिक पत्रो का है। सर्वसाधारण लोग दैनिक पत्रों से ही समाचार लेते हैं और उनके आधार पर विचार बनाते हैं। अपने समाचारों को प्रकाशित कराने के लिए आर्यसमाज को प्रायः अन्य पत्रों का आश्रय लेना पड़ता है। कभी-कभी अपनी दृष्टि से बहुत आवश्यक समाचार पत्र-संपादकों की इच्छा अथवा स्थान के अभाव से अप्रकाशित रह जाते हैं। आर्य दैनिक-पत्र की न्यूनता को पूरा करने का प्रयत्न अनेक बार किया भी गया। उत्तरप्रदेश में 'आर्य-मित्र-प्रकाशन मण्डल' की स्थापना इसी उद्देश्य से हुई थी। वह प्रयत्न सफल न हो सका। श्री प० गगाप्रसाद उपाध्याय के मन्त्रित्वकाल में सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा में भी यह चर्चा आरंभ हुई कि दैनिक पत्र निकालने के लिए किसी प्रकार की योजना बनाई जाये। बहुत-से विचार-विमर्श के पश्चात् १९४७ मे निश्चय हुआ कि 'सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड' के नाम से एक 'लिमिटेड कम्पनी' स्थापित की जाये जिसमें सबसे बड़ा भाग सार्वदेशिक सभा का रहे। सभा के कोषाध्यक्ष लाला नारायणदत्त जी का प्रोत्साहन मिलने पर 'लिमिटेड' कम्पनी की योजना कार्यान्वित हो गयी। सार्वदेशिक सभा ने कम्पनी के दस हजार रुपये के हिस्से खरीदकर उसका सचालन सभव बना दिया। अनेक प्रतिष्ठित और समृद्ध आर्यपुरुष भी हिस्सेदार बन गये। आर्यसमाजों और आर्यजनों ने व्यक्तिगत हिस्से खरीद कर कम्पनी के मूलधन को शीघ्र ही एक लाख से ऊपर पहुँचा दिया। ६-१०-४७ को जब कम्पनी 'लिमिटेड' हुई उस समय उसका मूलधन १,०३,१५५) था। बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के निम्नलिखित सदस्य नियुक्त हुए :—

(१) श्रीयुत ला० नारायणदत्तजी	(२) श्रीयुत पं. गगाप्रसाद जी उपाध्याय
(२) „ „ हरशरणदास जी	(६) श्री ला० कन्हैयालाल उपाध्याय
(३) „ „ हंसराज गुप्त	(७) श्री मास्टर शिवचरण दास जी
(४) „ „ रलियाराम जी	(८) श्री पं० ज्ञान चद जी

बोर्ड के प्रथम प्रधान लाला नारायणदत्त जी और मन्त्री पं० ज्ञानचन्द जी बनाये गये। कम्पनी ने सार्वदेशिक प्रेस की स्थापना करके पुस्तक-प्रकाशन का थोड़ा बहुत कार्य आरंभ कर दिया और 'पुण्यभूमि' नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला। वह पत्र १५-७-५१ तक निकल कर बन्द हो गया और अनेक कारणों से कम्पनी और प्रेस दोनो का कार्य अव्यवस्था के कारण बहुत ढीला हो गया। कुछ आपसी झगड़े भी आरंभ हो गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ कम्पनी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी वहाँ आर्यजगत् की यह आशा बहुत धुन्धली पड़ गई कि निकट भविष्य में आर्यसमाज का अपना दैनिक पत्र प्रकाशित हो सकेगा। उत्तरप्रदेश में आर्यमित्र प्रकाशन लिमिटेड की योजना के असफल हो जाने पर सभा की ओर से दैनिक 'आर्यमित्र' निकालने का जो प्रयत्न किया गया वह भी बहुत बड़ा घाटा देकर नाकामयाब हो गया। यह सचमुच खेद

की बात है कि जिस आर्यसमाज को अन्य अनेक क्षेत्रो में असाधारण सफलता मिली है उसे प्रकाशन की योजनाओ में अबतक सफलता प्राप्त नहीं हुई।

आर्य वीर दल के सेवा-सम्बन्धी कार्य

आर्यवीर दल का संगठन, प्रारंभ में, रक्षा-कार्य के लिए हुआ था। उस समय चारों ओर से आर्यसमाज पर आक्रमण हो रहे थे। मुसलमान प्रचारक आर्यसमाज को अपने मार्ग का रोड़ा समझकर उससे शत्रुता करते थे। कुछ राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को यह भ्रान्ति थी कि शायद आर्यसमाज ही हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्वप्न पूरा होने में बाधक है और सरकार यह देखकर उद्विग्न थी कि आर्यसमाज के सदस्य बहुत बड़ी संख्या में स्वाधीनता के आन्दोलन मे भाग ले रहे है। इन सब भ्रान्ति-मूलक आक्रमणों से आर्य-समाज को बचाने के लिए 'आर्यवीर दल' की स्थापना हुई थी। जब तक वह संकट बना रहा, आर्यवीर दल रक्षा के कार्य मे सहयोग देता रहा। पानीपत, शुजाबाद, कैथल आदि अनेक स्थानों पर बाधाये आने पर आर्यवीर दल ने अधिकार-रक्षा का कार्य साहसपूर्वक किया। १९४२ में स्वाधीनता-संग्राम के अत्यन्त तीव्र हो जाने पर परिस्थिति मे बहुत-सा परिवर्तन आ गया। कुछ समय के लिए साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि ठण्डी पड़ गयी और सरकार का ध्यान आर्यसमाज से हटकर कांग्रेस पर केन्द्रित हो गया। उन वर्षो मे आर्यवीर दल को देश के सेवाकार्य में भाग लेने का पूर्ण अवसर मिला। सन् १९४२ के अक्तूबर मास मे बंगाल के मिदनापुर जिले में तूफान और बाढ़ के कारण बहुत भयानक परिस्थिति हो गयी थी। सार्वदेशिक सभा की प्रेरणा पर बंगाल की आर्य-प्रतिनिधि सभा ने एक आर्य-सेवा-समिति का निर्माण करके तुरन्त ही सेवा का कार्य आरभ कर दिया। उसके पश्चात् शीघ्र ही सार्वदेशिक सभा की ओर से आर्यवीर दल के अनेक कार्यकर्ताओ को लेकर पं० ओम्प्रकाश त्यागी मिदनापुर पहुँच गये। आर्यवीर दल के कार्य का मुख्य केन्द्र मिदनापुर के तमलूक डिविजन में रहा। हजारों नरनारियों को उस केन्द्र से सहायता मिली। लाहौर की आर्य प्रादेशिक सभा ने भी सहस्रो रुपया तथा अनेक कार्यकर्ता भेजकर कलकत्ते की केन्द्रीय रिलीफ सोसाइटी का हाथ बटाया। इस सेवा कार्य मे आर्यवीरदल के स्वयसेवको ने सेवाकार्य का बहुत-सा अनुभव प्राप्त किया और आर्यसमाज की ख्याति में भी वृद्धि की।

सन् १९४६ में पूर्वी बंगाल के नोआखाली और त्रिपुरा जिलों में धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा निरपराध और निरीह हिन्दुओं पर आक्रमण और अत्याचार होने पर आर्य-वीर-दल को सेवा करने का दूसरा अवसर प्राप्त हुआ। उत्पात-ग्रस्त इलाकों से अग्निकाण्ड, लूटमार, अपहरण और बलात्कार के दुःखद समाचार प्रकाशित होने पर सार्वदेशिक सभा ने तत्काल सहायता की योजना बना दी और आर्यवीर दल के प्रमुख कार्यकर्ता श्री ओम्प्रकाश पुरुषार्थी को आर्यवीरों के एक जत्थे के साथ कलकत्ते भेज दिया। वहां आर्यसमाज रिलीफ सोसाइटी का संगठन करके रक्षा और सहायता का कार्य तत्काल आरंभ कर दिया गया। सभा की ओर से सहायता कार्य के लिए धन की

अपील की गयी। जिस पर सब मिलाकर १ लाख से अधिक धन प्राप्त हुआ। विशेष दल के कार्यकर्ता कई मास तक सेवा के कार्य में लगे रहे।

सहायता के सात केन्द्र बनाये गये। केन्द्रों में जिन आर्यवीरों ने विशेष रूप में कार्य किया उनके नाम निम्नलिखित हैं :—(१) प० सदाशिव शर्मा, पंजाब, (२) पं० वीरेन्द्र जी, उत्तरप्रदेश; (३) महता सावलदास जी, दयानन्द साल्वेशन मिशन; (४) पं० सुरेन्द्रकुमार जी, बंगाल; (५) श्री ज्योतिस्वरूप जी; (६) श्री भुवनमोहनदेव शर्मा; (७) श्री मानकरण जी। सब केन्द्रों की देखभाल का काम श्री ओम्प्रकाश पुरुषार्थी करते रहे। राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री, कुंवर चांदकरण शारदा तथा श्री स्वामी अभेदानन्द जी आदि आर्यनेताओं ने कार्यक्षेत्र का निरीक्षण किया जिससे स्वयंसेवकों का उत्साह बहुत बढ़ गया। इन केन्द्रों से दो हजार मन से अधिक अन्न, चावल आदि खाद्य पदार्थ बांटे गये, तथा विधवाओं तथा असमर्थ व्यक्तियों को मासिक सहायता दी गयी। कपड़े बाँटे गये तथा अन्य सब प्रकार की सहायता उन लोगों को दी गयी जिन्हें उपद्रवियों ने अनाथ बना दिया था।

इस अवसर पर सारे देश के न केवल आर्यजनों अपितु अन्य निवासियों ने भी बंगाल के पीड़ितों से जो सहानुभूति दिखाई और जो आर्थिक तथा हार्दिक सहायता दी, वह अपूर्व थी। अपील पर जो धन एकत्र हुआ, उसमें सभी प्रान्तों और वर्गों ने हिस्सा डाला था।

कुमारी कल्याणीदेवी काण्ड

सन् १९४५ में हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस के प्रो० महेशप्रसाद जी आलिम फाजिल ने अपनी पुत्री कुमारी कल्याणीदेवी के धर्मविज्ञान महाविद्यालय (College of Theology) में प्रवेश के लिए प्रार्थना-पत्र दिया। हिन्दू-धर्म की स्वीकृत प्रणाली अनुसार स्त्रियों को संस्कार कराने तथा वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, अतः विश्वविद्यालय की सीनेट ने कुमारी कल्याणीदेवी को प्रवेश देने से इन्कार कर दिया।

इसके विरुद्ध सार्वदेशिक सभा की ओर से जोरदार आवाज उठायी गयी, कई लेख भी प्रकाशित हुए। सभा की ओर से प्रो० महेन्द्रप्रताप जी शास्त्री बनारस गये और वे विश्वविद्यालय के अधिकारियों से मिले। सभा ने विश्वविद्यालय के अधिकारियों को यह संकेत करते हुए एक पत्र लिखा कि "आपका पक्ष निर्बल है अतः इस विषय पर पुनः विचार करें।" जिस पर वाइस चांसलर ने उत्तर दिया कि इसके लिए एक उपसमिति नियुक्त की गयी है।

ता० ३०–६–४६ की अन्तरंग में निश्चय हुआ कि "एक ट्रैक्ट तैय्यार किया जावे जिसमें स्त्रियों के वेदाध्ययन के सम्बन्ध में प्रमाण तथा उदाहरण और स्त्रियों के पौरोहित्य कर्म करने के प्रमाण तथा उदाहरण हों।" श्री प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने "स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार' इस शीर्षक के अन्तर्गत एक ट्रैक्ट तैयार किया।

ता० ५–७–४६ को विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर को एक पत्र लिखा गया जिसमें कहा गया था कि "कुमारी कल्याणी के प्रश्न पर विचार करने के लिए नियुक्त उप-

समिति में कोई आर्य-विद्वान् भी होना चाहिए।" जिस पर वाइस चांसलर डा० राधा-कृष्णन् ने उत्तर दिया कि विश्वविद्यालय के अधिकारी आर्यसमाज के दृष्टिकोण से पूर्ण परिचित हैं, जो कुछ भी संभव हो सकता है, किया जावेगा।

ता० १४-९-४६ को सभा में विश्वविद्यालय की उप-समिति का निर्णय प्राप्त हुआ, जिसमें कहा गया था कि "College of Oriental Learning और धर्मविज्ञान महाविद्यालय, संस्कृत महाविद्यालय के साथ मिला दिया जायेगा जिसमें संस्कृत के विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जावेगी। जाति अथवा स्त्री-पुरुष का कोई भेद न रखा जायेगा। कर्मकाण्ड एवं पौरोहित्य की शिक्षा श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण और सदाचार के आधार पर दी जावेगी। कुमारी कल्याणी देवी को मध्यमा वेद की श्रेणी में प्रवेश की आज्ञा दी जाती है।"

इस प्रकार यह काण्ड सभा के उद्योग से अनुकूल परिणाम के साथ समाप्त हुआ।

पांचवां अध्याय

स्वाधीनता प्राप्ति में आर्यसमाज का भाग

इस इतिहास के प्रथम भाग के अन्त में हमने प्रस्तुत विषय की थोड़ी-सी चर्चा की थी। वहाँ यह बतलाया गया था कि यदि हम कहें कि १९४७ ईस्वी के अगस्त मास की १५वीं तारीख को जिस स्वाधीनता-यज्ञ की पूर्ति हुई, उसका प्रारम्भ महर्षि दयानन्द ने किया था और अन्तिम आहुति महात्मा गाधी जी ने दी तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसमे सन्देह नही कि गणतन्त्र राज्य की प्राप्ति में समाप्त होने वाली राज्य-क्रान्ति का बीजारोपण महर्षि ने ही किया था।

महर्षि ने तीन उपायों से भारतवासियों के हृदयो में पराधीनता से छूटने और राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने की अभिलाषा को जन्म दिया। सबसे पहला उपाय था भारतवासियों के हृदयों में अपने देश और धर्म के लिए स्वाभिमान उत्पन्न करना। जिस समय वे कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए, उस समय देश का शिक्षित समाज पाश्चात्य सभ्यता और इंगलैण्ड की भक्ति के प्रवाह मे बहा चला जा रहा था। यों सुधार की आवाज तो उससे पहले भी उठ चुकी थी, परन्तु वह आवाज देशवासियो को अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी विचारो का भक्त बनाकर आत्मसम्मान को घटाने वाली थी। महर्षि ने बाहर की ओर भागती हुई देशवासियों की दृष्टियों को स्वदेशाभिमान सिखाने वाले अपने उपदेशो द्वारा मानो खींच कर अदर की ओर कर लिया। महर्षि ने लिखा--

"यह आर्यावर्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल में दूसरा देश नही है। आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूपी विदेशी छूते ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

दूसरे स्थान पर वे लिखते है, "जिस देश के पदार्थो से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है और आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिल कर प्रीति से करे।"

मैंने ये दो उद्धरण केवल दृष्टान्त रूप में दिये है। महर्षि के ग्रन्थों मे स्वदेशाभिमान कूट-कूट कर भरा है। महर्षि भारतवासियो के हृदयों में स्वदेशाभिमान की जो भावना उत्पन्न करना चाहते थे, उसका सार सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास की निम्नलिखित चार प्रास्ताविक पंक्तियों मे आता है:--

"सृष्टि से लेकर पाँच सहस्रों वर्षो से पूर्व समय पर्यन्त आर्यो का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे क्योंकि कौरव-पाण्डव पर्यन्त यहाँ के राज्य और राज्य-शासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चलते थे।"

राष्ट्र को यह अनुभव कराना कि वह एक दिन शक्ति-सम्पन्न और स्वाधीन था, और यदि वह ठीक प्रकार से यत्न करे तो फिर भी स्वाधीन हो सकता है, स्वाधीनता के शिखर पर पहुँचने का पहला कदम है।

दूसरा कदम यह है कि राष्ट्र उन कारणों को दूर करे जिन्होंने उसे पराधीन बनाकर पुराने गौरव से गिराया और संसार मे अपमानित कराया है। महर्षि ने भारत के अधःपतन पर गम्भीरता से विचार किया तो देखा कि उसकी मानसिक दासता ही राष्ट्र की राजनीतिक तथा आर्थिक दासता का मूल कारण है। रोग के असली रूप को पहिचान कर महर्षि ने कुशल वैद्य की भाँति पहले रोग के मूल कारणों को दूर करने का उपक्रम किया और इसमें शायद किसी को ही सन्देह हो कि वे बहुत दूर तक उसमें सफल भी हुए। महर्षि के प्रत्येक विचार से सहमत न होने वाले व्यक्तियों को भी यह मानना पड़ता है कि उन्होंने अपनी शास्त्रीय आलोचना और ओजस्विनी वाणी से आर्य जाति के सदियों से बन्द पड़े विचार-सागर का ऐसे जोर से मंथन किया कि उसमें से अनायास विचारों की स्वाधीनता और कर्म करने की ओर प्रवृत्ति जैसे बहुमूल्य उपहारो का प्रादुर्भाव हो गया। यह माना हुआ सिद्धान्त है कि मानसिक स्वाधीनता के बिना सामाजिक स्वाधीनता और मानसिक स्वाधीनता और सामाजिक स्वाधीनता के बिना राजनीतिक स्वाधीनता सभव नहीं। महर्षि ने जहाँ भारतवासियो को स्वदेश के प्रति भक्तिभावना का अमृत पिलाया, वहाँ साथ ही मानसिक पराधीनता की शृंखलाओं को काट कर राष्ट्र को स्वाधीनता के मार्ग पर डाल दिया।

परन्तु वे इतने से ही सन्तुष्ट नही हुए। उन्होंने देश के सम्मुख सच्चे स्वराज्य का रूप भी रखा। यह देख कर आश्चर्य होता है कि महर्षि ने स्वराज्य प्राप्ति से लगभग ७० वर्ष पहले स्वराज्य का जो आदर्श सत्यार्थप्रकाश मे प्रदर्शित किया था, भारत का शिक्षित समाज उस समय उस आदर्श से कोसों पीछे था। सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में महर्षि ने लिखा था--

"आर्यावर्त में भी आर्यो का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है, जो कुछ है, सो भी विदेशियों के पदाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियो को अनेक प्रकार का दु ख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नही है।"

पूर्ण स्वराज्य की इससे अच्छी व्याख्या क्या हो सकती है? इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना सत्यार्थप्रकाश के ऊपर उद्धृत किये वाक्यों के कई वर्ष पीछे हुई। उसमें पहले केवल विदेशी राज्य में नौकरियों की माँग की गयी, फिर कई वर्षों तक इंगलेण्ड की छत्रछाया मे थोड़े-बहुत प्रतिनिधित्व के अधिकार माँगे गये, आगे चलकर औपनिवेशिक स्वराज्य को अपना ध्येय बनाया गया। पूर्ण स्वराज्य की माँग १९२९ के अन्त में रावी के तट पर की गयी। जिस आदर्श पर राजनीतिज्ञ कहलाने वाले लोग २०वीं सदी का प्रथम चरण समाप्त होने पर पहुँचे, वहाँ महर्षि दयानन्द १९वीं शताब्दी के अन्तिम

चरण के आरम्भ में ५५ वर्ष पूर्व पहुँच चुके थे। महर्षि ने स्वराज्य के जिस स्वरूप का वर्णन किया उसे हम गणराज्य का नाम दे सकते हैं। राजा प्रजा द्वारा निर्वाचित हो, शासन मन्त्रियों की सभा द्वारा हो, पुरुषों और स्त्रियों के अधिकार समान ही हो, ये सब मूलभूत सिद्धान्त हैं जिन्हे देश ने गणराज्य की स्थापना के साथ स्वीकार किया, परन्तु महर्षि ने अपने ग्रन्थों मे प्रतिपादित कर दिये थे। ऐसी दशा मे हमारा यह कहना सर्वथा उचित है कि जिस स्वाधीनता-यज्ञ की पूर्ति १५ अगस्त १९४७ के दिन हुई, उसका प्रारम्भ महर्षि दयानन्द ने किया था।

श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा महर्षि के प्रमुख शिष्यो में से थे। वे काठियावाड़ के निवासी थे। उन्होंने इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टरी पास की थी। महर्षि का उन पर बड़ा भरोसा था। जब उन्होने परोपकारिणी की स्थापना की, तब उसके सदस्यो मे श्याम जी कृष्ण वर्मा का नाम भी रखा। यद्यपि महर्षि स्वयं अंग्रेजी भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ थे, तो भी वे भारतवासियों के लिए विदेशी भाषा का पढ़ना तथा विदेश जाकर आधुनिक विज्ञान, शिल्प आदि का अध्ययन करना आवश्यक समझते थे। इस विषय में उन्होंने यूरोप के कुछ विद्वानो से पत्र-व्यवहार भी किया था। स्वामी जी ने श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को विलायत भेज कर देश के लिए अधिक उपयोगी बनाने का विचार कई बार प्रकट किया था। स्वामी जी की मृत्यु के कुछ वर्ष पश्चात् वर्मा जी इंगलैण्ड जाकर बस गये, वहाँ रह कर उन्होंने भारत के स्वाधीनता-संग्राम में जो बहुमूल्य सहयोग दिया, वह राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास जानने वालो को भली प्रकार विदित है। उन्होंने १९०५ में लन्दन में 'इण्डिया हाउस' नाम का एक केन्द्र खोला था, और उसमे 'इण्डियन होम रूल सोसाइटी' की स्थापना की थी। सोसाइटी के प्रधान वे स्वयं थे। सोसाइटी की ओर से 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' नाम का एक मासिक पत्र प्रकाशित होता था। उसके सम्पादक भी वर्मा जी थे। पत्र का मूल्य केवल एक आना था। यह पत्र खूब गरम राजनीति का प्रचार करता था। इंग्लेण्ड में रहने वाले भारतीय नौजवानों के लिए 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' मानों राजनीति-धर्मशास्त्र बना हुआ था। बीसो भारतीय विद्यार्थी वर्मा जी की दी हुई छात्रवृत्ति से इंग्लैण्ड मे शिक्षा पा रहे थे। मदनलाल धींगडा द्वारा कर्जन वासली की लन्दन मे हत्या हो जाने पर अंग्रेजी सरकार ने श्याम जी कृष्ण वर्मा जैसे क्रान्ति के नेताओं का इंग्लैण्ड में रहना कठिन बना दिया। तब वर्मा जी पेरिस चले गये और वहीं से राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने लगे। लाला हरदयाल जी एम० ए०, भाई परमानन्द जी आदि प्रमुख क्रान्तिकारी भारतवासी जब विलायत मे रहते थे, तब उन्हें वर्मा जी से हर प्रकार का सहारा मिलता रहता था।

कांग्रेस के प्रारंभिक युग में उसकी नीति को 'भिक्षावृत्ति' कहा जा सकता है। कांग्रेस के प्रस्तावों मे महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र की दुहाई देकर सरकारी नौकरियों और ओहदो की माँग की जाती थी। यों कांग्रेस का उद्देश्य भारतवासियों के लिए राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना ही था। जिन लोगों ने महर्षि दयानन्द के पूर्ण प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य के उपदेशो का अमृत पान किया था, उनका हृदय ओहदों की भीख की ओर कैसे आकृष्ट हो सकता था। उन दिनों कांग्रेस में प्रवेश पाने के लिए

किसी चरित्र-सम्बन्धी परख की जरूरत नहीं समझी जाती थी। आर्यजनों को यह बात भी पसन्द नहीं थी, इस कारण सामान्य रूप से उन दिनों आर्यजन कांग्रेस के प्रति उपेक्षा का व्यवहार रखते रहे। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि कांग्रेस का भारत के लिए राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने का लक्ष्य उन्हें आकृष्ट नहीं करता था। उनमें से जो लोग राजनीतिक मनोवृत्ति के थे, वे प्रारम्भ से ही कांग्रेस के कामों में सहयोग देने लगे थे। १९९२ में प्रयाग में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, उसमें लाला लाजपतराय जी और अम्बाले के बाबू मुरलीधर जी प्रतिनिधिरूप में सम्मिलित हुए थे। अगले वर्ष कांग्रेस अधिवेशन को लाहौर में निमन्त्रित करने वालों में वे भी सम्मिलित थे। लाहौर का अधिवेशन अपने ढंग का अनूठा था। श्री दादा भाई नौरोजी ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के सदस्य होने के पश्चात् पहली बार भारत में आये थे। उनके स्वागत और कांग्रेस के अधिवेशन का प्रबन्ध करने वालों में बहुत-से प्रमुख आर्यसमाजी सम्मिलित हुए। लाला लाजपतराय जी के अतिरिक्त बख्शी जयश्रीराम जी, राय मूलराज जी एम० ए०, बाबू मुरलीधर आदि आर्यसज्जन स्वागतकारिणी के प्रमुख सदस्य थे।

१९०६ तक देश की राजनीति इसी प्रकार ढीली-ढाली चलती रही। सन् १९०५ में लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन करके भारत की राजनीति में मानों जान डाल दी। बंग-भंग से बंगाल के निवासियों के हृदयों को जो पीड़ा पहुँची, उसे उन्होंने ऐसे ऊँचे आर्तनाद से प्रकट किया कि सारे देश की आँखें खुल गयीं। देशवासियों को यह अनुभव होने लगा कि दासता सचमुच एक महान् अभिशाप है। बंग-भंग का आन्दोलन देशभर में फैल गया। जिन प्रान्तों में उसने बहुत उग्र रूप धारण किया, उनमें से एक पंजाब भी था। उस समय पंजाब का राजनीतिक नेतृत्व पूरी तरह लाला लाजपतराय जी के हाथों में आ चुका था। उनके प्रभावशाली शब्दों ने सारे प्रांत को आवेश की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था। उनकी उस गर्जना के कारण ही उनका पंजाब-केसरी नाम पड़ा। वे ऋषि दयानन्द के पक्के शिष्य थे। स्वभावतः उनकी गर्जना का आर्यसमाजियों पर विशेष प्रभाव पड़ा। बंग-भंग के कारण पंजाब में जो आन्दोलन खड़ा हुआ, उसके नेताओं में हम अनेक आर्यसमाजियों के नाम पाते हैं। रावलपिण्डी में जो काण्ड हुए, उनके लाला हंसराज साहनी आदि सभी नेता आर्यसमाजी थे। लाहौर के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं में भी आर्य-समाजी बहुत बड़ी संख्या में थे। जब लाला जी के बढ़ते हुए प्रभाव से डर कर सरकार ने उन्हें माण्डले के किले में नजरबन्द कर दिया, तब सरकार की सबसे अधिक कड़ी दृष्टि आर्यसमाजियों और आर्यसमाज की संस्थाओं पर पड़ी। वह समय आर्यसमाजियों के लिए बड़ी कड़ी परीक्षा का था। सरकार के अन्तरंग हल्कों में यह प्रस्ताव चक्कर काटने लगा था कि जो आर्यसमाजी सरकारी नौकरी में है, यदि वे आर्यसमाज से त्याग पत्र न दें तो उन्हें नौकरी से अलग कर दिया जाय। कुछ लोगों की तरक्कियाँ रोक दी गयी और दो-चार को नौकरी से अलग भी किया गया परन्तु सन्तोषपूर्वक कहा जा सकता है कि किसी एक भी आर्यसमाजी ने नौकरी की रक्षा के लिए समाज की सदस्यता का पद त्याग नहीं किया।

कांग्रेस के द्वितीय युग में

कांग्रेस के दूसरे युग का प्रारम्भ उस समय हुआ जब रौलेट ऐक्ट के विरोध में महात्मा गाधी ने सत्याग्रह की घोषणा की। सत्याग्रह के मूल सिद्धान्त दो थे--पहला सत्य, दूसरा अहिंसा। इन दोनों सिद्धान्तों का पालन वही मनुष्य कर सकता था, जो चरित्रवान् हो। यह विचार-परम्परा आर्यसमाजियों को प्रिय थी क्योंकि यह उनके जीवन-सम्बन्धी विचारों से मेल खाती थी। मूल सिद्धान्तों की इस समानता का परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाज के प्रमुख नेता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने, जो इससे पूर्व कांग्रेस की रीति-नीति के कठोर समालोचक थे, एक तार द्वारा महात्मा जी को यह सूचना भेज दी कि "मैंने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिये है।" सत्याग्रह में स्वामी जी का सम्मिलित होना मानो एक सिग्नल था। देशभर में हजारों आर्यसमाजियो ने सत्याग्रह की सेना में अपने नाम लिखा लिए। जहाँ उन्हें सत्याग्रह का मूल रूप धर्मानुकूल प्रतीत होता था वहाँ साथ ही महात्मा जी का ऊँचा जीवन भी अपनी ओर आकृष्ट करता था। सत्याग्रह की घोषणा से लेकर पंजाब मे मार्शल-ला और अमृतसर में कांग्रेस-अधिवेशन की समाप्ति तक के विस्तृत इतिहास को देखें तो उस समय के उत्तरीय भारत के स्वाधीनता-संग्राम के सिपाहियों में हमे आर्यसमाजियों की अधिक संख्या मिलती है। पंजाब के डा० सत्यपाल, पं० रामभजदत्त आदि नेता आर्यसमाजी थे। मुफस्सिल शहरो में भी आर्यसमाज के प्रमुख अधिकारियो ने आगे बढ़ कर आन्दोलन में भाग लिया। परिणाम यह हुआ कि जब पंजाब में मार्शल-ला लगाया गया तो प्रायः मार्शल-ला वाले सभी शहरो में न केवल आर्यसमाज के अधिकारियों पर मुसीबतें ढाई गयी, आर्यसमाज की संस्थाओ पर भी वार किये गये। अनेक आर्यसमाजियों पर मार्शल-ला का प्रहार हुआ।

डी० ए० वी० कालेज के सब छात्रों पर जो अत्याचार किये गये, उनका वृत्तान्त सरकारी और कांग्रेसी जाँच-कमेटियो की रिपोर्टो में पढ़ें तो रोमांच हो आते हैं। होस्टल के सब छात्रों को गोरे सिपाहियों के पहरे में, सिर पर बिस्तर रख कर, मई की धूप में दो-तीन मील चलने पर बाधित किया जाता था ताकि वे रात को किले में सोयें। जहाँ किसी छात्र की चाल ढीली हुई कि गोरे की गाली और सगीन की नोक उसकी पीठ पर आ धमकती थी। गुजरॉवाला में एक गुरुकुल स्कूल था। उस पर भी मार्शल-ला के अधिकारी की कुदृष्टि पड़ गयी और वह सब कुछ किया गया जिसकी मार्शल-ला मे गुंजाइश थी।

देश के अन्य भागो मे भी आर्यसमाज के सदस्यों ने पहले सत्याग्रह में और फिर कांग्रेस में सहयोग देना आरंभ कर दिया।

१९१९ के अंत मे अमृतसर मे काग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, उसकी स्वागत-योजना के चलाने वाले यदि सौ फीसदी नही तो पचहत्तर फीसदी आर्यसमाजी अवश्य थे। स्वागताध्यक्ष श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के व्यक्तिगत प्रभाव और परिश्रम के बिना अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन शायद ही हो सकता। स्वभावतः उनके चारों ओर जो कार्यकर्ता एकत्र हुए, वे आर्यसमाजी थे। कांग्रेस के इतिहास में वह पहला ही अवसर था

जब स्वागताध्यक्ष ने अपना भाषण राष्ट्रभाषा हिन्दी मे पढ़ा। वह भी कांग्रेस को आर्य-समाज की एक देन ही थी।

क्रान्तिकारी-दल में आर्यसमाजी

यूरोप में क्रांतिकारी दल को संगठित करने मे श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा ने जो प्रमुख भाग लिया उसकी चर्चा पहले कर आये है। भारत मे उससे पूर्व ही क्रान्तिकारी दल जन्म ले चुका था। सम्भव है, कुछ लोग क्रान्तिकारी दल की कार्यप्रणाली से सहमत न हों, परन्तु इस दल के सदस्यों की ओजस्विनी देशभक्ति तथा अद्भुत साहसिकता से कोई भी भारतवासी इन्कार नहीं कर सकता। इसमे भी कोई सन्देह नही कि स्वराज्य की उपलब्धि में उन लोगों के बलिदान से बहुत सहायता मिली।

आर्यसमाजी विचार रखने वाले क्रान्तिकारियों मे से पहला नाम मदनलाल धींगड़ा का है, जिसने लन्दन में कर्जन वायली की हत्या की थी। अदालत मे बयान देते हुए युवक मदनलाल ने कहा था, "मुझ जैसे निर्धन और मूर्ख युवक पुत्र के पास माता की भेंट के लिए अपने एक के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। और इसी से मैं अपने एक की श्रद्धाजलि माता के चरणों मे चढ़ा रहा हूँ। भारत में इस समय केवल एक ही शिक्षा की आवश्यकता है और वह है मरना सीखना। और उसके सिखाने का एकमात्र ढंग स्वयं मरना है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मै बार-बार भारत की गोद में जन्म लूँ और उसी के कार्य में प्राण देता रहूँ। वन्दे मातरम्॥"

भाई परमानन्द जी उन आर्य विद्वानो मे से थे जो अपने आरंभिक जीवन में अनेक विदेशों में वैदिक धर्म का प्रचार करने गये थे। वे पंजाब में क्रान्तिवाद के मुखिया बन कर सरकार के कोप-भाजन बने और काले पानी में जन्म भर की कैद भोगने के लिए भेजे गये। भाई बालमुकन्द जी भाई परमानन्द जी के चचेरे भाई थे। आपने डी०ए०वी० कालेज से बी० ए० की परीक्षा पास की। १९१०–११ ईस्वी में पंजाब में राज-नीतिक अशांति का जो बवन्डर उठा, उसने बहुत-से नवयुवकों को क्रान्तिकारी बना दिया। भाई बालमुकन्द जी भी उन नौजवानो में थे। वे लाहौर षड्यन्त्र केस के सिलसिले में पकड़े गये। दीनानाथ नाम के एक मुखबिर के बयानों पर जिन अनेक नौजवानों को फाँसी का हुक्म दिया गया, उनमें बालमुकुन्द जी भी थे। भाई बालमुकुन्द के बलिदान के साथ लगी हुई एक और सुन्दर बलिदान की सच्ची गाथा भी है। जब उनकी नवविवाहिता पत्नी को विदित हुआ कि पतिदेव को फाँसी मिल गयी तो वे उठी, स्नान किया और कपड़े और गहने पहन कर एक चबूतरे पर जा बैठी और वही बैठे-बैठे प्राण त्याग दिये। वह भी मातृभूमि की वेदी पर एक बहुमूल्य बलिदान ही था।

इसी हल्ले में महात्मा हंसराज जी के सुपुत्र बलराम जी भी पकड़े गये थे। पंजाब मे अन्य जो क्रान्तिकारी नौजवान जेलो में भेज गये या फाँसी चढ़ाये गये उनमें से अनेक आर्यसमाजी थे।

१९२४–२५ ईस्वी मे उत्तरप्रदेश मे क्रान्तिकारी दल का विस्तृत संगठन तैयार हो गया था। उस दल के अनेक कारनामों मे से काकोरी की डकैती सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

उस दल के प्रमुख नेता श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' कट्टर आर्यसमाजी थे। आपके दूसरे साथी श्री मास्टर गेंदालाल जी भी आर्यसमाजी विचार रखते थे। बिस्मिल बहुत छोटी आयु से ही क्रान्तिकारी विचारों से प्रभावित हो गये थे। उन्होंने सरकारी अड्डों या खजानों पर किये गये कई आक्रमणो मे भाग लिया। अन्त में लखनऊ के समीप काकोरी के स्थान पर जो सनसनीदार डाका डाला गया उसके नेता के रूप में रामप्रसाद जी भी पकड़े गये। बिस्मिल कवि भी थे। 'बिस्मिल' उनका कविता का ही उपनाम था। जेल में वे प्राय: अपना बनाया जो गीत गाया करते थे, उसके अन्तिम पदों मे एक देशभक्त की सच्ची तड़पन पायी जाती है। पद यह था--

अब न पिछले बलबले है,
और न अरमानों की भीड़।
एक मिट जाने की हसरत,
बस दिले बिस्मिल में है।

फाँसी पर चढ़ते हुए बिस्मिल ने यह गीत गाया था--

मालिक तेरी रजा रहे,
और तू ही तू रहे।
बाकी न मैं रहूँ,
न मेरी आरज़ू रहे।

इसी समय अन्य भी कई स्थानों में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए क्रान्तिकारी दलों की स्थापना हुई। उनके सदस्यों में हम अनेक आर्यसमाजी युवकों के नाम पाते है।

राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में

राष्ट्रीय जागृति और उस द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति को आर्यसमाज की एक बड़ी देन गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली के रूप मे मिली। गुरुकुल की स्थापना १९०० ईस्वीं मे गुजरॉवाला में हुई। १९०२ मे वह गंगा के तट पर कॉगड़ी ग्राम के समीप एक शिक्षणालय के रूप में प्रतिष्ठापित हुआ। प्रारम्भ से ही गुरुकुल के मूल सिद्धान्त ऐसे स्वीकार किये गये थे जो पूर्णरूप से राष्ट्रीय भावना को लिये हुए थे। छात्रों का आश्रम मे गुरुओ की संरक्षा मे निवास गुरुकुल शिक्षाप्रणाली का पहला और आवश्यक अंग था। उनका वेश भारतीय और सीधा-सादा था। छात्रों को सब अर्वाचीन और नवीन विषयों की शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी में दी जाती थी। संस्कृत वाङमय और आर्यधर्म प्रत्येक छात्र की शिक्षा के आवश्यक अंग थे। गुरुकुल की शिक्षा-प्रणाली का सब से मुख्य लक्ष्य चरित्र-निर्माण था। ये ही विशेषताएँ है, जो किसी जाति को राष्ट्र बनाने वाली शिक्षा मे होनी चाहिएँ। गुरुकुलो मे यह पहले से विद्यमान थी। गुरुकुल कॉगड़ी के पश्चात् देश भर मे अनेक गुरुकुलों की स्थापना हुई। सभी में उन्हीं शिक्षा के मूल सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया, जिनका निर्देश महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों मे किया था। १९०६ और १९१९ के राजनीतिक उत्थान के समय जाति ने राष्ट्रीय शिक्षा के महत्व को समझ कर अंग्रेजी शिक्षणालयो के बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षणालयों की स्थापना का आयोजन

किया। कई केन्द्रों में राष्ट्रीय शिक्षणालय खोले गये। परन्तु वे राजनीतिक आन्दोलन के उत्थान और पतन के प्रभाव से न बच सके। जब राजनीतिक आन्दोलन प्रबल हुआ, तब वे राष्ट्रीय शिक्षणालय चमक उठे, और जब वह ढीला पड़ा, ढीले पड़ गये। इसी ज्वार-भाटे के सिलसिले में आन्दोलन के कारण बने हुए ९९ फीसदी राष्ट्रीय शिक्षणालय समाप्त हो गये। उन सारे झोंकों को सह कर यदि कोई शिक्षणालय न केवल जीवित रहे, अपितु निरन्तर उन्नति करते रहे, वे गुरुकुल ही थे। उन्होंने सरकार से सर्वथा स्वाधीन राष्ट्रीय शिक्षा के दीपक को प्रज्वलित रखा। आज स्वाधीन भारत की सरकार इस सत्य को स्वीकार करे या न करे, स्वराज्य मिलने से पूर्व उसके नेता मुक्तकण्ठ से यह घोषणा करते रहे हैं कि गुरुकुल सच्चा राष्ट्रीय शिक्षणालय है और उसकी आधारभूत पद्धति ही राष्ट्र की मानसिक दासता की एक मात्र औषधि है।

समाज-सुधार

यह सर्वसम्मत बात है कि हमारे देश के नैतिक अधःपतन का मुख्य कारण सामाजिक बुराइयाँ थीं। जन्मगत जात-पाँत के बन्धन, छूआछूत का भयंकर रोग और स्त्रियों की अशिक्षा और सामाजिक हीनता आदि रोगों के घातक कीटाणुओं ने जाति को ऐसा निर्बल कर दिया था कि वह किसी आक्रान्ता के आक्रमण का सामना नहीं कर सकती थी। यह भी स्पष्ट सत्य है कि ज्यों-ज्यों जाति के इन रोगों का निवारण होता गया त्यों-त्यों हम स्वाधीनता के समीप पहुँचते गये। जब राज्य-क्रान्ति का अन्तिम दौर शुरू हुआ, तब यह स्पष्ट ही हो चुका था कि यद्यपि सामाजिक रोग सर्वथा नष्ट नहीं हुए थे, वे जड़ से हिल अवश्य चुके थे। इससे शायद आर्यसमाज का कोई कट्टर विरोधी भी इन्कार न करे कि जात-पात के जाल को काटने, छूआछूत के भूत को भगाने और स्त्रियों को सुशिक्षित और समुन्नत करने में आर्यसमाज ने अगुआ का काम किया है। अर्वाचीन भारत में महर्षि दयानन्द पहले सुधारक थे जिन्होंने सर्वसाधारण जनता में सामाजिक जागृति पैदा की। महात्मा जी का सत्याग्रह-यज्ञ सफल न हो सकता यदि महर्षि दयानन्द ने उससे लगभग ९० वर्ष पूर्व समाज-सुधार का मंगलाचरण न किया होता। भारत के बड़े भाग में समाज-सुधार की योजनाओं को कार्यान्वित करने का श्रेय आर्यसमाज को देना ही पड़ेगा।

यदि २०वीं सदी के प्रारम्भिक ४० वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि उत्तरीय भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में आर्यसमाज के कार्यकर्ता समाज-सुधार के अग्रदूत बने हुए थे। एक समय था जब बड़ौदे की रियासत शिक्षा-प्रचार और समाज-सुधार में बहुत आगे बढ़ी हुई मानी जाती थी। जानकार लोगोंको मालूम है कि महाराज सयाजीराव गायकवाड़ को सुधार की ओर प्रेरित करने का बहुत-सा श्रेय उनके मानसिक गुरु स्वामी नित्यानन्द जी महाराज को था और उनकी सुधारसम्बन्धी योजनाओं को कार्यान्वित करनेवाले राज्यरत्न पण्डित आत्मारा जी अमृतसरी थे। दोनों ही विद्वान् आर्यसमाजी थे। इसी प्रकार अन्यत्र भी जहाँ कहीं समाज-सुधार की समस्या कठिन हो जाती थी, वहाँ आर्यसमाज के कार्यकर्ता मैदान में कूद पड़ते थे।

स्वराज्य की अन्तिम मुहिम

मै इस लेख में बतला चुका हूँ कि सत्याग्रह के पहले दौर मे आर्यसमाजियों ने असाधारण उत्साह से भाग लिया क्योंकि वह आन्दोलन उन्हें धार्मिकता की भावना से ओत-प्रोत मालूम हुआ। १९२२–२३ में आन्दोलन के शिथिल हो जाने पर एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। युरोपियन महायुद्ध के विजयी मित्र दल ने खिलाफत का खात्मा करके भारत के खिलाफ आन्दोलन को लगभग समाप्त कर दिया। सर्वसाधारण मुसलमान जनता खिलाफत के नाम पर ही संगठित होकर महात्मा गान्धी के सत्याग्रह मे सम्मिलित हुई थी। खिलाफत का अन्त हो गया, इस कारण साधारण मुसलमान जनता का रुख कांग्रेस की ओर से हट गया परंतु उनका संगठन दृढ़ हो चुका था और उनपर मौलानाओं की प्रधानता चरम सीमा तक पहुँच गयी थी। इस परिस्थिति ने भारत में साम्प्रदायिक संघर्ष उत्पन्न कर दिया। मलावार, मुलतान आदि स्थानों पर हिन्दुओं पर भयंकर आक्रमण हुए। जीवित संस्था होने के कारण आर्यसमाज ने उन आक्रमणों का शान्तिपूर्ण उपायों से प्रतिरोध खड़ा किया। इससे पहले मुसलमान नेताओ मे और फिर उनकी ऐनक से देखने वाले कुछ राजनीतिक नेताओ ने आर्यसमाज पर दोषारोपण करना आरम्भ कर दिया। जेल से बाहर आने पर मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली जैसे बाहर से राष्ट्रवादी परन्तु हृदय से कट्टर सम्प्रदायवादी मुसलमान नेताओं के कथन पर विश्वास करके महात्मा जी ने भी आर्यसमाज को दोषी ठहरा दिया और अपने मत को बड़ी शीघ्रता से 'यंग इण्डिया' के स्तम्भों में प्रकाशित कर दिया। महात्मा जी के उस एकपक्षीय लेख ने आर्यजनों के हृदयो को बहुत पीड़ा पहुँचायी। लेख में वस्तुतः आर्यसमाज के साथ अन्याय किया गया था। इस कारण महात्मा जी ने पीछे से कई लेखों और नोटों द्वारा उसके मार्जन करने की चेष्टा की। परन्तु उस लेख के बोये हुए सब काँटे सिमट न सके। उस लेख के सुदूरवर्ती परिणामो में हम स्वामी श्रद्धानन्द जी और महाशय राजपाल जी की हत्याओं की गिनती कर सकते है। इन सारी घटनाओं का परिणाम यह हो जाता कि आर्यसमाज के सदस्य राष्ट्रीय आन्दोलन से विमुख हो जाते यदि उनकी राष्ट्रीय भावना बहुत गहरी न होती। उनकी राष्ट्रीयता केवल राजनीतिक नेताओं के सामयिक लेखों पर आश्रित नहीं थी। वह महर्षि दयानन्द की सिखलाई हुई निष्कलक देशभक्ति पर आश्रित थी। अतः कुछ राष्ट्रीय नेताओं के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर भी आर्यजन देश के स्वाधीनता-संग्राम से अलग न हुए। वे निरन्तर २५ वर्षों तक स्वराज्य की उन सब लड़ाइयों में तन, मन, धन से पूरा सहयोग देते रहे, जिनका नेतृत्व महात्मा जी ने किया। मै एक भी ऐसे आर्यसमाजी को नही जानता कि जिसने कुछ अदूरदर्शी राष्ट्रीय नेताओ के दुर्व्यवहारों के कारण स्वाधीनता-यज्ञ में अपनी बलि देने में संकोच किया हो। यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि स्वराज्य की अन्तिम मुहिम की सफल समाप्ति तक महर्षि दयानन्द के शिष्य अपना धर्म समझ कर सेना की अगली श्रेणी में लड़ते रहे।

हैदराबाद के स्वतन्त्रीकरण में आर्यसमाजियों का हाथ

स्वतन्त्रता की घोषणा के पश्चात् फिर एक ऐसा समय आया जब आर्यजनों ने अपनी अद्भुत देशभक्ति का परिचय दिया। जब योरुप के देश टर्की के खलीफा का अन्त कर रहे थे, तब भारतवर्ष के मुसलमानो ने अंग्रेजी सरकार के सामने यह प्रस्ताव रखा था कि वह हैदराबाद के निजाम को संसार भर के मुसलमानों का खलीफा मान ले। निजाम ने उस समय उस प्रस्ताव का विरोध नहीं किया था। उस समय से यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि भारत के मुसलमान और हैदराबाद का निजाम इस बात में सहमत हैं कि यदि अवसर मिले तो हैदराबाद के शासक को भारत से अलग ऊँचे, पद का अधिकारी बनाया जाय। अंग्रेजों के भारत से विदा होने पर उन लोगों के दिल का सोचा हुआ भूत जाग उठा और निजाम तथा उसके साथियों ने भारत से अलग आजादी का झण्डा खड़ा कर दिया। निजाम के गरीब प्रजाजनों का रक्त चूसकर एकत्र किए हुए स्वर्ण-भण्डार की सहायता से रजाकारो की एक आततायी सेना खड़ी की गयी जिसने रियासत के हिन्दू निवासियों को लूटना और मारना प्रारम्भ कर दिया। भारत सरकार के पुलिस कार्रवाई शुरू करने से पहले हैदराबाद के हिन्दुओ की दशा बहुत ही शोचनीय हो जाती यदि आर्यसमाज के कार्यकर्ता सिर पर कफन बाँध कर मैदान में न कूद पडते। उन थोड़े से संकटमय दिनों मे आर्य नवयुवको ने रजाकारों का जो मुँहतोड़ जवाब दिया, उसने परिस्थिति को काफी संभाले रखा। हैदराबाद के स्वतन्त्रीकरण मे उन नौजवानों ने जो प्रशंसनीय कार्य किया, वह यद्यपि प्रकट इतिहास का भाग नही है, तो भी वह विस्मरणीय नही समझा जा सकता।

आर्यसमाजियों ने अपने देश की स्वाधीनता के लिए जितने बलिदान किए है, उनका प्रेरक कारण कोई स्वार्थ नहीं था, अपितु धर्म था। वैदिकधर्मी प्रतिदिन प्रार्थना करता है, "अदीना स्याम शरदः शतम्" दासता मे रहना उसके धर्म के प्रतिकूल है। इसी भावना से प्रेरित होकर गलतफहमियो के शिकार बन कर भी आर्यजन देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन अब तक करते रहे है और आशा है कि आगे भी करते रहेंगे। नौकरियों, उपाधियों या पदों की इच्छा से न वे अब तक प्रेरित हुए और न आगे प्रेरित होंगे। वे स्वाधीनता को धर्म समझ कर उसके लिए लड़ते रहे है। विश्वास रखना चाहिए कि भविष्य मे भी राष्ट्र पर संकट आने की दशा में वे उसी विशुद्ध भावना से कार्यक्षेत्र में उतरेंगे। महर्षि दयानन्द के अनुयायियों को यही शोभा देता है।

परिशिष्ट सं० १

दक्षिण भारत आर्य-कान्फ्रेंस (१६४१) में दिया गया

श्री सत्यमूर्ति जी का अभिभाषण

आर्यसमाज हिन्दूधर्म का प्रबल सुधारवादी आन्दोलन है, जिसने हमारी समस्त राष्ट्रीय, मुख्यतया धार्मिक, सामाजिक और शिक्षासम्बन्धी प्रगतियों को जीवन प्रदान करके वैदिकधर्म के पुनरुत्थान के लिए गौरवपूर्ण कार्य किया है और कर रहा है। मुझे हर्ष है कि आर्यजन दक्षिण भारत मे काम कर रहे हैं और उन्हें बहुत सफलता मिल रही है। मैं हिन्दू हूँ और इस रूप में हिन्दूधर्म के वास्तविक शक्ति-स्रोत आर्यसमाज का अभिनन्दन करता हूँ।

आर्यसमाज जाति, जन्म, वर्ण, स्त्री-पुरुष या जातीयता के भेदभाव के बिना सब के लिए अपना द्वार खुला रखता है। आर्य-जन सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, अनन्त और पूर्ण परमेश्वर में आस्था रखते हैं, अतः समस्त आस्तिकों के द्वारा उनके कार्य का स्वागत होना चाहिए। आर्य लोग शाकाहार में विश्वास रखते और मद्यपान को वर्जित समझते है। धूम्रपान (बीड़ी सिगरेट) तथा अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन बुरा समझते है। आर्यसमाज के सदस्यों का धर्म वैदिक धर्म है।

आर्यजनों ने सबसे बढ़कर हमारे देश में संन्यासाश्रम को एक नई भावना प्रदान की है। वास्तव में यह भावना ऐसी नई नहीं है, जैसी कि दीख पड़ती है। यह वेद और गीता में प्रतिपादित पुरानी भावना ही है। फिर भी आर्यसमाज ने इसे पुनरुज्जीवित किया है। आर्यसमाज के मन्तव्यानुसार संन्यासी संसार का परित्याग करके मानव-समाज से अपना सम्बन्ध पूर्णतया विच्छेद नहीं करता। अपने वैयक्तिक स्वार्थ का परित्याग करके अपने को समाज-हित मे विलीन कर देने से ही वह संन्यासी बनता है। वह संसार से नहीं भागता। वह समाज में रहता है, समाज मे विचरता है, और निष्काम भाव से समाज की सेवा करता है।

संन्यासविषयक आर्यों की यह भावना विविध रूपों मे फली-फूली है। मेरे लिए आर्यसमाज की अत्यन्त प्रबल प्रेरणा यह रही है कि इसने उच्चतम धार्मिक भावनाओं और सिद्धान्तों को समाजसेवा में परिणत किया है। आर्यजनों का सामाजिक विषयों में सक्रिय अनुराग रहता है। उन्होंने सामाजिक बुराइयों के निवारण, अन्तर्जातीय विवाहों के प्रचलन तथा अस्पृश्यता के उन्मूलन के द्वारा हिन्दू जाति को संगठित और शक्तिशालिनी बनाने का पूरा-पूरा यत्न किया है और वे अब भी कर रहे हैं। उत्तर भारत में आर्यों ने ही सबसे पहिले पर्दा-प्रथा को मिटाने और देवियों को पूर्ण स्वतन्त्रता

प्रदान करने का स्तुत्य कार्य किया। आर्यो के घरों तथा उनकी संस्थाओं में मनुष्यों के समान ही देवियाँ समस्त वैदिक संस्कारों और अनुष्ठानों में भाग लेती है।

आर्यसमाज ने तथा-कथित दलित वर्गो के उत्थान के कार्य पर विशेष ध्यान दिया है। लाला लाजपतराय जी ने यह ठीक ही कहा था कि "राष्ट्रीय पतन का बीज दूसरों पर किये गये अत्याचारों में अंकुरित होता है और यदि हम भारतवासी राष्ट्रीय आत्म-सम्मान की प्राप्ति की इच्छा करे, तो हमे अपने अभागे अछूत भाई-बहिनों के लिए अपने हाथ खोल देने चाहिए और उनमें मानवीय गौरव की प्रबल भावना भर देनी चाहिए। जब तक हमारे देश मे बहुसंख्यक अछूत भाई रहेंगे, तब तक हम अपना वास्तविक राष्ट्रीय उत्थान नहीं कर सकते। राष्ट्रीय उत्थान के लिए उच्च नैतिक स्तर की आवश्यकता होती है। जहाँ कमजोर वर्गो के साथ अन्याय का व्यवहार होता हो, वहाँ उच्च नैतिक स्तर की कल्पना नही की जा सकती। अपने भाई की दुर्बलता पर कोई भी अपनी महत्ता का निर्माण नहीं कर सकता।"

इस आन्दोलन को महात्मा गान्धी के द्वारा बड़ा बल मिला और आज अस्पृश्यता का अभिशाप अपने अन्तिम श्वास पूरे कर रहा है। इस आन्दोलन की प्रेरणा आर्य-समाज से ही प्राप्त हुई और इसके लिए हमें आर्यसमाज का कृतज्ञ होना चाहिए। अब भी आर्यजन देश के विभिन्न भागों मे इस कार्य में जुटे हुए है।

आर्यसमाज का इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य शिक्षा-सम्बन्धी कार्य है जो आर्य-समाज के आठवें नियम के अनुसार किया जा रहा है। वह नियम है, "अविद्या का नाश और विद्या का प्रसार"। आर्यसमाज लड़को और लड़कियों के अनेक शिक्षणालय चला रहा है। उनमे से कुछेक को मैंने देखा है और मै कह सकता हूँ कि उनमें बहुत ही बढ़िया और उपयोगी कार्य होता है। इस सम्बन्ध में गुरुकुल कांगड़ी का उल्लेख करना आवश्यक है। इस उत्तम संस्था को मैंने कई बार देखा है। ये लोग वहाँ निम्नांकित महान् आदर्श की पूर्ति करते है :—

"शिक्षा की जड़े जातीय भावना और परम्परा तक गहरी जानी चाहिएं। हम प्राचीन संस्कृति के उत्तराधिकारी है, अतः हमारे पाठ्यक्रम में आर्य-आचार, शास्त्र और अध्यात्म-शास्त्र को प्रमुखतम स्थान प्राप्त होगा। पाश्चात्य प्रणाली का प्रयोग एक-मात्र तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक दृष्टि से होगा।"

आर्यसमाज के राजनीतिक कार्य की रूपरेखा देना कठिन है। आर्यसमाज का किसी राजनीतिक दल के साथ गठबन्धन नहीं है। निस्सन्देह आर्यसमाज भी इस बात के लिए परम उत्सुक है कि देश को शीघ्र से शीघ्र स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाय। श्री स्वामी दयानन्द जी ने अपने सत्यार्थप्रकाश में यह ठीक कहा था कि "विदेशी राज्य कितना ही अच्छा क्यों न हो, वह स्वराज्य का विकल्प नही हो सकता।" श्रीयुत लाला लाजपतराय जी और स्वामी श्रद्धानन्द जी प्रभृति आर्यसमाज के अनेक प्रमुख सदस्यों ने भारत की राजनीतिक उन्नति मे बड़ा योग दिया है। इसके अतिरिक्त आर्यो ने सदैव स्वतन्त्रता के संग्रामों में सक्रिय भाग लिया है। परन्तु राजनीतिक संघर्षो में भाग लेने से बढ़ कर आर्यसमाज के सदस्यो ने अपने समाज के उत्तम संचालन से यह स्पष्ट कर दिया है कि वे

आधुनिक कालीन प्रजातान्त्रिक पद्धति पर अपना शासन बहुत अच्छे ढंग से कर सकते हैं ।

आर्यों में अन्य हिन्दुओ के समान ही हिन्दुत्व की भावना है। उनके सहयोग का स्वागत करना होगा और देश के इस भाग (दक्षिण) के हिन्दुओं की ओर से मुझे यह कहते हुए बड़ा हर्ष होता है कि हम आर्यों का यहाँ स्वागत करते हैं। मै उन्हें वैदिक धर्म के प्रसार, अपनी संस्कृति के पुनरुज्जीवन और हिन्दू धर्म को प्रचारक धर्म का रूप देने के कार्य में अपना साथी मानता हूँ। हम शुद्धि शब्द का प्रयोग संकुचित भाव में नहीं करते। हमारा भाव अधिक उच्च और अधिक व्यापक है। हमारा भाव यह है कि हम अपने सांस्कृतिक विचारों का व्यापक प्रचार करके अपनी संस्कृति की वरिष्ठता से अन्य मतावलम्बियो को अपनी ओर खीचें न कि उनका धर्म परिवर्तन करके।

मै इस बात के लिए विशेष उत्सुक हूँ कि आर्यसमाज "आर्य" और "द्रविड" के कृत्रिम भेद की निस्सारता दर्शा कर उसके मिटाने में अपना पूरा बल लगाये। आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ व्यक्ति भले ही वह किसी देश, वर्ण या जाति का क्यों न हो। "विजेता आर्य" और "विजित द्रविड़" जैसी वस्तुयें ऐतिहासिक नही हैं। हम सब एक हैं। स्वयं वेद से इसका समर्थन होता है :—

"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे"—हम सब प्राणियो को मित्र की दृष्टि से देखें।

आर्यसमाज ने हमें फिर एक बार यह स्मरण कराके बहुत बड़ी सेवा की है। वेद की शिक्षाओ को किसी जाति या वर्ग विशेष तक सीमित रखना हमारी प्राचीन संस्कृति के विरुद्ध है। उन्होंने पुनः वेद की इस शिक्षा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया :—

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य.।
ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥" (यजु०)

अतः आओ, हम दक्षिण भारतीय हिन्दू अपने एकत्व को पहचानें। आर्यसमाज का यही उपदेश है।

सामूहिक रूप से, जैसा कि मैने इससे पूर्व कहा है, आर्यसमाज अपने को दलगत राजनीति से पृथक् रखता है, परन्तु आर्यसमाज अपने सदस्यों को पूर्ण स्वतन्त्रता देता है कि वे जिस राजनीतिक दल से अपना सम्बन्ध रखना चाहें, रखें। आर्यजन भारत की एकता के लिए उत्सुक हैं और उनकी यह स्पष्ट नीति है कि हमारे देश की राजनीति राष्ट्रीयता के द्वारा शासित हो, साम्प्रदायिकता के द्वारा नही। प्रजातन्त्र पद्धति में उनकी बड़ी गहरी आस्था है। अतः मैं देश-हित में काम करने वाले साथियों के रूप में भी आर्यों का अभिनन्दन करता हूँ।

आर्यजन सुधारवादी हैं। वे अपने धर्म को सर्वाङ्गपूर्ण मानते हैं परन्तु उनकी यह भी धारणा है कि आज हमारी धार्मिक प्रथाएँ पूर्ण नही हैं, अतः वे हमारी बुरी धार्मिक प्रथाओं को मिटाने का भरसक यत्न करते हैं। हम इस कार्य में उनकी सफलता की कामना करते हैं।

देश के सामने राष्ट्रभाषा की समस्या है। यह हिन्दी के सिवाय अन्य कोई भाषा नहीं हो सकती। मै चाहता हूँ कि आर्यजन समस्त दक्षिण भारत मे अपने हिन्दी-प्रचार के कार्य को बढ़ाने में कोई यत्न न छोड़ें। वे अपना शक्तिभर कार्य कर रहे हैं। फिर भी मै चाहता हूँ कि वे अधिकाधिक कार्य करें।

मै अपने लोगों को महर्षि दयानन्द के महान् ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के पढने की प्रेरणा करूँगा। इससे हमारे लोगो को वेदों के महान् और सार्वभौम सिद्धान्तो का बोध होगा। महर्षि दयानन्द ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि पुरुषो के समान ही स्त्रियों को शिक्षित करना चाहिए। यज्ञोपवीत पहनने का प्रत्येक कन्या को अधिकार है। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह बचपन में कदापि न होना चाहिए, विवाह के बाद अपने नये परिवार में उसके भी वे ही अधिकार है, जो पुरुषो के होते है। जिस घर में स्त्रियाँ सुखी रहती है, वही घर सुखी रहता है, जिस घर में स्त्रियाँ बहुत दु.खी रहती है, वह घर बरबाद हो जाता है, मनुष्य और स्त्रियों के अधिकार समान होते है।

इन सबसे अधिक स्वामी दयानन्द जी का महान् कार्य यह है कि उन्होंने आर्यो को, और मै आशा करता हूँ कि हम सब को, यह सिखाया कि यह जगत् एक पाठशाला है और प्रत्येक को परिश्रम, प्रेम और निस्स्वार्थ सेवा से अपनी शक्तियो को विकसित करना होता है। उनका जीवन-दर्शन पुरुषार्थ है, भाग्य-निर्भरता नही है। एक अंग्रेजी कवि के शब्दों में :--

"जब सोया, तब सपना देखा, यह जीवन अति सुन्दर है।
नींद खुली तब पहिचाना, यह तो कर्तव्य कठिनतर है।"

मैं दक्षिण के भाइयों को प्रेरणा करूँगा कि वे हिन्दी-प्रचार, अस्पृश्यता-निवारण और मातृभूमि की एकता और दृढता के आदर्श की रक्षा के लिए पूरा-पूरा यत्न करें।

यदि हमारे हिन्दू भाई जो विधर्मी बन गये है, पुनः हिन्दूधर्म मे आना चाहें, तो उनके मार्ग में कोई रुकावट खड़ी न की जानी चाहिए। हम सब को इस कार्य मे आर्यसमाज की सफलता की कामना करनी चाहिए।

महर्षि दयानन्द के निम्नलिखित अमर शब्दो पर ध्यान दीजिये :--

"मेरे जीवन का मुख्य उद्देश्य, जिसकी पूर्ति का मैंने प्रयत्न भी किया है, मत-मतान्तरों के पारस्परिक वैमनस्य का अन्त करने में सहायता देना है। जिन्होंने मनुष्यों को मार्गभ्रष्ट करके एक दूसरे का शत्रु बना दिया है। सार्वभौम सर्वतन्त्र सिद्धान्तों का उपदेश करना, सब मनुष्यो को एक धर्म के दायरे में लाना जिससे वे एक दूसरे से घृणा करना छोड़ कर एक दूसरे से प्रेम करें, शान्ति से रहें और पारस्परिक हित सम्पादन करते रहें।"

इस युग में जब कि संसार विनाश के ज्वालामुखी पर खड़ा है, इन शब्दों से अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण और सहायक अन्य कोई शब्द विचारणीय नही हो सकते। परन्तु अन्त में हममें से प्रत्येक को, जहाँ तक सम्भव हो सकता है, अपना अधिक-से-अधिक विकास करना चाहिये। जबतक व्यक्ति उच्च स्तर पर नहीं उठता, तबतक सार्वजनिक हितकारी कार्य सम्भव नही हो सकता, अतः हम सबको अहर्निश सच्चे हृदय से निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिए :--

"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय।"

हे भगवन्! हमें असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से ज्योति की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाओ।

परिशिष्ट सं० २

श्री पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा

यूरोप और भारत के शिक्षित व्यक्ति पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा को लन्दन में 'इण्डिया हाउस' के संस्थापक और आदि क्रान्तिकारी के रूप में जानते हैं। यह कम लोगों को मालूम है कि उनमें जो स्फूर्ति प्रकट हुई, वह महर्षि दयानन्द के उपदेश का परिणाम थी।

श्याम जी कृष्ण वर्मा का जन्म कच्छ रियासत के माण्डवी नामक स्थान में हुआ था। यह महत्वपूर्ण बात थी कि उस आदि क्रान्तिकारी का जन्म सन् १८५७ में हुआ। यह वही वर्ष था, जिसने भारत मे व्यापिनी सशस्त्र क्रान्ति का दृश्य देखा। श्याम जी कृष्ण वर्मा के पिता बहुत साधारण आर्थिक स्थिति के व्यक्ति थे। उनके लिए अपने होनहार पुत्र को ऊँची शिक्षा देना सर्वथा असंभव था। परन्तु होनहार अपने रास्ते स्वयं निकाल लेता है। श्याम जी के पिता रोजगार के प्रसंग मे बम्बई चले गये थे। बालक कच्छ रियासत के एक गाँव के स्कूल में शिक्षा पा रहा था। उसकी स्वाभाविक प्रतिभा इतनी तीव्र थी कि आस-पास के स्थानों में अनायास ही प्रसिद्धि हो गई। उस प्रसिद्धि ने बम्बई के प्रसिद्ध करोड़पति मथुरादास लवजी भाटिया का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट कर दिया। लवजी सेठ बालक कृष्ण वर्मा को शिक्षा दिलाने के लिए बम्बई ले गये। बम्बई में श्याम जी को हाईस्कूल मे भरती करने के साथ ही संस्कृत पाठशाला में भी प्रविष्ट करा दिया गया। दो भिन्न-भिन्न संस्थाओं मे एक साथ अध्ययन करने से बालक की बुद्धि का चमत्कार और अधिक प्रकट होने लगा। स्कूल की परीक्षाओं मे ऊँचा स्थान पाने के साथ-साथ श्याम जी की संस्कृत मे असाधारण योग्यता को देखकर उसके अध्यापक और संरक्षक आश्चर्य में पड़ गये। श्यामजी की संस्कृत-व्याकरण में योग्यता और संस्कृत-भाषण की अद्भुत शक्ति की इतनी धाक बँधी कि सेठ मथुरादास लव जी ने उसे समाज-सुधार-सम्बन्धी बड़ी-बड़ी संस्थाओं में ले जाकर सुधार के पक्ष में संस्कृत में व्याख्यान करवाये। एक बालक के मुँह से सुधारों के पक्ष में संस्कृत के धारा-प्रवाह व्याख्यान सुनकर सब लोग आश्चर्य मे पड़ गये। उन्हीं दिनों महर्षि दयानन्द बम्बई मे वैदिक धर्म का सन्देश सुनाने के लिए पहुँचे। स्वाभाविक ही था कि श्यामजी कृष्णवर्मा महर्षि की ओर आकृष्ट होते और महर्षि उन्हें अपने शिष्यों की श्रेणी में प्रविष्ट कर लेते। 'रत्नम् समागच्छतु कांचनेन' विधाता की यह इच्छा पूरी हुई। श्याम जी कृष्ण वर्मा आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये। इन्ही दिनों इंगलैण्ड के संस्कृत विद्वान् मोनियर विलियम्स भारत भ्रमण के लिए आये। उनसे युवक श्याम जी कृष्ण वर्मा ने भेंट की। प्रो० मोनियर विलियम्स पर युवक भारतीय की योग्यता का बहुत गहरा असर पड़ा। कई वर्ष पीछे उन्होंने लिखा था कि "मै श्याम जी कृष्ण वर्मा की संस्कृत योग्यता से बहुत

प्रभावित हुआ और दो वर्ष पीछे मैंने उसे ऑक्सफोर्ड में अपना सहायक संस्कृताध्यापक नियुक्त कर लिया।" प्रो० मोनियर विलियम्स ने श्याम जी के हृदय में विलायत जाकर शिक्षा पाने की जो प्रेरणा उत्पन्न की, उसका महर्षि दयानन्द ने हार्दिक समर्थन किया। श्याम जी कृष्ण वर्मा को विलायत जाने की अनुमति देने का महर्षि का क्या अभिप्राय था यह उनके उस पत्र से प्रकट होता है, जो उन्होंने संस्कृत में अपने शिष्य को उस समय लिखा, जब वह ऑक्सफोर्ड में अपनी प्रतिभा का असाधारण सिक्का जमा रहा था। पत्र में आशीर्वाद देने और इंग्लैण्ड सम्बन्धी अनेक प्रश्न करने के पश्चात् महर्षि ने लिखा था कि "यदि (अब तक) अवकाश न मिला हो तो मैं सत्य हृदय से प्रेरणा करता हूँ कि जब तुमको पठन-पाठन से अवकाश मिले, तभी वैदिक सिद्धान्तो के प्रचार के निमित्त व्याख्यान देना और तभी यहाँ आना इससे पूर्व नहीं ?" पत्र के अन्त में यह भी पूछा गया था कि क्या तुमने कभी पार्लियामेंट नाम की सभा देखी है ? इस पत्र से स्पष्ट है कि महर्षि के श्याम जी कृष्णवर्मा को विलायत जाने की प्रेरणा करने में धार्मिक और राजनीतिक दोनों उद्देश्य मिले हुए थे।

इंगलैण्ड जाकर अपनी प्रतिभा और योग्यता की सहायता से श्याम जी कृष्ण-वर्मा ने खूब नाम कमाया। जब वह ऑक्सफार्ड से ग्रेजुएट और लन्दन से बैरिस्टर बनकर भारत आये तो सरकारी नौकरी के द्वार खुले मिले। महर्षि का प्रभाव देशी रियासतों मे बहुत था। फलतः श्याम जी कृष्ण वर्मा को पहले रतलाम और उसके पश्चात् बड़ौदा आदि रियासतों में बहुत ऊँचे पद की नौकरियाँ प्राप्त करने में कठिनाई न हुई। इस नौकरी में धन प्राप्ति तो हुई, परन्तु केवल धन से एक आत्मसम्मान वाले विद्वान् का सन्तोष होना कठिन था। रियासतों की नौकरी के लगभग १२ वर्षों के अनुभव ने श्याम जी कृष्ण वर्मा को यह विश्वास दिला दिया कि अंग्रेजी राज्य चाहे ऊपर से कितना ही चिकना-चुपड़ा हो, अन्दर से वह अत्यन्त विषपूर्ण है। भारत का उद्धार तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके गले पर से दासता का जुआ न उतर जाय। १८९७ में उन्होंने भारत छोड़ कर फिर से विलायत जाने का निश्चय कर लिया। इस विलायत यात्रा के दो उद्देश्य थे——इगलैण्ड में व्यापार द्वारा धन कमाना और उस धन को अपनी जन्मभूमि की स्वाधीनता के लिए व्यय करना। इंगलैण्ड मे उन दिनो हरबर्ट स्पैंसर की फिलोसोफी का बोलवाला हो रहा था। हरबर्ट स्पेंसर ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा था :——

Resistance to aggression is not simply justifiable but imperative, non-resistance hurts both altruism and egoism.

अत्याचार का सक्रिय विरोध करना केवल न्यायसंगत ही नहीं है, धर्म भी है, अत्याचार का सक्रिय विरोध न करने से केवल परोपकार भावना पर ही आघात नहीं पहुँचता, स्वात्माभिमान पर भी आघात पहुँचता है।

इस वाक्य ने श्याम जी कृष्ण वर्मा के हृदय में हरबर्ट स्पेंसर के लिए इतना अधिक भक्तिभाव उत्पन्न कर दिया कि वे उस अंग्रेजी फ़िलोसोफर का शिष्य ही बन गये और उन्होंने अपने धन से ऑक्सफोर्ड में हरबर्ट स्पैंसर लैक्चरशिप की स्थापना कर दी। कुछ वर्षों तक वे इंग्लैण्ड में धन और विद्या का उपार्जन करते रहे। अन्त में १९०५

मे श्याम जी कृष्ण वर्मा ने राजनीति के क्षेत्र में लम्बी छलांग लगा दी। उन दिनों लार्ड कर्जन ने बंग-विच्छेद का गोला फेंक कर भारत के वातावरण मे अपूर्व राजनीतिक जागृति उत्पन्न कर दी थी। भारत की राजनीति मानो करवट ले रही थी। राष्ट्रीय कार्यकर्ता दो दलों में विभक्त हो गये थे। पुराने कार्यकर्ता "नरम" कहलाते थे, उनके नेता श्री दादाभाई नौरोजी थे। दूसरा गरम दल था जिसके नेता लोकमान्य तिलक थे। गरम दल ब्रिटिश साम्राज्य के जाल में से निकल जाने में भारत का कल्याण मानता था और अपने आन्दोलन को वैधानिकता तक परिमित नहीं रखना चाहता था। श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा महर्षि दयानन्द के शिष्य होने के कारण इस सिद्धान्त के अनुयायी थे कि अच्छे-से-अच्छा विदेशी राज्य भी स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता। महर्षि दयानन्द के इस मूल सिद्धान्त को हरबर्ट स्पेंसर के व्यावहारिक मन्तव्य से मिला कर जो नीति हो सकती थी श्याम जी ने उसी को स्वीकार किया। वे लोकमान्य तिलक की नीति के कट्टर समर्थक बन गये।

अपनी नीति के अनुसार देशसेवा के लिए उन्होंने जो क़दम उठाये, उनमें से पहला था 'दि इण्डियन होम-रूल सोसायटी' की स्थापना। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने सोसायटी का प्रारम्भोत्सव १९०५ के फरवरी मास में अपने मकान पर किया। उसके साथ ही 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' नाम का पत्र भी जारी कर दिया, जो तेज राजनीति का जोरदार वकील बन गया। 'होम-रूल सोसायटी' इंगलैण्ड में विद्यमान देशभक्त भारत-वासियों के मिलने का केन्द्र बन गई। कुछ समय पीछे श्याम जी कृष्ण वर्मा ने अनेक प्रतिष्ठित अंग्रेजों और भारतवासियो की उपस्थिति में "इण्डिया हाउस" की स्थापनाकी। 'इण्डिया हाउस' कुछ ही दिनों में राजद्रोही भारतवासियों का गढ़ समझा जाने लगा। 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' में श्याम जी कृष्ण वर्मा की ओजस्विनी लेखनी से निकले हुए लेख नवयुवक भारतीयों के हृदयों में हलचल मचा देते थे। वे लोग इण्डिया हाउस में इकट्ठे होकर ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध तरह-तरह की योजनाये बनाते थे। श्रीयुत विनायक दामोदर सावरकर आदि देशभक्तो को अपने विचार परिपक्व करने और अन्यों तक फैलाने का अवसर इण्डिया हाउस की सभाओं में ही प्राप्त हुआ। इधर भारतवर्ष में आतंकवाद का प्रादुर्भाव हो गया था। इंगलैण्ड के प्रभावशाली समाचार-पत्रो ने उसके लिए 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' अखबार और उसके सम्पादक श्याम जी कृष्ण वर्मा को दोषी ठहराकर उनके विरुद्ध सरकार को भड़काने का काम जारी कर दिया। बात यहाँ तक बढ़ गई कि श्याम जी कृष्ण वर्मा ने लन्दन छोड़कर पेरिस में डेरा जमाने का निश्चय कर लिया और वहाँ एक बडा मकान खरीद कर उसमें 'इण्डिया हाउस' तथा 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' के कार्यालय की पुनः स्थापना कर दी। कुछ वर्षों तक श्याम जी कृष्ण वर्मा पेरिस मे रहकर व्यापार द्वारा धन कमाते और उसे देश के कार्य में खर्च करते रहे। परन्तु परिस्थितियो ने उन्हें वहाँ भी आराम से न बैठने दिया। १९१४ में यूरोप का महायुद्ध आरम्भ होने पर उनके लिए फ्रांस में रहना भी कठिन हो गया, तब वे स्विट्-जरलैण्ड में चले गये। यहाँ की सरकार ने उन्हें इस शर्त पर अपने देश में रहने की अनुमति दी कि वे राजनीति में कोई हिस्सा न लें। श्याम जी ने 'इण्डियन सोशियोलोजि का प्रकाशन वन्द कर दिया। वृद्धावस्था, थकान और सापेक्षक निराशा ने पूरे जो कार्य को जारी रखना असम्भव बना दिया। ऐसी अवस्था में सात वर्ष तक जेनेवा देशसेवा में जीवन व्यतीत करके १९३० में वहीं अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर दी।